छत्तीसगढ़ के विमुक्त अनुसूचित जाति नट एवं उनके खेल-तमाशा का नृजातिवृतांतात्मक अध्ययन

हेमन्त कुमार[1]
डॉ.जितेन्द्र कुमार प्रेमी[2]
[1]**शोधछात्र,** मानवविज्ञान अध्ययनशाला, पं.रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)
[2]**ऐसोसिएट प्रोफेसर,** मानवविज्ञान अध्ययनशाला, पं.रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)
Email ID: joshi9926124815@gmail.com, Email ID: jitendra_rsu@yahoo.co.in
M.N.-8103866976, 9399838938

सारांश:-

निम्न आलेख ''छत्तीसगढ़ के विमुक्त अनुसूचित जाति नट एवं उनके खेल-तमाशा का नृजातिवृतांतात्मक अध्ययन'' पर आधारित है। निम्न अध्ययन का उददेश्य नृजाति समूह 'नट' के सामाजिक-आर्थिक, राजनैतिक एवं शैक्षणिक स्थिति का अध्ययन करने के साथ-साथ नृजाति समूह 'नट' के खेल-तमाशा पर आधुनिकता के प्रभाव का अध्ययन करना था। 'नट' संस्कृत शब्द के 'नाट' से लिया गया शब्द है जो न+ट दो शब्दों से मिलकर बना है। जिसका अर्थ नृत्य, नाटक अथवा अभिनय करना रहा है। नृजाति समूह 'नट' को छत्तीसगढ़ राज्य में "डंगचगहा'' के नाम से पहचाना (जाना) जाता है। "डंगचगहा'' शब्द मुख्य रूप से दो शब्द डंग+चगहा से मिलकर बना है। 'डंग' का अर्थ "बाँस'' से है और "चगहा'' का अर्थ "चढ़ना'' से है अर्थात् बाँस के सहारे रस्सी पर चढ़कर विभिन्न प्रकार के खेल-तमाशा, करतब दिखाने से है। **भारत सरकार की जनगणना 2011**[1] के अनुसार नट, कालबेलिया, सपेरा, नवदिगार, कुबुतर की कुल जनसंख्या 486058 थी। **NCDNST, 2008**[2] के अनुसार दक्षिण एशिया में विश्व के सर्वाधिक घुमन्तु/अर्धघुमन्तु नृजाति समूह निवास करती है। जिसमें से लगभग पाँच सौ प्रकार के विमुक्त घुमन्तु/अर्धघुमन्तु आपराधिक जाति-जनजाति भारत में निवास करती है जो भारत की जनसंख्या का सात प्रतिशत का प्रतिनिधित्व करता है। प्रस्तुत अध्ययन से पता चलता है कि छत्तीसगढ़ के विमुक्त घुमन्तु/अर्धघुमन्तु 'नट' जाति का सामाजिक-आर्थिक, राजनैतिक एवं शैक्षणिक स्थिति अन्य जाति समूहों के अपेक्षा निम्न स्तर पर है। नृजाति समूह 'नट' के खेल-तमाशा पर आधुनिकता का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। पहले 'नट' जाति में खेल-तमाशा परम्परागत रूप से ढ़ोल, थाली, डमरू, कुत्ता, बन्दर इत्यादि के माध्यम से खेल-तमाशा करते थे। लेकिन वर्तमान समय में आधुनिक साऊड बॉक्स, नवीन गीत-संगीत के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के नवीन खेल-तमाशा, सर्कस करने लगा है। अर्थात् नृजाति समूह 'नट' अपनी परम्परागत खेल-तमाशा को धीरे-धीरे बिसराने (भूलने) लगा है।

कुंजीशब्द:- छत्तीसगढ़, नृजाति समूह नट, विमुक्त घुमन्तु/अर्धघुमन्तु जाति, खेल-तमाशा।

प्रस्तावना:- भारत विभिन्नताओं का राष्ट्र है। विभिन्नताओं से भरा राष्ट्र का निर्माण विभिन्न प्रकारों के भाषा-बोली के आधार पर किया गया है। जैसे मराठी भाषा-बोली बोलने के कारण महाराष्ट्र, तेलगू बोलने के कारण आन्धप्रदेश, तेलंगाना उसी प्रकार से छत्तीसगढ़ही बोली बोलने के कारण छत्तीसगढ़ राज्य को छत्तीसगढ़ के नाम से जाना जाता है। छत्तीसगढ राज्य अपनी राज्य सम्पदा खनिज, लौह, धान, जाति-जनजाति, घुमन्तु/अर्धघुमन्तु जाति-जनजाति, रीति-रिवाज, परम्पराओं इत्यादि के लिए अन्य राज्यों से भिन्नता रखते हुये अपना अलग पहचान रखता है। छत्तीसगढ राज्य में लगभग 42 प्रकार के जनजातियाँ निवास करती है, जिनमें से 7 प्रकार के विशेष पिछड़ी जनजाति भी शामिल है। इस जाति-जनजातियों की श्रेणी में विमुक्त घुमन्तु/अर्धघुमन्तु 'नट' (डंगचगहा) जाति भी छत्तीसगढ़ राज्य के लगभग 13 जिलों (रायपुर, जांजगीर-चांपा, मुंगेली, बिलासपुर, बेमेतरा, कबीरधाम, नांदगांव, दुर्ग, महासमुंद, बलौदाबाजार, रायगढ़, धमतरी, बालौद) में निवासरत है।

नृजाति समूह 'नट' जिसे घुमन्तु/अर्धघुमन्तु आपराधिक जाति-जनजाति, खानाबदोस जीवन जीने वाला भारत के अत्यन्त प्राचीन जाति के रूप में जाना जाता है। इसका मुख्य कार्य विभिन्न प्रकार के कलाबाजी, खेल-तमाशा, भिच्छावृत्ती के साथ-साथ जड़ी-बूटी, ताबीज बेचना भी है। प्रारम्भ में इस नृजाति समूह को जनजातियों के श्रेणी में गिना जाता था। लेकिन वर्तमान समय में इसे छत्तीसगढ़ राज्य में अनुसूचित जाति के अन्तर्गत शामिल किया गया है और इसी के आधार पर इसे सरकारी योजनाओं का लाभ मिलने लगा है। छत्तीसगढ़ राज्य में 'नट' जाति को घुमन्तु/अर्धघुमन्तु विमुक्त जाति के रूप में जाना जाता है। घुमन्तु विमुक्त जाति-जनजाति क्या है? घुमन्तु एवं विमुक्त जाति-जनजाति को अग्रेंजी में नोमाडिक ट्राईब्स कहते है और आपराधिक जाति-जनजाति को डी-नोटीफाईड ट्राईब्स कहते है। वर्ष 1952 को आपराधिक जनजाति का नाम बदलकर डी-नोटीफाईड किया गया। अर्थात् विमुक्त आपराधिक कानून से मुक्त होना या किया गया। तब से लेकर वर्तमान समय तक 'नट' जाति एक गाँव से दूसरे गाँव, एक शहर से दूसरे शहर घुम-घुम कर अपनी शारीरिक कलाबाजी, खेल-तमाशा दिखाते हुये अपना जीवन निर्वाह कर रहा है। नृजाति समूह खेल-तमाशा के साथ-साथ भिच्छावृत्ती, जड़ी-बूटी, ताबीज बनाकर बेचने के साथ-साथ वर्तमान समय में जो नृजाति समूह स्थायी रूप से बस (निवास) गये है वह अब कृषि, मजदूरी एवं व्यापार भी करने लगा है। जिसके कारण से बहुत से नृजाति समूह 'नट' अपने पैतृक कार्य खेल-तमाशा, कलाबाजी, सर्कस दिखाने के कला को भूलने लगा है। वहीं जो नवीन युवावर्ग खेल-तमाशा दिखा भी रहे है तो वह अपनी पैतृक खेल-तमाशा में नवीन बदलाव/परिवर्तन कर विभिन्न प्रकार के खेल-तमाशा नवीन आधुनिक साऊड बॉक्स, गीत-संगीत, हाथ की सफाई (जादू) करतब का प्रयोग करते हुये खेल-तमाशा दिखा रहे है। नृजाति समूह 'नट' में युवावर्ग अन्य समाजों के बीच अत्यधिक सम्पर्क में आने (रहने) के कारण वह उनकी तरह उनके सांरकृतियों को अपनाने लगा है। जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमें 'नट' समाज के बच्चों पर देखने को मिल जायेगा। वर्तमान समय में बहुत से 'नट' समाज के बच्चे अपने पैतृक खेल-तमाशा, भिच्छावृत्ती के कार्य को करने से संकोच (शरमाते) करने लगा है। वह दूसरे बच्चों के सामान पहनावा कपड़ा, रहन-सहन, खान-पान, बोलचाल, शिक्षा, रोजगार को प्राप्त करने का प्रयाय करने लगा है। इस प्रयास के परिणाम स्वरूप ही आज 'नट' समाज के बहुत से बच्चे अब उच्च शिक्षा लेकर कोई शिक्षाकर्मी है तो कोई पुलिस, सैनिक तो कुछ युवावर्ग अपनी खुद के व्यापार भी करने लगा है। छत्तीसगढ़ राज्य के नृजाति समूह 'नट' वर्तमान समय में हिन्दूओं के अत्यधिक सम्पर्क में आने या रहने के कारण वह अब लगभग पूर्ण रूप से हिन्दू धर्म को मानने लगा है या यू कहे की यह अपने आप को हिन्दू मानने लगा है। वह अब हिन्दू धर्म के देवी-देवताओं की पूजा-पाठ, तीज-त्यौहार को भी मनाने लगा है। हालांकि हिन्दू धर्म के लोग इनके साथ आज भी कही न कही अस्पृश्यता जैसे व्यवहार करते है। आज भी बहुत से हिन्दू लोग इनके हाथों से दिया हुआ खाना, खाना पंसद नहीं करते और गांवों में दूसरे जाति के लोग इसे अपने साथ बैठाकर खाना-पिलाना भी पंसद नही करते। यदि गांव में किसी दूसरे जाति के यहा खाना के लिए निमंत्रण दिया भी जाता है तो इसे अलग से सूखा चावल, दाल, सब्जी पकाने के लिए दिया जाता है। वह अपने हाथों से अपने बर्तन में या अलग से दिये हुये बर्तनों में अलग से चूल्हा में बनाकर (पका) खाते है। इसे आज भी अस्पृश्य, आपराधिक जाति के रूप में देखते है या मानते है। इसी के परिणाम स्वरूप नृजाति समूह 'नट' आज भी गांव/शहरों में मुख्य गांव से कुछ दूर अपना 'डेरा' (निवास) बनाते या लगाते है। और नृजाति समूह अपने सामाजिक नियमों का पालन करते हुये जीवन गुजार रहे है।

नृजाति समूह 'नट' छत्तीसगढ़ राज्य के लगभग 13 जिलों में निवासरत है। सन 1930 में "डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर ने अपने 'हु वेअर अनटचेबल' ग्रंथ में विमुक्त आपराधिक जनजातियों की जनसंख्या 50 लाख बताई है। (**धारासुरे 2020, पृ. 25**)[3]'' **सामाजिक जनगणना 2014**[4] के अनुसार नट, कालबेलिया, सपेरा, नवदिगार एवं कुबुतर की कुल जनसंख्या 486058 थी। **NCDNST, 2008** के अनुसार भारत में लगभग पाँच सौ प्रकार के विमुक्त घुमन्तु/अर्धघुमन्तु जाति-जनजाति निवास करती है जो भारत की जनसंख्या का सात प्रतिशत का प्रतिनिधित्व करता है। भारत में सात प्रतिशत जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करने वाला जाति-जनजाति आज तक विमुक्त घुमन्तु/अर्धघुमन्तु जाति-जनजाति के रूप जाना जाता है क्यों? वर्तमान समय में भी अन्य जाति-जनजातियों से भी क्यों पिछड़ा हुआ हैं? देश के कुल जनसंख्या का 7 प्रतिशत भाग का प्रतिनिधित्व करने

वालों का एक भी जनप्रतिनिधि किसी आयोग में सदस्य, मंडल, नेता, सांसद, विधायक क्यों नहीं हैं? घुमन्तु जाति-जनजाति लगभग सभी क्षेत्रों में अति पिछड़ा हुआ है तो क्यों नही इन्हे विशेष आरक्षण, अलग से आयोग क्यों नहीं बना हैं? इत्यादि जैसे प्रश्नों को हम देखे तो पता चलता है कि नृजाति समूह के सामाजिक-आर्थिक, राजनैतिक एवं शैक्षणिक स्तर निम्न होने के पीछे कहीं न कहीं हमारी सरकार एवं सरकार के प्रतिनिधि नेता, कानून, कर्मचारी के साथ-साथ खुद नृजाति समूह भी कहीं न कहीं जिम्मेदार दिखाई पड़ता है। वर्तमान समय में सरकार नृजाति समूह 'नट' को छत्तीसगढ़ राज्य में अनुसूचित जाति वर्ग के अन्तर्गत शामिल कर आरक्षण का लाभ दे रहा है। लेकिन नृजाति समूह में शिक्षा का स्तर बहुत ही निम्न होने के कारण से बहुत से नृजाति समूह सरकारी योजनाओं का लाभ लेने से वंचित रह जाते है। वर्तमान समय में शैक्षणिक स्तर का निम्न होने के लिए ऐ खुद जिम्मेदार है मालूम पड़ता है क्योकि ऐ लोग अपने छोटे-छोटे बच्चों को स्कूल जाने के समय में इन्हें खेल-तमाशा, करतब, सर्कस दिखाने के लिए अपने साथ दूसरे प्रदेश ले जाते है। नृजाति समूह में माता-पिता अपने छोटे बच्चों का उपयोग लगभग 05-14 वर्ष के आयु तक के बच्चों का उपयोग खेल-तमाशा के लिए करते है। फिर बच्चों का 14-16 साल के कम आयु में ही अधिकांश का शादी कर देते है। इस तरह से वह बच्चा पढ़ नही पाता है। सरकार एवं सरकार के जन प्रतिनिधि नेता विधायक चुनाव के समय इनके लिए बड़े-बड़े लुभावने वादा जैसे नृजाति समूह के लिए अलग से आयोग बनाया जायेगा, विशेष आरक्षण दिलाया जायेगा, सामाजिक-आर्थिक, राजनैतिक एवं शैक्षणिक विकास के लिए विधानसभा राज्यसभा में नृजाति समूह का प्रतिनिधि होगा जो नृजाति समूह का प्रतिनिधित्व करेगा इत्यादि वादा करते है और चुनाव के बाद किये गये वादा को भूल जाता है या वादा से मुकर जाता है। इस कारण से नृजाति समूह के लोगों में राजनैतिक नेता, सरकारी प्रतिनिधि, कर्मचारियों के ऊपर से विश्वास उठ चूका है। और कुछ नृजाति समूह के लोग चुनाव के समय वोट देने भी नही जाते है। इस तरह से नृजाति समूह खुद एवं सरकारी प्रतिनिधि कहीं न कहीं नृजाति समूह के पिछड़े पन के लिए जिम्मेदार है।

विमुक्त घुमन्तु/अर्धघुमन्तु जाति-जनजातियों की वर्गों को देखे तो यह अनेक वर्गों में बटा हुआ हैं। जिसकी परिपूर्ण जानकारी हमारे सरकार के पास भी नहीं है न जानकारी लेने का सामाजिक कर्तब्य भी आज तक किसी सरकार ने पूरा नहीं किया है। ऐ सिर्फ अपने हित के लिए मतदाता सूची में विमुक्त घुमन्तु/अर्धघुमन्तु जाति-जनजातियों को जोड़ा है। जिनमें उनका राजनीतिक स्वार्थ है। (**धारासुरे, 2020 पृ.25**) छत्तीसगढ़ राज्य के विमुक्त घुमन्तु/अर्धघुमन्तु जाति-जनजातियों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं शैक्षणिक स्थिति की सही मायने में देखे तो आज भी मुख्य विमुक्त घुमन्तु/अर्धघुमन्तु समूहों की जीवन स्थिति बहुत ही दयनीय स्थिति में है। इनकी दयनीय स्थिति को सुधारने के लिए आरक्षण का लाभ सर्वप्रथम इस वर्ग को दिलाने के लिए कार्य करना चाहिए।

सामाजिक-आर्थिक स्थिति छत्तीसगढ़ राज्य जो अपनी विमुक्त घुमन्तु/अर्धघुमन्तु जाति-जनजाति एवं सांस्कृतिक विभिन्नताओं के लिए जाने जाते है। यहाँ अनेक प्रकार के घुमन्तु/अर्धघुमन्तु जाति-जनजातियाँ जो जंगलों, पहाड़ो, मैदानी, ग्रामीण, शहरी क्षेत्रों में निवासरत है। 'नट' जाति प्रमुख रूप से अर्धघुमन्तु जाति है। जिनका जीवन हमेशा एक स्थान से दूसरे स्थान भटकते हुये चल रहा है। इस भटकन के कारण इसे घुमन्तु/अर्धघुमन्तु जाति के नाम से जानते है। दूसरे स्थान पर भटकना इनका मजबूरी भी है क्योकि इनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय है। किसी कारण वंश जिस दिन खेल-तमाशा नही दिखा पाते उस दिन कभी कभार भूखे पेट ही सोना पड़ता है। न इनके पास खुद के कृषि जमीन है न खुद के व्यापार। इनके पास मात्र इनकी परम्परागत व्यवसाय खेल-तमाशा, भिच्छावृत्ती है जिसके सहारे यह अपना और अपने परिवार के पालन पोषण करते आ रहे है। देखा जाये तो 'नट' जाति अन्य जाति समूहों के सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक एवं शैक्षणिक रूप से बहुत पिछड़ा हुआ है।

नट जाति का क्षेत्र एवं निवास:- छत्तीसगढ़ राज्य में 'नट' जाति मुख्य रूप से जांजगीर-चांपा, बिलासपुर, मुगेली, रायपुर, धमतरी, बेमेतरा, कबीरधाम, कर्वधा, नांदगांव, दुर्ग, महासमुंद, बलौदाबाजार, रायगढ़, बालौद इत्यादि जिलों में निवासरत है। तो वही (**निरगुणे, 2017 पृ.70-71**)[5] के अनुसार 'नट' नृजाति समूह सम्पूर्ण उत्तर भारत में खासकर पश्चिम भारत में निवास करते है। राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ राज्य को नटों का गढ़ कहाँ जाता है। राजस्थान के कलंदर जाति को मूलतः

नट ही मानते है। उसी प्रकार के गुजरात में 'थाउस' एवं महाराष्ट्र में 'गोड़ हाली' जो 'नट' का काम करते है। इनके निवास मुख्यता बाँस और कपड़ो से बना रहता है। तथा कुछ वर्तमान समय में त्रिपाल से अपना झोपड़ी, डेरा बनाने लगा है। ऐ अधिकांश रूप से 5-10 लोगों का समूहों में निवास करते है जो एक-एक सूत्र में बँधे रहते है। किसी पर विपत्ति आने पर ऐ एक-दूसरे की मंदत के लिए हमेशा समूह में अपना डेरा निवास डालते या बनाते है। प्रस्तुत अध्ययन के दौरान देखा गया है कि वर्तमान समय में बहुत से 'नट' जाति अर्धघुमन्तु में बदल गये है। वह अब छत्तीसगढ़ में अपना स्थायी निवास बनाकर रहने लगा है। वह कुछ माह समय के लिए खेल-तमाशा, भिच्छावृत्ती के लिए दूसरे प्रदेश जाते है और कुछ माह बाद अपना स्थायी निवास गांव में वापस आ जाते है। और पुनः कुछ माह आराम करने के बाद खेल-तमाशा दिखाने के लिए (युवावर्ग, शादीशुदा महिला पुरूष) चले जाते है जो वृद्ध या शिक्षा ग्रहण कर रहे है वहीं मात्र स्थायी निवास गांव में रहता है जो छोटा-मोटा दुकान या सुवर, बकरी, मुर्गी-मुर्गा पालन करते हुये घरों का देख भाल करते हुये अपना जीवन बसर कर रहे है।

शारीरिक बनावट एवं वस्त्र विन्यास:- नृजाति समूह 'नट' का शारीरिक बनावट मुख्यता चुस्त-दुरूस्त, फुर्तीला, अत्यधिक लचीला और शारीरिक रूप से मजबूत होता है। छत्तीसगढ़ राज्य में निवासरत 'नट' जाति अन्य जाति-जनजातियों से मिलता जूलता प्रायः सांवला, काला, तीक्ष्ण नाक, काले लम्बे बाल (केस) मुलायम, कान मध्यम, आँख सामान्य, पुतली काला, भौव काला, हाथ-पैर एवं उँगली सामान्य, कद-काठी मध्यम, पुरे शरीर पर हल्का काला भुरे बाल पाया जाता है। पुरूष सिर के बालों को हमारे तरह सामान्य तौर से कंघी करते है वहीं महिलाओं में एक चोटी रहता है तो छोटे बच्चे व कुवारी लड़कियों का बाल दो चोटी कंघी किये हुये मिल जायेंगा। महिलाये पुरूषों की अपेक्षा अधिक चुस्त फुरर्त, सुडौल, सुदृढ़ और सुन्दर होते है। छोटे बच्चों (लडकी, लड़का) को बचपन से ही खेल-तमाशा (डांग) चढ़ने की अभ्यास कराया जाता है और वह उस कला में पारंगत हो जाये रहता है। छोटे लड़की-लड़का खेल-तमाशा दिखाते है तो वहीं बडे पुरूष ढ़ोल थाली बजाने के साथ-साथ साऊड बॉक्स के माध्यम से दर्शकों को सम्बोधन करते रहता है।

वस्त्र विन्यास में पुरूष मुख्यता पैट-शर्ट, कमीज, लुंगी, धोती, सिर पर साफा बाँधे रहता है तो वहीं युवावर्ग वर्तमान समय में टी-शर्ट, जींस, केफरी, पैट-शल्ट के साथ बेल्ट, चश्मा, घंडी, अंगुठी, बाली पहनने के साथ-साथ मोबाईल फोन भी रखने (पकड़ने) लगा है। नृजाति समूह नट में शादी के समय पुरूष (वर) का वस्त्र मुख्य रूप से सफेद पैट शर्ट हुआ करता था लेकिन वर्तमान समय में अब सामान्य कोई भी कलर का पैंट, शर्ट, जींस पहनने लगा है तो वही महिलाओं में शादी के समय सामान्य लाल, गुलाबी, पीला साड़ी पहनते है। महिलाए सामान्य दिनचर्या के समय साड़ी, ब्लाऊज, लहंगा, पेटीकोट पहनते है तो वहीं छोटी लड़की या कुवारी लड़की सलवार सूट, कमीज, कुरती, घाघरा, टी- शर्ट, जींस, फ्रॉक इत्यादि पहनते है। नृजाति समूह में अधिकांश लोग प्रायः नंगे पैर चलते है। खासकर अपने डेरा/घर में बाकी समय चप्पल, जूता एवं सेन्डील का उपयोग करते है। (**निरगुणे, 2017**)

परिवारिक संरचना एवं नृजाति पंचायत:- नृजाति समूह में अधिकांश रूप से एकल परिवार का प्रचलन अधिक है। विवाह के पश्चात् लड़का/पुत्र अपना अलग से निवास/डेरा बनाकर अपने परिवार के साथ अलग खाने लगता है। प्रस्तुत अध्ययन में पाया गया की जब स्थायी मकान/घर बड़ा हो तो वह किसी एक कमरा में अपने परिवार के साथ रहते हुये अलग से चूल्हा जलाकर खाता है। लेकिन परिवार बड़ा हो और मकान छोटा तो उस स्थिति में अपने माता-पिता, भैय्या-भाभी, बहन-दमाद अन्य रिश्तेदार के घर के निकट अपना नया घर/डेरा बनाकर अलग रहने लगता है। 'नट' जाति में वंश परम्परा पितृसत्ता का प्रचलन है तथा परिवार का मुखिया बड़े पुरूष होते है। पिता की सम्पत्ति बेटा को मिलता है। किन्तु परिवार में बेटा/पुत्र न हो तो उस स्थिति में परिवार की संपत्ति लड़की को मिलता है।

नृजाति समूह में जाति पंचायत का मुखिया वृद्ध पुरूष या समझदार शादीशुदा 40-60 वर्ष के आयु वर्ग के पुरूष होता है। छत्तीसगढ़ के 'नट' जाति समूह में 12 गांव का एक पाली अर्थात् बारापाली का एक मुखिया होता है, जिसका चुनाव सर्वसम्मति से होता है। इनके सहयोग के लिए चार पंच का चुनाव भी सर्वसम्मति से होता है। लेकिन प्रत्येक गांव में भी नृजाति

समूह का मुखिया भी पारा/मोहल्ला अनुसार जितना पारा/मोहल्ला होगा या होता है, उतना मुखिया पारा/मोहल्ला का रहता है। इनका चुनाव गांव एवं पारा के सदस्यों के द्वारा सर्वसम्मति से किया जाता है। नृजाति समूह में किसी सामाजिक समस्या, परिवारिक विवाद, व्यक्ति विशेष विवाद इत्यादि सामाजिक समस्या का निराकरण गांव/पारा/मोहल्ला एवं बारापाली के मुखिया मिलकर नृजाति पंचायत में करते है। 'नट' जाति में अधिकांश सामाजिक समस्या, विवादों का निपटारा/फैसला जाति पंचायत में ही हो जाता है। बहुत कम ही विवाद या समस्या को लेकर नृजाति व्यक्ति/समूह थाना-कचहरी तक जाते है। यह अलग बाद है की किसी बड़े विवाद या समस्या हो तो ही नृजाति समूह के लोग थाना-कचहरी तक जाते है। इनकी पंचायत बहुत सक्त होता है। मुखिया का निर्णय सर्वमान्य रूप से मान्य होता है जो नहीं मानता है उसे समाज बिरादरी से बाहर सामाजिक बहिष्कृत कर देते है। जब उसको दिये गये करार, सजा को मानने को तैयार हो जाता है तो उस परिवार/व्यक्ति को पुनः समाज में मिला लिया जाता है।

धार्मिक क्रियाकलाप:- "नृजाति समूह 'नट' अपने धार्मिक देवी-देवताओं के प्रति अत्यधिक विश्वास रखते है। नृजाति समूह में कोई भी सामाजिक परिवारिक एवं धार्मिक कार्य करने से पूर्व (पहले) अपने ईष्ट देवी-देवताओं की पूजा-पाठ पहले करता है फिर काम चालू (प्रारम्भ) करता है। इनका मानना है कि ऐसा करने से देवी-देवता प्रसन्न रहता है और कार्य सही रूप से सफल होता है। नृजाति समूह द्वारा अपने ईष्ट देवी-देवताओं के रूप में मुख्यता चार पूर्वजों (दादो) दादो फरसराम, दादो बकतो, दादो फिरतु एवं दादो घासीदास को मानता है और इनकी पूजा-पाठ करता है। **(नट,2021)**[9]" छत्तीसगढ़ राज्य के अर्धघुमन्तु नृजाति समूह 'नटों' के स्थायी घरों पर प्रायः प्रत्येक घर के आंगन में पूर्वजों के प्रतीक के रूप में एक चबुतरा बना रहता है। इस चबुतरा में त्रिकोण आकार के लाल एवं सफेद रंग के झण्ड़ा लगा रहता है। खडकवाहनी एवं बुडीमाता के झण्ड़ा प्रायः लाल रंग का रहता है तो वहीं सटवाई माता का झण्ड़ा प्रायः सफेद रंग का रहता है। लेकिन प्रस्तुत अध्ययन के दौरान कहीं-कहीं पर वर्तमान समय पर खडकवाहनी एवं बुड़ीमाता के झण्ड़ा सफेद रंग का तो सटवाई माता का झण्ड़ा लाल रंग का भी देखने को मिला है। झण्ड़ा पुराना या फट जाने पर वर्ष में एक बार या 3 साल में तीलसल्ला पूजा-पाठ विधि-विधान से करते हुये खैरा बकरा, बकरी, मुर्गा बलि देकर झण्ड़ा बदला या नया लगाया जाता है। पूजा के लिए नारियल, अगरबत्ती, घी, तेल, धूप, बन्दन, दूबीघास, दूध, चावल, चावल आटा/गेहूँ आटा, गुड़, शराब, दीया, नया झण्ड़ा, बाँस के नया डण्ड़ा, बलि देने के लिए चाकू, तीन मिट्टी के नया ईट या मिट्टी के ढेला, नया बाँस के टोकरी, लाल या सफेद कलर के नया कपड़ा 1-2 मीटर के, मौलीधागा, मिट्टी के बड़ा दीया, लोटा या गिलास, थाली काँच या स्टील के, गांजा/तम्बाकू, चाँदी/सोना के अंगुठी, शुद्वीकरण के लिए अलग गोत्र के एक व्यक्ति, लकड़ी के बॉक्स/सन्दूक (देवखाटली) इत्यादि की जरूरत पड़ती है। वर्तमान समय में नृजाति समूह अन्य जाति-जनजातियों के अधिक सम्पर्क में आने के कारण वह दूसरे धर्मों के देवी-देवताओं के पूजा-पाठ के साथ-साथ उनके तीज-त्यौहार को भी मानने लगा है। नृजाति समूह के अधिकांश घरों में ईष्टदेवी देवताओं के साथ अन्य देवी-देवताओं जैसे- बूड़ीमाता, शंकर, विष्णु, दुर्गा, हनुमान, काली, लक्ष्मी, संतोषी, प्रभु यीशु इत्यादि के आराधना/पूजा-पाठ करते है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में फैले विमुक्त घुमन्तु/अर्धघुमन्तु जाति-जनजाति में से कुछ विमुक्त जाति 'नट' मुस्लिम धर्म को भी मानते है वह मुस्लिम रीति-रिवाज अनुसार अपना जीवन निर्वाह कर रहे है, वे मुस्लिम नट कहलाते है।

नृजाति समूह में कोई पितर (श्राद्ध) नही मानते लेकिन मरे हुये वंशजों को देवता मानकर उनका पूजा-पाठ करते है। नृजाति समूह मरे हुये वंश के लोगों को तीन साल में तीलसल्ला पूजा-पाठ कर मिलाते है। तब से मरे हुये वंश के लोग देवता बन जाता है। और उनकी पूजा-पाठ करता है। नृजाति समूह में कोई भी काम तीज-त्यौहार, उत्सव होता है या मनाने से पहले वह अपने पूर्वजों के क्रब में जाकर बन्दन, दीया, अगरबत्ती एवं शराब तरपते (लगाते) है। अधिकांश देवी-देवताओं की पूजा-पाठ कार्तिकमास के एकादशी (देवउठनी) के दिन करते हुये उसे उत्सव के रूप में मनाते है। नृजाति समूह 'नट' के कोई विशेष त्यौहार, उत्सव, पर्व खुद की नही है। वह वर्तमान समय में पूर्ण रूप से हिन्दू देवी-देवताओं के पूजा-पाठ के साथ-साथ उनके तीज-त्यौहार को भी मानते है। या यू कहे की नृजाति समूह 'नट' पूर्ण रूप से हिन्दू हो गया है वह अपने आप को हिन्दू कहते है और इनही के अनुसार विवाह एवं मृत्यु संरकार का कार्यक्रम भी करते है। हालांकि इनके विवाह एवं मृत्यु संस्कार के क्रिया क्रम में कुछ अन्तर

है। विवाह का कार्यक्रम पूर्ण रूप से लड़की के यहाँ लड़का वाले बारात लेकर जाने के बाद लड़की के गांव में ही मंडप लगा कर सभी रीति-रिवाज तेल हल्दी का कार्यक्रम करते है। वहीं मृत्यु में दसगात्र का चलन है उस दिन तीन बकरा बलि के रूप में दिया जाता है। पुरे नृजाति समाज को बकरा भात खिलाते है। लेकिन वर्तमान समय में कुछ 'नट' परिवार में बकरा भात के स्थान पर सादा दाल भात, सब्जी, खीर पूरी खिलाते है।

उत्पत्ति संबंधी मिथक:- नृजाति समूह 'नट' (डंगचगहा) के उत्पत्ति संबंधी न कोई लेख है न कोई इतिहास है। अर्थात् 'नट' जाति की उत्पत्ति इतिहास तथ्यों के आधार पर निश्चित करना संभव नही है। किंवदंती के अनुसार आज से लगभग 310 से 335 ई. में चन्द्रगुप्त के काल में चन्द्रगुप्त अपने दरबार में 'नटों' को गीत-संगीत मंनोरजन करने के लिए रखा था या रखते थे। इससे पूर्व 'नट' जाति के लोग जंगल में रहते थे, जंगलों में जंगली जानवरों के आक्रमण से बचने के लिए पुरा मोहल्ला/डेरा के लोंग एक जगह एकत्र होकर ढ़ोल बजाते हुये विभिन्न प्रकार के करतब करते हुये आग जलाकर रात व्यतीत किया करते थे। इससे पूरी रात गीत-संगीत करते हुये व्यतीत भी हो जाता था और जंगली जानवरों से सुरक्षित भी रह जाते थे। धीरे-धीरे ढ़ोल बजाने और डांग चढ़ने का अभ्यास होता चला गया तो इसे मैदानी इलाको में भरण-पोषण का साधन बना लिया जो आगे चलकर कलाबाजी, खेल-तमाशा दिखाने के कारण इनका नाम 'नट' (डंगचगहा) पड़ा। **निरगुणे, 2017 पृ.73-74**[6] के अनुसार "नट अपने आप को गोंड जनजाति की उपशाखा मानते है। इनमें गोत्र मरावी, नेताम, वायका या उईके इत्यादि होते है। तथा बादी भी गोंड की उपशाखा है जो गोदना गोदने का कार्य के साथ-साथ खेल-तमाशा रस्सी पर चलने, नृत्य करने का काम भी करते है।''

खेल-तमाशा के प्रकार:- नृजाति समूह 'नट' द्वारा वर्तमान समय में दिखाये जाने वाला खेल-तमाशा के प्रकार में मुख्य रूप से दो बाँस के बीच रस्सी बाँधकर खाली पैर रस्सी पर हाथ में 5-6 फिट बाँस या डण्डा लेकर चलना, सायकल रिंग से रस्सी पर चलना, सायकल रिंग में आग लगा कर सिर में रिंग को गोल घुमाते हुये चलना, रस्सी पर सो जाना, रस्सी पर खाली पैर रस्सी को आगे-पीछे जोर से हिलाना, रस्सी पर आग लगा कर गोला चलाना, रससी पर चप्पल पहन कर चलना, रस्सी पर आगे-पीछे चलना, पैर पर थाली लगा कर रस्सी पर चलना, चश्मा पहन कर रस्सी पर चलना, सिर में 5-10 लोटा लेकर रस्सी पर चलना, दोनो घुटना पर थाली लगाकर रस्सी पर चलना, खेल के जगह जमीन पर आगे-पीछे सीधा-उल्टा पलटना, जीफ के सहारे जमीन पर पड़े सुई को उल्टा होकर उठाना, सीने पर बड़ा से पत्थर रखकर घन के माध्यम से फोड़ना, 5-6 फिट के लम्बे छड़ (रिंग) को गल्ले के माध्यम से मोड़ना, ताश के पत्ते पर हाथ की सफाई दिखाना, गीत-संगीत पर ढ़ोल बजाते हुये डांस करना इत्यादि प्रकार के खेल-तमाशा, करतब नृजाति समूह 'नट' द्वारा किया/दिखाया जाता है।

अध्ययन के उददेश्य:- प्रसतुत अध्ययन "छत्तीसगढ़ के विमुक्त अनुसूचित जाति नट एवं उनके खेल-तमाशा का नृजातिवृतांतात्मक अध्ययन'' पर आधारित है। जिसका प्रमुख उददेश्य निम्न लिखित है- (1) नृजाति समूह नट के सामाजिक-आर्थिक, शैक्षणिक स्थिति का अध्ययन करना। (2) नृजाति समूह नट के खेल-तमाशा पर आधुनिकता के प्रभाव का अध्ययन करना रहा है।

शोध प्रविधि:- यह अध्ययन पूर्ण रूप से जहाँ एक ओर से गुणात्मक एवं वर्णात्मक शोध है तो वहीं दूसरी ओर से व्यावहारिक और प्राविधिक रूप से नृजातिवृतांतात्मक अध्ययन भी है। नृजातिवृतांतात्मक अध्ययन हेतु छत्तीसगढ़ राज्य के दो संभाग रायपुर एवं बिलासपुर के तीन जिला रायपुर, जांजगीर-चांपा, बलौदाबाजार का चयन नृजाति बहुल के आधार पर सूचनादाताओं का चयन सहभागी अवलोकन अध्ययन के लिए उददेश्यमूलक निदर्शन पद्वति से किया गया है। नृजातिवृतांतात्मक तथ्यों का संकलन के लिए साक्षात्कार निर्देशिका, साक्षात्कार अनुसूची, समूहवार्ता, केन्द्रिय समूहवार्ता तथा वयैक्तिक अध्ययन जैसे गुणात्मक शोध उपकरणों के द्वारा नृजाति समूह के मुखिया, पुजारी, पांरपरिक चिकित्सक, कलाकारों, धार्मिक विशेषज्ञ, वृद्ध महिला-पुरूष जैसे कुंजी सूचनादाताओं का गहन साक्षात्कार के माध्यम से तथ्यों एवं सूचनाओं का संकलन किया गया है।

परिणाम विवेचना एवं निष्कर्ष:- विमुक्त घुमन्तु/अर्धघुमन्तु नृजाति समूह 'नट' पर अब तक हुये अध्ययनों से पता चलता है कि "नट' शब्द संस्कृत के 'नाट' शब्द से लिया गया है। जिसका अर्थ या उपयोग घुमन्तु कलाबाजी एवं खेल-तमाशा दिखाने वाले

समूहो के लिए प्रयुक्त होता है ।'' दूसरे शब्दों में देखे तो 'नट' का अर्थ नृत्य, नाटक अथवा अभिनय करने से है । रसेल एंड हिरालाल की धारणा है कि 'नट' शब्द जिसका उद्गम संस्कृत के 'नाट' से हुआ है, वस्तुतः घुमन्तु कलाबाजी, खेल-तमाशा दिखाने वाले समूह के लिए प्रयुक्त होता है जो बाँस के सहारे रस्सी पर चलने या खेल दिखाते है अथवा सांपों को प्रशिक्षित कर उनका तरह-तरह के प्रदर्शन करते है । उसके लिए 'नाट' अर्थात् 'नट' शब्द का प्रयोग किया है । (**निरगुणे, 2017 पृ. 74**) "संस्कृत में 'नट' शब्द का अर्थ 'नर्तक' होता है और नट पारम्परिक रूप से मनोरंजन करने वाला कलाबाजी, बाजीगर थे । **(http://en.wikipedia.org.10/02/2022)**[7]'' **Talib (2019)**[8] के अनुसार "नृत्य, नाटक (अभिनय) करना भी है ।'' इस तरह से हम निष्कर्ष के रूप में पाते है कि जो नृजाति समूह खेल-तमाशा, कलाबाजी, करतब, भिच्छावृत्ती, एक स्थान से दूसरे स्थान घुमन्तु हुये अपना जीवन यापन करता है, जिसका कोई स्थायी निवास न हो उसे विमुक्त घुमन्तु/अर्धघुमन्तु नृजाति समूह कहते है । प्रस्तुत अध्ययन से पता चलता है कि छत्तीसगढ़ के विमुक्त घुमन्तु/अर्धघुमन्तु 'नट' जाति का सामाजिक-आर्थिक, राजनैतिक एवं शैक्षणिक स्थिति अन्य जाति समूहों के अपेक्षा निम्न स्तर पर है । नृजाति समूह 'नट' के खेल-तमाशा पर आधुनिकता का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । पहले 'नट' जाति में खेल-तमाशा परम्परागत रूप से ढ़ोल, थाली, डमरू, कुत्ता, बन्दर इत्यादि के माध्यम से खेल-तमाशा करते थे । लेकिन वर्तमान समय में आधुनिक साऊड बॉक्स नवीन गीत-संगीत के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के नवीन खेल-तमाशा, सर्कस करने के साथ-साथ वर्तमान समय में स्थायी बसे नृजाति समूह कृषि मजदूरी एवं व्यापार के साथ युवावर्ग शिक्षा ग्रहण भी करने लगा है । शिक्षा ग्रहण करने के कारण युवावर्ग अपने पैतृक कार्य खेल-तमाशा करने से बहुत से नृजाति युवा कतराने (संकोच करने) लगा है । अर्थात् नृजाति समूह 'नट' अपनी परम्परागत खेल-तमाशा को धीरे-धीरे बिसराने (भूलने) लगा है ।

संदर्भ सूची:-

(1) Census of India.Ministry of Home Affairs, *Government of India. office of the Registrar General & Census Commissioner, India*.2011.censusindia.gov.in. http://censusindia.gov.in /(accessed september 20, 2019).

(2) NCDNST.2008.*National Commission for Denotified, Nomadic and Semi-Nomadic Tribes*.socialjustice.nic.in June 30, 2008.http://socialjustice.nic.in/writereaddata/ UploadFile/ NCDNST2008-v1%20(1).pdf (accessed september 18, 2019).

(3) धारासुरे, व्यंकट.(2020).भारत के विमुक्त एवं घुमन्तू जन-समुदाय.मथुराः जवाहर पुस्तकालय.

(4) नट, अमृतलाल.(2014).छत्तीसगढ़ की घुमन्तु जातियां.रायपुरः सामाजिक जनगणना.

(5) निरगुणे, वसन्त.(2017).मध्य प्रदेश की विमुक्त जातियाँ-जनजातियाँ.दिल्लीः आलेख प्रकाशन.पृ.क्र.70-71.

(6) निरगुणे,वसन्त.(2017).मध्य प्रदेश की विमुक्त जातियाँ-जनजातियाँ.दिल्लीः आलेख प्रकाशन.पृ.क्र.73-74.

(7) http://en.wikipedia.org.10/02/2022.

(8) Talib, MD.(2019).नट समुदाय की स्थितिः एक सामाजिक केस अध्ययन.Journal of Advances & Scholary Researches in Allied Education, 16(6).P.N.2360-2366.

(9) नट, सुरेश कुमार.(2021).अंजोर एक आत्मकथा.मुगेली: बिहारी प्रिंटर्स मुंगेली छत्तीसगढ़. प्रथम संस्करण.

विमुक्त एवं घुमंतु जन समुदाय दशा एवं दिशा

डॉ. आरिफ महात।
सहायक प्राध्यापक एवं हिंदी विभाग प्रमुख,
विवेकानंद कॉलेज, कोल्हापुर(स्वायत्त)
ईमेल- drmahatas@gmail.com
मो. नंबर- 9860857089

सारांश

भारत देश को स्वतंत्रता 15 अगस्त 1947 को मिली लेकिन अँग्रेजो द्वारा गोपी गयी इस समुदाय की गुलामी 31 अगस्त 1952 में तक़रीबन 91 साल बाद समाप्त हुई। सन् 1952 तक अंग्रेजी कानून के तहत इन्हें जन्मजात अपराधी माना जाता था। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरु जी ने 11 अप्रैल 1960 को महाराष्ट्र के शोलापुर में सेटलमेंट कॉलोनी में रहने वाले लोगों को 'विमुक्त' कर दिया तब से इस गुनहगार जातियों को 'विमुक्त जनजाति' के नाम से संबोधित किया जाने लगा। इस कानून के चलते घुमंतू जनजातियों ने अपनी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विकास की भूमि तो खो दी। विडंबना यह है कि अंग्रेजो द्वारा प्रचलित पूर्वाग्रह के आधार पर इन विमुक्त जनजातियों को आज भी सामान्य जन या अभिजात वर्ग द्वारा अपराधीक प्रवृत्ति का माना जाता है। अभिजात वर्ग आज भी इन्हीं आदतन अपराधी मानते हैं इसलिए जब भी कभी नहीं कोई वारदात होती है तो सबसे पहले विमुक्त जनजातियों के लोगों को शक के दायरे में लेकर निशाना बनाया जाता है।

बीज शब्द- विमुक्त, घुमंतु, जन्मजात अपराधी, जनजाति।

भारत देश को स्वतंत्रता दिलाने मे सभी का योगदान रहा है। इसे नकारा नही जा सकता। घुमंतू समुदाय ऐसा ही एक समाज है जो अपने लढाऊ प्रवृत्ती के कारण अंग्रेजों को नाकों तले चने चबवाया है। इस समुदाय ने अपने तरफ से देश को स्वतंत्रता दिलाने में सहयोग दिया है लेकिन आज भी समाज मुख्य धारा से पिछड़ा हुआ है। आजादी के इतने साल बाद भी यह समाज मुख्यधारा में अभी तक आ ही नहीं पाया है और वास्तविक रूप में देखा जाए तो हमेशा भटकने वाला यह समाज अपनी अनगिनत समस्याओं के साथ राजनीतिक उपेक्षा के चलते अभी तक अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए संघर्षशील नजर आता है।

घुमंतू का शाब्दिक अर्थ है, 'घुमक्कड़' जो बिना कारण इधर-उधर घूमे। मराठी में घुमंतु के लिए भटके, भटका आदि शब्द प्रचलित हैं, जिसका अर्थ है- जो हमेशा भटकता रहता है, किसी एक जगह पर नहीं टिकता। अंग्रेजी में घुमंतू के लिए शब्द है- Nomade या Nomad यह शब्द ग्रीक के Nomi या Nemo शब्द से विकसित हुआ है। बृहत अंग्रेजी-हिंदी शब्दकोश में Nomad या Nomade का अर्थ दिया है- "अस्थिरवासी, यायावरी, चलवासी, पर्यटनशील, विचरणशील, भ्रमणप्रिय, घुमन्ता, घुमक्कड, खानाबदोश।" [1] इस इस अर्थ में घुमंतू शब्द का अर्थ ऐसा भी हो सकता है की कोई घुमंतू शौक से, अनुभव लेने को, ज्ञान प्राप्ति हेतु यात्रायें कर सकता है, जिसके लिए खूब पैसा और समय चाहिए। लेकिन यहां घुमंतू शब्द घुमंतू जनजाति के संदर्भ में है। वह विशेष जाति जिनका कोई स्थायी निवास नहीं होता और आजीविका की तलाश में वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमा करते हैं। इनका यह घूमना मौज-मस्ती के लिए नहीं बल्कि यह उनकी विवशता है।

कुछ विद्वानों ने घुमंतू जनजातियों को परिभाषित किया है। लक्ष्मण शास्त्री जोशी कहते हैं- "उदरनिर्वाहासाठी निवडलेल्या अगर वाट्यास आलेल्या व्यवसायानिमित्त अथवा उदरनिर्वाहाच्या साधनाच्या शोधात भटकत राहणाऱ्या लोकांना भटके म्हणतात।"[2] मतलब जीने के लिए चुने हुए या परंपरागत अपने हिस्से में आया हुआ काम या फिर जीने के लिए साधनों की खोज में घूमते रहने वाले लोगों को घुमंतू कहा जाता है।

मराठी के विद्वान डॉ नागनाथ कदम जी ने घुमंतू समुदाय की बड़ी सटीक व्याख्या की है। उनके अनुसार-" नाव सांगायला स्वतःचे गाव नाही. राहायला घर नाही. जमिनी सारखे कायम स्वरूपाचे उत्पन्नाचे साधन नाही. उपेक्षित जगणे नशिबी आल्यामुळे पोट भरण्यासाठी कामाच्या निमित्ताने, सतत गावोगाव भटकत असलेल्या कलेच्या आधाराने स्वतःची उपजीविका करणारा लोकसमूह

अनेक वर्षापासून महाराष्ट्रात वेगवेगळ्या जाती-जमातींच्या नावाने जीवन जगताना आढळतो, अशा या लोक समूहाला 'भटके' असे म्हणतात." [3] मतलब जिनके पास अपना कहे ऐसा गांव नहीं। रहने के लिए घर नहीं। खेत जमीन जैसा कोई उधर निर्वाह का पक्का साधन नहीं। नसीब में लिखा उपेक्षित जीवन जिसके चलते पेट की आग बुझाने हर दम गाँव दर गाँव घूमकर भिक्षा माँग या परंपरागत अपनी कला के सहारे उपजीविका चलाने वाला लोकसमुह, अनेक वर्षों से महाराष्ट्र में भिन्न-भिन्न जाति- उपजाति के नाम से जीवनयापन करता हुआ नजर आता है, ऐसे जन समूह को 'घुमंतू' कहा जाता है।

इन परीभाषाओं के आधार पर स्पष्ट होता है की घुमंतू जनजाति के लोग उपेक्षित हैं। जिनका कोई घर बार नहीं। जीवन यापन करने के पक्के साधन नहीं। जो गांव दर गाँव भटकते हैं भिक्षा मांग कर या कला के माध्यम से अपना जीवन जीते हैं। जिंदगी भर भटकते हुए अभिशप्त जीवन जीने के लिए मजबूर इन आदिम जातियों के इतिहास पर गौर करें तो पता चलता है कि इन आदिम जातियों का अपना एक समृद्ध इतिहास है जिसे कहीं ना कहीं नजर अंदाज किया गया है। आज हमारे देश में घुमंतु, अर्ध-घुमंतू, विमुक्त जनजातियों में लगभग 650 जातियाँ तथा 1620 उप-जातियाँ हैं। घुमंतू विमुक्त जनजाति राष्ट्रीय आयोग के भूतपूर्व अध्यक्ष बालकृष्ण रेणके जी के अहवाल एवं सन् 2011 की राष्ट्रीय जनगणना के अनुसार देश में घुमंतू जनजातियों की आबादी 15 करोड है। जिनमें भारतीय समाज का सर्वाधिक उपेक्षित और पिछड़ा वर्ग है; जिसमें- बेरड़, गोंधळी, बेलदार,कैकाड़ी, गारुड़ी, डवरी गोसावी, धनगर, पाथरवट, कोल्हाटी, गवळी, कालबेलिये, नट, भांड, पारधी, बहुरूपिये, सपेरे, मदारी, कलंदर, बहेलिये, भवैया, बणजारे, गुज्जर, गाड़िया लुहार, सिकलीगर, कुचबंदा, रेबारी, बेड़िया, नायक, कंजर, सांसी जैसी सैकडौं जातियाँ आती हैं।

घुमंतू जनजातियों के संदर्भ में प्रसिद्ध विद्वान वी. राघवय्या अपने ग्रंथ "नोमॅड" में घुमंतू जनजातियों को वर्गीकृत करते हैं। "इसमें वो घुमंतू जनजातियों को चार भागों में विभाजित करते हैं- एक अनाज की खोज करने वाले घुमंतू जनजातियाँ, दो पशुपालन हेतु भटकने वाली जनजातियाँ, तीन छोटे छोटे व्यापार करने के लिए भटकने वाली जनजातियाँ और चार भीख मांगने वाली जनजातियाँ।"[4] राघवय्या जी ने सिर्फ भ्रमण करने वाली जनजातियों को ही वर्गीकृत किया है। अपने ग्रंथ "भारत की यायावर" में डॉ श्यामसिंह शशि ने घुमंतू जनजातियों को पांच श्रेणियों में विभाजित किया है- एक पशुपालक जातियाँ, दो पेशेवर यायावर, तीन अपराधी यायावर, चार व्यापारिक यायावर, भिक्षुक यायावर।"[5] इसके साथ घुमंतू जनजातियों में देवी देवताओं की पूजा कर भिक्षा मांग कर जीने वाले, अपनी परंपरागत कला को सादर कर जीवन यापन करने वाले, शिकार कर उधर निर्वाह करने वाली जनजातियां आदि का भी समावेश है।

क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट और घुमंतु जनजातियाँ

इन आदिम जातियों का अपना समृद्ध इतिहास रहा है। इनमें से कई जनजातियाँ देश के विभिन्न संस्थानों में स्वराज्य स्थापना हेतु सक्रीय भूमिका में रहे है। उदाहरण के तौर पर गोंधळी समाज ऐसा है जिसने स्वतंत्र्य पूर्व काल में हेरगिरि के माध्यम से छत्रपती शिवाजी महाराज के स्वराज्य निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। शुरू में युद्ध में खजाना लूटा जाता। इस लुटे हुए खजाने को छप्परबंद समाज पिघलाकर सिक्के बनाता और अपने राजा को देता। सन् 1862 के बाद अंग्रेजी हुकूमत ने परंपरागत सिक्कों के चलन को बंद कर अपना नया चलन शुरू किया जिसके चलते छप्परबंद समाज का परंपरागत सिक्के बनाने का काम बंद हो गया। इसके चलते उन्होंने ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ बगावत की। उन्होंने अंग्रेजी द्वारा बनाए गए चलन के सिक्कों का नकल कर उसे चलन में लाया। जिससे अंग्रेजी हुकूमत परेशान हो गई। इन आदिम जातियों की ओर से की जाने वाली बगावत को सामना करने में असमर्थ हो रहे थे। सन् 1860 में भारत को रानी विक्टोरिया ने अपने अधीन कर लिया। तब उन्होंने छप्परबंद समाज के नकली सिक्कों के चलन को दूर करने के लिए चलन में नोट का प्रचलित किया और छप्परबंद समाज को अपराधी करार दिया।

सन 1871 में अंग्रेजी हुकूमत के दौरान क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट के तहत बहुत सारी लडाकू जनजातियों को क्रिमिनल ट्राइब या अपराधी जनजातियों के रूप में सूचीबद्ध किया गया था। गुनहगार जनजाति कानून बिल को स्पष्ट करते हुए स्टीफन का कहना था- "भारत में हर एक जाति जनजाति का अपना धंधा तय हुआ है यह धंधा वंश परंपरागत होता है यह लोग

शुरू से अंत तक गुनहगार ही रहेंगे इनकी जाति का यह धंधा होने के कारण इसमें सुधार होने की कोई संभावना नहीं है इतना ही नहीं गुनाह करना इनका धर्म है।"[6] भारत मे इन जनजातियों को जन्मजात अपराधी घोषित किया गया। यह कानून घुमंतु समुदाय में काले कानून के नाम से भी जाना जाता है। इसमें भारत की तकरीबन 198 और महाराष्ट्र की 42 जातियों को गुनाहगार की श्रेणी में रखा गया। स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भागीदारी करनेवाली इन समुदायों की संतानों को भी जन्मजात अपराधी के श्रेणी मे रखा गया।"सन् 1924 में लोगों की सुरक्षा और गुनहगारों पर कड़ी नजर रखने हेतु 'गुनहगार जनजातियाँ सेटलमेंट कानून' लागू किया गया। महाराष्ट्र की 42 में से 14 गुनाहगार जनजातियों को सेटलमेंट कानून के तहत 17 फीट ऊँची काँटों की तारों में बंदी बनाया गया। इन जनजातियों को महाराष्ट्र में सोलापुर, औरंगाबाद, पुणे, बारामती, जेजूरी, चिंचवड आदि स्थानों पर सेटलमेंट की स्थापना कर बंदी बनाया गया। यह 14 जनजातियाँ हैं- बेरड, बेस्तर, भामटा, कैकाडी, कंजारभाट, काटाबु, बंजारा, पारथी, राजपारथी, राजपूत भामटा, रोमोशी, वडार, वाघरी, छप्परबंद।"[7]

घुमंतु समुदाय की बहुत सी जातियां क्रिमिनल ट्राइब एक्ट के कारण कलंकित जीवन जीने के लिये मजबूर हो गई, जिसके कारण ये कहीं अपना घर बसा नही पाए। आज भी समाज के द्वारा मुख्य धारा में समाहित न हो पाने के कारण और जीवन के मूलभूत सुविधाओं की पूर्ती के अभाव के चलते ये असामाजिक कार्यों से जुड़ जाते हैं। इस समुदाय की स्त्रियों की स्थिति इससे भी बदतर है। अपने आप को, बच्चों को जीवित रखने के लिए बेड़नी, नचनिया, देह व्यापार जैसा काम कर अपमानित जीवन जीने के लिए मजबूर हैं।

भारत देश को स्वतंत्रता 15 अगस्त 1947 को मिली लेकिन अँग्रेजो द्वारा थोपी गयी इस समुदाय की गुलामी 31 अगस्त 1952 में तक़रीबन 91 साल बाद समाप्त हुई। सन् 1952 तक अंग्रेजी कानून के तहत इन्हें जन्मजात अपराधी माना जाता था। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरु जी ने 11 अप्रैल 1960 को महाराष्ट्र के सोलापुर में सेटलमेंट कॉलोनी में रहने वाले लोगों को 'विमुक्त' कर दिया तब से इस गुनहगार जातियों को 'विमुक्त जनजाति' के नाम से संबोधित किया जाने लगा। इस कानून के चलते घुमंतू जनजातियों ने अपनी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विकास की भूमि खो दी। विडंबना यह है कि अंग्रेजो द्वारा प्रचलित पूर्वाग्रह के आधार पर इन विमुक्त जनजातियों को आज भी सामान्य जन या अभिजात वर्ग द्वारा अपराधीक प्रवृत्ति का माना जाता है। अभिजात वर्ग आज भी इन्हें आदतन अपराधी मानते हैं। इसलिए जब भी कभी कहीं कोई वारदात होती है तो सबसे पहले विमुक्त जनजातियों के लोगों को शक के दायरे में लेकर निशाना बनाया जाता है।

जन्मजात अपराधी के दायरे से तो यह विमुक्त हो गए लेकिन समाज के नजरिए में ये आज भी अपराध की श्रेणी में ही आते हैं जिसके चलते जब इन्हें अपनी कला के माध्यम से, अपने व्यवसाय के माध्यम से, भिक्षा माँग कर अपना पेट नहीं भर पाते तो भूख मिटाने और सन्मानजनक काम न मिलने के कारण इनमें से कई अपने पेट की आग बुझाने के लिए छोटी-मोटी चोरियाँ करते हैं। लक्ष्मण गायकवाड जी ने अपनी आत्मकथा उचल्या (उठाईगीर) में विमुक्त जनजातियों की वास्तविकता को उजागर किया है। आत्मकथा में वह इस समुदाय के बच्चों को आठ-नव वर्ष की आयु में चोरी किस तरह की जाए की पुलिस के हत्थे न चढ़े इस की शिक्षा देने की परिस्थिति का चित्रण करते हैं। "बच्चों को चोरियाँ सिखलाने के अलग अलग दल होते हैं। इसके चार प्रमुख प्रकार किए गए हैं- एक खिस्तंग मतने अर्थात जेब कतरे, दो चप्पल मुठल अर्थात् चप्पल या गठरी की चोरी, तीन पड्ड घालने अर्थात् किसी को बेवकूफ बनाकर माल ऐंठना और चार उठेवारी अर्थात बात-चीत करते-करते किसी को फँसाना। इसके लिए प्रशिक्षित शिक्षक होते हैं। पढ़ाई के बाद लड़के को अपनी पहली छह माह की कमाई शिक्षक को देनी पड़ती है।" [8] भले ही यह समाज के कि आज के लिए चोरियाँ करता है लेकिन इसका सबसे ज्यादा खामियाजा इनके साथ उनके घर की स्त्रियाँ और बाल बच्चों को भी झेलना पड़ता है। उठाईगिरी में एक प्रसंग का वर्णन करते हुए लेखक लिखते हैं, चोरी के शक में पुलिस वाले घर की झोपड़ी में आते हैं "झोपड़ी में जो भी स्त्री, पुरुष और बच्चे दिख रहे थे पुलिस वाले उन्हें बेतहाशा पीटने लगे। 'घर में क्या है बता'- दादी से पूछते हुए पुलिसवाले दादी के स्तनों को पकड़कर उसे भी पीटने लगे।" [9] इस तरह का अपमानित जीवन इस समुदाय

के औरतों के लिए नया नहीं है। सम्मानजनक काम न मिलने के कारण घुमंतू जनजातियों की स्त्रियां बेड़नी, नचनिया, देह व्यापार जैसे कामों में लिक नजर आती हैं।

विमुक्त जनजातियों का शोषण सब से ज्यादा पुलिस द्वारा किया जाता है। पुलिस के द्वारा इन पर किए गए अन्याय, अत्याचार आदि की सूची कम नहीं है। ये लोग अपने पेट की आग बुझाने के लिए छोटी-मोटी चोरियाँ करते हैं। छोटे-मोटे गैरकानूनी काम करते हैं, जिसके चलते सरकारी व्यवस्था इन पर कार्यवाही करती है। लेकिन प्रशासकीय यंत्रणा या पुलिस के द्वारा की जाने वाली कार्यवाही इतनी बेरहम होती है की इसमें कईयों की जान जाती है, तो कई हमेशा के लिए अपाहिज हो जाते हैं। भीमराव गश्ती अपनी आत्मकथा 'बेरड' में एक प्रसंग को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं "अब तक इस टोले से कोई पचास साठ बेकसूर, निष्पाप बेरड पुलिस की धर पकड़ में दबोच लिए गए थे। और उन्हें हवालात में ढुंसकर मार मार कर यानी 'भारमाप्पा' का मजा चखा कर अपाहिज, लूला या पंगु बना दिया गया था।" [10] ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है। यह समाज भी सन्मानपूर्वक जीना चाहता है। वास्तव में इनका इतिहास गौरवपूर्ण है। इस समुदाय ने स्वराज के लिए देश को स्वतंत्रता दिलाने की भूमिका में अहम योगदान दिया है। ये लोग बड़े ईमानदार एवं स्वामिनिष्ठ होते हैं। इन जातियों के लोगों की स्वामिनिष्ठता एवं वीरता से परेशान होकर ही अंग्रेजी हुकूमत द्वारा इन्हें अपराधी घोषित करार दिया गया और इनकी आने वाली नस्लों को जन्मजात अपराधी माना गया लेकिन इस समाज के प्रति हमारी मानसिकता अंग्रेजों द्वारा लगाए गए आरोपों की बुनियाद पर ही बनी हुई है जिससे बदलना बहुत जरूरी है। बेरड समुदाय के बारे में हणमसेठ गुरुजी कहते हैं कि "जीता-जागता पैदाइशी बेरड अपना ईमान कभी नहीं भूलता। वह दूसरों की रक्षा की खातिर अपना सर्वस्व निछावर करता है। तो सच्चा विश्वास पात्र होता है- बेरड।" [11]

यह लोग मुख्यधारा में आना चाहते हैं लेकिन मुख्यधारा में आने के लिए इनके रास्तों में अनगिनत मुसीबतें हैं। यह अपने बच्चों को शिक्षा देना चाहते हैं लेकिन शिक्षा के द्वार इनके लिए आसान नहीं है। उठाईगीर, बेरड़, पराया, छोरा कोल्हाटी का, डेराडांगर, जीवन सरिता बह रही है, पोतराज आदि लगभग सभी आत्मकथाओं में इस समस्याओं के ऊपर प्रकाश डाला गया है। हर आत्मकथाकार की आत्मकथा को जानने के उपरांत पता चलता है की शिक्षा के लिए भी इन्हें कितना संघर्ष करना पड़ा है। मच्छीद्र भोसले अपनी आत्मकथा 'जीवन सरिता बह रही है' में नाथपंथी डवरी गोसावी समाज की दयनीय स्थिति को व्यक्त किया है। अपने समुदाय की वास्तविकता को दर्शाते हुए लेखक लिखते हैं-" भीखमंगे की अवस्था में जन्म लेना और भीखमंगे की ही अवस्था में मरना यही इनका विश्व। अज्ञान अंधश्रद्धा व्यसनाधीनता आदि विश्व की बुराइयों को उड़कर जीने वाले यह अभावग्रस्त जीव...।" [12] लेखक की पिताजी अपनी बेटी के लिए यह विश्व नहीं चाहते थे इसलिए वह उसे पढ़ाना चाहते हैं लेकिन स्कूल में दाखिला लेने में उन्हें दिक्कत आती है। "इस बच्चे का नाम स्कूल में दाखिल नहीं करूँगा। तुम्हारी डवरी की जाति, भीख माँग कर खानेवाली, कहीं भी रहनेवाली, भटकनेवाली। तुम लोग स्कूली शिक्षा पाने के लायक नहीं हो। इसे आज स्कूल में डालोगे तो कल तुम उसे निकाल ले जाओगे।" [13] मास्टर जी का यह कहना सही था लेकिन लेखक की पिता अपने बच्चों को पढ़ाना चाहते थे। घुमंतू जनसमुदाय की ऐसी अनेक समस्याएँ हैं जिससे यह समाज रोज ब रोज जीता है। इनका उधरनिर्वाह एवं अर्थाजन का कोई निश्चित साधन नहीं है। यह समुदाय अपने परंपरागत छोटे-मोटे काम कर उधरनिर्वाह करता है। इस समुदाय के प्रति समाज की मानसिकता के चलते इन्हें कहीं नौकरी नहीं मिलती और नौकरी मिलती है तो वहाँ उन्हें अपमानित जीवन जीने के लिए मजबूर किया जाता है। अभावग्रस्त जीवन के चलते ये लोग अपने बच्चों को सही शिक्षा नहीं देते। अपनी जात पंचायत एवं अंधश्रद्धा में यह समाज इस तरह लिप्त है की शिक्षा के महत्व को यह समझते नहीं और जो समझते हैं उनके लिए है शिक्षा का रास्ता आसान नहीं रहता।

निष्कर्षतः इस आदिम घुमंतु समुदाय का अपना इतिहास है। ये लोग अपने परंपरागत व्यवसाय के माध्यम से, कीर्तन कर भिक्षा के सहारे या फिर अपनी परंपरागत कला के माध्यम से अपनी अपने जीवन को ढोते हैं। हमेशा अभावग्रस्त में रहने वाला यह समुदाय जिसका न कोई घर है, ना गाँव, ना जमीन। जिंदगी भर भटकंति जीवन जीने के लिए मजबूर इस समुदाय की अपनी

अनगिनत समस्याएँ हैं ऊपर से अपराधी जमात के रूप में इन पर लगाया गया लेबल इन्हें कहीं भी स्वस्थ जीवन जीने नहीं देता। इस समुदाय से जुड़ी हुई आत्मकथाएँ इस समुदाय के जीवन की वास्तविकता बेबाकी के साथ हमारे सामने रखती है।

संदर्भ

1 बाहरी डॉ हरदेव, बृहत अंग्रेजी हिंदी कोश भाग 1, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, सं 1969, पृ 1219

2 जोशी लक्षमणशास्त्री, मराठी विश्वकोश, भाग12, महाराष्ट्र राज्य मराठी विश्वकोश निर्मिति मंडळ, मुंबई, प्र सं 1985, पृ 12

3 कदम डॉ नागनाथ धोंडीबा, महाराष्ट्रातील भटका समाज: संस्कृति व साहित्य, प्रतिमा प्रकाशन, पुणे,प्र सं 1995 पृ 12

4 Raghaviah V., Nomad, Bharateeya Adimajati Sevak Sangh, Swarajya Printing Works, Secunderabad, First edition 1968, Page 110

5 शशि डॉ श्यामसिंह, भारत के यायावर, जगत राम एन्ड सन्स, दिल्ली, प्र सं 1984, पृ 26-27

6 खराब शंकरराव, भटक्या विमुक्त जमाती व त्यांचे प्रश्न, सुदामा प्रकाशन पुणे, प्रथम संस्करण 2003 पृ 37

7 डॉ भोसले दत्तात्रय, घुमंतु जनजातियों के स्वकथनों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, विनय प्रकाशन कानपुर प्रथम संस्करण 2020, पृ 18-19

8 वही पृ 79

9 गायकवाड़ लक्ष्मण, उठाईगीर, अनुवाद सूर्यनारायण रणसुभे, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, सं 1992 पृ 9

10 गस्ती भीमराव, बेरड, अनुवाद गुलाबराय हाडे, विद्या विहार प्रकाशन, कानपुर, प्र सं 2006 पृ 324

11 वही पृ 150

12 भोसले मच्छिंद्र, जीवन सरिता बह रही है, अनुवाद दत्तात्रय भोसले, द ताईची प्रकाशन पुणे, सं 2014 , पृ 7

13 वही पृ 14

संदर्भ ग्रंथ

1 सूर्यकांत भिसे, भटक्यांची भटकंती, आनंदमूर्ती प्रिंटर्स एंड पब्लिकेशन, सोलापुर, प्रथम आवृत्ती, 2016

भारतीय घुमंतू बंजारा समुदाय: समाज और सांस्कृतिक परंपराओं के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. शाहीन जमादार
हिंदी विभाग प्रमुख,
मिरज महाविद्यालय, मिरज।
ई मेल -jamadarshaheen79yahoo.com
मो. नंबर 9850588435

सारांश- संक्षिप्त रूप से कहा जाता है कि बंजारा समाज एक खाना बदोश समाज हैI भारत के हर क्षेत्र में वह दिखाई देता है। उनका खानपान, रितरिवाज अभूषण, बोली भाषा राजस्थान से मिलती-झुलती हैI वे अपने आप को भी शुद्ध राजपूत क्षेत्रिय कहते हैंI इसलिए ऐसे जाति पर फिर से शोध कार्य होना जरुरी हैI आज ऐसी जातियों का जीवन बदसे बत्तर बनता जा रहा हैI उनको मूलभूत सुविधाएँ प्राप्त नही होतीI उनका कोई घर न होने की वजह से ये मुख्य धारा से वंचित हैI वे गँवार, अनपढ ही रहते हैI वैसे वह खुदकाफिल भी हैंI उनकी लडकीयों की शादी ८ से १० साल में होने से उन्हें बहुत सी बेमारियों का भी समाना करना पढता हैI कभी कभी उनकी औरते गाडीयों में ही बच्चों को जन्म देती हैI खुले मैदान में रहने से उन्हे अनेक मुश्किल आती हैI आज भी हमारे आस पास उनकी लडकियाँ पानी, लकडीयाँ या भोजन की तलाश में घुमती नजर आती हैI ऐसी जातियों पर शोध होना अनिवार्य है।

बीज शब्द- बंजारा, संस्कृति, जाति।

प्रस्तावना:

प्रत्येक मानव के कुल अधिकार मानव होने के नाते बिना किसी भेद-भाव के बिना किसी अन्य योग्यता के सहज रूप से प्राप्त होने चाहिए, जिन्हें वह करने तथा उपभोग लेने का पूरा अधिकार हैI मानव के अधिकारों का संघर्ष आरंभकाल से ही चला आ रहा हैI हडप्पा सभ्यता से लेकर अब तक हुए बदलावों में समाज का नीचला तबका यानी निम्न वर्ग प्रत्येक देश और समाज की भांति सताया जाता रहा हैI सब से खेदपूर्ण पहलू यह है, कि मानव समाज का जहाँ से विकास हुआ वही मानव का आदि पहलू आज भी गरीब, निरक्षर, अविकसीत तथा विश्व के मानचित्र से अदृश्य हैI इसी गरीबी रेखा से नीचे के स्तर पर पलने वाले तथा समाज से अलग थलग समुदाय को आदिवासी,विमुक्त घुमंतू खाना बदोश समाज की संज्ञा दी जाती हैI

भौगोलिक एवं जनसंख्या की दृष्टि से हमारा भारत देश विश्व पटल पर एक विशाल देश हैI प्राकृतिक एवं भौगोलिक दृष्टि से भारत देश में अनेक घुमंतू की जातियाँ तथा उपजातियाँ हैंI जैसे – मदारी, सपेरे, बहुरूपिये, पारधी, गुजर, बंजारे, भवैय्या, नट, भांड, कलंदर, गाडिया लुहार, शिकलगार, सांसी, कंजर, नायक, कुचबंदा, बेडिया इं. जातियाँ हमें देखने मिलती हैंI ये जातियाँ खानाबदोश की हालात में फिरते रहते हैंI भारत में सन २०११ की जनगणना के अनुसार ऐसे समुदायों की आबादी १५ करोड से ज्यादा हैI आज ये समुदाय मुख्य धारा से कोसों दूर हैI ऐसे समुदायों को मुख्य धारा से जोडना हमारा कर्तव्य हैI

मेरे शोध आलेख का विषय बंजारा समाज तथा उनकी संस्कृतिक परंपराओं का समन्वित प्रकाश डालना हैI क्योंकि सांगली, मिरज के रास्ते पर हर साल ये समुदाय कुछ महिनों के लिए आकर बसता हैI शोधार्थी के रूप में मैने वहाँ जाकर उनकी समन्वित स्थिति की जानकारी लेने का प्रयास किया थाI जो कुछ मालुमात हासिल हुई उसकी जानकारी भी में इस आलेख में उल्लेख करने का प्रयास करूगीI

'बंजारा' भारत वर्ष की एक ऐसी घुमंतू जाति है जिसका सम्बंध मध्यकालीन इतिहास के सूत्रों से बँधा हैI बंजारा अपनी अनोखी वेशभूषा और रंगरूप के कारण अपने अस्तित्व को अनेक जातियों से पृथक घोषित करते हैंI "भारतीय लोकगीत और

लोककथाओं में बंजारा अपने बैलों पर दूर-दूर तक सामान लादकर ले जाने वाला समाज यानी बंजारा समाज हैI"[१] बंजारा शब्द के साथ ही व्यापार का अर्थ सानिद्ध हैI "'बणज' या बनज, का तात्पर्य वाणिज्य ही हैI एक भोजपूरी लोक गीत में 'बनजरिया' शब्द तो वाणिज्य के अर्थ में प्रयुक्त होता आया हैI"[२] उसी प्रकार राजस्थानी लोकगीतों में बंजारों का उल्लेख बहुतबार आया हैI इस प्रकार भारत के हर क्षेत्र में बंजारा समाज दिखाई देता हैI जैसे राजस्थान, मालवा, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, पंजाब, छत्तीसगढ, दक्षिण भाग इं. स्थानों पर अलग अलग जाति के लोग हैI उसी प्रकार उनकी जीवन पद्धति भी देखी जा सकती हैI

'बंजारा' शब्द की व्युत्पत्ती के संबंध में अनेक जानकारियाँ उपलब्ध हैI हिंदी साहित्य में बंजारा शब्द का प्रयोग चलते-फिरते व्यापारी के लिए हुआ हैI कबीरदास[३] ने बंजारे के व्यवसाय को भी एक रूपक में प्रकट किया हैI उसी प्रकार गुरु नामक जी ने भी बंजारा शब्द का जिक्र किया हैI "सूरदास ने भी बंजारा तथा उनके टांडे का उल्लेख किया हैI"[४] उन्होंने अपने पद में यह कहा है कि बंजारे अपना रैन-बसेरा साथ लेकर एक जगह से दूसरी जगह स्थानातरण करते हैI उर्दू के कवि नजीर अकबराबादी के समय में बंजारा शब्द अपने मूल अर्थ में प्रयुक्त हुआ हैI जैसे –

"टुक हिर्सो हवा को छोड मियां मत देश-विदेश फिरे मारा
कज्गाक अजल का लुटे है दिन रात बजाकर नक्कारा
क्या गेहूँ, चावल, मोठ, मटर क्या आग धुआँ और अंगारा
सब ठाट पड रह जायेगा जब लाद चलेगा बंजाराI"[५]

अर्थात बंजारे खानाबदोश हैI "वे बैलों के समुदाय के साथ-साथ चलते हैंI उनको देखने से उनकी पिडा कैसी हैI बेलों तथा जानवरों के जीवन में जो पशुता है, वह बंजारों के जीवन में कूट-कूट कर भरी नजर आती हैI"[६]

बंजारा की मुख्य रूप से पाँच जातियाँ हैंI

१. राठोड २. पवार ३. चव्हाण ४. तूरी ५. जादो या बडथियाI ये जातियाँ भारत के अलग-अलग प्रांत में रहती हैI कुछ लोगों का अनुमान है कि इन का संबंध इराण से हैI लेकिन इनका संबंध राजस्थान से हैI क्योंकि उनके रहन-सहन, पोशाख, खान-पान, बोली राजस्थान से मिलती नजर आती हैI

बंजारा समाज की सामाजिक एवं संस्कृतिक परंपराए भारतीय संस्कृति अनेक संस्कृतियों का समुच्चय हैI उनमें बंजारा जाति की संस्कृति अपना अलग महत्व रखती हैI उन लोगों का खान-पान, रहन-सहन वेशभूषा, अभूषण, त्यौहार, संस्कार सब धर्म एवं भौगोलिकता पर निर्भर हैI

१) रहन-सहन-खान-पान-

रहन-सहन तथा खान-पान से धर्म पहचाना या जाना जा सकता हैI भौगोलिकता का परिणाम रहन-सहन पर निर्भर हैI तो खान-पान का परिणाम कभी-कभी स्वभाव पर भी होता हैI बंजारा समाज एक खाना-बदोश समाज हैI अपने गाडीयों में या बैलों पर अपना पूरा रैन बसेरा लेकर फिरते हैI उनके साथ अनेक जानवर पशु-पक्षी भी होते हैंI "बंजारा समाज के पुरुष गौर, कृष्ण वर्णीय होते हैंI उनका कद काठी से ऊँचा, शरीरयष्ठी भरभक्कम, लम्बी बाहें, चहरे पर तेज, तीक्ष्ण नजर, मध्यआँखें, सीधी नाक, ओंठ मध्यम होते हैं।"[७] उनमें किसी भी परिस्थिति से जुझने की क्षमता होती हैI उनमें श्रम की इच्छाशक्ती बहुत होती हैI वैसे ही उनकी स्त्रीयाँ होती हैंI उनमें प्रेम, दया, दानशीलता होती हैI

२. भोजन-

बंजारा समाज गेहू, ज्वारा, बाजरा की रोटी खाते हैंI साथ में अरहर की दाल घी डाल कर खातें हैI पूडिया, कापसी, शिरा, कढी, खीर, चुरमा, तथा चिलवा के साथ पुरण पोली भी खाते हैI इन लोगों के पास अधिक पास अधिक मात्रा में जानवर होने से दूध, दही, घी का भी इस्तेमाल करते हैंI ज्यादात्तर बंजारे मांहसारी खाना पसंद करते हैI शिकार करके या गोश्त, मछली लाकर मसाला मिर्च डालकर तीखा मांस खाते हैंI खाने के साथ पीना भी पसंद करते हैI वे महुअे के फुलों की मदिरा बना कर नशा करते हैंI साथ में दारू, सिंधी, ताडी, गांजा, अफिम-भांग का भी सेवन करते हैI खाना-पिना होने के बाद पानसुपारी खाने का भी रिवाज हैI

३. अभूषण तथा पेरावॉ-

बंजारा पुरुष गहने के रूप में हाथ में कडा, चॉदी की सांकल, कलंदोरी, पैसे रखने के लिए कमरपट्टा , बासळी, पाराधातु की सांकल आदि पहनते हैंI

बंजारा स्त्री शरीर पर कम से कम पॉच छह किलो वजन के नखशिख तक गहने पहनती हैI एक सौभाग्य बंजारन के गहने, जैसे- "घुघरी, वाकडी, मुठिया, कान में कन्या, बंदी जैसी तरोटी आदि में विशिष्ट पद्धति की साज-सज्जा से बनाए जाते हैI गालों पर दोनों तरफ से टोपली, घुगरी, गले में हासली, गोप, साकळी, बेगड कसोरया, बाहू में मुटिया, बोदुल, चूडी, अंगुली में फुल्या अंगुठी, पैरों में वाकडी, पायकस, पैरों की अंगुलियों में माचळी, चटकी, अंगुमळा, लडकियॉ पावों में घुंगरा, झांझरया की जोडी, गालों पर टोपली, गले में मुंगार हार गरतळी, हासली, तितरी, हाथों में चूडी, वाहों में बामट्या, कोपर्या कमर से लेकर पैरों तक कवडियाँ की माला पहनती हैंI जिसे 'सडक' कहते हैंI"[५] इस प्रकार बंजारिन स्त्री अपने आप को सज-धज कर लोगों को अकर्षित करती हैI वह भडकिले रंग का घाघरा, चोली और कशिदाकारी की ओढणी पहनती हैंI तो पुरुष धोती, कुर्ता, पकडी या फेटा, कमरबंद इस प्रकार उनका पेरावाँ हैI

४. सांस्कृतिक परम्पराएँ-

बंजारा समाज की रीतरिवाज सदीयों पुराने हैंI वे आज भी पालन करते हैंI विवाह, जन्म संस्कार, नामकरण तथा मृत्यू संस्कार, पगल्या संस्कार, कान सलोई संस्कार, वदाई संस्कार मनाये जातें हैI त्यौहारों में तीज, होली, दिवाली, दशहरा इ. मनाते हैI उस समय अपने कुल देवी देवताओं एवं पुरखों की पूजा करते हैI ज्यादा तर बंजारे हिंदू धर्म के रितरिवाजों का पालन करते हैI फिर भी वह किसी एक धर्म पर निर्भर नही हैI वे पूजा, व्रत तो करते हैं लेकिन अपने मन-माने ढंगसे अनेक देवी-देवताओं को पूजते हैंI उनमें अग्नि के साथ, जल, भूमि, जंगल नई फसल की पूजा करते हैI सभी देवी देवताओं को मानते हैं उन में सेवाभया, विठूभूकिया, राम, कृष्ण, तुळजाभवानी, शितला देवी, बंजारा देवी, बालाजी को पूजते हैI वे मृत्य आत्माओं एवं देवताओं को संतुष्ठ रखने के लिए बली भी देते हैI वे मंत्र-तंत्र, जादूटोने में विश्वास रखते हैंI

५. नृत्य-

बंजारा लोग होली, तीज, दिवाली तथा दशहरे के मौके पर सामुहिक नृत्य भी करते हैंI जैसे- टोली नाच, तलवार नृत्य, टिपरी नृत्य महत्वपूर्ण हैंI उनकी महिलायें भी नृत्य करती हैI साथ ही अपनी बोली भाषा में गीत गाती हैI उनकी मौखिक बोली भाषा के गीत भरे पडे हुये हैI इस प्रकार मैने बंजारा समाज का सामाजिक एवं संस्कृतिक लेखाजोखा संक्षिप्त में प्रस्तुत किया हैI

संदर्भ सूची-

१. बंजारा बोली भाषा एक अध्ययन- डॉ. मोहन लक्ष्मणराव चव्हाण- पृ. ११
२. वही- पृ- ११
३. कबीर ग्रंथावली – कबीरदास
४. सूरसागर
५. नजीर की बाजी, नजीर अकबराबादी संपा. रघुपति सहाय. पृ. १४
६. बंजारा बोली भाषा एक अध्ययन- डॉ. मोहन लक्ष्मणराव चव्हाण- पृ. २०.

७. वही – पृ. क्र. २०

८. वही – पृ. क्र. ६४

९. Internet

१०. स्वयं साक्षात रूप में बंजारा समाज का सर्व्हे करने के आधार पर।

विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की अवधारणा एवं स्वरुप

व्यंकट धारासुरे
व्याख्याता : सेंट मेरिस कनिष्ठ महाविद्यालय,
जुबली हिल्स, हैदराबाद-33,
इमेल-vyankatdharasure@gmail.com

सारांश-

भारत में स्थित विमुक्त जातियाँ और घुमंतू जनजातियाँ लगभग एक जैसी पाई जाती है। जिनके व्यवसाय भिन्न होते हुए भी प्रवृत्ति में साम्यता अधिक पाई जाती है। जैसे तथाकथित समाज से इन जनजातियों की रुढी-परंपरा, देवी-देवता, रीति-रिवाज और मुख्यतः घुमक्कड़ प्रवृत्ति जिन्हें उभयनिष्ठ बनाती है। सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षणिक रूप से कुछ घुमक्कड़ जनजाति के अलावा अधिकांश जनजातियों की स्थिति एक-सी है।

बीज शब्द- घुमंतू, जाति-जनजाति, इतिहास।

प्रस्तावना

इस देश का एक नक्शा होते हुए भी इसमें अनेक देश बसे हुए हैं। वे स्वंय की जाति, संप्रदाय, धर्म के रीति-रिवाज, प्रथा-परंपरा, पूजा-आर्चना में उलझाकर रहनेवाले देश हैं। सार्वजानिक जीवन में कुछ प्रतिशत देश एकत्रित दिखाई देता हो, किंतु अन्य व्यवहारों में विविध जातियाँ खुद के संसार में मशगुल रहती हैं। आज भी इस देश का इंसान जाति में पैदा होता है, और जाति में ही गुजर जाता है। जाति यहाँ की वास्तविक सच्चाई है। जाति यहाँ इंसान को इंसान से दूर रखती है। आत्मसम्मान छीन लेती है। लाखों लोगों की पहचान मिटा देती है। उनका इतिहास, वर्तमान, भविष्य और भूगोल भी नकारा जाता है। जिनका गाँव न हो, सरकारी विभाग में नाम, जिन्हें सम्मान-प्रतिष्ठा नहीं ऐसी अनेक जाति-जनजातियाँ यहाँ मौजूद हैं। 'जो सैकड़ों सालों से बिना घर, गाँव के उदरनिर्वाह की तलाश घुमक्कड़ी कर रही है, उन्हें 'घुमंतू' कहा जाता है।'

घुमंतू जनजातियाँ 'घुमंतू' के आलावा ख़ानाबदोश, यायावर, घुमक्कड़, अस्थिरवासी, यात्री, बंजारा आदि नामों से जानी जाती है। इनके लिए मराठी विश्वकोश में लिखा गया है-"उदरनिर्वाह अथवा व्यवसाय के कारण भटकने वाले समूह को सामान्यतः 'घुमंतू' कहा जाता है।' किंतु उनका उद्गम बहुत प्राचीन संस्कृति में पाया जाता है। अंग्रेजी में 'नोमड्स' का प्रयोग होता है। 'नोमड्' शब्द 'नोमी' अथवा 'नेमो' (मवेशी चारण) के ग्रीक शब्द से तैयार हुआ है। स्थायीरूप से घर और जमीन नहीं, परंतु मवेशियों के झुंड है, ऐसे समूह जानवरों के चारे की तलाश में घूमते हैं। इस प्रकार के समूहों के लिए 'नोमड्स' इस शब्द का प्रयोग किया जाता है।"[i] सदियों से अपनी घुमंतू प्रवृत्ति के कारण ये समूह अस्थायी रूप से किसी न किसी कार्य, लेन-देन के संपर्क से समाज में मौजूद हैं।

यही घुमक्कड़ जाति-जनजातियाँ इतिहास में कभी सरदार, सैनिक थे; आर्यों, मुग़लों, अंग्रेजों के शासन और युद्धों की वजह से इन मूलनिवासियों को पराजित होना पड़ा था। पराजित होने के कारण ये भोजन की खोज में भटकते रह गये। जंगलों, पहाड़-घाटियों के सानिध्य में रहने लगे। वहीं से स्थिर समाज को सेवाएँ प्रदान करने लगे। उदाहरण- वनौषधि, शिकार किये गए प्राणी आदि। आगे चलकर इनसे जंगल भी छिना गया। जंगलों को अपनी संपत्ति बनाकर रखने के लिए और जंगलों पर अंग्रेजों की हुकूमत ख़त्म करने के लिए अनेक युद्ध इन जाति-जनजातियों ने किया। अंग्रेजों के खिलाफ जगह-जगह पर विद्रोह किया, हैरान करके छोड़ा। अंग्रेजों के अलावा अन्य शासक वर्ग ने इन जातियों को सेना, युद्ध व अन्य कामों में शामिल किया। इस कारण यह जाति-जनजातियाँ अलग-अलग प्रकार की सेवाएँ दे सकी। व इन जनजातियों को राजा-महाराजाओं द्वारा ताम्रपत्र प्राप्त किया है।

सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में घुमंतू जनजातियाँ स्थानिक सेनानियों के साथ मिलकर अंग्रेजों का गोला-बारूद, बंदूके, खजाना लूटकर और अपने गोरिल्ला युद्ध नीतियों को अपनाकर अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई में अपना एहम योगदान दिया है। आगे भी अंग्रेजों के प्रति जनजातियों का रुख देश की आजादी का ही रहा। (इसे भारतीय इतिहारकारों ने नजरंदाज किया) इसलिए अंग्रेजों ने अपनी सत्ता कायम करने के लिए, और जनजातियों को काबू में लाने के लिए अनेक तरीके अपनाए। जिनमें 'भारतीय वन अधिनियम, 1865' द्वारा शाही वन विभाग (इम्पीरियल फ़ॉरेस्ट डिपार्टमेंट) के विभिन्न वनमंडलों द्वारा वनों पर ब्रिटिश नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया। तथा सन् 1871 में 'अपराधिक जनजाति अधिनियम' बनाकर सभी लड़ाकू जातियाँ-जनजातियों को 'गुनहगार' के अपराध में बंदी बनाया गया। वहाँ पर इन जनजातियों को काम करवाया था, और जो काम नहीं करते उसे कड़ी सज़ा देते थे। बाद में अंग्रेजों को पता चला की मारने से काम संभव नहीं, इस लिए अंग्रेजों ने इन लोगों को दिन में तीन बार हाज़िरी देने की शर्त लगायी। अंग्रेज यह भी समझते थे की 'इंसान बुरा नहीं होता है' इसलिए अंग्रेजों ने जेल में ही जनजातियों के लिए रोज़ गार, स्वस्थ्य और शिक्षा का प्रबंध किया और उनमें सुधार लाने का प्रयास भी किया था। यह सिलसिला भारत की आजादी तक चलता रहा।

सन् 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ। सन् 1949 में भारतीय संविधान लागू हुआ, किंतु इन जनजातियों को जेल (सेटलमेंट) से बाहर निकालने का प्रावधान नहीं किया। इसलिए भारत के प्रथम कानून मंत्री डॉ.अम्बेडकर ने अपने साथी सांसदों के द्वारा संसद में जनजातियों को सेटलमेंट से बाहर निकालने का प्रस्ताव रखा। तब भारत सरकार द्वारा तत्कालीन एक समिति का निर्माण किया गया। तत्कालीन प्रधानमन्त्री पं.नेहरु ने 1871 के 'आपराधिक जनजाति अधिनियम' (क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट) को ख़त्म कर 31 अगस्त 1952 को 'आदतन आपराधिक अधिनियम' (हॅबिचुँल अफेंडर्स एक्ट) के तहत बंदिस्त जनजातियों को 'विमुक्त' किया। तभी से यह जनजातियाँ 'विमुक्त जातियाँ' कहलाती हैं।

विमुक्त जनजातियों को 'विमुक्त' के आलावा स्वतंत्र किया हुआ, मुक्त किया हुआ, प्रतिबंध से छूटा हुआ, स्वछंद, आज़ाद, फेंका हुआ आदि नामों से जानी जाती है। 'विमुक्त' जनजातियों की अपराधी प्रवृत्ति को स्पष्ट करते हुए दादासाहब मोरे लिखते हैं-"सामाजिक परिस्थितियों का दबाव और आर्थिक विपन्नता के कारण कुछ घुमंतू जनजातियाँ गुनहगार प्रवृत्ति को मजबूरन स्वीकार किया। जिन्हें 'अपराधी जनजाति' के नाम से पहचाना जाता है।"[ii] 'स्वतंत्र भारत में 'समाज के नकारात्मक दृष्टिकोण और पुलिस प्रशासन में अंग्रेजों द्वारा बनाए गए 'अधिनियम' के तहत चले आ रहे 'कानून' से प्रताड़ित जनजातियों को 'विमुक्त' कहा जा सकता है।'

संपूर्ण भारत में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियाँ पाई जाती है। इदाते आयोग द्वारा इनकी जनसंख्या 15 करोड़ बताई गयी है। जो चार सौ से अधिक जातियों-उपजातियों में बिखरी हुई है। ये जनजातियाँ समाज में अपने परंपरागत व्यवसाय के साथ घुमक्कड़ी करते आ रही है। जिनमें- पशु-पालक, पहरेदार, कारीगर, शिकारी, वैद्यकी, नृतक, जादूगर, कलाबाज, भिक्षाटन, अपराध करनेवाली जातियाँ शामिल हैं। इनमें से अधिकांश जनजातियों का संबंध जंगल-पहाड़ियों से रहा है, कुछ का जंगल और गाँव दोनों से रहा है और कुछ जनजातियों का संबंध केवल गाँव से रहा है। समय के चलते इनमें से कुछ जनजातियों में परिवर्तन दिखाई देता है, परंतु अधिकांश जनजातियों में पहले जैसी स्थितियाँ पाई जाती है।

हम देख सकते हैं की भारत में विमुक्त, घुमंतू और अर्द्ध-घुमंतू जनजातियाँ पाई जाती है। जिन्हें हम पाँच श्रेणियों में देख सकते हैं। पहली है पशुपालक घुमंतू जनजातियाँ, यह जनजातियाँ गाय, भैंस, भेड़, बकरी, ऊंट व सूअर आदि का पालन करती है। इनमें दो प्रकार की घुमंतू जातियाँ पाई जाती है। एक पशुपालक जो एक स्थान से दूसरे स्थान अनवरत घूमती है और दूसरी वह कुछ समय के लिए दूसरे स्थान जाते हैं और कुछ समय अपने पशुओं के साथ घर लौटते हैं। यह लोग गाय, भैंस का दूध बेचते हैं। भेड़,

बकरी चराने वाले समुदाय उनकी खरेदी-बिक्री करते हैं। इनमें- गोपाल, धनगर, गद्दी, गुज्जर, बकरवाल, रेवारी, गडरिया आदि प्रमुख जनजातियाँ पाई जाती है। दूसरी है व्यापारी जनजातियाँ, यह जनजातियाँ पूर्वकाल में नमक, खाद्यान्न, पशुओं का व्यापार किया करती थी। इसमें- बंजारा प्रमुख जनजाति है। तीसरी है भिक्षुक घुमंतू जनजातियाँ, यह जनजातियाँ समाज में देवी-देवताओं के नाम पर गाने गाती, भविष्य देखकर, नंदीबैल के नामपर भिक्षाटन करती है। जिनमें- जोगी, जोशी, स्वामी, गोसावी, बहुरूपी, वासुदेव, गोंधली आदि प्रमुख जनजातियाँ है। चौथी है पेशेवर घुमंतू जनजातियाँ, यह जनजातियाँ सांप, बंदर, भालू पालते हैं, साथ में बच्चों को कलाबाजी सिखाते हैं। यह समुदाय हमेशा उदरनिर्वाह तथा अपने पशुओं के चारे की तलाश में घूमते है। इनमें- सपेरे, बंदरिया, नट, बाजीगर, भालू वाले, सिकलीगर आदि प्रमुख जनजातियाँ पाई जाती है। पाँचवी है अपराधी घुमंतू जनजातियाँ, यह जनजातियाँ अंग्रेजों द्वारा अपराधी मानी गयी थी। भारत स्वतंत्रता के बाद इन्हें समाज और प्रशासन में स्थान न मिल पाने के कारण मजबूरवश छोटी-मोटी चोरी, चोरी-छुपे शराब बेचकर जीवन-यापन करने लगी। जिनमें- सांसी, कंजर, पारधी, बेरड़, भामटा, उठाईगीर, बावरिया, डोम आदि प्रमुख जनजातियाँ हैं।

अतः भारत में स्थित विमुक्त जातियाँ और घुमंतू जनजातियाँ लगभग एक जैसी पाई जाती है। जिनके व्यवसाय भिन्न होते हुए भी प्रवृत्ति में साम्यता अधिक पाई जाती है। जैसे तथाकथित समाज से इन जनजातियों की रुढी-परंपरा, देवी-देवता, रीति-रिवाज और मुख्यतः घुमक्कड़ प्रवृत्ति जिन्हें उभयनिष्ठ बनाती है। सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षणिक रूप से कुछ घुमक्कड़ जनजाति के अलावा अधिकांश जनजातियों की स्थिति एक-सी है। नाचगाना, कलाबाजी करने वाली जनजातियों को पूर्व काल में अपने दरबार या गाँव में शौक से आमंत्रित किया जाता था। तब उनकी ज़रूरत थी। आज रेडिओ, टीवी, मोबाईल ने इन कलाकार जनजातियों का बहुत बड़ा अहित किया है। खिलौने, टोकरियाँ, फूलदान बनाने वाली जनजातियाँ बाज़ार में प्लास्टिक सामान के कारण नुकसान झेल रही है। भिक्षुक समुदाय ख़त्म होने के कगार पर हैं। आज वे भीख माँगते फुटपतों, स्टेशनों पर देखे जा सकते हैं। अपराधिक जनजातियाँ आज भी कलंकित जीवन जीने के लिए मजबूर हैं। पशु पालक जनजातियाँ चारे के लिए जमीन के अभाव में भटक रही है। अब इन जनजातियों को वैकल्पिक कार्य करने पर मजबूर होना पड रहा है।

विमुक्त घुमंतु समुदाय का अतित एवं वर्तमान दशा- दिशा

प्रा. युवराज सुभाष जाधव
डॉ. तात्यासाहेब नातू कॉलेज ऑफ़ आर्ट्स एंड
सीनियर कॉलेज ऑफ कॉमर्स, मार्ग ताम्हाने
मार्ग ताम्हाने, तालुका-चिपलुन, जिला रत्नागिरी,
मोबाइल नंबर 8668836580.
ईमेल आईडी yuvarajayu@ gmail.com

सारांश

प्राचीन भारत से लेकर आज तक अपने पारंपरिक व्यापारी रवैये से भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक स्थिति में योगदान देने वाला विमुक्त घुमंतू जन समुदाय हमेशा उपेक्षित रहा है. 'द्रव वही है बदला केवल पात्र' उक्ती के अनुसार प्राचीन भारत के आर्थिक सुबत्तावाले समाज से लेकर ब्रिटिशो ने भी इस समाज पर कई अत्याचार किए हैं. आज भारत की स्वतंत्रता की 75 वी अमृत महोत्सव हम मना रहे हैं फिर भी भारत की 191 जातियों की इन 25 करोड़ आबादी वाले विमुक्त घुमंतू समाज को अपने न्यायोचित मानव अधिकारों से वंचित रहना पड़ रहा है ,यह बहुत ही दुर्भाग्यशाली बात है..

बीज शब्द : घुमंतू, स्वतंत्रता, सफेदपोश

घुमंतु समुदाय का शाब्दिक अर्थ:

समुदाय उसे कहते हैं जिसमें अधिकांश जनता का समूह होता है. घुमंतु समुदाय का शाब्दिक अर्थ है इधर- उधर घूमने वाले अस्थिर जनसमुदाय जैसे बेसहारा पंछियों का समुदाय. प्रकृति के बदलते चक्र के अनुसार जैसे पंछियों को अपना आवासीय जीवनक्रम बदलना पड़ता है वैसे घुमंतु समुदायों को अपने जीवन के जीने के पहलुओं में बदलाव करना पड़ता है. आज हम भले ही भारत की स्वतंत्रता का 75 वा अमृत महोत्सव मना रहे हैं फिर भी हमारे भारतीय समाज के उन विकास की धारा से पिछवाड़े पर पड़े भारतीय लोगों को अत्याचारों से कभी भी स्वतंत्रता नहीं मिली है. स्वतंत्रता के बाद भारत में निर्माण हो गई विकास धारा में इन घुमंतू समाज पर हमें गौर करना चाहिए कि वे सचमुच पीड़ा से आजाद हो गए क्या? प्राचीन भारत से लेकर आज के इन सफेदपोश लोगों ने इन घुमंतू लोगों को हमेशा अत्याचारों से पीड़ित कराया है.जैसे इन लोगों के जीने का हक और उनके मानवाधिकारों को भी हमेशा अधिकारों से वंचित कराया गया है.

घुमंतू कौन है:

स्वतंत्रतापूर्व ब्रिटिश प्रशासन ने इस स्थिति में अपनी प्रशासनिक पकड़ को मजबूत करने के लिए तथा इस पकड़ का विरोध करने वाले गुटों को खारिज करने के अपने रवैया के अनुसार **क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट** 'कानून को 1871 मैं बनाया तथा 191 आदिवासियों और घुमंतू जंगल वासी लोगों की जाति को जन्मजात अपराधी का करार दे दिया गया. इसका एकमात्र कारण यह था कि इन घुमंतू जनजातियों वाले लोगों ने ब्रिटिश प्रशासन का कड़ा विरोध किया तथा सरकारी कार्यालयों को जलाना ,रेल की पटरी उखाड़ना, सरकारी कानूनों को ठुकराना यह ब्रिटिश विरोधी कार्य किया था. ऐसा उन्होंने इसलिए किया क्योंकि उनके मन में भारत देश के प्रति स्वाभिमान की भावना थी भारतीय भूमि पर होने वाले अत्याचार कभी भी सहने के लिए तैयार ही नहीं थे परंतु यह ब्रिटिश नजर में बहुत बड़ा अपराध था. इसी कारण ब्रिटिश ने उनको जन्मजात अपराधी का करार दे दिया. वास्तव में यह घुमंतू कौन है? तो हमारे भारत के गांव शहरों से दूर सामाजिक ,आर्थिक, राजकीय जीवनों से बहिष्कृत जनजाति के लोगों में नट ,भाट, बंजारा ,सपेरा ,कंजर ,प्रेरनासिंगीवाला, तेली ,कोली ,घंटी चोर ,कालबेलिया ,जोगी ,फासेपारधी, जैसे 191 समुदाय आते हैं. इस समुदाय के लोग पूरे भारतवर्ष में फैले हैं जिनमें अधिकांश लोग राजस्थान, हरियाणा,पंजाब ,मध्य प्रदेश ,गुजरात ,उत्तर प्रदेश राज्य में पाए गए हैं. महाराष्ट्र में अक्टूबर-नवंबर में फसल के काटने पर खेती में आवास बनाने वाले फासेपारधी लोगों का झुंड हमारा ध्यान आकर्षित करता है. समाज ने ऐसे घुमंतू लोगों को हमेशा अपनी नजर से दूर ही रखा है. केवल उनसे पूरे कष्ट के काम

करवाना लेकिन अपने नजदीक नहीं आने देना ऐसा रवैया लोगों ने अपनाने के कारण प्राचीन भारत से लेकर आज तक यह लोग किसी भी जगह स्थिर नहीं हो सके और इसीलिए हमेशा वह घुमक्कड़ जैसे लोग बन गए हैं. सरकार से इनको कुछ जमीन भी मिली है लेकिन उस पर भी बड़े सफेदपोश शागिर्द लोगों ने अपना हक जमा किया है. भौतिक सुविधाओं का नाम तो इन लोगों के जीवन में आता ही नहीं है. गरीबी जीवन जीना इनके जीवन का एक अविभाज्य अंग बन गया है. इन लोगों को न जीवनआवश्यक पानी समय पर मिलता है न बिजली की उनके जीवन में आशा होती है, ना कुछ भौतिक सुविधाओं की आवश्यक वस्तुएं उनके जीवन में आते हैं .ऐसे विमुक्त घुमंतू जन समुदाय समाज में हमेशा दुर्बलता से भरा रहता हैऔर फिर ऐसे शोषण के शिकार बन जाता है की जिनका कोई भी सहारा नहीं होता.2011 की जनगणना के अनुसार पूरे भारतवर्ष में इन घुमंतू जनजातियों वाले लोगों की संख्या 15 करोड़ बताई गई है.

घुमंतू जनजाति के लोगों का जीवन जीने का ढंग

प्राचीन भारत के उज्जवल इतिहास में घुमंतु लोगों का उल्लेख मिलता है. घुमंतू होने के कारण एक जगह से दूसरी जगह जाने वाले घुमंतू समाज के लोगों ने गधे ,उंट,जंगली जानवरों की की सहायता से अरब से लेकर मुल्तान तक तथा पूरे भारतवर्ष में व्यापार के कष्ट उठाने में इन लोगों ने अपना पूरा सहयोग दिया है. जंगल से प्राप्त लकड़ियों से लेकर जड़ी बूटियां, फल ,जंगली मेवा आदि को बाजार में बेचना तथा शाम को उन्हीं पैसों से धुंध होकर शराब में धुत होना इनकी स्वभावगत विशेषता है. जन समुदाय उनके यहां पिछली 4 शतकों से टूटी फूटी, झोपड़ी ,बड़ी आबादी ,गरीबी ,अछूतापन यह उनके समुदाय की विशेषता प्राचीन भारत से 21वीं सदी के उत्तरार्ध में कायम मजबूत बनी है ,यह भारत जैसे कुछ महान देश के लिए बहुत दुर्भाग्यशाली बात है .जिस देश के स्वतंत्रता के लिए भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु से लेकर महात्मा गांधी जैसे लोगों ने अपने जीवन को समर्पित करते हुए देश को आजादी दिला दी है.आजादी इन विमुक्त घुमंतू जाति के लोगों के लिए कभी भी सुखदायक उनके मानव अधिकारों को सुरक्षित करने वाली बिल्कुल नहीं बन पाई है. क्या यह विमुक्त घुमंतू समाज भारत का एक अंग नहीं है जिन लोगों के बदौलत हमारे देश को स्वतंत्रता मिली है तात्पर्य भारत के स्वतंत्रता में इन विमुक्त घुमंतू समाज के उन वीरों ने भी बहुत बड़ा योगदान दिया है जिसमें वीर संतान ,बिरसा मुंडा जैसे महान लोगों का चरित्र शामिल है ब्रिटिशहो ने इसीलिए इन लोगों के देश प्रेमी को खारिज करने के इरादे से ही इन लोगों को 1857 के बाद इन लोगों को जन्मजात अपराधी होने का करार देते हुए इन लोगों के जीवन के मानव अधिकारी को इस प्रकार खारिजकर दिया था . गांव से दूसरे गांव में अपने परिवार सहित घूमने वाले ऐसे विमुक्त घुमंतू लोगों को एक तो शहर में कोई भी सहारा नहीं देता और घुमक्कड़ जीवन को यह लोग अपनाना चाहते हैं .इस प्रकार गरीबी ही इन लोगों की एक ऐसी विशेषता बनी है और इसी कारण यह लोग घुमक्कड़ जीवन जीते हैं .इन लोगों के लिए रोटी, कपड़ा, मकान इसमें से रोटी और कपड़ा यही एक आवश्यकता बन जाती है .इन लोगों के लिए कोई भी शाश्वत मकान होता नहीं है और इस प्रकार जैसे खुला आकाश, खुली हवा और सूरज के प्रकाश यही इनके जीवन की एक आवश्यकता बन जाती है और फिर ऐसे लोगों को एक वक्त की रोटी मिलना मुश्किल हो जाता है .जैसे सफेदपोश लोग इतनी संपत्ति कमाते हैं लेकिन इन लोगों की तरफ देखने के लिए राजनीतिज्ञों से लेकर हमारे देश के सामान्य नागरिकों को भी कभी समय नहीं मिलता और इस प्रकार यह एक दुर्भाग्यपूर्ण बात हो जाती है कि हमारे ही विशाल भारत के ऐसे भी विमुक्त घुमंतू लोग अपनी जीवन की आवश्यकताएं पूरी करते समय इन लोगों को अपना जीवन ऐसे ही खराब स्थिति में बिताना पड़ता है कि न इनके बच्चों को उचित शिक्षा मिलती है न इनको एक वक्त की रोटी मिलती है. ऐसे बहुत ही कठिन परिस्थिति में यह लोग अपनी जीविका योजना करते रहते है.

स्वतंत्रता पूर्व भारत में घुमंतु लोगों का योगदान

गरीबी लाचारी में फंसे घुमंतू समाज ने 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में ब्रिटिशओके खिलाफ बिगुल फूंक दिया था. हिंदू संस्कृति के रक्षक, त्यागी ,बलिदानी ,दृढ़ प्रतिज्ञ ऐसे गाड़ियां लोहारों, बिरसा मुंडा, संथाल, इनके बलिदान को तो सभी लोग स्मरण करते हैं. महाराष्ट्र में तो श्रद्धालु बिरसा मुंडा जैसे वीरों ने ब्रिटिश शासन को जर्जर कर दिया था. रेल की पटरियों को उखाड़ देने से, सरकारी कार्यालयों को लूटना, अत्याचारी ब्रिटिशओ को मौत दिलाना ,सरकारी खजाना लूट कर गरीबों में बांट देना जैसे

देश कार्य से संबंधित कार्य इन लोगों ने हमेशा किए हैं.इस प्रकार इन घुमंतू समाज के वीरों ने ब्रिटिश शासन के ईट को हिला दिया था. परिणाम स्वरूप ब्रिटिशओने 1857 के स्वतंत्रता संग्राम को परास्त करने के पश्चात इन घुमंतू समाज को कुचलने में खूब सारा प्रयास किया है. इतना ही नहीं 191 घुमंतू समाज के जनजातियों को जन्मजात अपराधी का करार देते हुए उन्हें कलंकित करा दिया गया. उनके उनके साथ अमानवीय व्यवहार किया गया. जंगलों को आग लगाकर उनकी झोपड़ियों को जला दिया गया है भारतीय इतिहास इन घुमंतू समाज के इन वीरों के भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में दिए गए योगदान को, सशस्त्र विद्रोह को कभी भी विस्मृत नहीं कर सकता.

स्वतंत्रता के बाद इन घुमंतू समाज की दशा

दर-दर की ठोकरें खाने वाले इन घुमंतू समाज ने 15 अगस्त के 1947 में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू के नियति के साथ किए गए भाषण के शब्द भले ही सुने हो परंतु उन्हें स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए 5 साल का संघर्ष करना पड़ा. परिणाम था 1952 में इन समाजों को ब्रिटिश द्वारा मिला हुआ जन्मजात अपराधी होने का कानून. भारत सरकार ने इस अन्याय कानून को खारिज करके जन्मजात अपराधी होने से घुमंतू समाज को भी मुक्ति दिलाई. अब वह विमुक्त जनजातियां कहलाती है. अंग्रेजों के दमनआत्मक रवैया के विरुद्ध स्थानीय कृषक जातियों तथा जनजातियों ने अपनी क्षमता के अनुसार ब्रिटिश खिलाफ विद्रोह करके देश के कई लोग समर्पित हो गए .देश के स्वतंत्रता में योगदान देने वाले इन विमुक्त घुमंतु जातियों के प्रति हमारे आज के भारतीय राजनीतिक लोग हमें उपेक्षित नजर से इन लोगों को देखते हैं .यह भारत की स्वतंत्रता के सामने बहुत बड़ा प्रश्न चिन्ह निर्माण करने वाला घटक है.दुर्भाग्यवश भारतीय राजनीतिक लोगों ने उन्हें यथोचित भारतीय गौरव से भी हमेशा दूर रखा है.

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद घुमंतू समाज के प्रति भारतीय सरकार का दृष्टिकोण

भारतवर्ष के कई राज्यों में बेलदार, बंजारा ,फासेपारधी जैसी जनजातियां आज भी दर-दर की ठोकरें खाती नजर आती है. 1947 से लेकर 2021 तक घुमंतू समाजों के विकास के लिए भारत सरकार तथा प्रादेशिक राज्यों की सरकारों ने कई सुधारात्मक रवैया को अपनाते हुए इन जनजाति का विकासात्मक प्रयास किया है. जैसे 1952 में उन्हें जन्मजात अपराधी ब्रिटिश कानून से विमुक्ति करार दिया गया. भारतीय संविधान ने इन घुमंतू समाज के लोगों के लिए सामाजिक नौकरियों में आरक्षण का प्रावधान लागू किया है. सविधान निर्माता महामानव डॉ बाबासाहेब आंबेडकर जी ने इन समाज के उत्थान के लिए हमेशा जोर दिया है. भारत सरकार के मिनिस्ट्री ऑफ ट्राइबल अफेयर्स रिमूवल ऑफ एरिया रिस्ट्रिक्शन अमेंडमेंट एक्ट १९७६ लागू करके घुमंतु समुदाय के लोग जिस एरिया में आवास करते वहां की जमीन -जायदाद पर उन्हें सरकारी प्रमाण पत्र देकर उन्हें अधिकार प्रदान किए जाएंगे ,ऐसा भी सरकार ने अपने घोषणा पत्र में बताया है. महाराष्ट्र सरकार ने जमीन हक्क अधिग्रहण कानून लागू करके इन बंजारा ,जंगल में रहने वाले पिछड़े लोगों को जंगल की जमीन अधिग्रहण कानून के तहत अधिग्रहण अधिकार प्रदान किए हैं. भारत सरकार का सामाजिक न्याय तथा आदिवासी कल्याण विभाग भारत के ऐसे पिछड़े जनजाति के कल्याण के लिए हर साल अनुदान राशि भी मुहैया कराता है.

भारत देश के लिए घुमंतू समाज का योगदान

घुमंतू समाज ने हमेशा भारतीय लोगों को एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया है. प्रतिष्ठित लोगों द्वारा दिया गया हर एक कष्ट का काम उनके लिए बहुत आनंदित बात दिलाता है. जी जान से और मेहनती अंदाज से काम करना यह इस समाज का एक स्वभाव बन गया है. गांव या शहर के रोड का काम करना ,खेती का काम करना, फसल काटना, पेड़ों की कटाई करना ,जंगल से लकड़ी शहर में वे बेचना ऐसे काम इन घुमंतू समाजों के जीवन का एक अंग बन गया है. जंगल में रहने वाले यही घुमंतू लोगों ने जंगल की जड़ी बूटियों ,दवाईउनका इनको बहुत अच्छा ज्ञान होता है और इसीलिए वह निकाल कर वह गांव- शहरों में आकर बेचने का काम भी करते हैं. बहरूपिया बनकर यह लोगों का मनोरंजन भी करवाते हैं. इन्हीं लोगों के कारण ही जंगल पेड़ पौधे सुरक्षित बचे हुए हैं .साथ ही पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने में इन घुमंतू लोगों का खूब योगदान रहा है. रायगढ़ जिले में स्थित

पोलादपुर तहसील में रहने वाले आदिवासी घुमंतू लोग तो मार्च-अप्रैल के समय जंगल से दवाइयां ,काजू आम लाकर रोड के किनारे बैठ कर लोगों को बेचकर जन सेवा करते हुए अपना पेट पालते रहते हैं. बंदर के खेल दिखाने वाला बच्चों का अच्छा मनोरंजन करता है. महाराष्ट्र में तमाशा करने वाले नट लोग ,कारीगर यह तो लोगों को कलाकृति के माध्यम से मनोरंजन के ढंग बताते हैं.सचमुच ,यह बहुरूपिया , बेलदार, बंजारा ,फासेपारधी घुमंतू समाज के लोग कभी भी बड़ी -बड़ी इमारत के बांधने का तो सोचते नहीं लेकिन लोगों के जीवन में आनंद लाने की हमेशा कोशिश करते हैं.

घुमंतू समाज के लोगों का वर्तमान जीवन

2021 की जातिवार जनगणना अभी तक नहीं हो सकी है लेकिन इसके आंकड़े अंदाज से हम बता सकते है कि आज विमुक्त घुमंतू जातियों के लोगों की संख्या 25 करोड़ से भी ज्यादा होगी. आज पूरा भारत वर्ष आजादी के अमृत महोत्सव मना रहा है फिर भी आज इन घुमंतू समाज का जीवन जैसा कि वैसा ही आज हमें देखने को मिलता है तो इससे हमारे सामने प्रश्न खड़ा होता है कि आज भारत को स्वतंत्रता मिलकर 75 साल तो हो गए लेकिन क्या हमने सचमुच आजादी के बाद इन गरीब ,घुमंतू, विमुक्त लोगों को सचमुच परेशानियों से मुक्त कर दिया है? आज भी वह अपने स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे हैं और उनकी यह लड़ाई इतनी गंभीर और चुनौतीपूर्ण है कि स्वतंत्रता पूर्व उन्हें अंग्रेजों से लड़ना पड़ा, आप की बार अपने ही लोगों से उन्हें लड़ना पड़ रहा है. सामाजिक ,आर्थिक, राजनीतिक स्तर पर विमुक्त, घुमंतु ,अर्ध घुमंतु ,खानाबदोश समाज के लोगों को न्याय से वंचित ही रहना पड़ रहा है. सरकार द्वारा इदाते कमीशन जैसे कई प्रकार की कमेटियां हर साल गठित की जाती है फिर भी इन समाज का विकास केवल दस्तावेजों में पड़ा रहता है. सरकार के सिर्फ मंत्रीगण केवल घोषणाएं करके समाज के पिछवाड़े लोगों के बारे में बड़ी-बड़ी बातें करते हैं परंतु वह सब खोखली बातें होती है. घुमंतू समाज के लोग आज भी सामाजिक शैक्षणिक सुविधाओं से हमेशा पीड़ित रहे हैं. कोई एकाध दूसरा घुमंतू समाज का पढ़ा- लिखा व्यक्ति भी विदेशों में जाकर बस जाता है और अपने समाज को भूल जाता है .समाज के प्रतिष्ठित लोग घुमंतू समाज के लोगों की जीवन शैली पर रोक लगा रहे हैं. जंगलों को आग लगा दी जाती है .इससे इन घुमंतू लोगों की आवासीय स्थान भी उजड़ जाते हैं .जो बंजारे लोग प्राचीन भारत से गधे जैसे जानवरों के जरिए व्यापार किया करते थे ,अरब देश से नमक भी लाया करते थे उन्हीं लोगों के व्यापार पर सरकार ने 1995 में नमक व्यापार पर रोक लगाकर उनके जीवन को ही समाप्त करने का ढंगा अपनाया है .सरकार ने जंगल के अधिकारों को छीन लिया है .मेडिकल प्रैक्टिशनर अधिनियम के जरिए सिंहजीवाला ,सांसी ,जोगी ,कंजर ,ऐसे घुमंतू समाज के लोगों के पारंपरिक ज्ञान की पद्धति को ठुकरा दिया है. आज महाराष्ट्र से तमाशा तो लुप्त ही हो गया है .बागरी समाज के हाथों से उनकी जमीन भी छीन कर उन्हें हमेशा के लिए घुमंतू बना दिया गया है .घुमंतू लोगों के प्रति हमारे समाज में तिरस्कार का स्वर बड़ा है कि इन लोगों को सोसाइटी में प्रवेश निषिद्ध होता है. यह समाज के लोगों के मरने पर श्मशान भूमि भी उन्हें नसीब नहीं होती . नट लोगों के करतब पर भी रोक लगा दी जा रही है. केंद्र सरकार ने घुमंतू समाज के उत्थान के लिए रेनके आयोग इदाते कमीशन बनाया और यह केवल विकास का ही दिखावा ही है. विभिन्न राज्य सरकारी घुमंतू जनजाति के विकास के लिए कई घुमंतू बोर्ड बनाती है ,फिर भी बोर्ड के बजट का एक भी पैसा या न तो खर्च करती है या घुमंतू समाज को दिया जाता है . घुमंतू समाज का मानव अधिकार ही छीन छीन लिया गया है. आज भी घुमंतू समाज में न तो बिजली पहुंची है ना तो संपर्क की की कोई सुविधा है. सेहत से संबंधित मेडिकल सुविधा का भी समय पर मिलना इन लोगों के लिए बहुत मुश्किल है. महाराष्ट्र में रायगढ़ जैसा एक ऐसा दुर्गम जिला है जहां पोलादपुर ,महाड ,पोलादपूर, मानगांव तहसील में स्थित कई घुमक्कड़ लोगों को हमेशा सेहत से संबंधित बीमारी के लिए मुंबई जाना बहुत कठिन होता है.प्राथमिक अस्पताल तो केवल और केवल दिखावा है और ऐसे लोगों को सेहत से संबंधित खतरनाक बीमारी के समय मुंबई तक जाने के लिए कोई परियोजनाएं भी नहीं होती और इस प्रकार ऐसे लोगों की दर्दनाक मृत्यु होती रहती है.

सुझाव

हमें हमेशा हर एक व्यक्ति के मानव अधिकार को उचित सम्मान देना चाहिए. घुमंतू समाज ने प्राचीन भारत से लेकर आज तक हमेशा भारतवर्ष में अच्छा योगदान दिया है .इसको हमें कभी भी नजरअंदाज नहीं करना चाहिए. हम बड़े-बड़े सीमेंट के

घरों में रहते हैं लेकिन ऐसे घुमंतू ,घुमक्कड़ लोग जो गरीबी की अवस्था से गुजर रहे उन लोगों के प्रति भी हमारे मन में प्रेम ,संवेदना और सहकार्य की भावना होना महत्वपूर्ण है . इन घुमंतू लोगों के मानवाधिकार की हमें रक्षा करनी चाहिए. उनकी कला को हमें नवाजना चाहिए .स्थाई आयोग का गठन करके घुमंतू समाज में से नेतागण चुने जाने चाहिए ताकि वह उस समाज का उचित विकास कर सकेंगे. आरक्षण से संबंधित विसंगतियों को भी हटाया जाना चाहिए. हमारे देश का भविष्य उज्जवल बनाने वाले राजनीतिक लोगों ने भी अपनी कुटिल राजनीति को एक तरफ रख के संविधानिक विकास के माध्यम से ऐसे घुमंतू ,गरीब समाज को हमेशा संरक्षण देना चाहिए ताकि वह सुरक्षित रह सके और अपना विकास कर सके. घुमंतू समाज के न्यायोचित अधिकार हमेशा मजबूत बनने चाहिए. घुमंतू समाज के बच्चों ,महिलाओं के साथ सार्वजनिक स्थानों में भेदभाव करना कानूनी अपराध माना जाना चाहिए. सोशल मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा घुमंतू समाज के प्रति जनता में जागरण करना बहुत ही महत्वपूर्ण है. विमुक्त घुमंतू समाज लोगों लिए विशेष अनुदान मुहैया कराना बहुत महत्वपूर्ण है. उनका स्वास्थ्य ,भूमि आवास के प्रति वनाधिकार ,उनका कौशल्य विकास, महिला सशक्तिकरण के प्रति हर भारतीय नागरिक ने मानवीयता अपनाना बहुत महत्वपूर्ण है.

निष्कर्ष

स्वतंत्रता पूर्व से जन्मजात अपराधी बने इन घुमंतू समाज के प्रति आज के युग में हमें मानवीयता का रवैया अपनाते हुए आजादी के अमृत महोत्सव वर्ष के दरमियान हमें इस समाज के उत्थान के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए. वह भी इंसान है ,ऐसा हर एक भारतीय नागरिक ने विचार करना चाहिए. उनके जीने के ढंग को सुरक्षा देना, सुरक्षा प्रदान करना चाहिए. स्वतंत्रता पूर्व से लेकर आज तक उनके भारत के प्रति किए गए योगदान को हमें हमेशा स्मरण करते रहना चाहिए.विश्व मानवीय अधिकार ने भी हर विश्व के नागरिक के जीवन के न्यायोचित अधिकारों को सुरक्षित रखने का प्रावधान स्पष्ट किया है. भारत के हर एक नागरिक ने भी अपने देश के गठन में महत्वपूर्ण सहयोग देने वाले इन घुमक्कड़ घुमंतू समाज के जन समुदाय वाले लोगों के प्रति भी संवेदना रखते हुए उनके प्रति परोपकार सहकार्य की भावना रखनी चाहिए. पुणे गरीब कनिष्ठ समझकर ठुकरा ना गलत है. उन्हें चोर ,उचक्के समझ कर गांव सोसाइटी में प्रवेश निषिद्ध कर देना यह इंसानियत के खिलाफ है. हमें ऐसे लोगों के प्रति हमेशा मानवीयता पूर्ण व्यवहार करना चाहिए.

संदर्भ

1) इंटरनेट से प्राप्त जानकारी
2) क्रांतिवीर बनाम क्रिमिनल टाइप- 2015- प्रिंस प्रकाशन -बी.के .लोधी
3) समाचार पत्र -लोकसत्ता का लेख -
4) विमुक्त घुमंतू जनजातियों के लिए बनाए गए इदाते कमीशन की सिफारिशें..

"विमुक्त या घुमन्तू समुदाय : समाज एवं संस्कृति के सन्दर्भ में"

शेषांक चौधरी
शोधार्थी, हिंदी विभाग
हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय
ईमेल-
chaudharysheshank.brh2016@gmail.com

सारांश

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश में जनविकास के कई सारे प्रक्रम शुरू किए गए। देश को तरक्की की राहों पर ले जाने के लिए कई उपक्रमों का गणेश हुआ। किसी भी देश की उन्नति व सर्वांगीण विकास ले लिए उसमें रहने वाले सभी समूहों, वर्गों का समान विकास हो यह अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। आजादी के बाद विकास की जो परिकल्पना की गई उसमें देश की घुमन्तू जनजाति के रूप में एक बहुत बड़ी आबादी की अवहेलना स्पष्ट रूप से रेखांकित की जा सकती है। उनका वैसा विकास नहीं हुआ जैसा वांछित था। इससे बड़ी विडंबना क्या हो सकती है कि जहाँ सम्पूर्ण देश को १९४७ में आजादी प्राप्त हो गई थी, वहीं देश की एक बहुत बड़ी आबादी जो घुमन्तू समुदाय के रूप में थी; उसे ३१ अगस्त १९५२ को मुक्ति मिली। अंग्रेजी हुकूमत ने जिन कट्टर सशस्त्र विद्रोही समुदायों को 'क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट १८७१' के तहत 'जन्मजात अपराधी' घोषित कर दिया था; यह विद्रोही समुदाय घुमन्तू जनजातियों के ही थे। आजादी के पाँच वर्ष बाद ३१ अगस्त १९५२ को भारत सरकार ने इस बर्बर एवं भेदभाव पूर्ण कानून से घुमन्तू समाज के लोगों को मुक्ति दिलाई और इनको 'विमुक्त' घोषित किया गया। अंग्रेजों के भेदभावपूर्ण क़ानून के स्थान पर "हैबिचुअल ऑफेंडर एक्ट" लागू कर दिया गया। इसका अर्थ यह हुआ कि जो ब्रिटिश विद्रोही समाज १९५२ तक जन्मजात अपराधी माने जाते थे वे अब 'आदतन अपराधी' माने जाने लगे मगर उनके नाम के आगे 'विमुक्त' शब्द जोड़ दिया गया जिससे यह पता चले कि यह पहले अपराधी जनजाति के थे। बात यहीं नहीं खत्म होती है, इस समुदाय के अनेक वीर योद्धाओं ने देश की आजादी के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया। उन्होंने अंग्रेजों को नाकों चने चबाने पर मजबूर कर दिया। उन वीरों की दास्तान भी अब किसी को नहीं पता। अंग्रेजों तथा उनके चाटुकार इतिहासकारों की कुत्सित मानसिकता के कारण उनके संघर्ष को देश की आजादी के इतिहास में वह स्थान नहीं मिला जो मिलना चाहिए था। इतिहास में स्थान मिलना तो दूर की बात, उन्हें इस बलिदान का सिला 'जन्मजात अपराधी' के संबोधन के रूप में मिला। इस बात का प्रमाण २००८ में भारत की संसद में एक 'एप्रोप्रिएशन बिल' की बहस के दौरान उड़ीसा के एक सांसद ब्रह्मानंद पांडा के वक्तव्य से मिलता है जिसमें उन्होंने जिक्र किया था कि - "उनके निर्वाचन क्षेत्र का 'लोधा समुदाय' जो वास्तव में स्वतंत्रता सेनानी थे, उन्हें आज भी समाज एवं शासन सत्ता में बैठे लोग 'जन्मजात अपराधी' ही मानते हैं।"[१] सांसद का उड़ीसा के लोधाओं के बारे में स्वातंत्र्य योद्धाओं संबंधी वक्तव्य देश कि अन्य घुमन्तू जनजातियों – 'गुर्जर', 'महावत', 'नट', 'सांसी', 'सहारिया', 'कबूतरा', 'बंजारा', 'धनगर', 'वडार', 'घिसाड़ी' आदि के समुदायों पर भी लागू होता है।

बीज शब्द : 'गुर्जर', 'महावत', 'नट', 'सांसी', 'सहारिया', 'कबूतरा', 'बंजारा', 'धनगर', 'वडार', 'घिसाड़ी'

प्रास्ताविक

अंग्रेजों के जाने के बाद स्वतंत्र भारत की सरकारों ने भी इनकी सुध नहीं ली। जिसका परिणाम है कि आज भी इस समुदाय के लोग अत्यंत नारकीय जीवन जीने को विवश हैं। विमुक्त अथवा घुमन्तू समुदाय आज भी अपनी संस्कृति एवं परम्पराओं को संरक्षित रखते हुए जीवन जीने के लिए संघर्षरत है। बदलते हुए आधुनिक परिवेश के साथ घुमन्तू जनजातियों के कुछेक लोगों ने थोड़ा-बहुत शिक्षा के महत्व को पहचाना है और शिक्षा ग्रहण कर थोड़ी-बहुत प्रगति की है; लेकिन बहुत-से घुमन्तू लोग आज भी वनों, पहाड़ों एवं गाँव-गाँव में दर-दर भटकने को मजबूर हैं। देश की स्वतंत्रता के पाँच वर्ष बाद ब्रिटिश हुकूमत द्वारा

घुमन्तू वीरों को दिया गया 'जन्मजात अपराधी' का टैग भले ही सरकारी दस्तावेजों में खत्म हो गया हो; लेकिन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर विमुक्त या घुमन्तू लोगों के साथ आज भी वही व्यवहार किया जा रहा है।

वर्ष २०११ की जनगणना के अनुसार भारत में विमुक्त या घुमन्तू समुदाय के लोगों की जनसंख्या १५ करोड़ है। जो अनुमानतः अब (२०२२) बढ़कर लगभग १९-२० करोड़ हो गई है। यह विशाल जनसमुदाय देश की आजादी के बाद भी आज तक सामाजिक न्याय से पूरी तरह वंचित एवं विकास की मुख्यधारा से कोसों दूर रहा है। विमुक्त जातियों के साथ जो उपेक्षा सरकारों, यहाँ तक कि सामाजिक न्याय के ध्वजवाहकों ने की है वह वास्तव में चिंता एवं चिंतन का विषय है। शायर असराल-उल-हक़ मजाज़इन विमुक्त या घुमन्तू जनजातियों के दर्द को अपनी शायरी के अल्फाज़ों में पिरोते हुए फ़रमाते हैं-

"बस्ती से थोड़ी दूर, चट्टानों के दरमियाँ
ठहरा हुआ है, खानाबदोशों का कारवां
उनकी कहीं जमीन, न उनका कहीं मकां
फ़िरते हैं यूँ ही शामों-सहर ज़ेरे आसमां।"[२]

हमारे देश में लगभग ८४० विमुक्त या घुमन्तू जनजातियाँ हैं। देश की प्रमुख विमुक्त या घुमन्तू जनजातियों में – 'कलंदर', 'भवैया', 'कुचबन्दा', 'कलबेलिये', 'बंजारा', 'नट', 'पारधी', 'घिसाड़ी', 'वडार', 'धनगर', 'अगरिया', 'महाउत', 'आंध्र', 'लोधा', 'बिअर', 'बैगा', 'भामिया', 'दामोर', 'कोरकू', 'कंवर', 'मांझी', 'मवासी' आदि हैं। प्रत्येक घुमन्तू समुदाय की एक अलग ही विशिष्टता होती है, जो इनको अन्य घुमन्तू जातियों से अलग करती है। प्रत्येक घुमन्तू जाति की अपनी विशिष्ट भाषा, संस्कृति, पहनावा, रहन-सहन, न्याय पद्धति, वैवाहिक विधान, रीति-रिवाज होते हैं। घुमन्तू जातियों के समाज एवं संस्कृति को विश्लेषणात्मक दृष्टि से देखें तो हम पाते हैं कि प्रत्येक घुमन्तू जनजाति की अपनी विशेषताएं हैं। उनकी इन्हीं विशेषताओं को रेखांकित करने का प्रयास मैंने किया है।

विमुक्त या घुमन्तू जनजाति समाज देवी-देवताओं के प्रति अत्यंत श्रद्धा भाव से पूरित होता है। इस समाज के लोगों का मानना होता है कि सारी समस्याओं की जड़ दैवीय प्रकोप होता है। अतः इस समुदाय के लोग स्वयं को दैवीय प्रकोप से बचाने के लिए अपने कुल के देवी-देवताओं की भांति-भांति विधियों से आराधना करते हैं। पूजा के दौरान पशु-बलि देने की प्रथा इस समाज में आज भी प्रचलित है। घुमन्तू समाज में प्रचलित बलि प्रथा के संबंध में डॉ. गणपत राठौर अपनी पुस्तक 'घुमन्तू जनजातियों का सांस्कृतिक अध्ययन' में पारधी विमुक्त जनजाति की बलि संबंधी मान्यताओं पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि - "पारधी लोग दशहरे के दिन कर्जा लेकर ही क्यों ना हो बलि देते हैं। कुछ भक्तोंगणों के शरीर में देवी माता का संचार होता है, तब वह कड़ाही के तपते तेल में से पूड़ियाँ हाथ से निकाल कर दिखाते हैं। माता की कृपा से उन्हें किसी प्रकार का जख्म नहीं होता। इतनी अटूट श्रद्धा देवी माता पर इस समुदाय के लोगों की होती है।"[३] अपने आराध्य देवी-देवताओं की आराधना करते समय घुमन्तू लोग विभिन्न प्रकार के आराधना-गीत गाते हैं। उदाहरण स्वरूप कुछ घुमन्तू जनजातियों के आराधना-गीत दृष्टव्य हैं -:

बंजारा समुदाय का तीज की देवी की आराधना का गीत -

"बाई ये तीज बोइ हम देववास
आयो करिए बाई देवी हमारे वास
बाई ये जीत बोइ हम देवीवास।"[४]

पारधी समुदाय का देवी माता की आराधना का गीत -

"मारा देवीनो मीने भंडार
आपण आपण देवी नौ मौजकरो
भंडार करो आपणा देवी नौ
गाणा कहो आपण पारधी

झी आपणी देवी बोकडावर
बैसिली झी आपणी देवी ।"[५]
वडार समुदाय का देवी माता की आराधना का गीत -
"येड बिंदयाल नेल तेच्ची
शिव पुजाल शेताम दारो
धरनम पुराल नरसिंगा
नवरतनाल तुरायी दारो
धरनम पुराल नरसिंगा ।"[६]

इस प्रकार हम देखते हैं कि घुमन्तू समाज में पूजा-पाठ का महत्वपूर्ण स्थान है । यह समाज अपने ऊपर आने वाली अदृश्य आपदाओं से निजात पाने के लिए अपने उपास्य की शरण में जाता है । और करे भी तो क्या करे, जब उनके अपने परिवेश के बाहर बसने वाले तथाकथित सभ्य समाज में या मुख्यधारा के समाज में जब उनकी कोई सुध लेने वाला ना हो, तब उसे इन्हीं अदृश्य शक्तियों का ही तो एकमात्र सहारा है । उनकी आराधना से प्राप्त विश्वास ही तो उनकी थाती है, जिसके बल पर वह अपने ऊपर आने वाली विपत्तियों से जूझने का संबल पाते हैं ।

घुमन्तू समाज के लोग अपनी संस्कृति और रीति-रिवाजों के अनुसार उत्सव और पर्व-त्यौहारों के प्रति बहुत ज्यादा प्रफुल्लित रहते हैं और इसकी अगवानी वे बड़ी गर्मजोशी से करते हैं । यह पर्व-त्यौहार ही वे अवसर होते हैं, जब वे अपनी ग़ुरबत से भरी जिंदगी से हर्ष के दो पल चुराकर व्यतीत करते हैं । यह त्यौहार ही होते हैं जिनके माध्यम से घुमन्तू समुदाय के लोग अपने-अपने समाज की विशिष्ट संस्कृति के सोते (स्रोत) को सूखने नहीं देते हैं । घुमन्तू समाज के लोग प्रायः सामान्य हिन्दू समाज में प्रचलित सभी त्यौहारों को मनाते हैं, परन्तु भिन्न-भिन्न घुमन्तू समुदायों में कुछेक त्यौहारों को विशेष मान्यता के साथ मनाया जाता है । मसलन बंजारा समाज को ही ले कर देखें तो - उसमें तीज, दीपावली और होली के त्यौहार विशेष हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है । इसी प्रकार वडार घुमन्तू जनजाति में - दशहरा, दिवाली, होली, नागपंचमी और रक्षाबंधन का त्यौहार विशेष हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है । कुछ एक ऐसी भी घुमन्तू जनजातियां हैं जिनके जीवन में शांति नहीं है और वे अभी तक अपने उत्पीड़न के चक्र से बाहर नहीं निकल पाई हैं । इसीलिए उनके समाज में त्यौहारों को न के बराबर मनाया जाता है । पारधी घुमन्तू समाज इसका प्रमाण है । इस समाज में त्यौहार न के बराबर मनाए जाते हैं । वर्तमान समय में अन्य समाजों के देखा-देखी इस समाज में भी कुछेक हिन्दू त्यौहारों के मनाने का चलन प्रचलित हुआ है । डॉ. गणपत राठौर इसी समाज के एक व्यक्ति के हवाले से अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि - "हमारे समाज में केवल दशहरा त्यौहार मनाते हैं । इस त्यौहार में महाकाली जगदंबा देवी को पशु-बलि दी जाती है । बाकी त्यौहार दीवाली, रक्षाबंधन, होली यह अन्य समाज की ओर देखकर साधारण रूप में मनाए जाते हैं । बाकी पारधी समाज का कोई अपना महत्वपूर्ण त्यौहार नहीं है ।"[७] इसी प्रकार परदेसी घुमन्तू समाज के लोग नागपंचमी, रक्षाबंधन, हरितालिका तीज, दीपावली, होली आदि उत्सव मनाते हैं । धनगर घुमन्तू समाज के लोग विशेषतया नागपंचमी, लक्ष्मी पूजन, दशहरा, दिवाली एवं होली त्यौहार विशेष उत्साह के साथ मनाते हैं । ध्यातव्य है कि ये उत्सव एवं पर्व-त्यौहार ही हमारी सभ्यता एवं संस्कृति के दर्पण होते हैं । ये हमें हमारी परम्पराओं, आदर्शों एवं मूल्यों से जोड़कर हममें एक नया उत्साह सृजित करते हैं । त्यौहारों के संबंध में हेमराज मीणा जी लिखते हैं कि - " संसार का सभ्य समाज या घुमन्तू जनजातियाँ सभी अपने रोजमर्रा के जीवन में अपने-अपने कर्मों एवं मेहनत, परिश्रम में व्यस्त रहते हैं । मानो हर कोई अपने भरण-पोषण के लिए संघर्ष करता हुआ दिखाई देता है । जब वह अपने जीवन से ऊब जाता है तो शांति की तलाश करता है और मनुष्य को शांति मात्र उत्सवों एवं पर्व-त्यौहारों से ही प्राप्त होती है ।"[८]

वेशभूषा अथवा पहनावे की दृष्टि से यदि हम विमुक्त या घुमन्तू समाज को देखते हैं तो हम पाते हैं कि इस समाज के वस्त्र-विन्यास पर इनके व्यवसाय की स्पष्ट छाप होती है । जैसे बंजारा समाज को देखें तो उनकी वेशभूषा में हम एक पृथक् संस्कृति के

दर्शन पाते हैं। बंजारा पुरुष धोती-कुर्ता पहनते हैं और सिर पर साफा बनते हैं। बंजारा स्त्रियाँ रंग-बिरंगे वस्त्र पहनती हैं। विशेष बात यह है कि ये बंजारन स्त्रियाँ अपने परिधान ; चोली, ओढ़नी और लहंगे को काँच के टुकड़ों से विशेष प्रकार से करीने से सजाकर तैयार करती हैं। बंजारन स्त्रियों का परिधान तो आजकल फैशन के रूप में प्रसिद्धि पा रहा है। पारधी घुमन्तू समाज का मुख्य व्यवसाय चूँकि आखेट पर जाना, पेड़ पर चढ़ना, आदि है; यही उनकी आजीविका का साधन है, यही कारण है कि यह जनजाति कम कपड़े पहनती है। पारधी पुरुष कुर्ता और एक छोटा कपड़ा माथे पर बांधते हैं तथा लंगोट पहनते हैं। अन्य घुमन्तू जनजातियों में जैसे - वडार, बंजारा, घिसाड़ी में पुरुषों में बड़ी-बड़ी रंगीन पगड़ी बांधने का चलन है। वैसा चलन पारधी जनजाति में नहीं दिखाई देता है। पारधी महिलाएं साड़ी-चोली पहनती हैं तथा हाथ, नाक, कान में मामूली धातुओं (चांदी,गिलट,रूबी आदि) के गहने पहनती हैं।

घुमन्तू समाज में न्याय व्यवस्था के निमित्त जाति पंचायतें होती हैं। पंचायत द्वारा दिया गया निर्णय समुदाय में सबको मान्य होता है। पंचायत में विवाह-विच्छेद, पति-पत्नी विवाद, अनैतिक संबंध, मारपीट एवं विवाह आदि संबंधी समस्याओं पर विचार किया जाता है। जो अपराधी है उसे दंड दिया जाता है। यदि कोई व्यक्ति जघन्य अपराध करता है तो उसे जाति से बहिष्कृत भी कर दिया जाता है। घुमन्तू समाज की जाति पंचायतों के बारे में डॉ. एस.जी.देवगांवकर लिखते हैं - "घुमन्तू समाज में एक विशेष बात दिखाई देती है कि अपराधी व्यक्ति को दंड देने के बाद उसे पुनश्च विधि द्वारा जाति में प्रवेश देने की उदारता भी पंचायत में है। अपराधी अपराध से मुक्त होने के बाद खुश होकर पंचायत के सदस्यों को मद्य-मांस का भोज देता है।"[९] वर्तमान समय में घुमन्तू समाज के कुछ लोग अपने आपसी विवादों का निपटारा कराने के लिए थानों व अदालतों की भी शरण लेने लगे हैं।

घुमन्तू समाज में सामान्यत: संयुक्त परिवार पद्धति ही प्रचलित है। इसका कारण है कि उनके व्यवसाय में सहयोग करने के लिए अधिक लोगों की आवश्यकता होती है, इसीलिए संयुक्त रूप से रहना इनके लिए हितकर होता है। यह बात सभी घुमन्तू समुदायों में देखी जा सकती है।

घुमन्तू समाज में एक बहुत बुरा व्यसन मद्यपान का बहुप्रचलित है। इस समाज में मद्यपान एक जरूरी पेय के रूप में हर उत्सव में शामिल होता है। अनादिकाल से यह लोग सुख-दु:ख हर परिस्थिति में शराब पीते रहे हैं। विवाह, पंचायत, सभा, मृत्यु-संस्कार, धार्मिक-विधि, व दिन-भर काम करने के बाद शाम के समय इन लोगों को मदिरा अवश्य चाहिए। इनके समाज में यदि किसी की मृत्यु हो जाती है तो यह लोग शराब पीकर उसकी अंत्येष्टि-क्रिया में शामिल होते हैं। मृतक की अंत्येष्टि-विधि के पश्चात सभी लोग मृतक के घर इकट्ठा होकर खूब शराब पीते हैं और शोक मनाते हैं। घुमन्तू समाज के लोगों के परिश्रम की कमाई का अधिकतम भाग उनके शराब पीने में ही चला जाता है। यह शराब ही उनके आज तक गुरबत में जीने की सबसे बड़ी वजह है। उनकी हाड़-तोड़ मेहनत की जिस कमाई को उनके बच्चों की शिक्षा, उनके परिवार के स्वास्थ्य और भोजन-पानी पर खर्च होना चाहिए था, वह उनके शराब पीने कि लत पर स्वाहा हो जाता है।

विमुक्त या घुमन्तू समाज में अंधविश्वासों की बड़ी रूढ़ कुरीति प्रचलित है। अनपढ़ होने के कारण कर्मकांड, भूत-पिशाच, टोने-टोटके आदि में इस समाज के लोग अत्यधिक विश्वास करते हैं। अपनी आराध्य कुल-देवियों को प्रसन्न करने के लिए अपने पास पैसा ना होने पर कर्ज लेकर बकरे की बलि चढ़ाना, मांसाहार करना, शराब पीना आदि इनके अंधविश्वास ही हैं। इस तरह के कर्मकांडों में ये घुमन्तू जनजातियाँ अपने पैसों का अपव्यय करती हैं। यह उनके पिछड़ेपन का बहुत बड़ा कारण है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विमुक्त या घुमन्तू समाज में अनेक प्रकार की कुरीतियों का अंबार लगा हुआ है। इसका मुख्य कारणों में इनकी ओर समाज की मुख्यधारा के लोगों की उपेक्षाभरी दृष्टि, सरकारों की इनके विकास के प्रति उदासीनता और इनका अशिक्षित होना है। इतना उपेक्षित होने के बावजूद यह समाज सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। यह समाज अपनी संस्कृति, परम्पराओं और रीति-रिवाजों को लेकर सजग है और उनके संरक्षण हेतु तत्पर है। समाज के कुछेक लोग अब शिक्षा ग्रहण कर समाज की मुख्यधारा में अपना योगदान दे रहे हैं। विमुक्त या घुमन्तू समाज सदा ही राष्ट्र व समाज की सेवा हेतु अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को उद्यत रहने वाला समाज रहा है। अगर सरकारें इस समाज के विकास की ओर थोड़ा ध्यान दें तो यह समाज

विकसित होकर देश के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। शोलापुर के एक कवि 'नागनाथ विट्ठलराव गायकवाड़' अपनी एक कविता के माध्यम से बदलाव के लिए विमुक्त या घुमन्तू समाज के लोगों का आह्वान करते हुए लिखते हैं –

"उठ मेरे विमुक्त भाई
अपनी दुनिया है ही निराली, पैदा होते ही हम अपराधी
न गाँव, न घर, न जंगल, न कोई हक़, कहाँ के हम शिकारी
उठ मेरे विमुक्त भाई
गुलामी कि जंजीरों से बाहर निकल
क्रान्ति की फैली है किरण
संघर्ष कर
न्याय मिलेगा, आज नहीं तो कल।"[१०]

सन्दर्भ सूची -

1. http://thewiewhindi.com/72001/denotified-tribes-nomadic-tribes-india-govt-criminal-tribes-act/
2. https://sablog.in/denotified-nomadic-sami-nomadic-tribes-and-literature/14536/
3. घुमन्तू जनजातियों का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. गणपत राठोड, पूजा पब्लिकेशन कानपुर- २०८०२१, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या ४४-४५
4. वही, पृष्ठ संख्या ६८
5. वही, पृष्ठ संख्या ४५
6. वही, पृष्ठ संख्या ५०-५१
7. वही, पृष्ठ संख्या ७८
8. बंजारा जाति : समाज और संस्कृति, डॉ. यशवंत जाधव, पृष्ठ संख्या ११०
9. महाराष्ट्रातीलजाती, डॉ.एस.जी. देवगांवकर, पृष्ठ संख्या ३५८
10. https://sablog.in/denotified-nomadic-sami-nomadic-tribes-and-literature/14536/

मराठी लोक-संस्कृति के प्रचार-प्रसार में घुमंतू जातियों का योगदान

*** संतोष वसंत कांबले**
पीएच.डी. शोधार्थी (हिंदी)
कवयित्री बहिणाबाई चौधरी उत्तर महाराष्ट्र विश्वविद्यालय, जलगाँव
मोबाईल क्रमांक- ८१२५९ ८११९४
ई-मेल : shreyashju@yahoo.co.in

**** पूनम शर्मा**
पीएच.डी. शोधार्थी (हिंदी),
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान,
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा मद्रास
त्यागराय नगर, चेन्नै- ६०० ०१७

सारांश

'वसुधैव कुटुंबकम्' की संज्ञा प्राप्त हमारा भारत वर्ष विभिन्नता में एकता को अपने में समाहित किए हुए है | भारत भूमि ऐसी पावन भूमि है जहाँ विभिन्न रंग-रूप, वेश-भूषा, धर्म-जाति तथा समुदाय व संस्कृति को मानने वाले लोग भाई-चारे व समन्वय की भावना के साथ निवास करते हैं |

भारत के विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के दर्शन हमें अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं जिन सभी का अपना अलग-अलग इतिहास एवं उद्देश्य है | इनमें से महाराष्ट्र राज्य की मराठी लोक-संस्कृति का वैशिष्ट्य अपने में अनुपम सौंदर्य को धारण करने के कारण महत्वपूर्ण है जिसकी लोक-संस्कृति के सौंदर्य का प्रदर्शन वहाँ पायी जाने वाली विभिन्न मराठी घुमंतू जातियों के द्वारा प्रकट होता है |

बीज शब्द : वसुधैव कुटुंबकम्, घुमंतू, गोंधली, नागमंत्री,

इन प्रमुख मराठी घुमंतू जातियों में से कुछ जातियाँ इस प्रकार से हैं –

गोंधली-

मराठी घुमंतू जाति के अंतर्गत केवल जाति से गोंधली लोगों के द्वारा ही गोंधल का आयोजन किया जाता है | गोंधल मराठी लोक-संस्कृति एवं लोक-जीवन का अत्यंत महत्त्वपूर्ण भाग है | इसके द्वारा देवी-देवताओं की उपासना एवं पूजा को रखा जाता है तथा परिवार व समाज में शुभ-कार्यों के अवसर पर गोंधल का आयोजन किया जाता है | गोंधल के अंतर्गत तुलजाभवानी और रेणुका जैसी दो देवी-शक्तियों की उपासना की जाती है तथा उनके प्रति श्रद्धा भाव रखते हुए उपासना कार्य किया जाता है | गोंधली के महात्म्य का उल्लेख हमें नामदेववादी संत परंपरा व महानुभव संत परंपरा में भी देखने को मिलता है |

गोंधली के आयोजन हेतु केवल जाति के गोंधली लोगों का होना अनिवार्य हैं क्योंकि इसके लिए परंपरागत प्रथानुसार दीक्षा लेना अनिवार्य होता है | गोंधली की वेश-भूषा अनुपम होती है | जिसके अनुसार गोंधली जाति व लोक-संस्कृति को अपनाने वाले लोग गले में कवडियों की माला धारण करते हैं | कवड़ी अर्थात देवी द्वारा संहार किए गये असुरों के शीश का प्रतीक चिह्न | गोंधल जाति द्वारा किये जाने वाले गोंधल क्रिया को बड़े विधि-विधान द्वारा पूर्ण किया जाता है | जिसके लिए रात भर जागकर नीतिपरक गीत गाकर लोगों को उपदेश देने का कार्य संपन्न किया जाता है | गोंधल की संरचना भी वैशिष्ट्यपूर्ण ढंग से होती है जिसके लिए गोंधली को कमरे के मध्य भाग में एक चौरंग पर नया वस्त्र रखकर उस पर चावल के दानों द्वारा चौक पूरा जाता है | चौके के चारों कोनों पर चार एवं मध्य में खोपरा रखा जाता है | चौक के मध्य में कलश स्थापित किया जाता है तथा कलश के ऊपर आम के पत्ते अथवा पान के पत्तों को रखकर उनके ऊपर नारियल स्थापित किया जाता है तत्पश्चात यजमान के द्वारा देवी की स्थापना कर पूजा-अर्चना का कार्य किया जाता है इसके लिए यजमान चौरंग के आगे पाँच पत्तल रखकर उस पर चावल डालता है तथा आटे द्वारा निर्मित दीपक रखता है | चौरंग के चारों तरफ गन्ने खड़े किए जाते हैं तथा बीचोंबीच फूलों की माला बाँधकर कलश के ऊपर स्थापित नारियल को माला पहनाई जाती है | गोंधल में मशाल की आवश्यकता होती है |

प्रत्यक्ष रूप से गोंधल की शुरूआत करने से पहले गण गाकर देवी जगदंबा को याद किया जाता है तत्पश्चात समस्त देवी-देवताओं को गोंधल के लिए आमंत्रित किया जाता है-

"तुलजापुर की माता गोंधल को आ जाओ,

कोल्हापुर की लक्ष्मी गोंधल को आ जाओ,
माहुर की रेणुका माता गोंधल को आ जाओ,
गोंधल सजाया गोंधल को आ जाओ |"[1]

गोंधल के प्रथम भाग में देवी की प्रशंसा की जाती है | देवता प्रतिस्थापना, पूजा, गण, गवलण, आमंत्रण और नमन के बाद अंतरंग प्रारंभ होता है | इसमें आख्यान प्रस्तुत किया जाता है तत्पश्चात आरती की जाती है तथा गोंधल समाप्त होता है |

गोंधल के अंदर मुख्य गोंधली गीत एवं कथा के माध्यम से मनोरंजन एवं जीवन यापन के उपदेशों से युक्त गीत गाये जाते हैं तथा गीत के मध्य ही प्रश्न पूछकर गोंधल को गति प्रदान करने का कार्य सहायक गोंधली तथा संबल एवं तुणतुणे बजाकर करते हैं |

गोंधली जब आख्यान बताता है तब आख्यान में रंग भरने के लिए वर्तमान में घट रहें प्रसंगों का भी वर्णन प्रस्तुत किया जाता है | महाराष्ट्र के अनेक घराणों में मातृदेवी के नाम से गोंधल डालने की प्रथा रही है | गोंधल की प्रत्येक विधि में महिलाएँ भी अपना योगदान प्रदान करती हैं | गोंधली जिन आख्यानों में कथा प्रस्तुत करता है उसका श्रवण ध्यानपूर्वक किया जाता है गोंधली जो कुछ गाता व बताता है व अत्यंत ज्ञानवर्धक तथा मनोरंजन पूर्ण होता है |

पौराणिक एवं पारंपरिक आख्यान को नाट्यरूप में प्रस्तुत किया जाता है | कभी-कभी विषय से भटक जाने पर विषयांतर भी किया जाता है | गोंधली के गीतों का मुख्य उद्देश्य आध्यात्म तथा उपदेशपरक नीति-वचन को गा-गाकर जन-समाज तक पहुँचाना है |

नागमंत्रियों के भजन

मराठी लोक-संस्कृति के अंतर्गत एक प्रमुख जाति के रूप में नागमंत्री जाति मानी गई है | मराठवाडा में नागमंत्री जाति का प्रमुख कार्य सर्प का विष उतारना माना जाता है | सर्प-विष उतारने हेतु एक विशिष्ट विधि को अपनाया जाता है जिसके अंतर्गत सर्पदंश होने पर व्यक्ति पर विष के प्रभाव को जानने के लिए उस व्यक्ति विशेष को हरी मिर्च या नीम की पत्तियाँ खाने के लिए दी जाती हैं | विषबाधा हुई है या नहीं इसके द्वारा ज्ञात होता है यदि विषबाधा हुई है तो नागमंत्री द्वारा विशिष्ट चाल पर भजन गाकर विष उतारा जाता है | इन भजनों को 'बाण्या के भजन' की संज्ञा भी प्रदान की जाती है | इन भजनों को गाते समय नागमंत्री द्वारा कुछ तांत्रिक क्रियाएँ भी पूर्ण की जाती हैं | नागमंत्री द्वारा मंत्रों के उच्चारण के साथ-साथ औषधियों तथा वनस्पतियों का भी उपयोग किया जाता है |

बाण्या गाने से पहले खोपरा, नारियल, नींबू, सिंदूर, कर्पूर, शक्कर, दूध, गुलाल, गोमूत्र, नीम की टहनी एवं पाँच धानों की आरास की जाती है उसके ऊपर कलश तथा नागवेली के पत्ते एवं फूल रखें जाते हैं |"[2]

भजन गाना शुरू करने से पहले एक नमन गीत गाया जाता है | इसमें पंद्रह नमन होते हैं जिसमें अंतिम नमन श्रीकृष्ण को किया जाता है | बहुत से भजन मंत्ररूप में होते हैं | लोगों का मानना है कि इस भजन को गाने के समयांतराल में जिस व्यक्ति को सर्पदंश हुआ है उसके शरीर में साँप का संचार होता है तथा विष का असर समाप्त होता है | इस भजन को गाने के लिए नागमंत्री का होना अति आवश्यक है क्योंकि विष उतारने की इस क्रिया के लिए अलग से साधना करनी पड़ती है |

इस प्रकार नागमंत्रियों की आवश्यकता तथा उनकी इस कला को समाज में मराठी घुमंतू समुदाय के द्वारा प्रसारित किया जा रहा है जो अपनी सेवा द्वारा समाज की भलाई करते हैं तथा दान में प्राप्त हुई वस्तुओं से अपनी अजीविका चलाते हैं |

भेदिक- भेदिक को शाहिरी काव्य का भाग भी माना जाता है | मराठी घुमंतू जाति के अंतर्गत इस जाति द्वारा मराठी लोक-जीवन में व्याप्त लोक-संस्कृति तथा लोकरंजन, लोक-प्रबोधन तथा धार्मिक आराधना में अपनी अहम् भूमिका का निर्वाहण किया गया है | भेदिका शाहिरी को लोक प्रकटन संस्था के रूप में जाना जाता है |

ग्राम देवता हेतु आयोजन में तथा उरूस के संदर्भ में कलगीतुरा आयोजित किये जाते हैं जिसमें विभिन्न जातियाँ व स्तर के लोगों द्वारा भेदिक गाये जाते हैं | विभिन्न वाद्य यंत्र जैसे ड़फ और तुणतुणे की सहायता से सामान्य जन को समझ आने योग्य भाषा में आध्यात्मिक बातें बताई जाती हैं | कलगी पक्ष के शाहिर शक्ति के उपासक होते हैं तथा तुरा पक्ष के शाहिर शिव के उपासक होते हैं | उनकी आमने-सामने स्पर्धा होती है जिसके अंतर्गत कूट प्रश्न पूछे जाते हैं | यह प्रशन-उत्तर का कार्यक्रम कभी-कभी दो-चार दिन की अवधि तक भी आयोजित किया जाता है |

भेदिक सादर करते समय सर्वप्रथम गणपति की स्तुति करते हैं | एक प्रधान शाहिर ड़फ लेकर आगे गाता है तथा अन्य साथी अपने वाद्य यंत्रों के साथ-साथ उसका सहयोग करते हैं | आध्यात्मिक कथा के गायन के पश्चात कथात्मक तथा रंजनात्मक आख्यान गाये जाते हैं जिन्हें 'ऐकीव' कहा जाता है | ऐकीव के विशिष्ट्य की महत्ता उसके अंतर्गत पात्रों के सजीव प्रदर्शन, संघर्षपूर्ण नाट्य, करूणापूर्ण विविध भावना, अप्रतिम निवेदन कौशल, अद्‌भुत वातावरण रंजकता, हास्य-विनोद तथा कहीं-कहीं अतिश्योक्तिपूर्ण घटना प्रसंगों द्वारा मानी जाती है |

भेदिक द्वारा भेद् अर्थात रहस्य जो सामान्य जन को ज्ञात न हो उन्हें भेदिक लावणी के प्रयोग द्वारा उजागर किया जाता है जिसके लिए गायन विधि को अपनाया जाता है | रचना गायन के अंत में शाहिर अपना नाम बताता है | यह रचना सामूहिक न होकर प्रमुख भेदिक द्वारा प्रस्तुत की जाती है जिसके कारण इसका समावेश सामूहिक लोकगीतों में नहीं होता | इन गीतों द्वारा मराठी लोक-संस्कृति को गीतों के माध्यम से भेदिक स्थान-स्थान पर प्रचारित-प्रसारित करते हैं |

शाहिरी (लावणी-पोवाडा)-

शाहिरी वाड़मय का निर्माण सन् १६८० से १८०० के बीच माना जाता है | १६८० से १७०७ तक के २७ वर्षों के समयान्तराल में उत्तर भारत से आए हुए सैन्य मराठी सल्तनत में शामियाना डाल कर अस्थायी रूप से रहने लगे थे | इसलिए उत्तर भारतीय सेनाएँ ऐय्याषी और रंगीले बनने लगे थे सैनिकों द्वारा अपने मनोरंजन हेतु आस-पास के गाँवों से नाचने-गाने वाले लोगों के गुट बनाए | इस समय महाराष्ट्र प्रांत में गोंधली, डवरी, कोल्हाटी आदि गाने-बजाने वाले लोगों के समूदाय थे | इन विभिन्न घुमंतू जनजातियों में अनेक कलाकारों का जन्म हुआ जिनके द्वारा 'शाहिरी' कविता का उत्कर्ष हुआ |

वर्तमान समय में जो शाहिरी काव्य हमें उपलब्ध होता है वह पानीपत के युद्ध के बाद का है | उसमें मराठी लोक-संस्कृति का इतिहास तथा मराठों की वीरता एवं स्वाभिमान का बहुत सुंदर वर्णन उपलब्ध होता है जिसके अंतर्गत इतिहास में वर्णित बाजीराव की मृत्यु के पश्चात भले ही पराक्रम मे क्षति दिखाई पड़ती है परंतु तत्पश्चात भी उनका मर्दानी वाणा दिल को संतोष व मन को शांति प्रदान करने में सक्षम सिद्ध हुआ | पोवाडा को लावणी की जोड़ प्राप्त हुई | वीरश्री, विलास, समाज-जीवन, धार्मिक विधि, परंपरा, लोक-जीवन एवं लोक-संस्कृति का सुंदर दर्शन हमें मराठी शाहिरी काव्य द्वारा प्राप्त होता है |

शाहिरी वाड़मय को मराठी वाड़मय में स्वतंत्र दर्जा प्रदान किया गया है | इसके द्वारा मुस्लिम आक्रमण के पश्चात अरबी, फारसी भाषा के सामान्य जनजीवन पर पड़ने वाले प्रभाव को भी दर्शाया गया है |

निष्कर्ष-

ये सभी घुमंतू जनजातियाँ अपने शौक के लिए नहीं घूमती थी बल्कि उनका व्यवसाय व अजीविका का साधन ही भ्रमण पर आश्रित था | तमाम घुमंतू जनजातियों और इनके पारंपरिक व्यवसायों के विषय में जो जानकारी प्राप्त होती है तदानुसार 'बँजारे' पशुओं पर माल ढोने (मुख्यतः नमक और मुल्तानी मिट्टी) का काम किया करते थे, 'गाडिया-लुहार' जगह-जगह जाकर औजार बनाते तथा बेचते थे, 'बावारिये' जानवरों का शिकार और उनके अंगों का व्यापार करते थे, 'नट' नृत्य और करतब दिखाते थे, भोपा स्थानीय देवताओं के आख्यान गाते थे, सिकलीगर हथियारों में धार लगाते थें, 'सिंगीवाल; हिरन के टूटे हुए सींगों से लोगों का इलाज करते थे और इन्हें प्राकृतिक औषधियों का ज्ञाता समझा जाता था | 'कुचबंदा' मिट्टी के खिलौने बनाते थे, 'कलंदर' भालुओं और बंदरों के करतब दिखाते थे, 'ओढ़' नहर बनाने और जमीन को समतल करने का काम करते थे | 'जागा' लोगों की

कई पीढ़ियों का ब्यौरा रखते थे और जजमानी में जगह-जगह जाते थे, 'बहरूपिये' और 'बाजीगर' हाथ की सफाई द्वारा लोगों का मनोरंजन करते थे |

इनके द्वारा चाहे कोई भी व्यवसाय अपनाया गया परंतु इन मराठी घुमंतू जातियों के द्वारा अपनी लोक-संस्कृति तथा लोक-जीवन की महक अन्य प्रांतों तथा क्षेत्रों में उसके वैशिष्ट्य व मोहक रूप को प्रदर्शित करती नज़र आती है जिसके फलस्वरूप मराठी संस्कृति की अनोखी व अनुपम छवि सबको अपनी तरफ आकर्षित करने में समर्थ सिद्ध होती है |

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कांबले संतोष, मराठी लोक-संस्कृति के उपासकों के गीत, स्रवंति, वर्ष-६४, अंक-३, जून- २०१९

विमुक्त घुमंतू नारियों की दशा और दिशा

प्रा. डॉ. संदिप तानाजी कदम
हिंदी विभागाध्यक्ष,
श्री आर.आर.पाटिल महाविद्यालय,
सावलज

सारांश –

भारत की जनगणना में आज तक घुमंतू जमातियों की जनसंख्या का कोई हल नहीं मिला है| लेकीन इ.स.1999 में इदाते अयोग का अहवाल और इ.स.२००८ में टेक्नीकल अडवायझरी अहवाल, इ.स.२०१६ में रेणके आयोग के अहवाल नुसार घुमंतू जमाती की जनसंख्या का प्रमाण मिला है | भारत में घुमंतू जनजाति की जनसंख्या ३० करोड के आसपास है, इसमें नारियों की जनसंख्या १५ करोड है | इसमें से महाराष्ट्र में घुमंतू नारियों की जनसंख्या १ करोड के आसपास है | घुमंतू नारियों का जीवन प्रतिकूल, संघर्षपूर्ण एवं हानिकारक है| घुमंतू समाज में जात पंचायत व्यवस्था, लैंगिक शोषण, पितृसत्ताक कुटुंब व्यवस्था, सभ्यता और आर्थिक पिछडापन, रीतिरिवाज, परम्पराएँ, अंधश्रध्दा इसके कारण घुमंतू नारियों को मुलभूत अधिकार से वंचित रहना पड़ा है | जागतिकीकरण, नागरीकरण, औद्योगीकरण, खाजगीकरण, उदारीकरण के प्रभाव से घुमंतू नारियों के जीवन की समस्याएँ बढती जा रही है | जिसमें बेरोजगारी, भूखमरी, लैंगिक शोषण, भोजन, निवास, शिक्षा आदि समस्याओं का उल्लेख मिलता हैं |

बीज शब्द – घुमंतू का अर्थ, बहिष्कार, आंदोलन, पोटजातियां, गुन्हेगारी, पुराणकथा

२० सदी के उतरार्ध में मानव जीवन के इतिहास में नारीवादी इतिहास लेखन विचार प्रणाली का अभ्युदय हुआ | नारी के स्वयं जीवन रेखा प्रकट करने वाले एवं स्वयं का शोध लेनेवाले साहित्य को नारीवादी साहित्य एवं इतिहास कहते हैं | नारी मानव समाज निर्मिती करनेवाली शक्ती है | मानव जीवन में नारी एक मानव है और उसकी मातृभाषा, प्रतीके, प्रतिमा, नर प्रधान सभ्यता से अलग है | इसलिए नारीवादी ऐतिहासिक लेखन प्रणाली अलग है | पाश्चात्य राष्ट्र में नारीवादी विचारधारा का अभ्युदय इ.स. १९६० के दशक में हुआ | लेकिन भारत में इ.स. १९७५ के बाद प्रसार हुआ | इससे पहले नारीवादी विचारधारा की नीव अस्तित्व में थी लेकीन व्यक्तिगत स्थान पर | नारी को अपने स्वयं के जीवन को संघटित करने का स्वरुप २० सदी के उतरार्ध दिया गया |

भारत में नारीवादी आंदोलन का अभ्युदय १९ सदी में हुआ | इसमें राजाराम मोहन राय, म. फुले, सावित्रीबाई फुले, महर्षि धोडों केशव कर्वे, आगरकर, रमाबाई रानडे, ताराबाई शिंदे, इरावती कर्वे आदि समाज सुधारकों ने नारी जीवन के आंदोलन का प्रयास किया | इसमें सतीप्रथा, बालविवाह, केशवपन, जरठकुमारी विवाह, शिक्षा, नारी भ्रूणहत्या आदि के बारे में बहिष्कार एवं आंदोलन किए | इस प्रबोधन के माध्यम से भारतीय नारी जीवन में बदलाव के संकेत मिले | ईस्ट इंडिया कंपनी ने (ब्रिटिश सरकार) नारी जीवन में सुधार के लिए कायदे पास किये | इसमें सतीप्रथा बंदी (इ.स.१८२९), विधवा पुनर्विवाह कायदा (इ.स.१८५६), नारी कामगार कायदा (इ.स.१८९१), नारी शिक्षा (इ.स.१८८७), शारदा एक्ट (इ.स.१८२९) आदि कायदों के आधार पर भारतीय नारी जीवन में बदलाव का प्रारंभ सुरु हुआ |

आजादी के बाद डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने नारी जीवन में परिवर्तन के लिए इ.स.१९४९ में हिंदू कोड बिल का प्रस्ताव ससंद में रखा था | लेकिन राज्यकर्ताओं ने उसका विरोध किया, फिर भी आजादी के बाद ८० सालों में भारतीय नारी जीवन में क्रांतिकारी बदल हुए | ब्रिटिश सरकार ने इ.स. १८७१ में गुन्हेगारी कायदा (Criminal Tribes Act) पारित किया था | उस गुन्हेगार जमातियों को भारत की आजादी के बाद इ.स. ३१ अगस्त १९५२ में ५ साल ५ दिन के बाद आजादी मिली और उसका

नामकरण घुमंतू जमाती किया गया | आज वर्तमान काल में घुमंतू जनजाति की ४०० से ५०० जमातियां है इसका प्रमाण इ.स.२००८ इदाते आयोग के अहवाल नुसार मिलता है | इस घुमंतू जनजाति की जनसंख्या भारत में ३० करोड है यह जानकारी रेणके आयोग (इ.स.२०१६) के अहवाल नुसार मिली है | इसमें नारियों की आबादी १५ करोड है, यह जनजातियां संचार करती है | इसलिए उनको घुमंतू कहा जाता है | आजादी के बाद भी भारत में घुमंतू नारी जीवन संघर्षपूर्ण रहा है | भोजन, रोजगार, निवास, शिक्षा, उदरनिर्वाह के साधन की समस्या आज भी है |

भारत में घुमंतू समुदाय की जमातियां का इदाते और रेणके आयोग के उपलब्ध अहवाल नुसार ५०० से ६०० तक जमातियों का सर्वेक्षण किया है | इसमें घुमंतू जमातियों की जनसंख्या ३० करोड बताई गई है | इस जनसंख्या में १५ करोड जनसंख्या घुमंतू नारियों की है | घुमंतू नारियों का जीवन प्रतिकूल, संघर्षपूर्ण एंव हानिकारक है | घुमंतू समाज में जात पंचायत व्यवस्था, लैंगिक शोषण, पितृसत्ताक कुटुंब व्यवस्था, सभ्यता और आर्थिक पिछडापन, रीतिरिवाज, परम्पराएँ, अंधश्रध्दा इसके कारण घुमंतू नारियों को मुलभूत अधिकार से वंचित रहना पड़ता है तथा संघर्षमय जीवन जीना पड़ता है |

जागतिकीकरण, नागरीकरण, औद्योगीकरण, खाजगीकरण, उदारीकरण के प्रभाव से घुमंतू नारियों के जीवन की समस्याएँ बढती जा रही है, जैसे की बेरोजगारी, भूखमरी, लैंगिक शोषण, भोजन, निवास, शिक्षा आदि | भारत में घुमंतू जमाती की वडार, कैकाडी, कोल्हाटी, गोसावी, जोशी, पाथरवट, गाडेलोहार, ताबटकर, गिसाडी, डोंबारी, गोंधळी, रायरंद, नाथपंथी, शिकलगार, बंजारा, धनगर, दरवेशी, काजंरभट, नदीवाले आदि ४०० से ६०० पोटजातियां है | भारत के घुमंतू नारियों की अलग - अलग पोटजात के कारण उनके विविध रूपं एंव विशेषताएँ है |

भारत के प्राचीन इतिहास में घुमंतू जातियों को समाज में महत्वपूर्ण स्थान था | द्रविड सभ्यता में नर और नारी को समान स्थान समाज में था यह उल्लेख पाणिनी के 'अष्टध्याय' ग्रन्थ से मिलता है | अश्वघोष लिखित 'बुध्दचरित्र' में घुमंतू जमातियाँ व्यापार और वाणिज्य व्यवसाय करने का उल्लेख मिलता है | इस जनजाति के समूह को सार्थवाह संज्ञा का उल्लेख कौटल्य का ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' में मिलता है | इससे कहा जा सकता है कि, प्राचीन काल में घुमंतू नारी स्वयंपूर्ण थी | लेकिन मौर्य काल के बाद भारत की समाज व्यवस्था में संरचनात्मक बदलाव के कारण जातिव्यवस्था में ताठरता आई, और गुप्त काल में जातिव्यवस्था में कठोरता बढ़ जाने के कारण समाज में अलग-अलग संप्रदाय की उत्पत्ति हुई इसमें इस जनजातियों का उदभव हुआ | घुमंतू नारी जीवन के बारे में प्राचीन काल से ऐतिहासिक उल्लेख मिलते है, अशोक के शिलालेख में घुमंतू नारियों का उल्लेख बौध्द भिक्षुणी के रूप में मिलता है |

मध्ययुगीन काल में परकीय आक्रमण के कारण भारतीय रज्यकर्ताओं से घुमंतू जमातिओं का राजाश्रय नष्ट हुआ | इसके कारण उन्होंने जंगल में आश्रय लेकर अपना वस्तीस्थान वहाँ निर्माण किया | मुगल काल में अकबर और राणा प्रताप के बीच हुए छापामार युद्ध एवं हल्दीघाटी के युद्ध के समय घुमंतू नारियों ने सैन्य अभियान में साथ दिया था | राणा प्रताप सिंह एवं मारवाड की राजकन्या फूलकुंवर के विवाह में अकबर के विरुद्ध घुमंतू नारियों ने राणा को सहकार्य करने का उल्लेख कर्नल जेम्स टॉड के ऐतिहासिक ग्रन्थ 'एन्टी क्वीन ऑफ राज्यस्थान' में मिलता है | गोंडवाना की राणी दुर्गावती और अकबर के बीच युद्ध में घुमंतू नारियों ने सैन्य अभियान में दुर्गावती को सहायता करने का उल्लेख अबुल फजल के अक्षरी में मिलता है | छत्रपति शिवाजी महाराज के काल में घुमंतू नारियों ने दुर्ग निर्माण में पाथरवट का कार्य करने के उल्लेख कवि परमानंद की रचना 'पूर्णालपर्वतग्रहख्यान' में मिलता है | इससे ज्ञात होता है की घुमंतू नारियों का जीवन मध्यकाल में स्वयंपूर्ण था | उनकी विषेशताएँ, शौर्य, पराक्रम, सैन्य अभियान के समय नर के साथ सहयोग देने के उल्लेख प्राप्त होते है |

१८ वी सदी में ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में अपना साम्राज्य विस्तार किया, इसके कारण क्षेत्रीय राज्यकर्ते ब्रिटिश साम्राज्य के अंकित हुए, इसके कारण घुमंतू जनजाति का राजाश्रय नष्ट हुआ | इ.स.१८६३ में फारेस्ट एक्ट के अनुसार जंगल की औषधी वनस्पती, लाख आदि पर ब्रिटिश सरकार ने निर्बंध लगाएं उसके कारण घुमंतू नारी जीवन के उदरनिर्वाह के साधन एवं उपजीविका के साधन पर इस एक्ट ने बंदी ला दी | इसके कारण घुमंतू जमाती के नर एवं नारियों ने उपजीविका एवं उदरनिर्वाह के लिए लूटपाट, डकैती, बंड, उठाव के मार्ग का अवलंब किया | इ.स. १८१९ से १८३१ में रामोशी उठाव में उमाजी नाईक के नेतृत्व में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सहभाग, इ.स. १८५७ के उठाव में तात्या टोपे, हजरत बेगम महल, रानी लक्ष्मीबाई इसके नेतृत्व और रानी गौडन्य के नेतृत्व में जंगल सरकार स्थापन करके घुमंतू नारियों ने विद्रोह किया था | आजादी के स्वतंत्रता आंदोलन के समय इन जनजाति की नारियों ने आंदोलन में भाग लेने का उल्लेख तत्कालीन साहित्य में मिलते हैं | ब्रिटिश सरकार के खिलाफ विरोध करने के कारण इ.स. १८७१ में ब्रिटिश सरकार ने गुन्हेगारी कायदा पास करके घुमंतू जमाती का नामकरण गुन्हेगार जमातियाँ किया | ब्रिटिश काल में घुमंतू नारी अन्याय-अत्याचार, लैंगिक शोषण, कठोर शासन की शिकार हुई | उनके तरफ ब्रिटिश सरकार गुन्हेगार की दृष्टी से देखते थे| इ.स. १५ अगस्त १९४७ को आजादी मिलने पर भारत सरकार ने इ.स. १९५२ में गुन्हेगारी कायदा रद किया और गुन्हेगार जमाती का नामकरण विमुक्त जनजाति किया |

आजादी के बाद भारत सरकार ने कई महत्वपूर्ण योजनाओं का अवलंब किया है | इसके माध्यम से घुमंतू नारी जीवन में बदलाव के संकेत मिले | डॉ के.बी.अत्रोळीकर समिति की नियुक्ती भारत सरकार ने इ.स.१९४९ में की | इस समिति ने घुमंतू नारियों का गुन्हेगारी से पुनर्वसन एवं शिक्षा, निवास, रोजगार आदि की शिफारस की थी | इसमें से इ.स.१९५३ मे गुन्हेगारी कायदा रद्द किया | लेकिन इसका समायोजन अयोग्य पध्दति से किया गया | इ.स. १९६० में महाराष्ट्र की स्थापना हुई | महाराष्ट्र शासन ने एल.बी.थाडे समिति का अध्ययन करके खानदेश एवं पश्चिम महाराष्ट्र में घुमंतू नारियों का पुनर्वसन किया था | इ.स.१९७१ में भारत सरकार ने पी.के.मिश्रा और सी.आर.राज्यलक्ष्मी के नेतृत्व में समिति का गठन किया और घुमंतू नारी जीवन की समस्या के हल का अनुसंधान करने को कहा, लेकिन इस समिति ने घुमंतू नारियों का जीवन पुराणकथा, मिथके, विकार, सहज पर्यावणीय है यह अहवाल भारत सरकार को पेश किया | लेकिन जिससे कुछ हल नहीं निकल सका | घुमंतू नारी जीवन की समस्याओं का हल निकालने के लिए सामाजिक कार्यकर्ते एवं भारत सरकार ने इ.स.१९९७ और इ.स.२००८ में रेणके एवं इदाते आयोग का गठन किया था | इनकी शिफारस जागतिक आरोग्य संघटना के मानांकन नुसार है, रोजगार, निवास, भोजन, शिक्षा, भिजली, रस्ते, आरोग्य आदि | यह अहवाल भारत सरकार को पेश किया है | इसके अनुसार प्रांतों ने इसका अवलंब किया है | इसमें महाराष्ट्र, झारखंड, राज्यस्थान, कर्नाटक, गुजरात आदि का समावेश है| लेकिन आज वर्तमान काल में भी सब नारियों को सन्मान आजादी के बाद भी नहीं मिला है |

२१ वी सदी में जागतिकीकरण, औद्योगीकरण, नागरीकरण, खाजगीकरण, विज्ञान, माहिती तंत्रज्ञान का प्रभाव घुमंतू नारी के जीवन पर देखने को मिलाता है | कलकता में २०२० में रेल्वे स्टेशन पर भिक्षा मांगनेवाली रानू मंडल अपने सुरेख गायन और माहिती तंत्रज्ञान के प्रभाव से स्टार बन गई | आज वर्तमान काल में घुमंतू नारियाँ नागरी औद्योगिक वसाहती में कामगार के रूप में काम करती है, कुछ नारियाँ संचार करके प्लास्टिक बोतल, लोखंड, भंगार का संचयन करके कारखानदार को बेचकर उदरनिर्वाह करती है | इस प्रकार के उदरनिर्वाह में नारियों का लैंगिक शोषण, आरोग्य की समस्याएँ बढती जा रही है| इतना ही नहीं घुमंतू नर प्रधान समाज में नारियों में व्यसनाधीनता बढ़ना आज भी एक समस्या है |

संदर्भ सूची -

१, नाईक शोभा, भारत के संदर्भ में नारीवाद, मुंबई, २००७.

२. दाते हि.रा, विमुक्त जाती/घुमंतू जमाती अध्ययन और अनुसंधान समिती अहवाल, खंड १,

महाराष्ट्र शासन समाज कल्याण विभाग, १९९६.

३. जाधव निर्मला, समान न्याय और लिंगभेद अध्ययन,सावित्रीबाई फुले विश्वविदयालय पूना,२००९

४. कदम धोंडिबा, महाराष्ट्र के घुमंतू समाज संस्कृति एवं साहित्य, प्रतिभा प्रकाशन, पूना, २०१३

५. रामनाथ चव्हाण, घुमंतू नारी के अंतरंग, मनोविकास प्रकाशन, मुंबई, २००३

भारतीय साहित्य में विमुक्त और घुमंतू जनजातियों पर आधारित उपन्यासों का अध्ययन

प्रा. कु. सुषमा बाळाराम खोत
भाऊसाहेब नेने कला, विज्ञान, वाणिज्य महाविद्यालय, पेण-रायगड।
मोबाईल नंबर- ७२७६८९७३६४
ई-मेल - khotsushma882@gmail.com

सारांश

जनजातियाँ हमारे देश का अभिन्न अंग है उनके विकास से ही इस देश का संपूर्ण विकास संभव है। विकास के क्रम में समाज का यह महत्त्वपूर्ण हिस्सा मुख्यधारा से कटा हुआ है। एक ही देश, एक ही राज्य में केवल कुछ मीलों , की दूरी पर रहनेवाली ये जनजातियाँ विकास की दृष्टि से मुख्य समाज से कई सदियाँ पीछे है। इतिहास गवाह है कि, साहित्य के प्रसिद्ध लोक जागरण बुद्ध काल, भक्ति आंदोलन व स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन के सारथी दलित, वंचित आर हाशिए का समाज से थे किन्तु उन्हें बिसरा दिया गया। इसी प्रकार का वंचित समाज है,घूमंतू, खानाबदोश जनजातियाँ, जो योध्दा/ लडाकू प्रवृत्ति के कारण कभी अँग्रेजी राज में अपराधी घोषित हुए, तो कभी अपनी ही सरकार के द्वारा 'हैबिचुअल ऑफेंडर' यानी 'आदतन अपराधी' घोषित हुए।

बीज शब्द : हैबिचुअल ऑफेंडर, दलित, वंचित और हाशिए

प्रास्ताविक :

भारत को आजाद हुए ७५ वर्ष हो चुके हैं, किन्तु कुछ समाज ऐसे हैं जो आज अपनी आजादी की लडाई लड रहे है और उनकी ये लडाई आजादी की लडाई से इस मायने में ज्यादा गंभीर और चुनौतीपूर्ण है कि गैरों से लडना तो आसान है, किंतु अपनों से लडना महाभारत के जैसा है। ये समाज आज बी उसी जाल में फँसे हुए हैं जो अँग्रेजो ने १८७१ में इनके लिए बुना था। ब्रिटिश सरकार ने उस समय एक कानून बनाया था 'क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट', इस कानून के अंतर्गत १९१ आदिवासी और घुमंतू समाजों को जन्मजात अपराधी घोषित कर दिया गया था।

शायर असराल -उल- हक मजाजइन विमुक्त- घुमंतू जनजातियों का दर्द बयाँ करते हैं-

बस्ती से थोडी दूर, चट्टानों के दरमियाँ
ठहरा हुआ हैं, खानाबदोशों का कारवाँ
उनकी कहीं जमीन, न उनका कहीं मकाँ
फिरते हैं यू ही शामों -सहर जैसे आसमाँ

घुमंतू का शाब्दिक अर्थ है, 'घुमक्कड' जो बिना कारण इधर - उधर घूमे अथवा जब कोइ शौक से, अनुभव लेने को, ज्ञान प्राप्ति हेतु यात्राएँ करता है, जिसके लिए खूब पैसा और समय चाहिए। एक शब्द जनजाति विशेषण के साथ चेतना से टकराता है – घुमंतू जनजातियाँ यानी वे विशेष जाति जिनका कोई स्थायी निवास नहीं होता और आजीविका की तलाश में वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमा करते हैं और घूमना इनका शौक नहीं विवशता है।

घुमंतू ऐसे लोग होते हैं जो किसी एक जगह टिककर नहीं रहते बल्कि रोजी - रोटी की तलाश में यहाँ से वहाँ घूमते रहते है। देश के कई हिस्सों में हम घूमंतूओं को अपने जानवरों के साथ आते - जाते देख सकते हैं।

घुमंतू जनजातियाँ :-

आज हमारे देश में घुमंतू, अर्ध- घुमंतू , विमुक्त जनजातियों में लगभग ८४० जातियाँ है, जिनमें भारतीय समाज का सर्वाधिक उपेक्षित और पिछडा वर्ग है - कालबेलिये , नट, भांड, पारधी, बहुरूपिए, सपेरे, मदारी, कलंदर,बहेलिए, भवैया, बंजारे, गुज्जर गाडिया, लुहार, सिकलीगर, बेडिया, नायक, कंजर, पेरना, सिंगीवाल, तेली, कोली, साँसी, ओड, संथाल, बैरागी, भाटू, सनोरिया, हाबुडा, मोघिया, कंजर, आदि।

घुमंतू जनजातियों का सिर्फ जीवन ही नहीं बल्कि उनकी मौत भी आज बेहद किठन हो चुकी है। भंवर मेघवंशी कहते है- "इन जनजातियों में कुछ ऐसी भी हैं जो मृत शरीर को जलाती नहीं बल्कि दफनाती है, लेकिन इन लोगों की कोई भी संप्रदाय अपने कब्रिस्तान में दफनाने की जगह नही देता। ऐसे भी कई मामले हो चुके हैं जब इन लोगों ने किसी खाली जमीन में अपने परिजन की लाश दफनाई लेकिन गाँव के लोगों ने खुदवाकर वह लाश इन्हें सौंप दी।" भीलवाडा में 'कालबेलिया' समुदाय के कई ऐसे परिवार हैं जिन्हें कहीं जगह न मिलने पर अपने परिजनों को अपने घरों के अंदर ही दफन करना पडा है।

कभी सडक किनारे लोहा पीटते, कभी गाँव- कस्बों में जानवर हाँकते, कभी हनुमान -शंकर बनकर पैसे माँगते ,कभी जडी- बूटी बेचते, कभी बंदरो को नचाते और कभी खुद सडक के किनारे नाचते हुए लोग जो अक्सर दिखाई पडते हैं, उनके भी कोई मौलिक- संवैधानिक अधिकार होते होंगे, इस पर कम ही लोगों का ध्यान जाता है समाज में इनकी चर्चा अक्सर सिर्फ तब ही होती है जब अखबार बताते हैं किसी 'बाबरिया गिरोह' 'कंजर गिरोह' या ऐसे किसी अन्य जनजातीय 'गिरोह' ने कोई जघन्य अपराध किया है तब इनकी पूरी जनजाति समाज के निशाने पर होती है और इनके प्रति समाज में मौजूद दुर्भावनाएँ कुछ और मजबूत हो जाती है इन लोगों के संवैधानिक, न्यायिक, सामाजिक या नागरिक अधिकार तो दूर मूलभूत अधिकार और सामान्य अधिकार भी नसीब नहीं होते।

साहित्य -

साहित्य मानवीय भावों के अनुभूति की शाब्दिक अभिव्यक्ति है। मानव के साथ साहित्य आदिम काल से जुडा है। मनुष्य के मन में भावनाएँ समयानुसार जागृत होती है और इन भावनाएँ जब शब्द में लिपिबद्ध होती है,तब साहित्य की निर्मिती होती है। साहित्य का मूल उद्देश्य मानवीय समस्याओं का समाधान खोजना होता है।

साहित्य के विभिन्न अंगों में उपन्यास, अत्यंत लोकप्रिय एवं प्रचलित अंग है। उत्तर आधुनिककाल में अस्मिताओं की टकराहट से नए- नए विमर्श उभर कर आए। दलित, स्त्री, आदिवासी ,किन्नर ,विकलांग आदि विमर्श। विमुकत -घुमंतू जनजातियाँ जो निम्नस्तर कोटि का जीवन व्यतीत कर रहें हैं, स्वतंत्रता के इतने वर्षों के बाद भी इनके उत्थान हेतु अथवा इस समुदायों की चेतना जागृत करने के लिए कोई साहित्यिक विमर्श या आंदोलन अथवा पहले किसी की तरफ से क्यों न हो सकी ? विमर्शों की मूल शब्दावली अस्तिव, अस्मिता सशक्तिकरण, विद्रोह,मान- सम्मान जैसे शब्दों की मूल संकल्पना से ही अभी यें कोंसो दूर है।

हिंदी साहित्य के उपन्यासों में विमुकत और घुमंतू जनजातियाँ-

हिंदी साहित्य में विमुकत समुदाय को आधार बनाकर निम्नलिखित उपन्यास इस शोषित समाज के जीवन का दर्दनाक नग्न यथार्थ हमारे समक्ष रखते है। 'कब तक पुकारूं', 'धरती मेरा घर', 'सागर लहरें और मनुष्य', 'कचनार', 'पिंजरे में पन्ना', 'अल्मा कबूतरी', 'रेत', 'पिछले पन्ने की औरतें', 'पहाडी जीव', 'जंगल के दावेदार', 'शैलूष', 'भूख', 'सांप और सीढी', 'बनवासी', 'जंगल जहां शुरू होता है', बनतरी आदि।

धरती मेरा घर

रांगेय राघव हिंदी के उन प्रतिभाशाली लेखकों में से है जिन्होंने साहित्य के विविध अंगों की समृद्धि के लिए अपनी कुशल लेखनी से अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का सृजन किया। 'धरती मेरा घर' हिन्दी के विशिष्ट और बहुमुखी प्रतिभा वाले प्रसिध्द उपन्यासकार और साहित्यकार रांगेय राघव द्वारा रचित उपन्यास है। 'धरती मेरा घर' नामक उपन्यास स्वयं को महाराणा प्रताप का वशंज मानने वाले गाडिये-लुहारों के जीवन चरित्र पर आधारित है। गाडिया-लोहार जनजाति के ऐसे लोग इस समुदाय के लोग हमेशा यात्रा करते रहते है। यह समुदाय मुल रूप से राजस्थान से होता है। इनकी सजी हुई गाडी से पहचाना जा सकता है। यही गाडी इनका घर भी होती है और एक जगह से दूसरी जगह जाने का जरिया भी। आज के प्रगितिशील युग में गाडिये-लुहार आधुनिकता से कोसों दूर अपने ही सिध्दान्तो, आदर्शों और जीवन- मुल्यों पर चलते हैं। कभी घर बनाकर न रहने वाले, खानाबदोशों की तरह जीवन-यापन करने वाले और समाज से अलग रहने वाले इन गाडिये-लुहारों के जीवन के अनछुए और अनदेखे पहलुओं का जैसा

सजीव वर्णन इस उपन्यास में हुआ है। इस उपनयास में राजस्थान के जनजीवन की कलात्मक झलक प्रस्तुत करता है। राजस्थान की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर लेखक के संवेदनशील मस्तिष्क ने अनेक कलात्मक कथानकों का सृजन किया है।

सागर लहरें और मनुष्य

'उदय शंकर भट्ट' रचित 'सागर लहरें और मनुष्य' का 'बरसोवा' के तटपर बसे कोली कहे जाने मछुआरों का पिछडा समाज है बरसोवा का असली नाम 'बिसावा' है ,यह समुद्र तट के पूर्व-पश्चिम में मछलीमारों की बसती है कुछ पक्के मकान है, लेकिन अधिकतर कच्चे और छप्पर वाले।

प्रत्येक आँचलिक उपन्यास की तरह स्थानीय जिंदगी का स्वरूप बनाने वाले पात्रों का एक हुजूम हैं। यहाँ भी पुरानी जडता और स्थितीशीलता को धारण करनेवाले 'विठ्ठल' और 'वंशी' आधुनिक शहरीपन की ओर आकर्षित उनकी बेटी 'रत्ना' कृत्रिम आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करना मिथ्याचारी और गैर ईमानदार 'माणिक', उसके विरूद्ध अनपढ, गॅवार लेकिन इमानदार और प्रामाणिक यशवंत।

वस्तुत: इस उपन्यास में स्थान और काल के संघर्ष से आँचलिकता वहीं प्रतिफलित होती है जहां रत्ना अपनी भौतिक महत्वाकांक्षा की शिकार होकर जीवन की जटिल स्थितियों का सामना करने को फेंक दी जाती है। शिक्षा से उपलब्ध उसकी थोडी बहुत चेतना माणिक से विवाह के फलस्वरूप उत्पन्न हुए संघर्ष के दौरान उसके व्यक्तित्व का यह विकास करती है। उसके व्यक्तित्व का यह विकास आर्थिक, आत्मनिर्भरता के लिए संघर्ष और रूढियों से उसकी सवाधीनता बरसोवा से संबंध उसके अतीत की जडता को तोडती है। उसका पूराना प्रेमी और मंगेतर 'यशवंत' सामाजिक स्तर पर अपना व्यक्तित्व विकसित करता है, शिक्षा और संवेदनशीलता के द्वारा। उपन्यास का वस्तु संगठन और सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सांस्कृतिक प्रसंग बरसोवा और मुंबई की टकराहटों में रुप ग्रहण करते हैं।

विवाह के बाद माणिक द्वारा किए अपने शोषण को सहती हुइ रत्ना विद्रोह और समझौते के बीच काफी समय जीती है। माणिक से उसका अलगाव और बरसोवा में मछलीमार सहकारी समिति की स्थापना ये दो महत्वपूर्ण सामाजिक प्रसंग है, जिनके भीतर लेखक मानवीय स्थितियों और संभावनाओं को ढूँढता (एक्सप्लोर) है। इस प्रकार यशवंत और रत्ना दोनों अपने- अपने ढंगसे इतिहास की चेतना धारण करते हैं और उसे बरसोवा के भूगोल से जोडते हैं- "मैं बरसोवा नहीं जाउँगी अपने पैरों पर खडी होउँगी चाहे कितना भी दु:ख मुझे झेलना पडे।... मैं संघर्ष करूंगी मैं देखना चाहती हूँ, मैं क्या कर सकती हूँ?"

इसी प्रकार यशवंत के नेतृत्व में वकील पटवर्धन की प्रतिक्रिया महत्त्वपूर्ण है पटवर्धन ने देखा कोली जाति के लोग अब जवाब भी देने लगे है।

अल्मा कबूतरी

मैत्रेयी पुष्पा महिला उपन्यासकारों में एक सशक्त हस्ताक्षर है। उन्होंने 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में 'कबूतरा' जनजाति को दृष्टि में रखकर ३९० पुष्ठों में यह उपन्यास लिखा। आदिवासी केंद्रित उपन्यासों में यह उपन्यास विशेष उल्लेखनीय है। यह उपन्यास १८ अध्यायों में निमग्न है। उपन्यास का परिप्रेक्ष्य बुदेंलखंड क्षेत्र के कबूतरा नामक आदिवासी समाज है। उपन्यास में दो समाज वर्णित है। एक आदिवासी कबुतरा समाज तो दुसरा 'सभ्य समाज' जिसे आदिवासी कबूतरा 'कज्जा' कहते है। उपन्यास का प्रारंभ 'मंसाराम' माते और आदिवासी 'कदमबाई' के जीवन कथा से होता है। मंसाराम के पिता ५० बीघे जमीन के मालिक है। जिनमें से दो बीघे जमीन पर कबूतराओं ने डेरा डाल रखा है। पिता के असामायिक निधन के कारण मंसा पर पारिवारिक दायित्व आ जाता है। मंसाराम कदमबाई के सौंदर्य पर मोहित हो जाता है, परंतु दोनों विवाहित है कदमबाई के पति की हत्या हो जाने के बाद मंसाराम और कदमबाई एक दूसरे के प्रेमी बन जाते है। उन दोनों में देहिक संबंध स्थापित हो जाता है। इन सबसे मंसाराम का पुत्र 'जोहरा' क्रोधित होता है, और एक दिन पिता की गर्दन पकड लेता है। अत: मंसाराम कज्जा परिवार को छोडकर कबूतरा बस्ती में साझीदारी में शराब की भट्टी शुरू करता है।

मंसाराम और कदमबाई के पुत्र 'राणा' को पढाई के लिए 'रामसिंह' के पास भेजा जाता है। वह रामसिंह की युवा पुत्री 'आत्मा' से प्रेम करने लगता है, परंतु डाकू बेटासिंह अल्मा को भगाकर ले जाता है। वह अपने पिता की रक्षा के लिए डाकू के जूल्मों को सहती है। इस कबूतरा आदिवासियों पर पुलिस और डाकुओं के भीतर अत्याचार होते है। अल्मा अपनी बिरादरी को बचाने के लिए राजनीती में प्रवेश करती है और सफल भी होती है। उसके संबंध मे लेखिका कहती है- "अल्मा माने आत्मा, बप्पा ने सोच-समझकर नाम रखा था, कहते थे आत्मा नहीं मरती अपने नाम को सार्थकता प्रदान करते हुए अल्मा आजीवन संघर्ष करती है।

उपन्यास में आदिवासी कबूतरा समाज के परिवेश नारी की स्थिति और गति राजनीतिक परिवेश के साथ धार्मिक और सांस्कृतिक परिवेश का चित्रण हुआ है। कबूतरा आदिवासी चोरी करना और शराब बनाकर बेचना व्यवसाय अपनाते है। इसका एक कारण उनकी आर्थिक दुर्बलता है। उपन्यास में इस आदिवासी समाज के आर्थिक जीवन को व्यक्त किया गया है।

'शैलूष'

डॉ. शिवप्रसाद सिंह का 'शैलूष' पहला पहाडी कबिलाअी उपन्यास रेवतीपुरा की कहानी है। 'नटों के जीवन चित्रण की महत्वकांक्षा से लिखा गया बहुचर्चित उपन्यास है। 'जुडावन नट और ब्राम्हण सावित्री की यह प्रेम कहानी है। विजातीय विवाह, सरकार की भूमिदान नीति, नटों की कबिलाई संस्कृति, जमीन पर अधिकार प्राप्ति के लिए संघर्ष करने वाले नट, पुलिस की तानाशाही, नटनी का आत्मरक्षा हेतु चलाना सिखना, चमार-नटों में संघर्ष होता तब आग में घी डालने का काम जमीनदारों द्वारा होना, अनशन करनेवालो, जुलूस निकालनेवालों पर पेट्रोल फेकनवाले जमींदार आदि का यथार्थ अंकन करके जनजीवन की झाँकी प्रस्तुत की है। जमीन, जंगल पर प्यार करनेवाला लालू नट कहता है 'इससे प्यार करो', अपनी माता की तरह दुलारों, सन्मान करो', यह कथन नटों की भाववृत्ति का प्रमाण है।

निष्कर्ष

जिस समाज में जाति आधारीत गालियाँ बनी हो और धडल्ले से बोली भी जाती हों, घुमंतू जनजातियों के लिए अपराधिक शब्दावलियों का प्रयोग होता है तो अत्यंत अफसोस के साथ कहना पडेगा कि विकृत तो हमारी मानसिकता है। हाँ, हर समाज की अपनी कमजोरियां होती हैं, कमियां होती है ऐसे आचार व्यवहार होते हैं जिसे उसे समाज का दूसरा व्यक्ति स्वीकार नहीं करता लेकिन इस चुनौती को अगर समर्थ संपन्न समाज पढा-लिखा समाज नहीं समझेगा और उनके प्रति अपनी संवेदनाओं को नहीं जागृत करेगा तो यह समाज का हिस्सा हमेशा ही कमजोर रहेगा और हमे इस बात को ध्यान रखना चाहिए कि, शरीर का एक हिस्सा अगर कमजोर होता है तो उसका भुगतान कहीं ना कहीं पूरे शरीर को करना पडता है। क्यों ना समाज के इस हिस्से को समर्थ शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया जाए, यदि इन्हें शिक्षा, रोजगार, सम्मान दिया जाए तो ये क्योंकर अपराध की दुनिया मे आना चाहेंगे? इसके लिए तथाकथित सभ्य, बुद्धिजीवी समाज को संवेदनशील बनना होगा, बनाना होगा और साहित्य इसका सबसे महत्त्वपूर्ण साधन है।

संदर्भ सूची :-

१. सागर लहरें और मनुष्य- उदयशंकर भट्ट
२. अल्मा कबूतरी- मैत्रेयी पुष्पा
३. शैलूष – डॉ. शिवप्रसाद सिंह
४. हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में आदिवासी जनजीवन – डॉ. भरत सगरे पृ. क्रमांक- ५६
५. स्वातंत्र्योतर हिंदी उपन्यासों में आदिवासी चेतना – डॉ. सविता चौधरी

Literature of Deprived Classes

Dr. Kalyan Shidram Kokane
Associate Professor of English
Karmveer Bhausaheb Hiray Arts, Science & Commerce College Nimgaon,
Tal.: Malegaon, Dist. Nashik, MS, 423212

Abstract:

The Dalit literature and Ambedkar cannot be separated from each other. The question What is Dalit literature? is unanswerable even today. However Dalit literature shall be incomplete without the thought of Dr Babasaheb Ambedkar. The works of Dr. Babasaheb Ambedkar is concerned with deprived classes, women empowerment, journalists, mooknayak for the lower caste people. The writer of the research paper tried to focuse on the works of Deprived classes.

Keywords: dalit, deprived, literature, aesthetics, tribal etc.

When Dalit literature was started? and Who started the literature?

The Western philosopher and researcher Sarah Beth Hunt has worked on ‘Hindi Dalit literature' in which she admired Dalit literature and she stated that the dalit literature began from 1920.

"In fact Dalit literature emerged in North India in the 1920 in the form of a small inexpensive Pamphlet printed by privately-owned dalit press and distributed exclusively to dalit audience at community festival and political meetings"

Inspiration for the deprived class literature:

Voltaire, the French philosopher is the first inspiration for the deprived class literature. He was against the Catholic Church and the blind beliefs in the Christianity. Martin Luther King opposed the clegries of Church. Dr Babasaheb Ambedkar believes that Voltaire and Martin Luther King are soles of inspiration for the deprived classes writing.

The Marathi writer Sharankumar Limbale wrote the very pioneer book entitled "Towards an Aesthetics of Dalit Literature" which was published by Orient Longman in 2004 is the first book commenting upon the the aesthetics of deprived classes' writing. He says "Dalit literature is the literature which speaks about the depressed" Hindi writer Omprakash Valmiki wrote the book entitled "Dalit Sahitya ka SaundaryaShastra" The earlier writer Rumika Gupta has also contributed to deprived classes' writing. The English writer Mulk Raj Anand has composed the English novel "Untouchable" in which he focused on the questions of untouchability in India.

The Western writer Eleanor Zelliot wrote "An Anthology of Dalit Literature" in which he has raised voice against the social illness of India and Indian society and rightly says "An intellectual is one who speaks against the social ill of his own society"

Eleanor Zelliot says that "Dalit literature is the literature of oppressed". She further says that 'dalits' are 'grounded down' and 'depressed by society'. Dalit literature according to her is ' a historical phenomena' Eleanor Zelliot focused on three things; 1) Mahar Movement in the

Bombay Presidency 2) The depression of the Dalits and 3) The works and contribution of Dr. Babasaheb Ambedkar.

Charges against Dalit literature:

Deprived classes have no merits, these people are sectarian uses offensive language, deseparated tongue. Objective of Dalit literature is not the objective of breathing the society. Difference between Dalit Aesthetics and mainstream literature aesthetics:

The mainstream literature mainly focuses on aesthetics, beauty, queen, war, "beauty for beauties sake" however, the dalit literature speaks about the social values like equality, fraternity, Brotherhood, 'literature for social change' 'dalit aesthetics' 'social realism' and the characters of the dalit literature are derived from society. Dalit literature is the literature written by dalits, is the literature which focuses on dalit consciousness.

Omprakash Valmiki has contemplated on Dalit literature. Who can compose the dalit literature? Whether the dalits only? The same question is asked about the Islamic literature, colonial literature, feminist literature, third world literature, if a non dalit has non-disturbed mind, biased mind, if they have not any agony, question arises how can they write Dalit literature? This question is not only exclusive to the dalit literature. The English novelist Arundhati Roy is a non dalit writer. She has composed the book on Dr. Babasaheb Ambedkar.

The writers like Sharankumar Limbale, Bandhu Madhav, Shankarrao Kharat, Annabhau Sathe, composed and contributed to the deprived classes' writing. The post 1956 period is known as after Ambedkarite period, in this period the proper dalit books have appeared. The first dalit conference has been held in the Auditorium Hall of Bengal High School on 2nd March 1958 a resolution was also passed addressing the importance of dalit writings and cultural importance of Dalits. Sharankumar Limbale states that erotic things have been written in the Dalit literature. However, literary tradition of Dalit literature was the the tradition of Buddha, Kabir, and Ambedkar. Dalit literature is not the literature of any one religion but it is the literature of all the religions who have been oppressed.

Sharankumar Limbale classified Dalit literature into two. First Ambedkarite literature and second contemporary literature. and he broadly defined Dalit as: dalit is broken, deprived, untouchable, Nomadic, worker, sufferers, economically poor, non Buddhist, criminals, labourers, and technologically poor. To him dalit means who have been oppressed and who have been pressed. Another Marathi writer Lakshman Gaikwad rightly answers the questions, Who is dalit? and What is Dalit literature? While answering to this questions in an interview he said that it is the literature based on Dr. Babasaheb Ambedkar, it is not the literature of inferior quality, the dalit literature is the literature everywhere in Marathi, Kannada, Malayalam, Tamil, and Hindi. The inspiration of Dalit literature is Dr. Babasaheb Ambedkar, Mahatma Phule. It is a Revolutionary literature. It is the literature promoting the humanism. Dalit literature revolves around the mankind. The only objective of the Literature is to write on Humanism.

Laxman Gaikwad was the representative of denotified tribes. Dalit is the movement according to him "it is writing as well as writing fighting"

Novels, autobiographies, poems, feminist writing etc. are written by dalits and denotified writers. The tribals are more than Delhis. These tribals are the criminals of India's freedom. They are more than the dalits. They have no place in the society. Thousands of the notified people are killed by society by considering them as criminals. They have no place even after the death for burial. They are not the citizen of any villages. The Constitution even has not given any place to them. Another English novelist Mahasweta Devi is representative of denotified tribes. The denotified people are treated even more worse than the animals. They are more sleve than the slaved. 15 crore denotified people in India are even not having place in census.

Dalit literature is the literature of agony. M.V. Chitnis has written 'Yugantar'. He is neither Brahman nor dalit. He is known as CKP Brahmin Malika Amar Sheikh was the writer of agony. She should also be included in the dalit literature. These writers are are the heroes of culture. They have written on values new value systems. Baburao Bagul, Namdev Dhasal are the writers of Delhi. He considered Sky as father and earth as mother. His poems moves around man. His writings are human-centered. The subject matter of these writers are not negative. Mukta Salve, Narayan Survey, Baburao Bagul, Namdev Dhasal, Dhale, Pawar, Kishor Kale, etc. Marathi writers have expressed dalit agony in their literary work. Dalit literature fights for the human values. However, it should not be treated as a weapon against the upper caste. The writers like Amol Ghagsave has written on a New dalit concept dalits in dalits. Castism in Castism. Dr. Gangadhar Meshram in his gazal and Madhavi Kharat in her writing on male sex workes

The poets like Arjun Meshram has written poems on nature poetry. The writer Bheem Gaikwad has translated Annabhau Sathe's novel 'Fakira'. Writers like Suresh Patole, Sampath Gaikwad have strong opposition of upper caste. However, the poets like Narayan Surve has no caste skill, the great poet expresses Marxism and nature attribution. Shukracharya Gaikwad's work on Mai Ambedkar, Vilas Mane, Datta Bhagat, Rustam Achalkhamb, Madhu Kamble the editor of Loksatta, Milind Kasbe Raosaheb Kasbe are some emerging writers on the agony of the dalits.

Annabhau Sathe has written 33 novel like Fakira, which has been translated into English by Dr Baliram Gaikwad

Works Cited:

Limbale, Sharankumar. Towards an Aesthetic of Dalit Literature: History, Controversies, and Considerations. Translated by Alok Mukerjee. New Delhi: Orient Longman, 2004

Bagul, Baburao. Dalit Sahitya ajache Kranti Vidynana. Nagpur: Buddhist Publishing House, 1978.

Dangle, Arjun. “Dalit Literature, Past, Present, and Future.” In Poisoned Bread: Translations from Modern Marathi Dalit Literature, edited by Arjun Dangle, 234–66. Hyderabad: Orient Longman, 1992.

Rege, Sharmila. Dalit Studies as Pedagogical Practice: Claiming More Than Just a “Little Place” in the Academia. Chennai: Madras Institute of Development Studies, 2006.

Gupta, Charu. “Dalit Virangana and Reinvention of 1875.” Economic and Political Weekly 42, no. 19 (2007): 1739–45.

महाराष्ट्रातील भटक्या विमुक्त पाथरवट जमातीचे सामाजिक जीवन

उज्वला समाधान डांगे
संशोधक विद्यार्थी
हनुमान नगर, जि.प. शाळे मागे, लहान उमरी,
अकोला-४४४००५
फोन नं:- ९३७०९७८६८०
ई-मेल:- ujwaladange83@gmail.com

सारांश:-

पाथरवटांच्या घामातून नि कष्टातून बनलेल्या वरवंट्यानेउखळाने वा जात्याने अनादी काळापासून ,खलबत्त्याने , आजच्या आधुनिक काळापर्यंत जगातील समस्त मानवजातीला विविध प्रकारे घास भरवून विविधांगीपोषण केले आहेत्याच . ज्यांना पुढे दुधातुपाचे !लाखो लोक ज्यासमोर नतमस्तक होतात असे देवही घडवले ,पाथरवटांच्या हातांनी कित्येक देवालयातील पाथरवटांच्या श्रमाने बनविलेले दगड ज्यांच्या समाध्यांवर सजून त्यांना मोक्षही मिळाला असेल !अभिषेकही होत राहिले परंत !कदाचितु त्याच पाथरवटांच्या अवतीभोवती मात्रदगडामध्ये कोरीव कामे करून .आजही दगड आणि धोंडेच आहेत , कलेचे उत्कृष्ट सादरीकरण करणाऱ्या या समाजाला कला टिकवण्यासाठी कोणताही पाठिंबा मिळत नसल्याने ही कला केवळ पाच ते दहा टक्के व्य .जोपासण्याचे आव्हान समाजापुढे उभे टाकले आहेक्ति मार्फतच ही कला आज जपली जात आहे.

पारिभाषिक संज्ञा - पाथरवट, जमात, समाज, भटके .

एकविसावे शतक हे केवळ भारताच्याच नव्हे तर जगाच्या दृष्टीने महत्त्वाचे व प्रगतीचे शतक ठरले आहेया शतकात . तंत्रज्ञान क्षेत्रात काम ,विज्ञान .अनेक शोध लागले .विज्ञानाने एवढी क्रांती केली की जे अशक्य वाटत होते ते सहज शक्य झाले करणाऱ्या लोकांना तर सोन्याचे दिवसआले हा प्रगतीचा डांगोरा सर्वत्र पिटला जात असतानाच आपल्या श्रमावरकलेवर ज्यांची , यांचे बोलके उदाहरण .भिकेकंगाल झाला ,उपजीविका होती असा भटका विमुक्त समाज मात्र या विज्ञानयुगात मागासला गेला खल ,वरवंटा ,पाटा ,उखळ ,निर्जीव दगडापासून जाते .म्हणजे पाथरवट समाज होयबत्ता आदी वस्तू घडवूनन मानवाचे जीवन सजीव करून आपला चरितार्थ कसाबसा चालविणारा समाज म्हणजे पाथ्रूड वा पाथरवट म्हणजेच वडार समाज ,पाटा . ,सारवलेली जमीन ,मोठे अंगण .वरवंट्यावर वाटलेल्या मसाल्याची भाजी मिळेल वाचल्यावर अनेकांची पावले तिकडे वळतात पाट्यावर वाटलेला मसालादगडापासून घडवलेल्या .चुलीवरची भाकरी असं वर्णन थेट आपल्याला गावची आठवण करून देत , .आणि संपन्नही केली आहे .या वस्तूंनी भारतीयांची संस्कृती अनेक अर्थांनी घडवली आहे

पाथरवट समाज हा तसा देशभर पसरला असला तरी तो महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, तामिळनाडू, उडीसा, राजस्थान, गुजरात, बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक व तसेच दिल्ली या राज्यात मोठ्या प्रमाणावर आढळून येतो. प्रत्येक प्रदेशातील भाषाभेदामुळे या समाजाला वेगवेगळी नावे मिळालेली दिसतात उदा. महाराष्ट्रात वडार किंवा पाथरवट म्हणत असले तर कर्नाटका त्यांना वड्डर म्हणून ओळखले जाते. आंध्रात या समाजाला वड्डोल्लु वा ओडुर असे म्हटले जाते. तर तामिळनाडूत ओट्टन नायकन वा ओड्डर म्हणून ओळखले जाते. गुजरात व उत्तरेतील इतर राज्यात त्यांना ओड अथवा ओडिया म्हणून ओळखले जाते. वडार या समाजाची मूळ स्थान ओडिसा आहे असे विविध संशोधकांनी सिद्ध केले.

पुरातन काळी लेण्या, शिल्प, दगडी मंदिरे, देवांच्या मूर्ती घडविणारा शिवाजी महाराजांच्या काळात अनेक गडकिल्ले बांधणारा पाथरवट समाजाचा मोठा इतिहास आहे. बारा बलुतेदारांपैकी एक असा हा शिल्पकार समाज आहे. त्या वेळी मर्यादित साधनांच्या मदतीने असे शिक्ल्पवैभव निर्माण केले ते या पाथरवट समाजाच्या पाषाण कौशल्याने. वडार समाज हा मूळचा पाथरवट समाज आहे. यांच्या कामाचे स्वरूप एक काम संपले की दुसरीकडे विस्थापित होत होता. भटकेपण या समाजाला चिकटले ते या समाजाची अपरिहार्यता म्हणून. पाषाण कार्यात अनेक प्रकार आल्याने त्या कामात प्रावीण्य मिळवणाऱ्याच्या

पोटजाती बनु लागल्या. मुळात या व्यवसायात जितके कौशल्य हवे असते तितकेच ते काम कष्टाचेही. मोठमोठे पाषाण खंड तोडून चिरे घडवणे ते दगडी वस्तू बनवण्यासाठी शारीरिक शक्तीची तेवढीच आवश्यकता असते. या समाजाच्या स्त्रिया पुरुषा इतकीच कष्टाची कामे करीत असतात.

पाथरवट हा भूतलावरचा प्रथम कारागीर मानला जातो. रामायण महाभारत काळात सुद्धा पाथरवट आणि त्यांच्या शिल्पकलेचे उल्लेख आढळतात. मध्य युगात सातवाहन, मौर्य, गुप्त, वाकाटक, चालूक्य, राष्ट्रकूट, यादव या हिंदु शासकांचा काळ स्थापत्य शिल्पकलेचा सुवर्णकाळ मानला जातो. घ्रूष्णेश्वर, त्र्यंबकेश्वर इत्यादी सारखी बारा ज्योतिर्लिंग मंदिरे, तुळजापूर, कोल्हापूर येथील मंदिरे, मदुराईचे मिनाक्षी मंदिर, कोणार्क सूर्य मंदिर, यासारख्या शक्तिपीठांची मंदिरे असो की सांची, सारनाथ सारखे स्तूप असो आजही पाथरवटांच्या कलासंपन्नतेची साक्ष देत हजारो वर्षांपासून उभी आहेत. पाथरवट समाजाने अनेक दुर्ग, राजमहल सुद्धा बांधले. त्याचबरोबर परकीय आक्रमकांशी लढण्यात अनेक राजांना मोलाची साथ दिली. राजपुतानातून महाराष्ट्रात आलेला पाथरवट समाज महाराणा प्रतापसिंह यांच्या घराण्याशी आजही आपले नाते अभिमानाने सांगतो.

सुमारे 350 वर्षांपूर्वी छत्रपती शिवाजी महाराजांनी स्थापन केलेल्या हिंदवी स्वराज्याचे खंबीर आधार म्हणजे गड-किल्ले. हे गड किल्ले बांधण्यात सुद्धा पाथरवटांची महत्त्वाची भूमिका राहिली आहे. केवळ गडकोटच नाहीत तर जलदुर्ग,भुईकोट किल्ले, गिरिदुर्ग इत्यादी उभारण्यात महाराष्ट्रातील पाथरवट समाजाचे मोठे योगदान आहे. मराठ्यांची राजधानी रायगडावरील हिरोजी इंदुरकर यांच्या नावाचा पायरीचा दगड आजही त्याची साक्ष देतो.

इंग्रजांच्या राजवटीत टोलेजंग इमारती,महामार्गांवरील बोगदे, रेल्वे स्थानके,कोर्ट कचऱ्या, इमारती, इंग्रजांचे अतिथीगृह, प्रार्थना स्थळे इत्यादी उभारण्यासाठी या समाजाचे सहकार्य इंग्रजांनी घेतले. त्यांची आठवण म्हणुन कसारा घाटात आजही नऊ क्रमांकाच्या बोगद्द्यावर स्वर्गीय नानाजी गोपाल पाथरवट यांचे नाव कोरलेले दिसते.

दुर्दैवाने इंग्रज आल्यानंतर राजेशाही संपुष्टात आली व काही अंशी स्थिरावलेल्या या समाजाची भटकंती पुन्हा एकदा सुरू झाली.1857 च्या उठावा नंतर पाथरवट समाजाचा या उठावात सहभाग असल्याचा ठपका ठेवत इतर भटक्या विमुक्त जाती जमाती सोबतच सन 1871 चा गुन्हेगारी जातीजमाती कायदा इंग्रजांनी पाथरवटांना लागू केला. परिणामी हा समाज आर्थिक विपन्नावस्थेत गेला.अनेक प्रश्नांना त्यांना सामोरे जावे लागले.भटकंती करताना अनेक ठिकाणी आपली शिल्पे विकायला जाताना आधी पोलीस पाटलाला वर्दी त्यांना द्यावी लागे.त्यामुळे एक प्रकारे सामाजिक अपमान त्यांना सहन करावा लागत असे.

पाथरवट यांच्या बोलीभाषेची स्वतंत्र लिपी नाहीज्या ज्या .विदर्भात पाथरवट प्रामुख्याने मराठी भाषा बोलतात . भागात ते स्थिरावले तेथील बोली त्यांनी आपली भाषा म्हणून निवडलीत्यांच्या भाषेमध्ये कानडी भाषेचाही समावेश . वडिलांना बा किंवा बाबा व ,येतो की ,नाही की ,हो की .उदा .हा शब्द वापरतात " की" भाषेमध्ये मुख्यता .असल्याचे आढळते .आईला माय किंवा मॉ असा शब्द वापरतात वयोवृद्ध माणसे सदरा, धोतर, टोपी, बांडीस तर स्त्रिया नववारी लुगडे, चोळी घालतात. काळानुसार राहणीमानात आता बदल दिसतात. जिन्स पॅन्ट, शर्ट, टी-शर्ट, पाचवारी साड्या, ब्लाऊज इत्यादी चा वापर पेहरावात दिसून येतो. पाथरवट समाजांच्या लोकांच्या दररोजच्या आहारात शाकाहारी व मांसाहारी दोन्ही प्रकारच्या अन्नाचा समावेश असतो. पाथरवट समाजातील लोक संक्रांत, होळी, गुढीपाडवा, नागपंचमी, दिवाळी इत्यादी सण मोठ्या उत्साहात साजरे करतात. सण उत्सवाला गोड पदार्थ बनवितात. मुलाच्या जन्मानंतर प्रथेप्रमाणे बारस केल्या जाते. बारश्या नंतर मुंज करताना देवाला नवस कबूल केल्या जातो. मुंज करताना मामाच्या मांडीवर मुलाला बसवून न्हाव्या कडून मुलाची मुंज केली जाते. बकरा बळी, कोंबडा बळी दिला जातो. ही प्रथा प्रामुख्याने विदर्भात आहे. विदर्भात श्राद्ध घालताना पितरांना मास(मटण) फेकण्याची पद्धत होती. परंतु आता पूर्वजांना मांसाहार दाखविण्याच्या पद्धतीचे रूपांतर सात्विक आहारात होता ना दिसून येत आहे. प्राचीन प्रथा आता नगण्य आहेत.

पाथरवट समाजात विवाह गोत्र पाहून वडीलधारी मंडळी जुळवितात. लग्न जुळवतांना पाथरवट समाजात गोत्राला फार महत्व आहे. विवाह एकाच गोत्रात किंवा समूहात होत नाहीत. मात्र, मामाच्या मुलीशी लग्न लावून दिले जाते. गोत्र जुळल्यानंतर

जातपंचायतीच्या पंचमंडळींना बोलावून लग्न जमल्या चे सांगितले जाते. पंचमंडळी मुलाकडून लग्न खर्च म्हणून हुंडा घेतात. हुंड्याला 'ओली' असे म्हणतात. लग्न ठरल्यानंतर सुपारी फोडून 'गट्टी फट्टेट' म्हणजेच साखरपुड्याचा कार्यक्रम होतो. या कार्यक्रमानंतर कोणत्याही कारणास्तव लग्न मोडता येत नाही. लग्नाच्या अगोदर वधू-वरास 'गंधाम' (चंदनाचा टिळा लावला जातो). पाथरवट समाजात लग्न लावण्यासाठी भडजी किंवा ब्राह्मण बोलावत नाही. तर गोत्रातील विशिष्ट व्यक्तीस बोलावून लग्न लावण्याचा मान दिला जात असे. अलीकडच्या काळात ब्राह्मणाला लग्न लावण्याकरिता बोलावीले जाते व विधीपूर्वक लग्न लावले जाते.

पाथरवट समाजातील प्रतिष्ठित व अनुभवी मंडळी पंच या नात्याने जातीच्या व्यवहारासंबंधी समाजातील सुव्यवस्था व नैतिकता सांभाळण्याचे काम करीत असत. जातीमधील व व्यक्तीमधील होणारे वाद/भांडणे त्रयस्थ पंचा मार्फत मिटवले जात असत. जात पंचायतीतील पंचमंडळ इस भैड, भोईड असे म्हणतात. पंचमंडळी वंशपरंपरेने किंवा निवड पद्धतीने निवडले असतात. समाजातील व्यक्तीने पोलीस स्टेशन किंवा कोर्टकचेरी न करता आपली समस्या जाती पंचायतीसमोर मांडली पाहिजे असा पाथरवट समाजात दंडक आहे. जात पंचायत बसविण्याचे कारणे पुढील प्रमाणे असतात. जात बांधवांना विश्वासात न घेता कोणतेही निर्णय घेणे, वरिष्ठांचा मान न राखणे, समाजातील निती-नियमाचे पालन न करणे, विवाहबाह्य संबंध ठेवणे, आंतरजातीय विवाह करणे, सगोत्र विवाह होणे, कौटुंबिक वाद इत्यादी. महाराष्ट्रात सध्या पाच गटात पाथरवट समाज विखुरलेला आढळतो. साधारणपणे सुरवातीला तीन-चार लगतचे जिल्ह्यात आणि नंतर कामधंदा निमित्ताने भटकंती असा तो विखुरलेला गेला असावा. जेथे काम मिळेल तेथे त्या त्या राजाच्या पदरी मंदिरे, राजवाडे, धार्मिक तीर्थ-क्षेत्री त्यांच्या वस्त्या स्थिरावल्या. तसे त्यांच्यात अनेक कूळ निर्माण झाली. पाथरवट जातींमध्ये नाईक हे प्रमुख कुळ आहे. ह्या कुळातील काही बांधव इंगळे व बावणे अस देखील कुळ लावतात. नाईक या कुळाकडे गटाचे नेतृत्व असल्याने पाच पंच प्रमुखामध्ये त्यांना प्रमुख मानाचं स्थान असे. ह्या कुळाला जातीत खूप सन्मान असे. जातीचे भांडणतंटे, वाद-विवाद, तक्रारी यावर इतर पंचांच्या मदतीने, साक्ष निती आधारित न्यायनिवाडा करून दंड ठरविला जाई. तसेच लग्न, मोहतीर (दुसरा विवाह) काडीमोड इत्यादी प्रकरणात पण निवाडा करीत. पाथरवट जातीमध्ये चौधरी कुळा कडे गटाचे सह-नेतृत्व असे. ह्या कुळातील काही बांधव गुरुखेले व गुरवे अस देखील कुळ लावतात. पाच पंच मध्ये सहप्रमुख म्हणून मानाचे स्थान असे. पंच मंडळांच्या सहाय्याने समाजात न्यायनिवाड्यात सहभागी असत. नाईक हजर नसतांना पंच प्रमुखांचा मान मिळे. तसेच आटके, सदांशिव, साळुंके, वांजे, खोलापुरे, माने, कवळे, वांजरे मोरे, सरवटे इत्यादींचे उल्लेख आहेत. तसेच विदर्भात खरडे आणि वाडेकर हे भाऊ आहेत. खरडे, बळकार, डहाळे, ढाले, हानोरे, कोकणे, वाडेकर इत्यादी पाथरवट आढळतात. अलीकडे यांच्यात आडनावांवर 'कर' लावण्यात येत आहे उदाहरणार्थ खरडे ही खरडेकर आहे. जेजुरी चे खंडोबा हे त्यांचे कुलदैवत आहे. तुळजापूरची तुळजाभवानी ही त्यांची कुलदेवता आहे. पाथरवट विश्वकर्मा ला आपले आराध्य दैवत मानतात. हा समाज दरवर्षी विश्वकर्मा जयंती मोठ्या उत्साहात साजरी करतो. विश्वकर्मा मंदिर बाभूळगाव, शेलगांव (अटोल) येथे आहे. तसेच पाथरवट हनुमान, दुर्गा माता, यल्लमा, लक्ष्मी, इटलाई, म्हसोबा या देवतांना मानतात.

शिल्पी, शिलावट, पाथरवट समाजाचा पारंपारिक व्यवसाय हा दगडाच्या मुर्त्या, दगडांची शिल्पे बनवणे. कोरीव कामे करणे. गृहोपयोगी दगडांच्या वस्तू बनवणे.जाते, पाटे,वरवंटे खलबत्ता, उखळ-मुसळ बांधकामासाठी चा दगड बनविने हा होता. गृह उपयोगी वस्तू बनवून त्या गावोगावी गाढवावर, बैलगाडीतून नेऊन विकणे व आपला उदरनिर्वाह करणे असे या समाजाचे भटके स्वरूप आहे. सहाजिकच जेथे दगडाची व कामाची उपलब्धता असेल अशा ठिकाणी पाथरवट समूहाने, गटागटाने भटकंती करून राहतात.राजेशाही शासनव्यवस्थेत या समाजाला राजाश्रय लाभला. हा राजाश्रय त्यांच्या शिल्पकलेच्या विकासासाठी सुवर्णकाळ होता.

पाथरवटांची शिल्पकला ही इतर कलांच्या तुलनेत फार वेगळी आहे. या कलेत त्रीमीतीला(थ्री डायमेन्शनला) विशेष महत्व असते. साधारणपणे दगडांच्या खाणी ज्या ठिकाणी आहेत तिथे या समाजाने भटकंती सोडून कायमचे वास्तव्य

केलेले दिसते. शिल्पकलेत ताकदीपेक्षा तंत्राला अधिक महत्त्व आहे. सामान्य माणसाला जिथे दगड दिसतो तिथे पाथरवटाला त्या दगडात मूर्ती दिसत असते. मूर्तीवरील फक्त अनावश्यक भाग तो काढून टाकतो. नक्षीदार दगड, बांधकामासाठी लागणारा घडवलेला दगड, (फाडी) मंदिराचे खांब, किल्ल्याच्या तटबंदी साठी लागणारा दगड, ग्रामीण भागात वापरले जाणारे गृहउपयोगी साहित्य,(जाते,पाटे वरवंटे,उखळ-मुसळ खलबत्ते इत्यादी) त्याचबरोबर देवी-देवतांच्या आकर्षक मूर्ती या आणि अशा अनेक गोष्टींचा समावेश पाथरवटांच्या शिल्पकलेत होतो.

शिल्पकलेसाठी योग्य दगड निवडणे हे त्यांच्या दृष्टीने सर्वात महत्त्वाचे असते. खाणीतून दगड काढतानाच ते विशिष्ट आकाराचे काढले जातात. नंतर ते घडविण्यासाठी आल्यावर कोणता दगडा पासून कोणती वस्तू घडवता येईल याचा अंदाज घेऊन दगड निवडले जातात. दगड वापरला जात असला तरीही दगडाची कठीणता पाहून कोणता दगड योग्य आणि कोणता दगड अयोग्य ठरवले जाते. निवडला गेलेला दगड फार टणक (काळा पाषाण) वा फार कच्चा नसावा. मध्यम प्रतीचा दगडांची निवड शिल्पकलेसाठी केली जाते. कडक म्हणजे घडवायला कठीण असणाऱ्या दगडा पासून केलेल्या वस्तू अधिक काळ टिकतात. शिल्प घडवताना जी अवजारे वापरली जातात ती अवजारे सुद्धा फार महत्त्वाची असतात. योग्य आकार देण्यासाठी, योग्य अवजार वापरावे लागते.अवजारांमध्ये प्रामुख्याने छन्नी, हातोडा, पोगर, सब्बल किंवा पहार या सारख्या अवजारांचा उपयोग होतो. अलीकडच्या काळात आधुनिक मशीन जसे ग्राइंडर हे शिल्पाला अधिक गुळगुळीत करण्यासाठी वापरतांना पाथरवट दिसून येतात.

दगडाच्या खाणीत जिलेटिनच्या कांड्यांनी बार उडवून आधी दगड फोडला जातो. त्यातून उपयोगी पडणाऱ्या दगडांची निवड केली जाते.बैलगाडीत वा चाकांच्या गाड्यावर हा दगड पहारीच्या साह्याने लादून राहत्या ठिकाणापर्यंत आणला जातो. नंतर प्राथमिक संस्कार या दगडावर काही केले जातात. दगडाच्या आकारानुसार व त्या त्या शिल्पानुसार दगड निवडून त्यावर मग परिश्रम घेतले जातात. शिल्प घडवण्यासाठी एक दिवस ते एक महिना प्रसंगी वर्ष इत्यादी कालावधी लागू शकतो.शिल्पाचा आकार व उंची यावर ते अवलंबून असते. शिल्प घडवण्यासाठी पाथरवटांचा दिवस पहाटे सुरू होतो. तांबडं फुटताच दिवसभर ज्या अवजारांच्या साह्याने शिल्पकला करायची त्या अवजारांना ते धार लावतात. धारधार अवजारांच्या साह्याने दिवसभर शिल्प वा गृहपयोगी वस्तू घडवतात. घडवलेल्या वस्तू विकण्यासाठी पाळलेल्या गाढवांवर लादून किंवा भाड्याच्या बैलगाडीने वा वाहनाने गावोगावी नेऊन भटकंती करत विकतात.

आधुनिक युगात दैनंदिन जीवनाच्या वस्तू वापरताना मशीन किंवा यंत्र वापरण्याकडे कल जास्त दिसून येतो त्यामुळे पाथरवटांच्या दगडी साहित्यांना पुरेशी मागणी नाही. हल्ली गृहउपयोगी वस्तू मोजक्याच किंवा मागणीप्रमाणे बनवताना ते दिसतात. बदलत्या काळानुसार दगडी शिल्पा बरोबरच सिमेंट काँक्रेटची शिल्पे बनवण्याकडे सुद्धा हा समाज वळला आहे.त्याचबरोबर मंदिरांचे बांधकाम करणे, मंदिराचे कळस बांधणे यासारख्या कला सुद्धा हा समाज शिकला आहे. आज केवळ

एकेकाळी राजाश्रय लाभलेला, दगडी सुंदर शिल्पे घडवणारा, जगप्रसिद्ध लेण्या, किल्ले ,राजवाडे, भुयारं, पूल, रस्ते यासारख्या अनेक अजरामर कलाकृती साकारणारा, पाथरवट समाज आज शिल्पकलेला नसलेला राजाश्रय, समाजाची उदासीनता, शासकीय धोरणं, रोजगाराचा अभाव, शिक्षणाचा अभाव, गरिबी, दारिद्र्य या आणि अशा अनेक कारणांमुळे पुन्हा एकदा भटकंती करण्यास बाध्य झाला आहे. त्यांच्या या भटकंतीचा पुढील पिढ्यांच्या शिक्षणावर प्रतिकूल परिणाम होताना दिसतो आहे.

अखिल भारतीय पाथरवट महासंघया संघटनेच्या माध्यमातून विखुरलेल्या पाथरवट समाजाचे एकत्रीकरण * .करण्याचे प्रयत्न समाजातील काही बांधव करताना दिसत आहेत

बाभुळगाव येथील पाथरवट समाजाचे प्रतिनिधित्व करणारे श्री. प्रमोद खरडे सर (प्राथमिक शिक्षक टुनकी) आपल्या कवितेत पाथरवटांची व्यथा खालील प्रमाणे मांडतात.....

पाथरवटाने झिजवून काया

दगडालाही देव केलं

पण दैवही घेते परीक्षा

नशिबी भटकनं आलं

आंम्हा पाथरवटांना

स्थलांतराचा चक्रव्यूह झाला

माझ्या पाथरवटांचा इथे *अभिमन्यू झाला*

दगडतोड मेहनत

विश्वकर्माचा आशीर्वाद

पाथरवटांच्या स्पर्शाने

दगडही बोलतात

निष्प्राणातून अविष्कार

हेच ब्रीद आमचे

दगडातून देव घडवतो

हेच चीज आमचे...

निष्कर्ष :-

१.पाथरवट समाजाची कला काळाच्या ओघात लुप्त होत आहे .

२. वैज्ञानिक युगाचा प्रभाव वाढलेला आहे.

३. एका दगडापासून हवी असणारी वस्तू घडविणे कठीण काम आहे.

४. पाथरवट समाजातील स्त्रिया सुद्धा दगडाला आकार देण्याचे काम करतात.

५. दगडापासून बनविलेल्या वस्तूचा वापर वाढला पाहिजे.

संदर्भ:-

१) श्री प्रमोद खरडे सर, बाभुळगाव, ता.पातूर, जि. अकोला यांची मुलाखत.

२महाराष्ट्रातील नि (वडक जाती (श्री साईनाथ प्रकाशन) देवगांवकर.पी.एस .डॉ ...जमाती-

३) श्री उद्धव काळे सर,(जळगाव) यांची मुलाखत.

४) मनुबाई चव्हाण, ता.जि. वर्धा यांच्या सोबत चर्चा

५) आठवडी बाजार आणि समाज जीवन.... श्री. राज कुलकर्णी

६) वडार समाज आणि संस्कृती.... श्री. सतीश पवार

भटक्या विमुक्त जाती जमाती : स्वरूप आणि व्याप्ती

केशरचंद नारायण राठोड
एम.ए.,नेट, पीएच.डी.
संशोधक विद्यार्थी (मराठी विभाग)
डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा
विद्यापीठ, औरंगाबाद 431004

सारांश:

भटक्या विमुक्त जाती जमाती: स्वरूप आणि व्याप्ती या संशोधन लेखात संशोधकाने स्वरूप आणि व्याप्ती मांडत असताना थोडक्यात भटक्या-विमुक्तांची ऐतिहासिक पार्श्वभूमी, संस्कृती, देशाच्या जडणघडणीमध्ये त्यांनी दिलेले योगदान, बोलीभाषा आणि सांकेतिक भाषा, इत्यादी घटकांवर भर देउन संदर्भासहित अभ्यासपूर्ण मांडणी केलेली आहे.

बीज शब्द: भटक्या विमुक्त जाती, जमाती, बोलीभाषा, सांकेतिक भाषा, अवर्ण.

प्रस्तावना :

संपूर्ण विश्व जसा अनेक धर्मांनी बनलेला आहे. तसाच भारतीय समाज हा अनेक जाती-धर्माच्या गटांमध्ये विभागला गेलेला आहे. भारतात प्राचीन काळापासून धर्माच्या अधिपत्याखाली जाती-जमाती काम करत आलेल्या आहेत. ती परंपरा किंवा धर्माचा पगडा आजही तसाच आहे याचा अर्थ आपल्या लक्षात येईल की सर्वश्रेष्ठ स्थान हे धर्माला दिल्या गेलं आहे! परंतु धर्माच्या नंतर जर आपण विचार केला तर समाज हा जाती-जमातींमध्ये विखुरला गेलेला आहे आणि त्याला स्वातंत्र्यानंतर घटनेनेही मान्यता दिली आहे. परंतु घटना मानवप्राणी म्हणून सर्वांना समान मानते. हे खरे असले तरी वास्तविकता काही वेगळी आहे. भारतात 'जात नाही ती जात' या म्हणीप्रमाणे प्रत्येक जातीतील लोक आपली जात इतरांच्या जातीपेक्षा श्रेष्ठ मानतात. त्यामुळे या देशात जातीअंतर्गत समानतेची, बंधुभावाची किंवा एकात्मतेची भावना निर्माण होऊ शकलेली नाही. पुढे हीच समाजरचना केवळ वर्ण जातीच्या उतरंडीपुरतीच मर्यादित राहिली नाही, तर वर्ण, धर्म आणि जातीच्या तथाकथित प्रतिष्ठेवर ठरल्या गेली त्यामुळे या देशातील माणसाची ओळख ही प्रदेश किंवा कामावरून होण्याऐवजी ती जाती आणि धर्मावरून होऊ लागली. ती अद्यापही बदललेली नाही!

भारतामध्ये गावगाडा हा बारा बलुतेदार आणि अठरा अलुतेदारांवर गाव प्रमुखाच्या नियंत्रणाखाली पिढ्यानपिढ्या जगत राहिला. ही झाली वर्ण व्यवस्थेतील ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आणि शुद्रांची गावगाड्यातील जीवन पद्धती. पण गावगाडाच्या परिघाबाहेर जगणाऱ्या आणखी काही जमातींचे जग वेगळे आहे ते म्हणजे भटके-विमुक्त! निसर्गाला देवता मानून रानोरान भटकणाऱ्या या जमातींना आधुनिक काळात "पालघरचे जग म्हणून ओळखल्या गेलं. ज्या जमातींनी देशाच्या बांधणीसाठी सर्वात मोठे योगदान दिलेले आहे, त्या जमातीला मात्र गावगाड्यात कधीही स्थान मिळाले नाही. ही शोकांतिकाच म्हणावी लागेल! या जमातीने या देशासाठी, देश निर्मितीसाठी कोणते योगदान दिले त्यांचे स्वरूप आणि व्याप्ती पुढीलप्रमाणे पाहू.

भटक्या विमुक्त जाती जमातींचे स्वरूप :

प्राचीन काळापासून मानवी जीवनात घराला किती महत्त्व आहे हे मानवाच्या विकासाच्या वेगवेगळ्या अवस्थेने आपल्याला इतिहासात दाखवून दिले आहे. अन्न आणि निवारा करिता अश्मयुगीन मानवाने आपली सततची भटकंती कुठेतरी थांबावी आणि जीवन जगता यावे यासाठी वर्षानुवर्षे प्रयत्न केलेले आपल्याला दिसून येते. 'माझं घर, माझं गाव' यांचा आनंद वेगळाच असतो. याची प्रचिती त्याला तेव्हाच आलेली असावी! म्हणून मानवाच्या विकासाच्या अवस्थेनुसार गावगाडा तयार झाला. त्रि. ना. अंत्रे यांनी 'गावगाडा' या पुस्तकात 1915 साली भारतातील गावगाड्याची समाजरचना विस्ताराने सांगितली आहे. पण या गावगाड्याच्या परिघाबाहेर सुद्धा काही लोकं जीवन जगत होती. ज्यांना 'स्वतःचं ना घर होतं, ना गाव.' गावगाडाच्या

जातीप्रमाणे थोडाफार का असेना असा आनंद किंवा अभिमान या जातींना गावगाड्यात कधीच उपभोगता आला नाही, अशा जमाती म्हणजे भटके-विमुक्त!

भारतात वर्णव्यवस्थेच्या बाहेर वर्षानुवर्षे या जमाती सतत भटकंती करत गावापासून दूर राहूनही इतर जमातींपेक्षा आपल्या चालीरिती व रूढी परंपरा स्वतंत्र, वेगळ्या आणि तितक्याच तटस्थपणे आपली उपजीविका करीत स्वतःचे वेगळे अस्तित्व आजही टिकवून जगत आहे. निसर्गालाच आपला देव मानत पाण्याचा आणि राहण्याजोगा आसरा मिळेल त्या ठिकाणी राहून आपलं जीवन सांस्कृतिक परिवेशात जगत आलेल्या आहेत. पण "ई. स. पूर्व 1500 वर्षाच्या सुमारास आर्य भारतात आले. आर्य भारतात येण्यापूर्वी भारतात सिंधू नदीच्या खोऱ्यात मोहेंजोदडो व हडप्पा संस्कृती अस्तित्वात होती आणि त्या ठिकाणी द्रविड वंशाचे लोक राहत होते."[१] त्यांचे जीवन हे पूर्णपणे निसर्गावर अवलंबून होते, हा इतिहास आहे परंतु या एतद्देशीय द्रविड लोकाकडे कुठलीही साधन किंवा मनुष्यबळ नसल्यामुळे आर्यांनी आगमनावेळी अतिक्रमण करून त्याचा पराभव केला. शेवटी खचलेल्या मनोवस्थेमुळे ते रानावनात, डोंगरदऱ्यात, कडेकपारी आर्यांना शरण न जाता जीवन जगत राहिले. त्यांनी कधी आपला स्वाभिमान गहाण ठेवला नाही. पण काही अंशी त्यांच्यात गुन्हेगारी प्रवृत्ती निर्माण झाली. तीच अवस्था मध्ययुगात आणि ब्रिटिशांच्या काळात त्यांची झाली आणि तिथेही ब्रिटिशांना शरण न गेल्यामुळे सतराव्या शतकापासून ब्रिटिशांना विरोध करत असलेल्या या लोकांना ब्रिटिशांनी 1871 साली गुन्हेगार, चोर, भामटे म्हणून घोषित केले. ते भामटे, चोर, गुन्हेगार म्हणजे आजचे भटके-विमुक्त होय. भारताला स्वातंत्र्य मिळून पंच्याहत्तर वर्षे झाली पण आजही या जमातीच्या पाठीमागचा गुन्हेगारीचा कलंक पुसला गेला नाही. तरीही दैनंदिन जीवन जगताना या "जमातींनी आपली संस्कृती वैविध्यपूर्ण जोपासलेली आहे. काही चांगल्या प्रथा बाळगले अपेक्षित आहे. परंतु निरक्षरतेमुळे आजही अनेक अनपेक्षित असणाऱ्या वाईट प्रथा देखील या समाजात कायम आहे."[२]

रानोमाळ भटकंती करून गावगाडाच्या दयेवर जगणाऱ्या या जमातींना कधीच संघटित होता आले नाही. पण अलीकडच्या काळामध्ये या लोकांच्या शिक्षणात काही अंशी वाढ झाली. आणि हळूहळू त्यांना आपल्या वाट्याला आलेल्या परिस्थितीची जाणीव व्हायला लागली. नंतर 1980 पासून या भटक्या विमुक्त जातीतील लोकांनी आपल्या आयुष्याची लक्तरे साहित्याच्या, आत्मकथनाच्या माध्यमातून वेशीवर टांगली, तेव्हा कुठेतरी सरकारला इतर समाजाला त्यांच्या व्यथा, वेदना कळायला लागल्या. वर्ण व्यवस्थेच्या गळचेपी मध्ये आणि ब्रिटिशांच्या अन्यायामुळे त्यांची अवस्था 'मुकी धरली, हाक ना बोंब' सारखी झाल्यामुळे त्यांनाही स्वतःच्या हक्काची अस्तित्वाची जाणीव कधीच झाली नाही. आता कुठे तरी यातल्या काही जमातींना स्थिरत्व प्राप्त झालेलं आहे. पण बेरोजगारीमुळे पुन्हा 'जैसे थे' ची वेळ त्यांच्यावर आहे. स्वतंत्र भारतामध्ये अजूनही या भटक्या-विमुक्तांची जनगणना केली जात नाही. त्यांची ताकद लोकांना कळेल म्हणून सरकारने "ठेवले अनंते तैसेची रहावे" असा दृष्टीकोन तयार करून या जमातींना असेच जगण्यास भाग पाडत आहे.

विविध शब्दकोशात आणि विद्वानांनी भटक्या-विमुक्त संदर्भात खालील मते मांडलेली आहे;

भटक्या जमातीना इंग्रजीत 'Nomadic tribes', तर विमुक्त जमाती साठी 'Denotified tribes' म्हणतात. नवीनत डिक्शनरी मध्ये भटक्यांना 'Nomad' हा पर्यायी इंग्रजी शब्द आहे. Nomad हा शब्द 'Nemo' या ग्रीक शब्दापासून बनला असून त्याचा अर्थ पशुपालक असा होतो. Oxford, Cambridge या डिक्शनरी मध्ये भटक्या या शब्दाचा अर्थ विस्तारितपणे दिलेला आहे. डॉक्टर बाबासाहेब आंबेडकर भटक्या-विमुक्तांना 'Aboriginal tribes' म्हणजे भारतभूमीचे मुळ भूमिपुत्र असे गौरवाने संबोधतात. त्री. ना. अत्रे भटक्यांना 'फिरस्ते' या शब्दाने संबोधतात इ. अनेक ग्रंथांमध्ये 'भटके' या शब्दाचे अर्थ दिलेले आहेत.

भटक्या विमुक्तांच्या अभ्यासक आणि विद्वानांनी केलेल्या व्याख्या :

मराठी विश्वकोश, "उदरनिर्वाहाकरिता निवडलेल्या अगर वाट्यास आलेल्या, व्यवसायानिमित्त अगर उदरनिर्वाहाच्या शोधात भटकत राहणाऱ्या लोकांना भटके म्हणतात "[3]

शंकरराव खरात यांच्या मते, "ज्यांना स्वतःचे गाव नाही. राहायला घर नाही. कसण्यासाठी शेती नाही. कायम उत्पन्नाची साधने नाहीत. पोट भरण्यासाठी सतत गावोगाव भटकणाऱ्या, भिक्षेवर जगणाऱ्या विविध जातीच्या नावाने जीवन जगणाऱ्या लोक समूहाला भटके असे म्हणतात".[4]

बाळकृष्ण रेणके यांच्या मते, "The term nomad is with reference to animal breeding, Nomads are animal breeders, and move with their animal in search of pasture "[5]

लक्ष्मण माने याच्या मते, "इंग्रज सरकारने गुन्हेगार ठरवल्यामुळे ज्या समाजाला इतर समाजाच्या सामाजिक प्रवाहापासून अलग ठेवले त्या समाजाला विमुक्त जमाती असे म्हणतात. तर पिढ्यानुपिढ्या स्वतःचे घर व्यवसाय नसल्यामुळे अन्न व निवारा यांच्या शोधात सतत एका ठिकाणापासून दुसऱ्या ठिकाणी फिरणाऱ्या समाजाला भटक्या जमाती असे म्हणतात"[6]

नरेंद्र गोपालराव, याच्या मते "the term Nomadic groups should be applied to those Coultured or ethnic groups or large segments there of who are traditional Nomadic and bound to nomadism by their economic pattern rooted in their Coultured"[७]

रामनाथ चव्हाण यांच्या मते, "व्यापाराच्या निमित्ताने गावोगावी भटकत असलेल्या आणि भिक्षा मागून किंवा काही पारंपरिक केलेच्या आधाराने स्वतःची उपजीविका करणारा लोकसमूह अनेक वर्षापासून महाराष्ट्रात वेगवेगळ्या जाती जमातीच्या नावाने जीवन जगताना आढळतो. अशा समूहाला भटके-विमुक्त म्हटले आहे."[८]

भटक्या विमुक्तांच्या संदर्भात अनेक विचारवंतांनी त्याच्या व्यवसायाच्या स्वरूपानुसार पुढीलप्रमाणे वर्गीकरण केलेले आहे.

1. पशूपालक जमाती
2. शिकारी जमाती
3. कलावंत जमाती
4. भविष्य सांगणाऱ्या जमाती
5. मागत्या जमाती
6. शारीरिक कष्ट करणाऱ्या जमाती
7. व्यवसाय करणाऱ्या जमाती
8. देवाच्या नावाने जगणाऱ्या जमाती इ.

भटक्या विमुक्त जाती जमातींची व्याप्ती :

भारत हा जगातला एकमेव असा देश आहे जिथे अनेक धर्म आणि धर्मातील अनेक जाती जमाती पाहायला मिळतात या देशात प्रत्येक जाती जमातीमध्ये समूह, निसर्ग आणि प्रांतानुसार विविधता निर्माण झालेली आहे. विविधतेतून एकता हे भारतीय लोकशाहीचे वैशिष्ट्य आहे. हे जरी खरे असले तरी या देशाला आदिम संस्कृतीचा इतिहास लाभलेला आहे. आणि हा इतिहास घडविण्यात एत्तदेशीय, आदिवासी आणि भटक्या विमुक्त जमातींचा सर्वात महत्त्वाचा वाटा राहिलेला आहे. तरीही याच जमातींच्या वाट्याला सर्वात वाईट दिवस आले. प्राचीन काळात व्यापारासोबतच जंगलाच संरक्षण करणाऱ्या या जमातींनी कधी स्वप्नही बघितल नसेल की, आम्हाला या देशात गुन्हेगार, चोर, भामटे, उचले, समजल्या जाईल? या देशातल्या व्यवस्थेने भटक्यांना वर्णव्यवस्थेत तर स्थान दिलेच नाही. पण सदैव उपासमारी, गुन्हेगारी, आणि गावगाडा बाहेरच जीवन जगण्यास प्रवृत्त

केले. स्वातंत्र्य काय असतं? जगण्याचा हक्क काय व कसा असतो? याची परिभाषा सुद्धा ब्रिटिशांच्या क्रूर आणि अमानवी राजवटीने यांना कळू दिली नाही. इतकच नाही; तर भारत स्वातंत्र्यानंतरही या जमातींना पाच वर्षे स्वातंत्र्य मिळाले नाही. या जमातींनी छत्रपती शिवाजी महाराजांच्या शिवकाळात हेर खातं संभाळलं. "जगप्रसिद्ध अजिंठा-वेरूळ लेण्यांची शिल्पे कोरली, नद्या, धरणे बांधून देश सुजलाम सुफलाम केला. संरक्षणात या देशाची हत्यारे बनवली. या देशातल्या तेहतीस कोटी देवांना सगुण रूपे दिली. कनगी, टोपल्या, दुरडी, झाडू, दिले. बरची, भाला, ढाल, तलवार, खंजीर, इत्यादी अंगरक्षक शस्त्रे देऊन मोगलांना पाणी पाजले. या देशाची रेल्वे पटरी तयार करून दिली. ग्रहपयोगी शेती उपयोगी वस्तू दिल्या मोठमोठ्या व गगनचुंबी इमारती बांधल्या. या सगळ्या इतिहासाचे साक्षीदार भटके-विमुक्त आहेत."[९] इतकंच काय; तर या देशातील पशुपालनाचं काम प्राचीन काळापासून आजतागायत याच जमाती करताहेत. आणि हे सर्व दैनंदिन कामे करत असताना याच जमातींनी आपली व्याप्ती नैसर्गिक, व्यवसायिक आणि सांस्कृतिक वारसाने जोपासली आहे. त्यांच्या चालीरीती, रूढी, परंपरा, वेशभूषा, राहणीमान, सणसमारंभ, देवदेवता काही अनिष्ट रूढीने जातपंचायत, अंधश्रद्धेला सुद्धा ते मानतात पण आपल्या संस्कृतीची वेगळी ओळख या जमातींची आहे. निसर्गाशी घनिष्ट संबंध ठेवत निसर्गाचे रक्षण करत. आपला मुक्तिदाता, पालनकर्ता, म्हणून ते निसर्गालाच मानतात. भटक्या-विमुक्तांनी आपल्या अख्यायिकेतून लोकसाहित्य निर्माण केले. ज्याला साहित्यात अनन्यसाधारण महत्त्व आहे. अस्सल निसर्ग निर्मितीच्या प्रक्रियेमध्ये या जमातींचा अत्यंत मोलाचा आणि खारीचा वाटा राहिलेला आहे. आपण राहतो त्या मातीशी यांनी कधी बेईमानी केली नाही. देशाच्या निर्मिती प्रक्रियेच्या सर्वच क्षेत्रात प्रत्यक्ष आणि अप्रत्यक्षपणे या जमातीचे योगदान खूप मोठे राहिलेले आहे. आणि आजही लोकजिवनाच्या अंतर आणि बाह्य सौंदर्याला पिढ्यानुपिढ्या जपण्याचं काम या जमाती करत आहेत.

भटक्या-विमुक्तांची गुप्त सांकेतिक भाषा:

भटक्या-विमुक्तांच्या व्याप्ती मध्ये आणखी एका महत्त्वपूर्ण गोष्टींची भर घालता येईल, ते म्हणजे या जमातींना बोलता येणारी सांकेतिक गुप्त बोलीभाषा इंग्रजीत या भाषेला 'code language' असे म्हणतात. तर गुप्त या शब्दासाठी 'argot' आणि 'cant' हे शब्द प्रयोग केलेले आहे 'cant' म्हणजे सांकेतिक भाषेत बोलणे असा अर्थ शब्दकोशात दिलेला आहे. प्रभाकर मांडे यांनी 'सांकेतिक गुप्त भाषा : परंपरा व स्वरूप' नावाचा ग्रंथ लिहिलेला आहे, त्यात या जमातींच्या गुप्त सांकेतिक भाषेची पार्श्वभूमी दिलेली आहे. सांकेतिक भाषेच्या संदर्भात " 'गुंपर्झ' या समाज शास्त्रज्ञाने त्यांना समाज गटाच्या सीमांचे रक्षण करणाऱ्या भिंती असे म्हटले आहे"[१०] शिवकाळात रामोशी समाजाचे बहिर्जी नाईक हे अष्टप्रधान मंडळातील हेरखात्याचे प्रमुख होते. म्हणजे खऱ्या अर्थाने गुप्तहेर यंत्रणेचे कौशल्य हे भटक्या विमुक्त जाती जमातींमध्ये होते आणि आजही आहे. ते बोलत असलेल्या विविध बोली ह्या सुद्धा गुप्त बोलीच आहेत. पण त्यातल्या काही जमातींची बोली फक्त आणि फक्त त्यांनाच कळते.

उदारणार्थ बाजारातील दलालांची नंद भाषा, करपल्लवी भाषा, इ. अनेक भाषा आहेत. नंद भाषेतील अंकांचे स्वरूप खालीलप्रमाणे दिलेले आहे;

केवली म्हणजे एक, आवरू – दोन, उधानू – तीन, पोळू – चार, मुळू – पाच, शैली - सहा, पवित्र - सात, मंगी - आठ, लेपनू - नऊ, अंगळ – दहा, इत्यादी अनेक प्रकारचे अंकांचे अर्थ दिलेले आहेत. विसोबा खेचर यांनी या भाषेच्या संदर्भात तेराव्या शतकात एक अभंग लिहीलेला आहे तो पुढील प्रमाणे;

"मुळू वदनाचा । उधानू नेत्रांचा ।

अंगळू हाताचा । स्वामी माझा ॥"

म्हणजे या भाषेचा वापर प्राचीन काळापासून होत होता. भारतात बोली आणि भाषांच्या निर्मितीत या जाती जमातींचे महत्त्वपूर्ण योगदान राहिलेले आहे. बोली भाषेला सक्षम बनविण्याचे काम या जमातींनी केले आहे. देशाच्या कानाकोपऱ्यात पोहोचलेल्या या भटक्या विमुक्तांची स्वरूप आणि व्याप्ती खूप मोठी आहे, हे आपल्या लक्षात येते.

निष्कर्ष आणि शिफारसी :

1. भटक्या विमुक्त जाती जमातींची आर्थिक, सामाजिक, राजकीय, शैक्षणिक, आरोग्यविषयक परिस्थिती हलाकीची आहे. या सर्वांचा विकास होणे गरजेचे आहे.
2. या जमातींची सांस्कृतिक पार्श्वभूमी प्राचीन तथा ऐतिहासिक आहे त्यामुळे त्यांचा सांस्कृतिक वारसा पुढे चालावा यासाठी शासनाने त्यांची दखल घेणे महत्त्वाचे वाटते.
3. भटक्या विमुक्त जमातींना आजही स्थिरत्व प्राप्त झालेले नाही त्यामुळे सरकारने त्यांच्यासाठी योजना काढून त्यांची भटकंती थांबविण्यासाठी मदत करावी.
4. या जमाती पारंपारिक व्यवसाय करतात, त्या व्यतिरिक्त नवीन उद्योगाचे प्रशिक्षण त्यांना देण्यात यावे.
5. या जमातींची स्वतंत्र बोली भाषा व सांकेतिक भाषा आहे, तिचे जतन होणे गरजेचे आहे.

संदर्भ :

1. चांदेकर चंद्रशेखर, सामाजिक क्रांतीचे प्रणेते संत शिरोमणी, गुरु रविदास, समता प्रकाशन, प्रथमावृत्ती नागपुर,1999 पृ. क्रमांक 17
2. काचोळे दा. धो / कुलकर्णी पी. के., भारतीय समाज व्यवस्था, कैलास पब्लिकेशन, औरंगाबाद, 1991 पृ. क्रमांक 180
3. मराठी विश्वकोश खंड 12 पृ. क्र.19
4. खरात शंकर, भटक्या-विमुक्त जमाती व त्यांचे प्रश्न, सुगावा प्रकाशन, पुणे, 2003. पृ.क्रमांक 14
5. जाधव रमेश, भटक्या विमुक्ताचे परिप्रेक्ष्य हरनाई, प्रकाशन, प्रथमावृत्ती, नांदेड, 2003 पृ. क्रमांक 12
6. माने लक्ष्मण, 'विमुक्तायन', 'महाराष्ट्रातील विमुक्त जाती एक चिकित्सक अभ्यास' यशवंतराव चव्हाण प्रतिष्ठान, मुंबई, 1997, पृ. क्र. 130-132
7. मांडे प्रभाकर, गावगाड्याबाहेर, गोदावरी प्रकाशन, सु.आवृत्ती, अहमदनगर, 2017, पृ. क्रमांक 14
8. चव्हाण रामनाथ, जाती आणि जमाती, मेहता पब्लिशिंग हाऊस, पुणे, 1989 पृ. क्रमांक 43
9. राठोड मोतीराज, नोटीफाईड ट्राईब्स, नोमॅडिक ट्राईब्स, प्रकाशक निर्माण संस्था, प्रथमावृत्ती, पुणे, 2015, पृ. क्रमांक 39
10. मांडे प्रभाकर, सांकेतिक आणि गुप्त भाषा: परंपरा व स्वरूप, गोदावरी प्रकाशन, तृ. आ., औरंगाबाद, 2008, पृ. क्रमांक 74
11. मराठी, इंग्रजी शब्दकोश
12. कदम ना. धो., महाराष्ट्रातील भटका समाज : संस्कृती व साहित्य, प्रतिमा प्रकाशन, दु. आ., २०१३, पृ. क्र.१९९.
13. चव्हाण रामनाथ, भटक्या विमुक्तांची जातपंचायत, देशमुख आणि कंपनी पब्लिशर्स प्रा.लि. दु. आ., पुणे, २०१६.

महाराष्ट्रातील भटक्या विमुक्त जमातीचे सामाजिक जीवन

डॉ. मंगेश भावराव पाटील
विद्यावार्धिनी महाविद्यालय धुळे
मो.न. ९४२१५७१४५८
Vasumangal1974@gmail.

सारांश :

भारतीय समाज हा जातीपोटजातीमध्ये विभागलेला समाज आहे. या समाजात प्रत्येक जात जमात ही स्वतंत्र आहे. प्रत्येक जातीच्या रूढी, परंपरा, चालीरीती, रिवाज, व्यवसाय, देवदेवता, सणवार, उत्सव, भाषा आणि जगण्याच्या तऱ्हा वेगवेगळ्या आहेत. अनेक वर्षापासून अस्तित्वात असलेला जाती जमातींचा समूह म्हणजे भारत देश आहे. जगाच्या पाठीवर एवढ्या मोठ्या संख्येने जाती जमातीत विभागलेला बहुदा भारत हा एकमेव देश असावा. त्यांचे वैशिष्ट्य असे की तो समानतेऐवजी विषम समाजव्यवस्थेवर अवलंबलेला आहे. महाराष्ट्रात भटक्या आणि विमुक्तांच्या एकूण ४२ मुख्य जमाती असल्याचे मानले जाते. त्या मुख्य जमातींच्या पोट जातींची किंवा तत्सम जमातींची संख्या १५० ते २०० इतकी असल्याचे दिसते. या सर्व मुख्य जमाती आणि तत्सम जमाती स्वतंत्र आहेत. त्यांच्यामध्ये बेटी व्यवहार होत नाहीत. (क्वचित प्रसंगी रोटी व्यवहार होतो) या सर्व जमातींची भाषा, देव-देवता, सणवार, उपासना पद्धती, लग्नविधी, मयतीचा विधी, उत्सवाच्या पद्धती, त्यांचे पाळीव प्राणी, व्यवसाय-उपजिविकेची साधने आणि जात पंचायती (न्यायव्यवस्था) स्वतंत्र आहेत. प्रत्येक जात पोटजातीच्या जात पंचायतीचे नियम गुन्ह्यांचे स्वरूप आणि दिल्या जाणाऱ्या शिक्षा या वेगवेगळ्या आहेत. काही जमातींचा या जमातीचा अपवाद वगळता उर्वरित सर्व जमातींच्या जातपंचायतीचा प्रमुख हा पुरूष व्यक्ती आहे. त्याला पाटील, मुखिया, पंचायत प्रमुख किंवा सरपंच या नावाने ओळखले जाते. महाराष्ट्रात अस्तित्वात असलेल्या एकूण ४२ जमातीपैकी १४ जमाती 'विमुक्त' जमाती या नावाने ओळखल्या जातात. ब्रिटिशांनी या देशात १८७१ साली निर्माण केलेल्या गुन्हेगारी कायद्यान्वये या जमातींना गुन्हेगारी जमाती म्हणून त्या काळात जाहीर केले होते. त्या जमातींना राहण्यासाठी देशात वेगवेगळ्या ठिकाणी ५२ वसाहती (सेटलमेंट) निर्माण करण्यात आलेल्या होत्या. त्या वसाहतींमध्ये गुन्हेगार ठरविलेल्या जमातींना बंदिस्त करण्यात आलेले होते. गुन्हेगारी वसाहतीतील लोक पळून जाऊ नयेत म्हणून त्या वसाहतीला चोहोबाजूंनी तारांचे कुंपण घालण्यात आले होते. वसाहतीतील लोकांना दररोज तीन वेळा हजेरी द्यावी लागत असे. तसेच त्यांना वसाहतीबाहेर सक्तीचे काम करावे लागत असे. त्यांच्या लहान मुलांच्यासाठी ब्रिटिश सरकारने त्या काळात शिक्षणाची वेगळी व्यवस्था केलेली होती. त्यामुळे वसाहतीतील काही मुलांना त्या काळात शिक्षणाचा लाभ होत असे.

पारिभाषिक संज्ञा : भाषा, देव-देवता, सणवार, उपासना पद्धती, लग्नविधी, मयतीचा विधी

भटक्या विमुक्तांची व्याख्या :-

भटक्या समाजाचा अभ्यास करणा-यांनी आजपर्यंत ब-याच व्याख्या केलेल्या आहेत. भटका समाजाची व "भटका" या शब्दाची व्याख्या करणे कठीन आहे. तरीही सर्वसामान्यपणे "भटका म्हणजे एका ठिकाणी न थांबणारा" असा आपण सर्वसामान्यपणे अर्थ घेतो भटकण्याची वेगवेगळी कारणे असू शकतात. भटका हा शब्द ग्रीक भाषेतील Nomo या शब्दापासून आपल्याकडे आला असावा. या शब्दाचा शब्दश: अर्थ to pasture (चारणे) असा होतो. गवताळ प्रदेशात गुरेढोरे पाळणारे व प्राण्यांचे कळप नेहमी करीता किंवा काही काळासाठी घेऊन फिरणा-या लोकांना भटके (nomad) असे म्हणतात. भटका आणि भटकेपणाचा अर्थ असाही केला जातो, भटक्यांची रामनाथ चव्हाणानी केलेली व्याख्या अशी आहे, "व्यापाराच्या निमित्ताने गावोगावी भटकत असलेला आणि भिक्षा मागून किंवा काही पारंपारिक कलेच्या आधाराने स्वत:ची उपजीविका करणारा लोकसमूह अनेक वर्षापासून महाराष्ट्रात वेगवेगळ्या जाती जमातींच्या नावाने जीवन जगताना आढळतो अशा या समूहाला भटके- विमुक्त म्हटले आहे."१ "भटका म्हणजे एका ठिकाणी न थांबणारा" अशी व्याख्या मोतीराज राठोडांनी केलेली आहे.

त्यांनी ही व्याख्या ढोबळ मानाने केलेली आहे. आजही हा समाज समूहाने अन्नाच्या शोधात सतत भटकत आहे अश्या उप-या, उपेक्षित लोकसमूहाला भटके विमुक्त असे म्हणतात.

भटक्या विमुक्ताची सद्य:स्थिती:-

भटक्या विमुक्ताची सद्य:स्थिती ते उपेक्षित असले तरी आज नागरी समाजाला त्यांच्या विषयी आदर वाटू लागला आहे देण्याघेण्याचे व्यवहार अंशत: होत आहेत आतापर्यत भटक्या-विमुक्तांच्या संस्कृतीचा व साहित्याचा विचार केला त्यावरुन भटक्या-विमुक्तांच्या उदयापासून ते आजच्या भटक्या- विमुक्तांच्या पुनरुत्थानाच्या चळवळीपर्यतचे स्वरुप डोळयापुढे उभे राहिले. "सामाजिक सत्तासंघर्षाच्या प्रयत्नांचा परिपाक म्हणून आर्यांनी आर्यपूर्व भारतीयांवर एक विशिष्ट जीवनपध्दती लादली जित आणि जेते या सामाजिक स्तरातील जितांच्या नशिबी दास्यत्व आले सेवाचाकरी हेच त्यांचे कर्तव्य ठरले"२ यातूनच त्यांच्या मानसिक गुलामगिरीला प्रारंभ झाला त्याला धर्माच्या अफूची गोळी देण्यात आली. दयनीय अवस्थेमुळे पोटासाठी लाचारी, गुलामगिरी नशिबी आली वरिष्ठ समाजासाठी जगायचे किंवा मरायचे हेच जीवनाचे लक्ष्य बनले गुराढोरांप्रमाणे वरिष्ठासाठी राबूनही पोटाचा प्रश्न सुटत नाही तेव्हा माणूस त्यातून बाहेर पडण्याचा मार्ग शोधू लागतो प्रथम पोटाची खळगी भरण्यासाठी त्याला वाटेल ते प्रयत्न करुन अन्न-पाणी मिळवावे लागते गुलामांचे जीवन जगणा-या आद्य भारतीय समाजातील मानवसमूहाने त्यांच्या गायीगुरांच्या, साठविलेल्या अन्नपदार्थाच्या चो-या करणास प्रारंभ केला म्हणूनच त्यांच्या नशिबी गुन्हेगारी आली ही गुन्हेगारी प्रवृत्ती पोसली जाईल अशा त-हेची परिस्थिती निर्माण करण्याचा प्रयत्न उत्तरकाळातही जाणीवपूर्वक झालेला दिसतो.

गुन्हेगारी प्रवत्ती हाच जीवनमार्ग बनलेला समाजाच्या वाटयाला कधीच स्थैर्य लाभत नाही आर्येतर भारतीयांच्या समाजातील दासांना सतत भटकंती करत राहावे लागले त्यामुळे पोटाला मिळेल तेथे काही काळ स्थिर राहायचे व पुन्हा दुस-या ठिकाणी जाऊन उप-यासारखे जीवन जगायचे; तसेही जमले नाही तर चो-या मो-या, लूटमार करायची त्यात पकडले गेल्यास शिक्षा भोगायच्या, पुन्हा त्याच पध्दतीने जगता आले नाही तर भिक्षा मागायची आणि पोट भरायचे अशी एक विशिष्ट जीवन पध्दती अनुसरलेल्या भटक्यांना ब्रिटिशकालीन कायद्याच्या राज्यात बंदिवानाचे जीवन जगावे लागले हे बंदिस्त जीवन कुंपणातील जीवन होते.

भटक्या विमुक्ताची संस्कृती :-

भारतीय समाजव्यवस्थेतील उच्चवर्णीयांनी याच देशातल्या काही जाती जमातींना हीन मानले त्यांचा स्पर्श अभद्र ठरविला त्यांना उपेक्षित केले. त्यामुळे उपेक्षित जाती जमातींना एक वेगळा गट निर्माण झाला त्याला गुन्हेगार समजून बंदिस्त केले. स्वांतत्र मिळाल्यानंतर त्यांच्यात जागृती निर्माण करुन शासनाच्या कानी त्यांच्या हालअपेष्टा घातल्या त्यांना मुक्त करण्यात आले. परिणामी भारतीय समाजव्यवस्थेत भटक्या-विमुक्तांचा एक स्वतंत्र समूह अस्तित्वात आला त्यालाच भटक्या विमुक्त जाती जमाती म्हणतात. "भटक्या विमुक्त जाती जमातींचे नागरी किंवा एका ठिकाणी वस्ती करून राहण्याचे हक्कच गुन्हेगार कायद्यामुळे नाकारण्या आले त्यामुळे भटक्या विमुक्तांना एका ठिकाणी तीन दिवसांपेक्षा जास्त दिवस थांबताच आले नाही म्हणून त्या जाती जमातींना भटकायची सवय लागली. ही भटकंती पुढे त्यांची संस्कृती बनली"३ अश्या प्रकारे भारतीय समाजव्यवस्थेत भटक्या-विमुक्तांची एक स्वतंत्र संस्कृती निर्माण झाली.

भटक्या विमुक्तांची सामाजिक अवस्था-

भटक्या विमुक्तांना आपल्या भूतकाळाविषयी प्रचंड अभिमान आहे. भूतकाळात जगण्याचे ते सोडायला तयार नाहीत. या जमातीत अस्पृश्यता मानली जाते एक जात दुस-या जातीपेक्षा स्वत:ला श्रेष्ठ समजते स्वजातीचे पारंपारिक पीळ मोडायला जातीजमाती तयार नाहीत. पारंपारिक पध्दतीमुळे जातपंचायतीच्या विळख्यातून समाज अद्यापही सुटलेला नाही. अंधश्रध्दा समाजाच्या हाडीमासी भिनलेली असून देवदेवतांच्या नावाने कोबंडी बकरी मारण्यात गर्क असल्याचे दिसते. त्यामुळे त्यांना सुधारणेचा मार्ग दिसत नाही त्यांच्या कपाळी असलेला गुन्हेगारीचा कलंक अद्याप पुसला गेला नसल्याने समाजात उजळमाथ्याने वागता येत नाही. गुन्हेगारी कायद्याने एका गावात तीन दिवसापेक्षा जास्त दिवस राहता येणे शक्य नाही. ज्या गावात तीन दिवस

मुक्काम असेल त्या गावात गेल्यावर आम्ही आपल्या गावात आलो आहोत असे सांगून गावप्रमुखाकडून दाखला घ्यावा लागतो. मागील गावच्या पाटलाने दिलेला दाखला दाखवून त्यातील नोंदीप्रमाणे कुटुंबातील व्यक्ति पशूपक्षी सामान तपासून घ्यावे लागते.

स्वातंत्र्योत्तर काळात ज्या भटक्या विमुक्त जमातीतील लोकांना शहर वस्तीचा सहवास लाभला, स्थिर जीवन जगता आले, पारंपरिक व्यवसायाशिवाय अन्य व्यवसाय ज्यांनी स्वीकारले त्यांच्यावर अवतीभोवतीच्या वातावरणाचा परिणाम झाल्याने किंवा प्रस्थापितांचे जगणे अधिक जवळून पाहता आल्याने आणि ज्यांना काही प्रमाणात शिक्षण घेता आले अशा भटक्या विमुक्त जमातीतील काही शिक्षित तरूणांना ८० च्या दशकात भटक्या विमुक्त जमातींच्या उपेक्षित जीवनाबद्दल जाणीव झाली आणि स्वतःच्या अस्तित्वाची शोध मोहिम त्यांनी महाराष्ट्रात सुरू केली. वेगवेगळ्या जमातीतील जाणते कार्यकर्ते एकत्र येवून समाजाला आणि सरकारला जाहीरपणे प्रश्न विचारू लागले. हे देशाचे स्वातंत्र्य कोणासाठी? या अशा अनेक प्रश्नांची जाणीव झालेल्या भटक्या विमुक्त समाजातील शिक्षित तरूणांनी आपापल्या जमातीचे संघटन करण्याचा प्रयत्न केला. परिणामी वेगवेगळ्या सामाजिक संघटना आणि संस्थांची निर्मिती होऊ लागली. महाराष्ट्रातील भटक्यांच्या पालावर, तांड्यावर कार्यकर्त्यांचा जथ्था आपली माणसे शोधत फिरू लागला. माणसांना त्यांच्या अस्तित्वाची जाणीव करून देऊ लागला. आपल्या न्याय हक्कासाठी फुले, शाहू, बाबासाहेब आंबेडकरांच्या विचारांचे शस्त्र हाती घेऊन संघर्षासाठी ही तरूण मंडळी उभी ठाकली. त्यांचा संघर्ष होता समाजव्यवस्थेविरूद्ध, अंधश्रद्धेविरूरद्ध आणि रूढी परंपरेविरूद्ध! स्वातंत्र्य, समता, बंधुता आणि न्याय मुल्यांसाठी तो संघर्ष अद्यापही संपला नाही.

भटक्या विमुक्तांचे व्यवसाय :-

भारत स्वतंत्र झाल्यावर ब्रिटिशांनी केलेले कायदे रद्द करुन गुन्हेगार जमातीनां विमुक्त करण्यात आले. दलितांना गावाबाहेर का होईना रहायला जागा आहे, वेगळा का होईना पाणवठा व स्मशानभूमी आहे. पंरतु भटक्या विमुक्त जमातीनां ना एक गाव आहे, ना एका ठिकाणी रहायला जागा. आज इथे तर उदया तिथे अशी त्यांची अवस्था आहे. जगण्यासाठी भीक मागणे, चोरी करणे, रस्तोरस्ती जादूचे-कसरतीचे प्रयोग करणे, साप, माकड, पोपट व बैल या प्राण्यांचा खेळ करुन उदरनिर्वाह चालविणे, भविष्य सांगणे, नाडी परीक्षा करणे, औषधी वनस्पती विकणे, सुया, पिना, बिब्बे, काळया मणी, पोत, उखळ, पाटा, खलबत्ता, सूप, दूरडी, टोपली अश्या वस्तू विकून उपजीविका करणे असा जीवनक्रम हया जमाती जगतात. वेळप्रंसगी या जमाती चोरी करणा-या, भीक मागणा-या, व भटकणा-या असतात असा लोकसमज असल्याने हया पुर्वग्रह दुषित भावनेमुळे या भटक्या विमुक्त जमातीच्या लोकांना गावात काम मिळत नाही लोक त्यांच्याकडे संशयाने पाहतात त्यामुळे या लोकांचे जीवन सतत पोलीसांची वाटणारी भीती, गावक-यांची संशयी वृत्ती आणि अस्थिरता यांनी ग्रासले आहे.

भटक्या विमुक्त समाजाच्या संघटना:-

स्वातंत्र्योत्तर काळात भटक्या विमुक्त समाजाच्या संघटना अस्तित्वात आल्या. हया संघटना जमातीच्या नेत्या कार्यकर्त्यानी स्थापन केल्या होत्या. हया संघटनाची कामे आपल्या जमातीपुरतीच मर्यादित होती. याच काळात लक्ष्मण माने यांचे उपरा हे आत्मचरित्र प्रकाशित झाले आणि त्याला खूप प्रसिध्दी मिळाली. लक्ष्मण माने हे भटक्या विमुक्त जमातीचे लेखक असल्याने भटक्या विमुक्त जमातीच्या संघटनाच्या अपेक्षा वाढल्या. आणि सर्व भटक्या विमुक्तांची एक संघटना स्थापन करण्याचा दृढ संकल्प झाला भटक्या विमुक्त जमातीच्या लोकांनी एकत्र येऊन भटक्या विमुक्त जमातींची संघटना स्थापन केली या संघटनेचे प्रमुख नेते म्हणून लक्ष्मण माने आणि बाळकृष्ण रेणके यांनी ही जबाबदारी स्वीकारली. भटक्या विमुक्त जमातीच्या चळवळीने सभा, परिषदा, मोर्चे आणि सत्याग्रह अशा कार्यक्रमामधून आपली संघटना बांधली आपल्या प्रश्नांवर लोकमत जागे केले हयामुळे भटक्या विमुक्तांवर अन्याय करणा-या पोलीसांवर व गावगुंडावर वचक बसला. भटक्या विमुक्तांना आपल्या अस्मितेची जाणीव झाली आणि ते आपल्या हक्क व अधिकारासाठी संघटनेच्या संघर्षात सहभागी झाले.

१५ ऑगस्ट १९४७ रोजी भारताला स्वातंत्र्य मिळाले. सर्व भारतीय ब्रिटिशांच्या गुलामीतून स्वतंत्र झाले. मात्र तीन तारेच्या कुंपणात वसाहतीमध्ये बंदिस्त ठेवलेल्या भटक्या जमातीचे लोक स्वतंत्र होऊ शकले नाहीत. ते १९५२ सालापर्यंत

गुन्हेगार म्हणून त्या वसाहतीत बंदिस्त राहिले. १९५२ साली स्वतंत्र भारताचे तत्कालीन पंतप्रधान पंडित जवाहरलाल नेहरू यांच्या हस्ते सोलापूर येथील गुन्हेगार वसाहतीच्या तीन तारांचे कुंपण प्रातिनिधिक स्वरूपात तोडण्यात आले आणि वसाहतीत बंदिस्त असणारे लोक मुक्त करण्यात आले. त्यांना पुढे 'विमुक्त' या नावाने ओळखले गेले. त्या महाराष्ट्रातील जमाती उदाहरणार्थ बेरड, बेस्तर, भामटा, कैकाडी, कंजारभाट, कटाबू, बंजारा, राजपारधी, रजपूत भामटा, रामोशी, वडार, वाघरी, छप्परबंध आणि फासे पारधी इत्यादी होतं. या विमुक्त जमातींशिवाय गावोगावी भटकून पोट भरणाऱ्या २८ भटक्या जमाती आहेत. त्या गोसावी, बेलदार, भराडी, भुते, चित्रकथी, गारूडी, घिसाडी, गोल्ला, गोंधळी, गोपाळ, हेळबे, जोशी, काशीकापडी, कोल्हाटी, मैराळ, मसनजोगी, नंदीवाले, पांगुळ, रावळ, सिक्कलगार, ठाकर, वैदू, वासुदेव, भोई, बहुरूपी, ठलारी, ओतारी, घ्यारेकंजर या जमाती पिढ्यानपिढ्या जगण्यासाठी भटकत राहिल्या.

भटक्या विमुक्त जमातींची त्यांच्या सामाजिक जगण्यावरून वर्गवारी करण्यात आली आहे. ही विभागणी परंपरेने चालत आलेली आहे. भटक्या विमुक्तांचे व्यवसाय किंवा उपजिविकेची साधने जशी निरनिराळी आहेत तशी त्यांची उपजिविका करण्याची गावेसुद्धा त्यांनी आपापसात विभागून घेतलेली आहेत. त्या विभागणीनुसार भटक्या जमातीतील लोक त्याठिकाणीच उपजिविका करतात. कोणीही कोणाच्या विभागात हस्तक्षेप करत नाही किंवा अतिक्रमण करत नाही. मात्र तसे झाल्यास त्या त्या जमातींची जातपंचायत बसते आणि संबंधीत व्यक्तिला शिक्षा दिली जाते. त्यामुळे अनेक वर्षापासून पोट भरण्याच्या निमित्ताने भटकणारा भटक्या विमुक्तांचा तांडा गावगाड्याच्या भिकेवर चाकोरीबद्ध आणि परावलंबी जीवन जगत राहिला आहे. त्यामुळे स्वतंत्रपणे विचार करण्याची वृत्ती त्यांच्यात जोपासली गेलेली नाही. आपली पारंपरिक जगण्याची चाकोरी तोडण्याची हिंमत त्यांनी केली नाही. आपण, आपले कुटुंब आणि आपली जमात याच मर्यादित परिघात भटक्या विमुक्तांचे सामाजिक जीवन गावगाड्याच्या भोवती भोवऱ्याप्रमाणे वर्षानुवर्षे फिरत राहिले. परिणामी भटक्या विमुक्तांचे तांडे गावगाड्याजवळ असले तरी ते गावगाड्यापासून कोसो मैल दूरच राहिले. गावगाड्याने त्यांना कधीही आपले म्हणून स्वीकारले नाही. परिणामी ते पिढ्यानपिढ्या स्थिर जीवनापासून वंचित राहिले, "सततच्या भटकंतीमुळे शिक्षणापासून आणि नवजीवनाच्या लाभापासून ते दुरावले. भटक्यांचे जगणे त्यांच्या वाट्याला आल्यामुळे त्यांचे जगणे हे परावलंबी स्वरूपाचे राहिले. त्यातून लाचारी आणि गरिबी नकळत त्यांच्या जगण्याचा अविभाज्य भाग म्हणूनच सोबत करीत राहिली. भटक्या जमातींची मातृभाषा, सांकेतिक भाषा आणि काही जमातींचे चित्रविचित्र पेहराव प्रस्थापितांच्यापेक्षा वेगळे असल्यामुळे हे लोक गावगाड्याला नेहमीच परके आणि परदेशी वाटत राहिले. त्यामुळे काही जमातीत तर परदेशी हे त्यांचे आडनाव रूढ झाले. ते आजही कायम आहे."४

महाराष्ट्रात असणाऱ्या भटक्या विमुक्तांच्या सर्वच जमाती या मूळच्या महाराष्ट्रातील नाहीत. काही जमाती या महाराष्ट्राबाहेरून उपजिविकेसाठी महाराष्ट्रात आलेल्या आहेत. त्यामुळे स्वाभाविकच महाराष्ट्राच्या सामाजिक जीवनात त्यांना स्थान मिळू शकलेले नाही. आंध्र, कर्नाटक, गुजरात, राजस्थान आणि उत्तर प्रदेशातून आलेल्या जमाती अनेक वर्षांपासून महाराष्ट्रात भटकत राहिल्या. मात्र त्या इथल्या लोकजीवनापेक्षा सतत आपले अस्तित्व वेगळे ठेऊनच जगत राहिल्या. त्यापैकी गावगाड्याने ज्या जमातींचा वापर आपल्या हितासाठी करून घेण्याचा प्रयत्न केला त्या वडारी, कैकाडी आणि लोहार या महाराष्ट्राबाहेरील जमाती गावगाड्यात स्थिर होऊ शकल्या. त्यामुळे त्यांना स्थिर जीवनाचा लाभ काही प्रमाणात का होईना मिळू शकला. उदाहरणार्थ लोहारांनी गावगाड्यातील शेतकऱ्यांना शेतीसाठी लागणारी लोखंडी अवजारे तयार करून दिली. धान्य साठवण्यासाठी वेताच्या कणग्या कैकाड्यांनी दिल्या. गावगाड्यात अंग मेहनतीची कामे वडार समाज करीत राहिला. त्यामुळे गावगाड्यात त्यांना आश्रय मिळू शकला. मात्र पिढ्यान पिढ्या गावगाड्यात येणारा वैदू, कोल्हाटी, डोंबारी, रायरंद, दरवेशी, लमाण, मदारी, गारूडी, मरीआईवाले इत्यादी भटक्या जमाती निमित्तमात्र गावगाड्याच्या संपर्कात आल्यामुळे त्यांना वरील जमातीप्रमाणे गावगाड्यात स्थैर्य मिळू शकले नाही. विशेषतः इंग्रजांनी ज्या भटक्या जमातींना गुन्हेगारी जमाती म्हणून घोषित केले होते त्या जमातींचे पुनर्वसन स्वातंत्र्योत्तर काळात शासन करू शकले नाही. त्यामुळे गावगाड्याच्या दृष्टिनेही त्या जमाती गुन्हेगारच राहिल्या. परिणामी पारधी, कंजारभाट, छप्परबंध, रजपूत, भामटा अशा काही जमातींना गावगाड्यानेही स्वीकारले नाही. त्यामुळे

त्या जमातीकडे आजही गावगाड्यातील लोक गुन्हेगार जमाती म्हणूनच पाहत राहिले. कुठेही चोरीमारी झाली की फासेपारधी आणि तत्सम जमातींच्या लोकांना पकडले जाऊ लागले. आजचे वास्तव यापेक्षा वेगळे नाही. त्यामुळे पोलिसांचा ससेमिरा चुकवण्यासाठी आजही या जमातींना आपले आयुष्य जाती व्यवस्थेच्या अंधारात चाचपडत जगावे लागत आहे.

महाराष्ट्रातील भटक्या विमुक्त जमातीपैकी ज्या जमाती कलावंत जमाती म्हणून ओळखल्या गेल्या त्या कोल्हाटी, डोंबारी, रायरंद, वासुदेव, जोगते, जोगतिणी, वाघ्या मुरळी आणि कडकलक्ष्मी यांना जगण्यासाठीचा आधार म्हणून आजवर त्यांनी आपल्या पारंपरिक कला जतन केल्या. त्या कलेतील अंधश्रद्धा, रूढी परंपरा याचे भान या जमातीला नसल्याने आपण उपजिविकेसाठी जे करतो त्यालाच शहाण्या, जाणत्या, शिकलेल्या प्रस्थापितांनी लोककला म्हटले आणि त्याच भ्रमात पिढ्यान पिढ्या या लोकांना बंदिस्त करण्याचा प्रयत्न केला गेला. दारोदार पोटासाठी भीक मागणारा पोतराज किंवा मरीआईवाला लोककलावंत म्हणून स्वीकारला खरा मात्र तो नागर जीवनापासून सतत उपेक्षित ठेवण्यात आला. सामान्यांचे मनोरंजन करणारे कोल्हाटी, डोंबारी, रायरंद त्याच पारंपरिक परिघामध्ये बंदिस्त करण्यात आले. तमाशा आणि बैठकीच्या लावण्या सादर करता करता धनदांडगे प्रस्थापित लोक त्यांचे सर्वांगाने शोषणपद्धतशीरपणे करीत राहिले. त्याचे भान त्या कलावंतांना या समाजव्यवस्थेनं कधीही जाणवू दिले नाही. अशा तऱ्हेने गावगाड्याने आणि प्रस्थापितांनी कष्टकरी, कलावंत, भटक्या विमुक्त जमातींना सतत उपेक्षित, वंचित आणि याचकाच्या भूमिकेतच ठेवण्याचा प्रयत्न केला. त्यांचा 'माणूस' म्हणून कधीच विचार केला नाही. परिणामी हा समाज गावगाड्यापासून सतत दूर राहिला. स्वतःच्या उपजिविकेसाठी त्यांनी जात व्यवसाय स्वीकारले. त्यामुळे भटका समाज शिक्षणापासून दूर राहिला. तात्पर्य मुलामुलींना शिक्षण द्यावं असं वातावरणच कधी निर्माण झालं नाही. त्यांनी स्वतः निर्माण करण्याचा प्रयत्न केला नाही. तशी संधीही मिळू शकली नाही. मुलामुलींना शिक्षण देण्यापेक्षा किंवा शिक्षणासाठी आयुष्यातील बरीच वर्षे घालवण्यापेक्षा जाणत्या वयात चार पैसे कमावणारी मुलंमुली त्यांना अधिक जवळची वाटली. शिक्षण देण्यापेक्षा त्यांना पारंपरिक व्यवसाय शिकवणे अधिक पसंत केले. उदा. कलावंत जमातीची मुले पारंपरिक कलेच्या आधाराने उपजिविका करत राहिले. व्यवसाय करणाऱ्या भटक्या जमातीतील मुले मुली जमातीच्या व्यवसायात लक्ष देऊ लागली तर पशुपालक जमातींच्या मुलामुलींना तोच आपल्या उपजिविकेचा व्यवसाय म्हणून पशुपालनातच त्यांचे आयुष्य गेले. देवदेवतांच्या नावाने भीक मागणाऱ्याजमातीतील मुलेमुली आपल्या पालकांप्रमाणेच भीक मागून उपजिविका करत राहिले. अशा कितीतरी वेगवेगळ्या जमातीतील मुलामुलींनी शाळेत जाण्यापेक्षा आपल्या जात व्यवसायात जाणे अधिक पसंत केले. परंपरेने जात व्यवसायाचे साधन मिळाल्यामुळे आणि त्यांच्या आज येथे, उद्या तिथे अशा अस्थिर जीवनामुळे त्यांना शिक्षणाचा लाभ घेता आला नाही. अशा भटक्या जमातींना एका ठिकाणी स्थिर करण्याचा प्रयत्न केला असता तर कदाचित त्यांच्या मुलामुलींना शालेय शिक्षणाचा लाभ घेता आला असता. लहान वयातच चार पैसे कमाविण्याची सवय लागल्याने आणि त्यांच्या पालकांकडून तशाच पद्धतीची अपेक्षा वाढत गेल्याने शिक्षणाचे महत्त्व त्यांना समजले नाही. शाळा शिकून नोकरी करण्यापेक्षा आपला स्वतंत्र जात व्यवसाय करावा अशातऱ्हेची मनोवृत्ती प्रत्येक भटक्या विमुक्त जमातीमध्ये प्रकर्षाने जाणवते. याशिवाय पिढ्यानपिढ्यांचे अज्ञान, दारिद्र्य, अंधश्रद्धा आणि प्रस्थापितांपासून दूर किंवा तुटक राहण्याची सवय त्यामुळे या जमाती शिक्षणापासून वंचित राहिल्या.

सारांश :- भारतातील विषम समाजव्यवस्थेमुळे आणि अंधश्रद्धेमुळे पिढ्यानपिढ्या उदध्वस्त झालेला भटक्या विमुक्तांचा तांडा माणूस म्हणून सन्मानाने जगण्यासाठी आजही संघर्ष करीत आहे. कधी प्रस्थापित समाजव्यवस्थेत राहून तर कधी प्रस्थापित समाजव्यवस्थेला नाकारून. आज गरज आहे त्यांना माणूस म्हणून स्वीकारण्याची!!

संदर्भ ग्रंथ सूची

1) जाती आणि जमाती- रामनाथ चव्हाण, मेहता पब्लिकेशन हाउस पुणे, प्रकाशन वर्ष १९८९ पेज न ४३

2) महाराष्ट्रातील भटका समाज : संस्कृती व साहित्य – डॉ. नागनाथ धों. कदम, प्रतिमा प्रकाशन पुणे, प्रकाशन वर्ष- १९९५ पेज न १९१
3) भटक्या विमुक्तांचा जाहीरनामा- राठोड मोतीराज, मोतीराज राठोड प्रकाशन औरंगाबाद, प्रकाशन वर्ष १९८८, पेज न ४८
4) महाराष्ट्रातील भटका समाज : संस्कृती व साहित्य – डॉ. नागनाथ धों. कदम, प्रतिमा प्रकाशन पुणे, प्रकाशन वर्ष- १९९५ पेज न १९३
5) वडार समाज इतिहास आणि संस्कृती – भीमराव व्यंकप्पा चव्हाण, स्वाभिमान प्रकाशन, औरंगाबाद प्रकाशन वर्ष- २००७
6) भटक्या विमुक्तांचे सामाजिक, शैक्षणिक जीवन व समस्या- प्रा. रामनाथ चव्हाण, मासिक साहित्य चपराक दिवाळी अंक २०१४

गोपाळ समाजजीवन

ललिता मानसिंग गोपाळ
मराठी भाषा व वाङमय विभाग,
डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा
विद्यापीठ, औरंगाबाद
Email Id : lalitagopal1@gmail.com

सारांश :

भारत देश हा बहुसांस्कृतिक, बहु धार्मिक, बहुभाषिक देश आहे. विविध संस्कृतीचा आपला देश आहे, म्हणूनच संपूर्ण जगभरात त्याची स्वत:ची एक विशिष्ट अशी ओळख आहे. भाषिक, सांस्कृतिक आणि प्रादेशिक विविधता असूनही भारतीय लोक राष्ट्रीय एकता व सचोटी राखण्यात यशस्वी ठरले आहेत. भारत देश हा प्राचीन संस्कृतीपैकी एक स्वतंत्र असणारा देश आहे. भारताबाहेरील निरनिराळ्या प्रदेशातून लोक भारतात आले ते येथील संस्कतीशी एकरूप झाले यातून एक संमिश्र भारतीय संस्कृती आकारास आली. भारतीय समाजरचना ही विविधतेवर आधारलेली आहे. भारतात विविध धर्म, जाती, जमाती, वंश, लिंग इत्यांदींचे प्राबल्य आहे.

पारिभाषिक शब्द : बहुसांस्कृतिक, बहु धार्मिक, बहुभाषिक, प्रादेशिक विविधता, गोपाळ

प्रस्तावना :

भटक्या विमुक्तांच्या बेचाळीस जाती-जमाती महाराष्ट्रभर पसरलेल्या आहेत. या प्रत्येक जाती-जमातीची ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आणि आर्थिक बाजू वाचकाला एक अनोखे मानवी जीवनविश्व दाखविते. या भटक्या विमुक्त जाती-जमातींना 1871 च्या क्रिमिनल ट्राईब्ज ॲक्टमुळे गावगाड्यापासून एकाकी, अलिप्त व भटकंतीचे जीवन जगावे लागले. त्यामुळे या भटक्या विमुक्त जाती-जमातींनी त्यांच्या पारंपरिकतेला, त्यांच्या रूढी-प्रथा व रीतीरिवाज व समजुतींना जपले. 'गोपाळ'ही भटक्या जमातींपैकी एक जमात आहे. या जमातीचे जीवन सुध्दा इतर जाती-जमातींपेक्षा भिन्न स्वरूपाचे दिसून येते. या जमातीची सामाजिक, सांस्कृतिक अभिव्यक्तीही भिन्न स्वरूपाची दिसून येते.

गोपाळ समाजाची सामाजिक स्थिती :

'गोपाळ' या नावावरूनच असे म्हणता येते की, 'गो' म्हणजे गाय आणि 'पाळ' म्हणजे पाळणारा, पालन-पोषण करणारा समाज म्हणजे गोपाळ. गाई पाळणा-या या गोपाळ समाजाच्या संदर्भात मांडे म्हणतात की, "गोपाळांचा समाज आणि पशुपालनाचा विशेषत: गोपालनाचा व्यवसाय वेदकाळाइतका प्राचीन असल्याचे दिसते. गाई पाळण्याच्या या व्यवसायावरून त्यांना गोपाळ नाव पडले असावे."[1] यावरून वेदकाळापासून गोपाळ समाजाचा व्यवसाय गोपालनाचा होता असे म्हणता येते.

हा समाज गावोगावी भटकंती करून गायी-म्हशींचा व्यवसाय करतो. महाराष्ट्रात सर्वच जिल्ह्यांमध्ये या समाजाचे वास्तव्य दिसून येते. हा समाज श्रीकृष्णाला मानतो. त्यामुळे गोपाळ समाजाचा संबंध थेट श्रीकृष्णाच्या यादव काळात लावला जातो. याविषयी भारतीय संस्कृतीकोशामध्ये असे सांगितले आहे की, "श्रीकृष्ण हा गोपाळ समाजाचा प्रमुख देव होय. गोपाळ शब्दाचा अथवा त्यांच्याशी संबंध आहे अशी स्थळे म्हणजे गोपपूर, गोमंतक, गोवर्धन, कृष्णानदी, कान्हेरी, कन्नड, कान्हदेश इ. होत."[2] गोपाळ समाज हा वेगवेळ्या ठिकाणी विखुरला गेला आहे. महाराष्ट्रात सुरुवातीला हा समाज वाशिम जिल्ह्यातील 'बाभूळगाव' येथे जमला असावा. त्यामुळे महाराष्ट्रातील गोपाळांचे मूळ ठिकाण 'बाभूळगाव' मानले जाते.

गोपाळ समाज हा भटका समाज आहे. सततची स्थलांतरे, स्थावर मालमत्तेचा अभाव, अंधश्रध्दा व व्यवसनाधिनता, निरक्षरता इत्यादी समस्यांमध्ये हा समाज ग्रासलेला होता. या समाजाचा पारंपरिक व्यवसाय गायी-म्हशींचे संगोपन करणे, त्यांची खरेदी-विक्री करणे हा असल्यामुळे गावोगावच्या उघड्या कुरणांवर, माळरानांवर गाई-म्हशी चारण्याचे काम करत होता; परंतु,

कालांतराने या मोकळया कुरणांवर, माळरानांवर शासनाची मालकी आल्यामुळे गाई-म्हशी चारण्याचे काम दिवसेंदिवस अवघड होत गेले. याचा परिणाम गोपाळांच्या जीवनमानावर झाला. पारंपरिक व्यवसायावर गदा आल्यामुळे त्यातून मिळणा-या उत्पन्नाचे प्रमाण अल्प झाले. त्यामुळे त्यांच्या प्राथमिक गरजा पूर्ण होऊ शकत नाहीत. म्हणून हा समाज नाइलाजाने पोटाची खळगी भरण्याकरिता गुन्हेगारीकडे वळला. चो-या करून स्वत:ची उपजीविका भागवू लागला. गोपाळ समाजाने त्यांच्या पारंपरिक व्यवसायाशिवाय वेगवेगळे व्यवसाय करणे देखील रास्त समजले. एखादा व्यवसाय करूनही जेव्हा त्यांचा उदरनिर्वाह होत नसे, तेव्हा अशाप्रसंगी गावो-गावी भिक्षा मागूनही हे लोक स्वत:ची उपजीविका चालवत असत.

आज इथे तर उद्या तिथे भाकरीच्या शोधात गोपाळ समाज फिरत असतो. गोपाळ समाज अंगमेहनतीची कामे करतो. डोंबा-यांचा खेळ करतो. या समाजाला उपजीविकेचे निश्चित असे कोणतेच साधन नव्हते. यामुळे शेतामध्ये ज्वारी, बाजरीच्या कणसांची चोरी, फळभाज्यांची, फळांची चोरी हा समाज करत असे. अन्यथा एखाद्याची कोंबडी, बोकड उचलून आणत. हे सगळे करण्यामागे भूक हीच केंद्रस्थानी असे. धान्याची कणसे चोरली तरी गुन्हा नोंदविणारी शासनव्यवस्था त्या काळात होती. भूक लागली तर खायला अन्न नाही, विकासाची कोणतीच संधी नाही, त्यामुळे गोपाळ समाजाच्या मूलभूत गरजा पूर्ण होत नसल्यामुळे या समाजात गुन्हेगारीचे प्रमाण वाढले. मुळातच दारिद्र्याने पछाडलेला हा समाज गुन्हगारीकडे वळल्याचे दिसून येते. पिढ्यान्-पिढ्या भटकंती करूनही उपजीविकेचे निश्चित साधन यांना प्राप्त झालेले नव्हते. गोपाळ समाजातील एखाद्या माणसाचा मृत्यू झाला तर त्याला पुरण्यासाठी नीट जागा मिळत नसे. त्यामुळे त्यांच्या जगण्याची कायमच वाताहत झालेली दिसून येते.

गोपाळ समाजातील लोक गावाबाहेर त्यांची पाल मांडून राहत असत. तीन दिवसांपेक्षा जास्त त्यांना एका गावात राहण्याची मुभा नव्हती. ज्या गावाबाहेर यांना मुक्काम करायचा असे तेव्हा त्या गावच्या पाटलाला हजेरी द्यावी लागे. यामध्ये गोपाळांची माणसं किती आहेत, त्यांच्याकडे कोण-कोणते पशू-प्राणी आहेत, त्यांची संख्या किती? या शिवाय गोपाळाकडे काय-काय सामान आहे? यांचीही माहिती द्यावी लागत असे. त्यांची हजेरी लागली नाही तर मात्र, या गोपाळ समाजाला गुन्हेगार समजून हाल-हाल करून गावातील लोक व पोलीस त्यांना मारत असत. त्यामुळे मार खाण्यापेक्षा हजेरी लावणे ते कटाक्षाने पाळत असत.

गोपाळ समाज सारखा फिरस्तीवर असल्यामुळे कोणाला मूलबाळ जरी झाले तरी त्यांच्या जन्माची नोंद ठेवत नसत. हा समाज अडाणी असल्यामुळे एका कुटुंबात दहा-दहा, बारा-बारा मुलां-मुलींचा जन्म होत असे.

गोपाळ समाजाकडे गावातील लोक वाईट नजरेने बघत, गुन्हेगार म्हणूनच बघत. या समाजात शिक्षण घेणे सुध्दा पाप समजले जात असे. त्यामुळे या समाजात शिक्षणाचे प्रमाण खूपच कमी होते. शिक्षण घेणे म्हणजे समाजाच्या विरुध्द, जातपंचायतीविरूध्द उचललेले पाऊल असे समजत असे. केवळ शिक्षण घेतल्यामुळे जातीबाहेर टाकण्याच्या घटना देखील या समाजात दिसून आलेल्या आहेत.

आज गोपाळ समाज थोड्या-फार प्रमाणात का होईना प्रगतीपथावर आहे. त्यांची जीवनशैली बदलत चालली आहे. पालाच्या निवा-यांचे आता विटा, सिमेंटच्या घरांमध्ये रुपांतर झालेले आहे. गोपाळ समाज हा ग्न्न्-ए या प्रवर्गात मोडतो. यास 2.5 टक्के या प्रमाणात आरक्षण मिळते.

गोपाळ समाजाच्या सांस्कृतिक परंपरा :

प्रत्येक समाजास एक वेगळी संस्कृती लाभलेली आहे. ती संस्कृती म्हणजे समग्र समाजाची एक जीवनपध्दती किंवा जीवनमार्ग असतो. त्या-त्या संस्कृतीतील मूल्यव्यवस्थेमुळे त्या समाजाच्या संस्कृतीला वेगळेपण आलेले असते. या संस्कृतीमुळेच समाज टिकून राहतो. संस्कृतीशिवाय समाजाची कल्पना करता येत नाही. म्हणूनच समाज आणि संस्कृती या एकाच

नाण्याच्या दोन बाजू मानल्या जातात. भटक्या विमुक्त जाती-जमातींनी त्यांचे जीवन जगत असताना स्वत:ची अशी उप-संस्कृती निर्माण केली. या संस्कृतीचे संक्रमण एका पिढीकडून पुढच्या पिढीकडे अनुवांशिकतेने होत गेले. गोपाळ समाजाचीही स्वतंत्र अशी संस्कृती दिसून येते. यात त्यांचे दैवदैवत, सण, उत्सव, त्यांची जगण्याची व अभिव्यक्त होण्याची पध्दत, त्यांची स्वत:ची अशी न्यायव्यवस्था, स्वत:ची अशी सांकेतिक भाषा, वेशभूषा, केशभूषा, त्यांचा पारंपरिक व्यवसाय, प्रथा, परंपरा, रूढी, कल्पना, आचार-विचार, श्रध्दा-अंधश्रध्दा, लग्नपध्दती, मर्तविधी या सर्वांचा यात समावेश होतो. पूर्वी गोपाळ समाज हा गुन्हेगारी पध्दतीने जरी जगत असला तरी त्यांनी स्वत:च्या लोकसंस्कृतीला जपले होते. ही लोकसंस्कृती आजही टिकून आहे.

गोपाळ समाज हिंदू धर्मातील सर्व सण-उत्सव पाळतात. संक्रांत, होळी, नागपंचमी, दसरा, दिवाळी हे सारेच सण पारंपरिक पध्दतीने साजरे करतात. फार पूर्वीपासून मढी येथे होळी पेटविण्याचा मान गोपाळ समाजाकडे आहे. आजही मढी येथे गोपाळ समाज होळीचा सण साजरा करतो. गोपाळ समाजाची देवदेवतांवरील श्रध्दा व उपासना आजही टिकून आहे. त्यांची व्रतवैकल्ये, पूजा-अर्चा, उपास हे सर्व गोपाळ समाज पाळत असतो.

गोपाळ समाजाने स्वत:ची अशी न्यायव्यवस्था निर्माण केली आहे. त्यालाच 'जातपंचायत' असे म्हणतात. या जातपंचायतीचे नियम अलिखित स्वरूपाचे असले तरी जातपंचायतीचा आदर करणे हे समाजातील सर्व लोकांना बंधनकारक होते. जातपंचायतीच्या विरूध्द वर्तणूक करणा-या व्यक्तीला समाजाबाहेर काढण्यात येत असे. मढी येथील जातपंचायत गोपाळांचे हायकोर्ट समजण्यात येत असे. येथे केलेला न्यायनिवाडा अंतिम स्वरूपाचा असे. या जातपंचायतीत लोकांना समज येण्यासाठी तसेच न्यायनिवाडा करण्यासाठी लोककथा सांगण्याची पध्दत प्रचलित होती.

गोपाळ समाज हा गुन्हेगार समाज असल्यामुळे त्याने स्वत:ची अशी सांकेतिक भाषा निर्माण केली होती. ज्याला पारूषी भाषा असे ही म्हणतात. आपली पारूषी भाषा इतरांना समजू नये याची दखल गोपाळ समाजाने घेतली. मुळातच हलाखीचे जीवन जगणे, नशिबी आलेली भटकंती यामुळे लाचार, अपमानित आणि विषम जीवन या लोकांच्या वाट्याला आले. त्यातून त्यांची भाषा आणि सांकेतिक भाषा विकसित होत गेली. भटकंती करणा-या गोपाळ समाजाला आपण आपली प्रगती करावी असे वाटतही असेल, पण त्यांच्यात असलेले मागासलेपण, आर्थिक दुर्बलता, भूतखेते व देवदेवतांच्या जंजाळातून बाहेर पडावे की न पडावे या संभ्रमात ही माणसं वेळ घालवून त्यांना संस्कृतीशी एकरूप झालेली असावीत.

गोपाळ समाजाने स्वत:ची अशी जातगावे निर्माण केली. त्यांनी त्यांच्या भाषिक आणि सांस्कृतिक पर्यावरणात स्वत:ची बोली, रूढी, परंपरा टिकवून ठेवल्या. गोपाळ समाजातील समूहाच्या वृत्ती-प्रवृत्ती, मूल्ये, ध्येय, प्रथा, मानवी ज्ञान, समजुती, पशुपालन, पूजा-अर्चा, जपतप, मंत्रतंत्रे, आराधना यांनाही त्यांनी टिकवून ठेवले.

गोपाळ समाजात विविध सण, उत्सव प्रसंगी लोकगीत गाऊन त्यांनी त्यांच्या संस्कृतीचे संवर्धन केले. त्यांची लग्नपध्दती, लग्नात म्हणावयाची गाणी, त्यांचे शिष्टाचार त्यांनी जपले. लग्न जमल्यावर टाळी टिळयाचा कार्यक्रम, काही ठिकाणी दीड व काही ठिकाणी तीनचे मान, बस्त्यांची पंगत, हळदीची पंगत, हळदीच्या दिवशी बोकड कापून पंगत दिली जात होती. लग्नाच्या पंगतीत नवरीकडून गोड जेवण दिले जात असे. लग्न झाल्यावर वेगवेगळे कार्यक्रमही होत असत.

गोपाळ या जमातीत मुलगा किंवा मुलगी जन्माला आली तर समाजाला पाचवी द्यावी लागते. पुरुषाने मिशा काढू नयेत, हातावर गोंदू नये, असा समाजाचा दंडक होता. जर कोणी या विरूध्द वागले तर तो गुन्हा समजला जात होता. मुलगा वयात आल्यानंतर त्याची चांदीच्या वस्त-याने दाढी काढली जात असे. एखादी व्यक्ती दाढी न करताच मरण पावली असेल तर त्याच्या नातेवाइकांकडून मातीवर 'दाढी दिवस' घेतला जात असे. गोपाळामध्ये पुरुषाचा मृत्यू झाल्यास तिस-या दिवशी बोकडाचा बळी देवून त्या व्यक्तीचा ओटा करून 'दिवस पंगत' दिली जात होती. या समाजातल्या प्रथा, परंपरा व रीतीरिवाजाचे त्यावेळी एक

अस्तित्त्व होतं. आज परिवर्तनाची कास धरून त्यात काही बदल करून जुन्या व अनिष्ट चालीरीतींना मूठमाती देऊन गोपाळ समाजजीवन जगत आहे.

समारोप

गोपाळ या भटक्या समाजाची संस्कृती त्यांच्या सामाजिक, संास्कृतिक जीवनातून प्रतित झालेली आहे. प्रत्येक जाती-जमातींना त्यांची जीवन जगण्याची एक चौकट आखून दिलेली असते. या चौकटीतच राहून त्या व्यक्तीला जीवन जगावे लागते. समाजविघातक कृत्य केल्यास जातपंचायतीकडून त्या व्यक्तीस कठोर शिक्षा होत असते. त्यामुळे जातपंचायतीस त्याकाळामध्ये महत्त्व होते. भाषा माणसाच्या अभिव्यक्तीचे प्रमुख माध्यम आहे. गोपाळ समाज मराठी भाषा बोलत असला तरी ग्रामीण भागात वास्तव्य करणा-या गोपाळ समाजाच्या मुखातून जी ग्रामीण बोलीभाषा व्यक्त असते ती भाषेचे सौंदर्य अधिक वाढवत असते. किंबहुना या बोली मुळेच भाषेमध्ये जिवंतपणा जाणवत असतो. या शिवाय गोपाळ समाज पारूषी भाषा बोलतो कारण यातून समाजांतर्गत त्यांचा भाषिक व्यवहार सुकर व्हावा हे यामागचे प्रयोजन असते.

संदर्भ ग्रंथ

1) मांडे प्रभाकर, गावगाड्याबाहेर, गोदावरी प्रकाशन, सावेडी, अहमदनगर, प्रकाशन वर्ष 2017, पृष्ठ क्र. 81.

2) शास्त्री महादेव, (संपा.), भारतीय संस्कृतीकोश, खंड - 3, पृष्ठ क्र. 138.

'वळंबा' आत्मकथन : सामाजिकता

वीणा रमेश गुलदेवकर
पिएच. डी. संशोधक विद्यार्थी
मराठी विभाग,
डॉ बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा
विद्यापीठ , औरंगाबाद.

सारांश :

'वडार' ही जमात भटक्या-विमुक्त जाती-जमातींमध्ये असलेली एक जमात आहे. या जमातीमध्ये शिक्षणाचे प्रमाण हे अल्प आहे. 'वडार' समाज हा संपूर्ण भारतामध्ये विखुरलेला असून वेगवेगळ्या राज्यामध्ये त्यांची भाषा ही भिन्न स्वरूपाची आहे. ओरिसा, आंध्र, कर्नाटक, गुजरात, केरळ, महाराष्ट्र या ठिकाणी हा समाज मोठ्या प्रमाणात आढळतो. 'वडार' समाज हा शिक्षणापासून वंचित असल्यामुळे दारिद्र्यामध्ये जीवन जगत आहे. 'वडार' समाज हा सतत भटकंती करीत असे. हा समाज ओरिसापासून स्थलांतरित झालेला दिसतो. श्रीलंका व नेपाळ या देशामध्ये सुद्धा हा समाज अस्तित्वात आहे. श्रीलंकेमध्ये 'भोवी' म्हणून ओळखला जातो.

बीज शब्द : वडार, अस्पृश्य, पोटजाती, पाथरवट, जाती वडार

प्रस्तावना :

'वडार' समाजाचे सिंधू संस्कृती निर्मितीमध्ये मोठे योगदान आहे. 'वडार' जमात ही प्राचिन आहे. सिंधु घाटातील सभ्यता, तसेच संस्कृती यांच्याशी या जमातीचे ऐतिहासिक स्वरूपाचे संबंध जाणवतात. मानव समाजाच्या प्राचीन उत्क्रांतीच्या काळामध्ये इतिहासामध्ये पाषाण युगात दगडापासून गृहउपयोगाच्या वस्तू त्याचप्रमाणे अवजारे बनविण्याचे कौशल्य हे 'वडार' जमातीने भारताला दिलेले आहे. ओरिसामधील सूर्यमंदिर हे 'वडार' जमातीचे मूळ स्थान ओरिसा मानण्यात येते. त्याचप्रमाणे वेरूळमध्ये असणारे कैलास लेणे हे 'वडार' जमातीने संपूर्ण जगाला दिलेली एक देण आहे.

'वडार' समाज हा वस्तूचा निर्माता असून ते शिल्पकार आहेत. 'वडार' जमातीच्या काही पोटजाती आहेत. त्यांच्या व्यवसायावरून हे प्रकार पडलेले आहेत.

1. गाडी वडार
2. माती वडार
3. जाती वडार
4. पाथरवट

या पोटजातींचे रिवाज, भाषा, रूढी, परंपरा, राहणीमान हे समान आहे. व्यवसाय मात्र भिन्न आहेत. या पोटजातीत स्त्रिया व पुरुष हे अंगमेहनतीची काम करतात. त्यात भेदभाव आढळत नाही. त्यांचा प्रमुख व्यवसाय हा दगड फोडणे, बांधकाम करणे, मजुरी करणे होय.

'वडार' समाजाचे फारसे साहित्य हे उपलब्ध नाही. 'वडार जमातीतील शिक्षण घेतलेल्या मंडळींनी आपले समाजातील अनुभव हे आत्मकथनाच्या माध्यमातून मांडलेले आहे. असेच शिवमूर्ती भांडेकर यांनी 'वळंबा' आत्मकथनातून आपल्या आयुष्याचा परिपाठ मांडलेला आहे.

वळंबा आत्मकथन :

वळंबा या आत्मकथनातून फक्त त्यांचे जीवन आलेले नाही, तर 'वडार' जमातीतील सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक चित्रणे आली आहेत. आत्मकथेसंदर्भात शरणकुमार लिंबाळे म्हणतात, "आत्मकथा ही एका व्यक्तिची असली तरी ती त्या समाजाची प्रातिनिधिक रूप वाटते, एकेक आत्मकथा एकेका जमातीचे चरित्रच झाली आहे."[१]

वळंबा या आत्मकथनामध्ये भूतकाळातील कष्टापुढे यातनामय जीवनाचे प्रभावी रूप जाणवते. प्राचार्य शिवमूर्ती भांडेकर यांनी समाजातील उच्च-निच्चतेला नाकारणाऱ्या वडिलांच्या संदर्भातील जीवनविषयक वृत्तात मांडण्याकरिता वळंबा लेखनाचा घाट घातलेला असला तरी त्यातून त्यांचे जीवन हे नकळतपणे रेखाटलेले आहे.

वळंबा आत्मकथन सूत्रे :

1. आपल्यावर अन्याय झालेला आहे याची निसंकोचपणे वाच्यता करणे.
2. आपल्यावर झालेला अन्याय ज्या समाजाकडून झाला आहे त्याला अन्यायाची जाण करून देणे.
3. आपल्याकडे समाजाने एक 'माणूस' म्हणून बघावे अशी अपेक्षा बाळगणे .

'वडार' जातीचा असणारा इतिवृत्तांत आणि बाप-लेकाने घेतलेला शिक्षणाचा वसा म्हणजे 'वळंबा' होय. या आत्मकथनात शिवमूर्ती भांडेकरांनी त्यांचा जीवनसंघर्ष हा मांडलेला आहेच, त्याशिवाय 'वडार' जमातीचा इतिहासही विस्तृतपणे चित्रित केला आहे. बालाजी इंगळे म्हणतात, "त्यांची जीवन कहाणी व हा इतिहास वेगळा करताच येत नाही" [२] अशा प्रकारे जमातीचा इतिहास आणि जीवनाची संघर्ष कहाणीचा सरमिसळ यात आहे.

सामाजिकता :

शिवमूर्ती भांडेकर यांनी 'वळंबा' आत्मकथनामध्ये 'वडार' आत्मकथनामध्ये वडार समाज-जीवनाचा आलेख मांडलेला आहे. या आत्मकथनानुसार वडार समाजाची असणारी पाळेमुळे ही विजयनगर याठिकाणी सापडतात. विजयनगर उभारण्याकरिता वडार समाजाने मोठे कार्य केलेले आहे. वडार समाजाने आपल्या कलाकुसरीतून दगडांना टाकी हातोड्याच्या साहय्याने आकार देऊन शिल्प घडविले, मुर्त्या बनविल्यात, दगडापासून मूर्ती घडविणारी ही जमात शिल्प आणि स्थापत्य शास्त्रामध्ये निपुण असल्याचे जाणवते, उदरर्निर्वाहाकरिता त्यांना गावोगावी भटकंती करावी लागते, पाट, वरवंटा, उखळ, खलबत्ता, जाते तयार करून ते विकतात. त्याव्यतिरिक्त रस्त्याचे काम, दगड फोडण्याचे काम करतात. ही जमात गुन्हेगार जमात म्हणून देखील ओळखली जाते. ज्या गावामध्ये काम मिळेल तिथे पाल ठोकून ते वास्तव्य करतात. चूल पेटवून मिळेल ते खातात. ते मांसाहार मोठ्या प्रमाणात करतात. बकरी, बोकड, डुक्कर, उंदीर यांचे मास खातात शिक्षणाचे प्रमाण कमी आहे. त्यामुळे मुले मोठी झाली कि त्यांना दगडाचे घडाई-जुडाईची काम शिकविले जाते. मुलांची लग्न ही लवकर करण्यात येतात, त्यांच्यामध्ये अंधश्रद्धा व व्यसनाधीनता मोठ्या प्रमाणावर आढळते. अस्पृश्य समजल्या जाणाऱ्या या वडार जमातीला गावातील देवळात त्याचप्रमाणे पारावर बसण्याची मनाई आहे. या जमातीत गाई, म्हशी, गाढव, बकरी, डुकरे पाळली जातात. गाढवाच्या पाठीवर पाटे, वरवंटे जकात लादले जातात व त्याची विक्री केल्या जाते.

कष्टाची काम करणारी ही जमात रस्त्याच्या कडेला आपली झोपडी बांधून तेथे दगडी वरवंटे, जाते विकून उदरनिर्वाह करीत असत. पण त्यांचे पावसाळ्यात हाल होत असत. त्यासंदर्भामध्ये शिवमूर्ती भांडेकर म्हणतात कि, "पावसाळा सुरु झाला कि, आमच्या लोकांचे खूप हाल व्हायचे विशेषतः आषाढ, श्रावणात त्यांचे हाल कुत्रे खात नसत. सततच्या पावसामुळे बांधकाम बंद पडायची. कामच नाही म्हटल्यावर घरात पैसे कुठचा येणार. इतरांसारखा बाच्या हातालाही काम नसायचे. जाती घडी हि आपुली काम नसायचं. जाती घडी ही आपुली साथा खाओ पीओ और मजा करो, उद्याची चिंता कशाला करायची ही वडारांची वृत्ती असल्यानं पावसाळ्याची तरतूद करण्याच्या भानगडीत गडीमाणस पडत नसत. बायकाच आपाआपल्या परीनं पैसे, मूठमूठ धान्य जमा करुन ठेवत."[३] अशाप्रकारे वडार समाजाची वाताहत होते. दगड काम करीत असतांना त्यांच्या हातांना दुखापत होत असते. पण ते त्याकडे दुर्लक्ष करीत काम करीत असतात. वडार समाजाला कष्ट केले तरच खायला मिळते. दुःख आणि दारिद्र्याने होरपळून निघणाऱ्या जीवनाचा प्रत्यय 'वळंबा' आत्मकथनातून येतो.

सामाजिक संघर्ष :

शिवमूर्ती भांडेकर यांनी 'वळंबा' आत्मकथनामध्ये सामाजिक संघर्ष हा रेखाटलेला आहे. शिवमूर्ती भांडेकर यांचे आजोबा इंडी या गावात राहत असत व कधी ते कामानिमित्त बाहेर जात परंतु वर्षातील काही दिवस इंडित वास्तव्यात असल्याने

त्यांचे जातभाई त्यांना 'इंडी बाडुंगलोर' म्हणायचे. त्यांना एका गावाहून दुसऱ्या गावी कामासाठी जाताना या जमातीच्या प्रत्येक माणसाकडे गाव पाटलाच्या सही शिक्क्यांचा हिंडण्याफिरण्यासाठीचा दाखला सोबत असणे आवश्यक असे. तो दाखविल्याशिवाय त्यांना एका गावावरून दुसऱ्या गावी जाता येत नसे. गावामध्ये आल्यावर पाटलाला तो दाखला दाखवून घरातील माणसं व जनावरांची नोंद केल्या जात असे. जर दाखला नसल्यास त्यांना गुरांच्या कोंडवाड्यामध्ये जेरबंद केले जाई. दोन-दोन दिवस अन्नपाण्याशिवाय ठेवायचे. बाया लेकरं रडीत, पण कारभाऱ्यांना द्या येत नसे.

शिवमूर्ती भांडेकर यांनी एक अनुभव यात मांडलेला आहे. ते वडार जातीचे असल्याकारणाने त्यांच्याविषयी अस्पृश्यता पाळली जात होती. दुसरीमध्ये असतांना त्यांचे बरेच मित्र झाले होते. त्यांच्यासोबत ते खेळत. त्यांच्या घरी जात तेव्हा त्यांना घराबाहेरच उभे केले जाई. आलूर गावातील वडार समाजातील लोकांना मंदिरात प्रवेश नव्हता. त्यांना जर पोथी ऐकायची असेल तर दुरूनच ऐकावी लागत असे. लेखकाचे वडील हे सुधारणेचा पुरस्कार करणारे असतात मुलांना शिक्षण देण्याकरिता धडपडतात. लेखकाच्या भावाचे शाळेत नाव नोंदविण्यासाठी जातात तेव्हा मास्तर त्यांना झिडकारतो ते मास्तराच्या पाया पडण्यासाठी जातात पण मास्तरांना तो अधर्म वाटतो. त्याचे कारण म्हणजे समाजामध्ये असणारी वर्णव्यवस्था होय. लेखकाचे वडील खजुरीला निगप्पाच्या घराचे बांधकाम करतात तेव्हा लेखकाची आई शिवमूर्तींना खर्चाकरिता पैसे आणण्याकरिता खजुरीला पाठवते. शिवमूर्ती चालत जात असतात. चालून थकल्याने त्यांना तहान लागते. तेव्हा लेखकाचे वडील निगप्पाच्या बायकोला पाणी मागतात तेव्हा ती शिवमूर्तींना लोखंडी टोपल्यात पाणी पिण्यास देते. आपण काय जनावर आहोत. असे ते उद्गारतात व ते पाणी पीत नाहीत.

शिवमूर्ती भांडेकरांना अस्पृश्य असल्याचा अनुभव हा ते उस्मानाबाद जिल्हा शिक्षक संघटनेचे अध्यक्ष झाल्यावरही येतो. कळंब दौऱ्यामध्ये एक शिक्षक त्यांच्या सहकारी वकिलाला लेखकाची ओळख हा उमरग्याचा, उद्गिरकडचा वडार आहे अशी करून देतात. या शिक्षित असणाऱ्या शिक्षकांच्या वक्तव्यावरून बुरसटलेल्या समाजाच्या मानसिकतेचे दर्शन घडते.

संदर्भ :

1. लिंबाळे, शरणकुमार. "दलित आत्मकथा : एक आकलन. पुणे : दिलीपराज प्रकाशन, पुणे, २ ऑक्टोबर २००८, पृ. १२६.
2. इंगळे, बालाजी. “एकमत, पुरोगामी विचारांचे दैनिक, वळंबा वरील परीक्षण " उस्मानाबाद, १३ एप्रिल २००८.
3. भांडेकर, शिवमूर्ती. 'वळंबा' भूमी प्रकाशन : लातूर, प्रथमावृत्ती ५ सप्टेंबर २००७, पृ. क्र. १३.

लमाणांच्या आर्त वेदनांचे स्पंदन:लदनी

श्री. गौरीशंकर दत्तात्रय खोबरे,
संशोधक विद्यार्थी ,
पुण्यश्लोक अहिल्यादेवी होळकर
सोलापूर विद्यापीठ , सोलापूर
संपर्क - 8788177517

सारांश :

दलित आत्मकथनातील संघर्षाचा लढा जितका समाजाशी निगडीत असतो तितकाच स्वत:ला प्रकट करताना विद्रोहाची कास धरून संघर्षाने पेटलेला जणू निखाराच असतो. जातीव्यवस्थेमुळे संघर्षमय जीणं वाट्याला आल्याने ते आत्मकथनाच्या माध्यमातून साहित्यात अविष्कृत होतं आणि वास्तवाच भान येतं. या दलितासोबतच भटक्या-विमुक्तांच्या जीवन संघर्षात शिक्षण दूरगामी व परिणामकारक ठरलं. या समाजातील लोकांची आत्मकथने मराठी साहित्याला आशयसमृध्द करण्यात अग्रेसर ठरली. मोगलांच्या काळात राजस्थांनातून उपजीविकेसाठी भटकंती करत लमाण किंवा बंजारा समाज संपूर्ण भारतात विखुरला गेला. कामधंदयाच्या शोधात पोटाची खळगी भरण्यासाठी हा समाज एका ठिकाणाहून दुसऱ्या ठिकाणी भटकत राहिला. या समाजाचं वेदनाकारी, हृदयद्रावक जगणं नामदेव चव्हाण यांनी 'लदनी' या आत्मकथनातून प्रातिनिधिक स्वरुपात मांडलेलं आहे. प्रस्तुत'लदनी' या आत्मकथनातून लेखकाच्या वाट्याला आलेला अपमान, तिरस्कार, खडतर व पशुवत आयुष्य, कुटुंबाची होरपळ यांचा सामना करत शिक्षण हेच परिवर्तनाचे साधन मानून न्यायदंडाधिकारी पदापर्यंत पोहोचण्याची त्यांची जिद्द प्रत्ययास येते.'लदनी' केवळ साहित्यगुणांनी संपन्न असं आत्मकथन नाही तर तो एक व्यापक अर्थानं लमाण-बंजारा समाजाचा मागील शतकाचा व्यापक सामाजिक पट आहे. म्हणून मराठी साहित्यात'लदनी' प्रकाशित होणं ही महत्त्वाची भर आहे.'[१] या आत्मकथनात लेखकाच्या वयाच्या पस्तीशीपर्यंतचा कालखंड आला आहे.

पारिभाषिक संज्ञा : लमाण, बंजारा, छावणी, आत्मकथा, नायकप्रधान संस्कृती, आदिवासी, भटके विमुक्त, दलित.

लदनी आत्मकथनातील मी:

लेखक नामदेव चव्हाण हे तांड्यात लमाण या भटक्या समाजात जन्माला आले होते. लमाणांच्या तांड्याला कुठेही कायमस्वरूपी वास्तव्यास थारा नसायचा. गावकुसाबाहेर या समाजाच्या पदरात उपेक्षित जीणं बांधलेलं.'गायी-गुरांच्या पाठीवरच आमचा संसार- लदनी'[२] या वाक्यातून लेखक लमाण समाजाच जगणं आणि वास्तव याचे चित्र उभे करतो. गायी-बैलाच्या पाठीवर चंबुगबाळ लादून सतत एका जागेवरून दुसऱ्या जागी भटकाव लागायचं. गावोगावी फिरून पालं ठोकून स्वत:च्या व भावंडाच्या आयुष्यात आलेल्या दु:खाने माखलेल्या अनुभवाचे भावविश्व 'लदनी' मधून व्यक्त होते.

जन्मापासूनच लेखक भीषण वेदनांचा साक्षीदारचा होता. चुंगी ता.अक्कलकोट येथील डोंगरी मोरे यांच्या मळ्याजवळील छावणीतील लेखकाच्या जन्माची मन हेलावून टाकणारी चित्तरकथा लेखकाची याडी(आई) सांगायची. गुरांच्या गोठ्यात रक्तबंबाळ अवस्थेत जन्माला आलेला नामदेव स्वत:चे अस्तित्व सांगताना जन्मत:च माझ्या नशिबी रक्तच रक्त होतं असे उध्दिग्न मनाने म्हणतो.'नाळ कापायला चाकू नव्हता की सुरा नव्हता. शेवटी गुऱ्हयांच्या गोट्यात पडलेल्या चिपाड्याने माझी नाळ कापण्याचा प्रयत्न केला, पण नाळ कापता कापत नव्हती. शेवटी दगडाने ठेचून नाळ तोडून टाकली. जन्मजातच रक्तबंबाळ.'[३] गुरांच्या शेणामधून ज्वारीचे दाणे मिळवून त्यापासून खिचडी बनवून ही भावंडे आपल्या पोटाची भूक शमवायचे. कनिराम म्हणजेच नामदेवचे बाबा अशिक्षित असूनही या विदारक परिस्थितीतून बाहेर पडण्यासाठी पोरांच्या शिक्षणाकडे डोळसपणे पहायचे. पोरांना त्यांनी शाळेत धाडले. त्यांनी पोरांना नियमित अभ्यासाला बसविले. नामदेव बालपणी नदीच्या पाण्यात हुंदडत, जंगलातील रानमेव्याचा आस्वाद घेत, बाबा व याडीला कामात हातभार लावत वाढला होता. अंगावरचे फाटलेले कपडे, केसात उवा-लिकांचे साम्राज्य असले तरीही बाबांच सपान उराशी बाळगून नामदेव आपल्या शिक्षणात रमत गेला. नामदेव दुसरीच्या

वर्गात शिकत असताना वर्गात आला की मुलांचा गोंधळ सुरू व्हायचा. 'नाम्या आला रे, नाम्या आला रे, लमाण तांडाss झिपरीला गोंडाss लमाण तांडाss झिपरीला गोंडाss' असे ओरडायचे.[४] गावातील लोकांनी केलेली हेटाळणी, पोलिसांनी कुटुंबाला दिलेला अघोरी त्रास, भुकेने निर्माण होणारी व्याकुळता, दारूच्या भट्टीजवळ गेलेलं बालपण, हायस्कूल मध्ये चड्डी चोरीचा झालेला आरोप, यामधून नामदेवला समाजातील विरोधाभास प्रखरतेने जाणवला. लोकशाही देशात माणसाला जनावरापेक्षा भयानक जगणं सोसाव लागतं. त्यांनी या प्रत्ययकारी वेदनाना अश्रुतून मोकळं करण्याऐवजी शिक्षण आणि लेखणीच्या माध्यमातून व्यक्त केले आहे. नामदेव चपळगाव येथील ग्रामीण विद्या विकास विद्यालयात आठवी शिकला. पुढे नववी व दहावीपर्यंतचे शिक्षण बाळे येथील ज.रा.चंडक प्रशालेत पूर्ण झाले. नामदेव लहानपणापासूनच काटक व शरीराने धडधाकट होता. शाळेतील मास्तर त्यांची कामे नामदेवला सांगत असायचे. त्यांच्या मुलींना उचलून एस. टी. स्टँडपर्यंत नेणं, घरी पाणी आणणे, शाळेला दांडी मारणाऱ्या पोरांना उचलून आणणे अशी कामे करावी लागायची.'पण काहीही असो, मला लहान वयातच मास्तरांची सेवा करण्याची संधी मिळाली.'[५] असे लेखक म्हणतो.

लमाण समाजाचे चित्रण :

बंजारा समाजाला रोजगार व उदरर्निवाहाचा शोध घेण्यासाठी सतत गावोगावी भटकत राहावं लागायचं. आधीच्या गावातील पोलिस पाटलाचे चांगल्या वर्तुणकीचे सर्टिफिकेट दुसऱ्या गावाच्या पोलीस पाटलांना दाखवूनच माळरानावर पालं ठोकायला परवानगी मिळायची. लेखकांनी वि.म.कुलकर्णीच्या कवितेतील

'चालला लमाणाचा तांडा| एका गावाहूनी दुजा गावाला ||[६]

या दोन ओळीचा संदर्भ देत लमाणाच जगणं कसं असतं, हे 'लदनी' या पुस्तकात सांगितले आहे.या समाजाच्या अस्थिर, भटक्या, दु:खी, पीडादायक, पशुवत जगण्याचा उच्चवर्णीयांनी नेहमीच फायदा उचलला.

छावणीतल्या लोकांचा पेहराव बघूनच गावातील लोक त्यांना दूर करायचे. पुरुष लोक धोतर,बाराबंदीचा शर्ट, डोक्यावर फेटा नेसायचे तर बाया चोळी,लेहंगा,डोक्यावर ओढणी नेसत. श्रीमंताच्या शेतामध्ये राबराब राबणे,खडी फोडणे, हातभट्टीची दारू गाळणे, जांभळं विकणे, अशी मिळेल ती कामे करून कधी उपाशी तर कधी अर्धपोटी राहून कुटुंबातील लोकांची गुजराण होत असे.

नामदेव चव्हाण यांनी या आत्मकथनातून लमाण जातीतील लोकांच्या आहारातील चिंचात गूळ टाकून तयार केलेले आंबट पाणी'फऊसू', गव्हाची लापशी, चुरमो, गव्हाची खीर, शिकार करून आणलेलं मटण, बोकडाच्या रक्तात ज्वारीचे पीठ व पाणी मिसळून शिजलेल्या मटणात टाकून बनविलेली सळोई अशा पदार्थांचा उल्लेख केला आहे.'सळोई म्हणजे बंजारा छावणीतील सगळ्यात आवडता पदार्थ. बंजारा लोक कोठेही गेले तरी सळोई करतातच. सळोई खाणाऱ्यालाच सळोईची चव कळते.'[७]

आजही बंजारा लोक उपाशीतपाशी राहून खितपत पडलेले आढळतात.त्यांच्याकडे मालकीच असं काहीच नाही. शेतावर मोलमजुरी करून, ऊसतोड करून जीवन जगताना आढळतात. असे असले तरी या समाजातील चालीरीती, सण-समारंभ, नवस, या परंपरा जोपासल्या जात आहेत. तांड्यातील लग्नाची प्रथा तब्बल महिनाभर पार पाडली जाते.लग्नाच्या अगोदर एक महिनाभर नवरदेव नवरीच्या घरी राहायला येतो. सार्वजनिक उकिरड्याजवळ नवऱ्याला बसवून तेथून मिरवणुकीने त्याला नवरीच्या घरी आणले जाते. मग साडी-तांडणे,वरदाई,गोठ यासारखे कार्यक्रम महिनाभर झाले की शेवटचे चार दिवस लग्नविधीचे होतात. हळदीचा कार्यक्रम झाला की, घोटा घासणे हा कार्यक्रम उरकतात. वडत्या तिसऱ्या दिवशी लग्न लावतो मग कोळ्या खाण्याचा कार्यक्रम होतो. पुढे सुपारी खेळणे आणि शेवटी सुवाडी होऊन लग्न पूर्ण होई. तांड्यातील सर्वजण या लग्नात सहभागी असतात. बारसे, होळी, या प्रसंगी बंजारा समाज आपली परंपरा जोपासत आहे.

लदनी आत्मकथनातील स्त्री-जीवनाचे चित्रण :

लेखकाची आई(याडी) सीताबाई ही या आत्मकथेतील मुख्य स्त्री पात्र साऱ्या लमाण समाजातील स्त्रीयांचे प्रतिनिधित्व करते. आपल्या मुलांवर जिवापाड प्रेम करणारी याडी अशिक्षित असूनही बाबांच्या सोबत मुलांच्या शिक्षणाकडे डोळसपणे पहायची. नामदेवला शाळेत घालायला याडी सोबत आली. तेव्हा गावातल्या पोरांनी चिडवलेल बघून याडीने समजूतदारपणे दिलेलं बळ नामदेवच शिक्षण सुरू करण्यासाठी लाखमोलाच ठरलं.चपळगाव वरून शाळा सोडून आल्यामुळे नामदेवला बाबांनी खूप मारल तेव्हा कळवळणारी माय सीतायाडी आगतिक असूनही पोराच्या शिक्षणासाठी ठाम राहिली. भल्या पहाटे उठून घरची कामे उरकून बाबासोबत दारू गाळण्याला हातभार लावणारी याडी खूपच सोशीक होती. बंजारा बाया तांड्यावर दारू प्यायला आलेल्या गावातील लोकांच्या व पोलिसांच्या अत्याचाराला धाडसाने सामोरे जायच्या. सगुणाबाईने नशेत धुंद असणाऱ्या स्त्रिलंपट लोकांच्या विपरीत चाळयाला त्या कधीही भीक घातलं नाही. हलगीच्या तालावर बंजारा बाया ताल धरून नाचत असतात. बंजारा बायांचा'ढावलो', होळीला नाचगाणे तर खूपच खास आहे. शिक्षणात सातत्य राखणारी नामदेवची बहीण विठाबाई, निरागस व गोडस छोटी बहीण सोनल, बाळंतिणबाईच्या सुखरूप प्रसूतीची जबाबदारी पेलणारी पेमलामामी, लहानपणी लग्न झालेली पन्हाभावजय, हायस्कूलमध्ये चोरीचा आळ आल्यावर नामदेवची आस्थेने विचारपूस करणाऱ्या पाटील मॅडम, उच्च शिक्षण चालू असताना कुटुंबाची जबाबदारी पेलणारी लेखकाची पत्नी लक्ष्मीबाई अशा अनेक स्त्री व्यक्तिरेखा लमाण समाजातील स्त्रीजीवनावर प्रकाश टाकतात.

पोटासाठी हातभट्टीत दारू गाळण्याची हतबलता :

पडेल ते काम करून पोटाची भूक मिटविण्यासाठी लमाण समाज मोलमजुरी करायचा, खंडाने शेती करायचा,जंगलात प्राण्यांची शिकार करायचा. जेव्हा कुठे कामच मिळत नव्हतं तेव्हा स्वाभीमान बाजूला ठेवून दारू भट्टी पेटवून दारू गाळण्याचे काम करण्याशिवाय कोणताच पर्याय त्यांच्यापुढे उरत नव्हता. अर्थात दारू गाळण्यानेही त्यांचं पोट भरत होत अस नाही. आपल्या'लदनी' या आत्मकथनातून लेखकाने दारूचा व्यवसाय किती कष्टप्रद होता आणि त्यामुळे अख्ख्या तांड्यात कधी कधी मोठी संकटे कशी यायची;याबद्दल अतिशय भीषण वास्तव मांडले आहे. पोलीस हप्ता वसूली करूनही तांड्यावर रेड टाकायचे.पुरुष मंडळी लपून बसायचे. पोलीस तांड्यातील बायांना घाणेरड्या भाषेत शिवीगाळ करायचे, बायांच्या अंगचटीला लागायचे, फुकटची दारू ढोसायचे, सगळं रसायन सांडायचे. एवढच काय जाताना दारूच्या बाटल्या खिशात घालून जायचे. याशिवाय लोक उधारीवर दारू घेऊन जायचे पण पैसे वेळेवर मिळायचे नाहीत. चोरी, दरोडा यापासून लमाण समाज दारू गाळण्याच्या व्यवसायामुळे लांब होता. गावच्या श्रीमंत आणि दारुड्या लोकांना लमाणाची दारू चालायची, लमाणाच्या बाया चालायच्या पण लमाण समाज चालत नव्हता. एकीकडे पोलिसांची भीती आणि दुसरीकडे गावातल्या लोकांची अरेरावी, लंपटपणा यांच्यामुळे छावणीतल्या लोकांच्या तोंडचा घास हिरावून घेतला जात होता. याविषयी मनात विचारांचे काहूर माजलेल्या अवस्थेत लेखक म्हणतो, 'माझं जीवन सतवासतवीतच चालू होतं. माणूस माणसाशी असं का वागतो? आम्ही वाईट की ते वाईट? आमचं चुकतं का त्यांच चुकतं ? कोण श्रेष्ठ आणि कोण कनिष्ठ? याच उत्तर मला सापडलं नाही.'¿ पोटासाठी हतबल अवस्थेत नाइलाजाने दारू गाळण्याचे एक शापित काम लमाण समाज करत राहिला आहे.

लदनी आत्मकथनातील ग्रामीण जीवनाचे चित्रण :

गावापासुन दूर असणारी लमाणाची छावणी नायकप्रधान संस्कृती जोपासणारी असते. त्याचबरोबर रिती, रुढी,परंपरा आणि आपली लमाणी (गोरमाटी) बोलीभाषा यांची जपणूक करणारी आहे. नायक हा तांड्याचा प्रमुख असतो. नायकाला मदत करण्यासाठी कारभारी व पंचमंडळी निवडली जाते. लमाण समाजाची वस्ती कमी लोकांची असते. झोपडीत किवा उघड्यावर पाल टाकून आपला संसार हालअपेष्टा सोसत दिवस काढायचे. सर्व लमाण तुळजाभवानी मातेचे व श्रीसंत सेवालाल यांचे निस्सीम भक्त असतात. देवीच्या नावाने बोकडाचा बळी दिला जायचा.

'लदनी' मध्ये कुरनूर, चुंगी, चपळगाव, निलेगाव या गावातील ग्रामीण जीवनाचे वर्णन आढळते. लेखकाला शिक्षणाचा लळा लावणारे टिंगरे गुरुजी, पोलीस पाटील बाळकृष्ण पाटील, गावची खबर ठेवणारा बाज्या न्हावी, पोष्टमन नबीलाल, गोपाळ

चांभार, हॉटेलवाला भीमराव काळे, महेबूब खाटीक, वर्गमित्र तानाजी भंवर इ. व्यक्तिरेखांच्या वर्णनातून तत्कालीन ग्रामीण जीवन अधोरेखित होते.

निष्कर्ष :

आदिवासी, भटके विमुक्त, दलित हे या देशाचे मूळ नागरिक असूनही त्यांना दरोडेखोर,फिरस्ते,लफंगे ठरविले. लमाण समाज हजारो वर्षापासून लवणाचा व्यापार गायी गुरांच्या पाठीवर लदनीच्या साहाय्याने करत होता. आजही त्यांच्या वाट्याला उपेक्षितांचं जीण वाढून ठेवलेलं आढळते.पण याची चाड या संवेदनाहीन, भावनाहीन समाजाला अजिबात नाही. निवृत्त जिल्हा व सत्र न्यायाधीश नामदेव चव्हाण यांच्या'लदनी' या आत्मकथनातून गरिबीत भटकं आणि लाचारीचं जगणं नशिबात येऊनही बाबा कनिराम यांनी दूरदर्शी पणाने शिक्षणासाठी आपल्या मुलांना प्रोत्साहित केल, समाजाशी लढण्याचं बळ पुरवले, याच प्रभावी दर्शन होतं. उच्चवर्णीय लोकांकडून होणारी हेळसांड, जगण्यासाठीची धडपड, लमाण स्त्रियांना होणारा त्रास, समाजाने केलेलं शोषण सांगताना लमाण जातीचे विदारक वास्तव त्यांनी अत्यंत प्रामाणिकपणे व कठोरतेने या आत्मकथनातून सांगितले आहे. मराठी साहित्यात'लदनी' च्या रूपाने भटक्यांच्या वेदनेला आपल्या लेखनातून सामाजिक भान मिळवून देणाचे दिव्य कार्य नामदेव चव्हाण यांनी केले आहे.

संदर्भसूची:

१. लदनी,नामदेव चव्हाण,प्रगती प्रकाशन,२०१९,प्रस्तावना,पृष्ठ आठ
२. तैत्रव, पृष्ठ क्र.७
३. तैत्रव, पृष्ठ क्र.२
४. तैत्रव, पृष्ठ क्र.४०
५. तैत्रव, पृष्ठ क्र.४९
६. तैत्रव, पृष्ठ क्र.८
७. तैत्रव, पृष्ठ क्र.५४
८. तैत्रव, पृष्ठ क्र.७३

"शिक्षणमहर्षी डॉ. बापूजी साळुंखे यांचे विचार व कार्य आणि भटक्या विमुक्त जाती–जमाती"

सौ. शेख शबाना. एम.,
ग्रंथपाल, एस.जी.के कॉलेज, पुणे.
प्रा. सचिन बबन साळवे
एस.जी.के. कॉलेज पुणे.

सारांश :

शिक्षणमहर्षी डॉ. बापूजी साळुंखे यांनी हजारो वर्ष सामाजिक शैक्षणिक प्रवाहातून बाजूला पडलेल्या समाजाला शिक्षणाची आणि स्वत्वाची जाणीव करून दिली. बुद्ध, कबीर ,महात्मा फुले, राजर्षी शाहू व आंबेडकरवादी विचारांचा वारसा समाजाला प्राप्त होऊन समाज विवेकी आणि विचारशील बनावा या हेतूने त्यांनी शिक्षण संस्था उभी केली आणि सामाजिक व शैक्षणिक क्षेत्रामध्ये भरीव स्वरूपाची कामगीरी केली आहे. डॉ.बापूजी साळुंखे यांनी अनेक ज्ञानशाखा उभ्या केल्या. १९४२ च्या क्रांती लढ्यात त्यांनी सक्रिय सहभाग घेतला होता. डॉ. बापूजी साळुंखे यांच्या शैक्षणिक क्षेत्रातील या कार्याची दखल घेऊन शासनाने त्यांना दलित मित्र या पुरस्काराने सन्मानित केले. शिवाजी विद्यापीठाने त्यांना डि.लीट पदवी देऊन गौरविले आहे. बापूजींच्या तत्वज्ञान, विचार आणि कार्याचा सकारात्मक प्रभाव महाराष्ट्रातील बहुजन वर्गावर झाला. भटक्या विमुक्त जाती जमातीतील दारिद्र्य, अज्ञान व अंधश्रद्धा यात पिचत पडलेल्या या जमातीला डॉ. बापूजी साळुंखे यांनी आपल्या कार्याच्या माध्यमातून न्याय, हक्क, स्वातंत्र्य, समता मिळवून देण्यासाठी अहोरात्र प्रयत्न केले. शिक्षणासाठी तहानलेल्या भुकेलेल्या भटक्या विमुक्त जाती जमाती मधील लोकांच्या दारापर्यंत ज्ञान गंगोत्री नेऊन त्याचे वृक्षात रूपांतर केले. बापूजींच्या कार्याचा भटक्या विमुक्त जाती-जमातीतील लोकांच्या जीवनावर शैक्षणिक, आर्थिक, राजकीय, सामाजिक प्रभाव झालेला आपल्याला पाहायला मिळतो. बापूजींचा कार्याचा भटके-विमुक्त जाती-जमातीतील लोकांच्या जीवनावर झालेला प्रभाव आपण अभ्यासणार आहोत त्याचप्रमाणे बापूजींचे विचार आणि कार्य याचा आढावा घेणार आहोत.

पारिभाषिक संज्ञा : डि.लीट, भटक्या विमुक्त जाती-जमाती, रेगुलेशन २६, अनुसूचित जाती व जमाती, बेरड, बामटा, रामोशी, वडारी, छप्परबंद

महाराष्ट्रातील भटक्या विमुक्त जाती - जमाती :

भारतात काही जमातींची गुन्हेगार जमाती म्हणून शासकीय स्तरावर नोंद करण्याची व त्या अनुषंगाने त्यांना वागणूक देण्याची प्रथेची सुरुवात ब्रिटिश अमदानीच्या सुरुवातीच्या कालखंडात १७९३ मध्ये निर्माण केलेल्या " रेगुलेशन २६" या अधिनियमाने झाली. याचेच पुढे रूपांतर ठगी व डकॉइटी खात्याच्या निर्मिती झाली.१८६० मध्ये भारतीय दंड संहिता (इंडियन पिनल कोड) अमलात आला. या कायद्याने १९२४ साल च्या गुन्हेगार जमाती केंद्रीय अधिनियम (क्रिमिनल ट्राईबस सेंट्रल ऍक्ट) या कायद्यात रूपांतर झाले. हा कायदा १९५२ पर्यंत अंमलात होता. तो ३१ ऑगस्ट १९५२ रोजी रद्द करण्यात आला. आतापर्यंत गुन्हेगार जमाती म्हणून ओळखल्या जाणाऱ्या जाती-जमातींना विमुक्त जाती जमाती या सज्ञ ने ओळखण्यात येऊ लागले. गुन्हेगार जमाती म्हणून नोंदणी झालेल्या जाती जमाती ची लोकसंख्या १९२५ सालि ४० लाखाच्या आसपास होती.१९४९ साली या वर्गाची लोकसंख्या २२,६८,००० एवढी होती व यात ऐकून १२७ सामाजिक गटांचा अंतर्भाव झाला होता. अनुसूचित जाती व जमाती खेरीज अन्य जातीची नोंद जनगणनेच्या वेळी न करण्याचा राजकीय निर्णयामुळे १९५१ नंतर या वर्गाची निरनिराळे लोकसंख्या जनगणना अहवालात उपलब्ध नाहीत. १९५१ मध्ये या भागाची लोकसंख्या २४,६४,००० एवढी होती. महाराष्ट्रात १९८६ मधील शासकीय परिपत्रकानुसार २८ भटक्या जमाती व १४ विमुक्त जाती आहे.i .बेरड, बामटा, रामोशी ,वडारी, छप्परबंद

या १४ विमुक्त जाती आहेत. भटक्या जमातीच्या गटात गोसावी, बेलदार, भराडी ,भुते, चित्रकथी ,गारुडी ,घिसाडी, गोंधळी ,गोपाळ ,जोशी, कोलाटी, नंदीवाले, वासुदेव ,बहुरूपी या काही प्रमुख जमाती आहेत.

शिक्षणमहर्षी डॉ. बापूजी साळुंखे यांचे विचार व कार्य:

देशभक्त क्रांतीकारकांची भूमी म्हणून ओळखल्या जाणाऱ्या सातारा जिल्ह्याला लढवय्या वीरांबरोबरच संत परंपरेचाही वारसा लाभला आहे. हा वारसा जपत गोविंदराव ज्ञानोजीराव साळुंखे म्हणजेच शिक्षणमहर्षी परमपूज्य डॉ.बापूजी साळुंखे यांचा जन्म सातारा जिल्ह्यातील पाटण तालुक्यातील रामापूर येथे दि.९ जून १९१९ रोजी झाला.महाराष्ट्रातील शैक्षणीक विकासाचा इतिहास लिहिताना शिक्षणमहर्षी परमपूज्य डॉ.बापूजी साळुंखे यांनी शिक्षणक्षेत्रात केलेल्या प्रचंड कार्याचा आढावा घेतल्याशिवाय, त्याची नोंद घेतल्याशिवाय तो पूर्ण होऊच शकत नाही. त्यांचे या क्षेत्रातील कार्य फार महत्वाचे व अद्वितीय आहे. बापूजींनी शिक्षणाचा प्रचार व प्रसार करण्यासाठी स्वतःला झोकून दिले. तन, मन व धन अर्पन केले. अपार कष्ट उपसले. दारिद्र्य, अज्ञान व अंधश्रद्धा यात पिचत पडलेल्या दुःखी समाजाचा उद्धार करावयाचा असेल तर शिक्षणासारखे दुसरे प्रभावी साधन नाही हे बापूजींनी ओळखले होते. ‘ जीवनात उदात्तता वाढली पाहीजे. बोलण्याप्रमाणे कृती असली पाहीजे. तरच स्वतंत्र देशातील नागरिक सुसंस्कारी होतील. ‘ ‘ ज्ञान पवित्र आहे. ते मानसाने मिळवल्यानंतर मानसाचे जीवन पवित्र होईल. म्हणून ते पावित्र्याने दिले व घेतले पाहिजे. तरच त्याचे परिणाम इष्ट स्वरूपात दिसतील. हे पावित्र्य कटाक्षाने सांभाळून शिक्षणप्रसार झाला आणि होत राहिला तर समाज निकोप राहील, सदृढ बनत जाईल व पर्यायाने सुखी व समाधानी बनेल. ‘ या श्रद्धेने व बदलती परिस्थिती आणि बदलत्या सामाजिक गरजा यांना अनुरूप अशा चिरंतन तत्वांची व त्यांच्या आचरणाची आवशक्यता ओळखून बापूजींनी नवीन शिक्षणसंस्था स्थापन करण्याचे ठरविले. ज्ञान, विज्ञान आणि सुसंस्कार या त्रिसूत्रीवर आधारित सत्य, चारित्र्य, प्रामाणिकपणा, त्याग व सेवा या खडतर तत्वांचा अंगीकार करून श्री.स्वामी विवेकानंद शिक्षण संस्था १९५५ साली सुरू केली. अल्पावधीत या बीजाचे डेरेदार वृक्षात रूपांतर केले. शिक्षणासाठी तहानलेल्या, भुकेल्यांसाठी, दीन-दलितांसाठी त्यांच्या दारापर्यंत गंगोत्री नेऊन पोहचवली. सामान्य मानसांच्या झोपडीपर्यंत शिक्षणाची प्रकाशवाट खुली केली. बहुजनातील हजारो गुरुदेव कार्यकर्त्यांची कुटुंबे उभी राहीली. लाखो मुले शिकली. बापूजींनी शिक्षणाची गंगोत्री महाराष्ट्रासह कर्नाटक राज्यापर्यंत पोहचवली. आजसुद्धा लाखो विद्यार्थी बापूजींनी सुरू केलेल्या शैक्षणीक डेरेदार वटवृक्षाखाली आयुष्याची स्वप्ने प्रत्यक्षात उतरवतात. बापूजींच्या विचारांचे आचारात रूपांतर करीत श्री.स्वामी विवेकानंद शिक्षण संस्थेने सुमारे ४०० हून अधिक संस्कृती केंद्रे उभी करून शिक्षणाची ज्ञानगंगा आज सात दशकांनंतरही महाराष्ट्राच्या कानाकोपऱ्यात विद्यार्थ्यांना ज्ञानदानाचे कार्य करीत आहे.

बापूजींनी विवेकानंद शिक्षण संस्थेच्या निर्मितीतून एक आदर्श निकोप, संस्थात्मक स्वरूप महाराष्ट्राला दाखवून दिले आहे. बापूजींच्या आदर्श जीवनाचे व सुसंस्कृत मनाचे उत्कट चित्रन संस्थेच्या ब्रीदवाक्यात दृष्टीगोचर होते. “ ज्ञान, विज्ञान आणि सुसंस्कार यासाठी शिक्षणप्रसार “ हे श्री स्वामी विवेकानंद शिक्षण संस्थेचे ब्रीदवाक्य. बापूजींना या ब्रीदवाक्याचा जो नेमका अर्थ अभिप्रेत आहे तो असा. ज्ञान म्हणजे सत्य, प्रेम, चारित्र्य, प्रामाणिकपणा, पिळवणूक प्रवृत्तीस आळा, सेवा आणि त्याग यांचे ज्ञान. विज्ञान म्हणजे या तत्वांचे आचरण. हे आचरण केल्याने मनुष्य सुसंस्कारी बनेल व सुसंस्कारी मनुष्यच ईश्वराचा अविष्कार आहे. आणि यांसाठी शिक्षणप्रसारची आवशक्यता आहे. ही बापूजींची जीवन निष्ठा आहे. शिक्षणक्षेत्रातील बापूजींचे भव्य-दिव्य कार्य पाहून समाज त्यांना ‘ शिक्षणमहर्षी ‘ म्हणू लागला. महाराष्ट्र शासनाने त्यांना ‘ दलित मित्र ‘ या किताबाने गौरविले. ११ फेब्रुवारी १९८६ रोजी शिवाजी विद्यापीठाने त्यांना ‘ डी.लिट ‘ ही सर्वोच्च पदवी देऊन त्यांचा गौरव केला. अशा प्रकारे स्वतः चंदनासारखे झिजून बहूजन समाजास शिक्षणरूपी प्रकाश देणाऱ्या थोर महापुरुषाची प्राणज्योत ८ ऑगस्ट १९८७ रोजी पंचतत्वात विलीन झाली.शिक्षण महर्षी डॉ. बापूजी साळुंखे यांनी बुद्धीला सत्याकडे, भावनेला माणुसकीकडे, शरिराला श्रमाकडे घेऊन जाणारे शिक्षण देता यावे, हे उद्दिष्ट मनाशी बाळगून ज्ञान, विज्ञान आणि सुसंस्कार यांसाठी शिक्षणप्रसार हे ध्येय मनाशी बाळगून बहुजन आणि अदिवासी समाजांतील मुलांसाठी महाराष्ट्रांतील 380 संस्कार केंद्रांतून शिक्षणप्रसाराचे बहुमुल्य कार्य केले.शिक्षणमहर्षी

डॉ. बापूजी साळुंखे यांनी सर्वसामान्य बहुजनांच्या मुलांना शिक्षण देणारी विवेकानंद शिक्षण संस्था स्थापन करून समाजातील सर्व घटकांना शिक्षणाच्या प्रवाहात आणले. त्यांचे हे कार्य प्रेरणादायी आहे.

भटक्या विमुक्त जाती- जमाती वरील प्रभाव :

गाव गाड्या बाहेरील आणि शिक्षणापासून वंचित असलेला सर्वात मोठा घटक म्हणजे भटक्या विमुक्त जाती जमाती होय. कर्मवीर भाऊराव पाटील यांनी सर्वप्रथम भटक्या विमुक्त आणि बहुजन वर्गातील लोकांना शिक्षण मिळावे म्हणून रयत शिक्षण संस्थेची स्थापना केली. त्याच धर्तीवर बहुजन समाजाचे आणि भटके विमुक्त जाती जमातीतील लोकांना शिक्षण देण्यासाठी डॉ. बापूजी साळुंखे यांनी स्वामी विवेकानंद शिक्षण संस्था ची स्थापना केली. आज या शिक्षण संस्थेच्या माध्यमातून अनेक बहुजन व भटक्या विमुक्त जाती जमातीतील मुले शिक्षण घेत आहेत. भटक्या विमुक्त जाती जमाती ला खऱ्या अर्थाने शिक्षण देण्याचं कार्य हे बापूजी ने केलेला आपल्याला पाहायला मिळते. बापुजी खऱ्या अर्थाने शिक्षणाची ज्ञान गंगोत्री भटक्या विमुक्त जाती जमातीतील खेडोपाड्यातील गावागावातील शिक्षणापासून वंचित असलेल्या आणि समाजापासून दुर्लक्षित असलेल्या घटक म्हणजे भटक्या विमुक्त जाती जमाती त्यांच्यापर्यंत पोहोचण्यात यशस्वी झाले. बापूजींच्या शिक्षण कार्यामुळे अनेक भटक्या विमुक्त जाती जमातीतील विद्यार्थी शिक्षण घेऊन आज मोठ्या मोठ्या पदांवर कार्यरत आहेत. भटक्या विमुक्त जाती जमातीतील लोकांना समाजातील मुख्य प्रवाहात आणण्यासाठी बापूजींनी प्रयत्न केले. भटक्या विमुक्त जाती जमातीतील मुलांना शिक्षण घेणे हि खूप अवघड गोष्ट होती परंतु बाबूजींच्या कार्याने त्यांना शिक्षणाचे द्वार खुले करण्यात आले.भटक्या विमुक्त जाती जमातीतील स्त्रियांचे जीवन खूप हलाखीचे व दारिद्र्याचे आणि दुःखमय आहे. या मातीतील महिलांना न्याय मिळवून देण्यात खऱ्या अर्थाने श्रेय हे बापूजी ना जाते. भटके विमुक्त जाती जमातीतील महिलांना शिक्षण देऊन त्यांचे खऱ्या अर्थाने सबलीकरण बापूजींनी केले. आज स्वामी विवेकानंद शिक्षण संस्थेमध्ये महाराष्ट्रातील अनेक भागांमध्ये अनेक शाळा महाविद्यालय मध्ये भटक्या विमुक्त जाती जमाती तील मुली शिक्षण घेताना आपल्याला पाहायला मिळते. स्त्रियांना शिक्षणापासून वंचित ठेवले होते परंतु महात्मा फुले यांनी पहिल्यांदा स्त्री शिक्षणाचा पुरस्कार केला आणि डॉ. बापूजी साळुंखे यांनी समाजापासून दूर असलेला आणि दुर्लक्षित असलेला भटक्या विमुक्त जाती जमातीतील महिलांना शिक्षण देण्याचे आणि त्यांना शिक्षणाच्या माध्यमातून यांचे न्याय हक्क व स्वातंत्र्य मिळवून देण्यासाठी प्रयत्न केले. आज अनेक मुली शिक्षण घेत आहेत शिक्षण घेऊन स्वतःच्या पायावर उभ्या राहिल्या आहेत. अनेक मोठ्या पदांवर भटक्या विमुक्त जाती जमातीतील महिला कार्यरत असलेला आपल्याला पाहायला मिळतात त्याचे श्रेय बापूजींना जाते. या जमातीतील महिलांचे शोषण कमी झालेले आपल्याला पाहायला मिळते. खऱ्या अर्थाने भटक्या विमुक्त जाती जमातीतील महिलांना न्याय मिळवून देण्याचे कार्य हे बापूजींनी केले.

बापूजींच्या कार्याचा भटक्या-विमुक्तांच्या आर्थिक जीवनावर सुद्धा परिणाम झालेला आपल्याला पाहायला मिळतो. स्वामी विवेकानंद शिक्षण संस्था मध्ये अनेक भटक्या विमुक्त जाती जमाती मधील लोक कार्यरत आहेत. त्यांना रोजगार मिळवून देण्यासाठी बापूजी यांचे कार्य महत्त्वाचे ठरते. आर्थिक दृष्ट्या सबल झाल्याने या जमातीतील लोकांचे जीवनमान उंचावलेले आहे. अनेक लोक स्वामी विवेकानंद शिक्षण संस्थेच्या माध्यमातून शिक्षण घेऊन रोजगार प्राप्त करताना आपल्याला दिसतात. आर्थिक समानता प्रास्ताविक करण्याचे कार्य बापूजींचा कार्यातून आपल्याला पाहायला मिळते. आज भटक्या विमुक्त जमाती आपणास भटकंती थांबून एका जागेवर स्थिर झालेल्या पाहायला मिळतात. ही भटकंती थांबवण्यासाठी बापुजींची शिक्षण कार्य आणि विचार महत्त्वपूर्ण ठरतात. भटक्या-विमुक्तांना खऱ्या अर्थाने ज्ञानदान करण्याचे कार्य बापूजींनी केले. बापूजींच्या या कार्यामुळे भटक्या विमुक्त जाती जमातीतील लोकांमध्ये सामाजिक सुधारणा घडून आलेली आपल्याला पाहायला मिळते. आंध्र श्रद्धा, धार्मिक कर्मकांड, जातीव्यवस्था, आर्थिक मागासलेपण, निकृष्ट पद्धतीचे जीवनमान, सामाजिक रूढी आणि परंपरा या भटक्या

विमुक्तांच्या मुख्य समस्या आहेत. या सर्व समस्या बापूजींच्या कार्यामुळे नष्ट झाल्यासारख्या दिसत आहेत. आज या समाजामध्ये सामाजिक समता प्रस्थापित झालेल्या आपल्याला पाहायला मिळते. या समाजामध्ये राजकीय जागृती आणि प्रशासकीय ज्ञान असल्याचे आपल्याला दिसते. शिक्षणाच्या माध्यमातून बापूजींनी या समाजातील समस्या निर्मूलन करण्याचे कार्य केले. या समाजाला त्यांचे हक्क आणि अधिकार मिळवून देण्याचे कार्य बापूजींनी केले. भटक्या विमुक्त जाती जमाती ला खऱ्या अर्थाने स्वातंत्र्य हे बापूजी यांच्या कार्यामुळे मिळाले असे म्हणणे वावगे ठरणार नाही.

निष्कर्ष :

गाव गाड्या बाहेरील आणि समाजापासून दुर्लक्षित असलेला घटक म्हणजे भटके विमुक्त जाती जमाती होय. या जमातींना शिक्षणाच्या माध्यमातून समाजाच्या मुख्य प्रवाहात आणण्यासाठी बापूजींनी स्वामी विवेकानंद शिक्षण संस्थेची स्थापना केली. महाराष्ट्रातील कानाकोपऱ्यातील भागांमध्ये शिक्षण प्रसार केला या शिक्षण प्रसार कार्यामुळे शिक्षणापासून वंचित असलेला घटक म्हणजे भटक्या विमुक्त जाती जमाती यांना शिक्षण मिळाले. या समाजाला शिक्षणाच्या माध्यमातून सुशिक्षित आणि जागृत करण्याचे कार्य बाबूजींनी केले. या जमातीमध्ये राजकीय सामाजिक जागृती निर्माण झाली. या जमातीतील अज्ञान दूर झाले आणि ही भटकी जमात स्थिर होताना आपल्याला पाहायला मिळते. या जमातीतील लोकांचे जीवनमान उंचावलेले आपल्याला पाहायला मिळते. बापूजींचे शिक्षण प्रसार कार्य आणि विचार याचा प्रभाव आपल्याला समाजातील इतर घटका प्रमाणे भटक्या विमुक्त जाती जमाती वर सकारात्मक प्रभाव झालेला दिसून येतो.

संदर्भ :

१) बा. द.पाटील, " डॉ.बापूजी साळुंखे (व्यक्ती , कार्य आणि आठवणी '), सुपर प्रिंटर , बेळगाव, दुसरी आवृत्ती १९८७

२) प्रा.तू.पाटील, " शिक्षण महर्षी डॉ.बापूजी साळुंखे",पारख प्रकाशन, प्रथामावृती १९९२

३) प्रा. टी. ए. गवळी, "मला भावलेले गुरुवर्य बापूजी साळुंखे",प्रचार प्रकाशन कोल्हापूर, प्रथमावृत्ती २००५.

४) बा. द.पाटील, " स्मृती – गंध",स्वस्तिक प्रिंटर बेळगाव,प्रथम आवृत्ती १९९१.

५) डॉ.गजानन सुर्वे, " शिक्षण महर्षी परमपूज्य बापूजी साळुंखे(व्यक्ती आणि कार्य)",प्रथम आवृत्ती १९८१.

६) प्रा.महामने . ल.बा., "शिक्षण महर्षी डॉ. बापूजी साळुंखे", विद्या प्रितम प्रकाशन, प्रथम आवृत्ती १९९७.

७) प्रा.कु.करके, " ताज्या आठवणी" गंगा प्रिंटर प्रेस कोल्हापूर , प्रथम आवृत्ती १९९१.

८) चव्हाण रामनाथ , " भटक्या विमक्तांच्या अंतरंग", पुणे प्रथम आवृत्ती १९८९.

९) रेनके आयोग अहवाल (२००८), भटके विमुक्त आयोग.

१०) अत्रे. त्री.ना, " गावगाडा", वरदा प्रकाशन पुणे, द्वितीय आवृत्ती १९६१.

११) डॉ.ना. धो.कदम, "महाराष्ट्रातील भटका समाज: संस्कृती आणि साहित्य"

१२) चव्हाण रामनाथ, " जाती आणि जमाती"

१३) लक्ष्मण माने , " विमुक्त्यान : महाराष्ट्रातील विमुक्त जाती ऐक अभ्यास"

उपन्यास 'अल्मा कबूतरी': कबूतरा समाज का ताना – बाना

डॉ. सरोज पाटील
श्री शहाजी छ. महाविद्यालय, कोल्हापुर
मो.9921770661
Email-saroj120575@gmail.com

सारांश –

मैत्रेयी पुष्पा जी ने 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास द्वारा कबूतरा जनजाति की जीवनगाथा को पाठकों के सामने रखा है | भारतीय समाज की मुख्यधारा से किनारे फ़ेंक दिए गए ये लोग अपनी खास जीवनशैली के साथ जीते आए हैं | अंग्रेजों के गजेटीयरों में अपराधी जनजातियां संबोधित किए गए ये लोग देश के गली मोहल्लों में, शहरों के किनारों पर अल्पकालिक बस्तियां बनाकर सदियां गुजार देते हैं |

प्रस्तुत उपन्यास द्वारा लेखिका ने कबूतरा जनजाति का पूरा ताना-बाना यहाँ पर बुना हैं | जिसमें कबूतरा जनजाति की व्यवस्था, उनकी अपनी संस्कृति, रितरिवाज, जीवनशैली, प्रेमप्यार के किस्से, झगडे, अपराध की कहानियां, स्त्री जीवन आदि सबकुछ हैं | कबूतरा जनजाति को केंद्र में रखकर लिखे इस उपन्यास का प्रत्येक कबूतरा पात्र अपनी जातिगत विशेषताओं से परिपूर्ण है | ये पात्र धैर्य, वीरता, जुझारूपन, जिद, आक्रमकता आदि गुणों के बल पर जीवनराह पर अग्रेसर हैं | हर प्रतिकूलता, अवरोध को किनारे करने की जिद उनमें भरी हुई है | यह उपन्यास तीन पीढ़ी की संघर्षगाथा है, जहाँ पर लेखिका ने भूरीबाई, कदमबाई, अल्मा इन तीन प्रमुख स्त्री पात्रों के जरिए सदियों से रोती, झींकती, अपमानित, प्रताड़ित स्त्री प्रतिमा को त्यागने की सलाह दी है | ये स्त्री पात्र निर्णयक्षम एवं स्वाभिमानी हैं, वे किसी भी परंपरागत अपराधबोध की कल्पना से ग्रस्त नहीं हैं | साम, दाम, दंड नीति को अपनाकर अपनी राह खुली कर लेने के लिए ये पात्र तत्पर रूप में चित्रित हैं | वहीँ दूसरी ओर लेखिका ने इस वास्तव को भी उजागर किया है कि उपन्यास के स्त्री पात्र अपनी नैतिक मान्यताओं के साथ भले ही अग्रेसर बने हुए हो पर पुरुष प्रधान व्यवस्था के दुष्परिणाम से स्त्री वर्ग मुक्त नहीं हुआ है | इन घुमंतू वर्ग की महिलाओं की ओर देखने का नजरिया आज भी स्वच्छ नहीं हैं | प्रस्तुत उपन्यास द्वारा लेखिका ने परिवार एवं समाज में स्त्री जीवन की सार्थकता पर सवाल उठाया है | अत: समाज की मुख्यधारा से किनारे रख दिए गए इन लोगों की जीवन लड़ाई आज भी जारी है | लेखिका का उद्देश्य घुमंतू जनजातियों या इन महिलाओं के दु:खों का दुखड़ा रोना नहीं हैं बल्कि वे इन्हें मानवीय पहचान देकर उनका सकारात्मक रूप समाज के सामने लाने के लिए प्रयत्नशील है |

बीज शब्द – घुमंतू, अपराधी, जनजाति, डेरा

प्रस्तावना :

घुमंतू जनजातियां सदियों से भारतीय समाज में जीती आई है | समाज की मुख्यधारा से किनारे फ़ेंक दिए गए ये लोग अपनी जीवनशैली, अपनी परंपराए आदि के साथ जीते आए हैं |

अंग्रेजों के गजटों-गजेटीयरों में इन्हें अपराधी कबीले या सरकश जनजातियां संबोधित किया है | 'आज, भारत की ३१३ घुमंतू जनजातियां और १९८ विमुक्त जनजातियां हैं... उनमें से कई को अभी भी विमुक्त जाती या पूर्व अपराधिक जनजाति के रूप में वर्णित किया गया है |' (अपराधिक जनजाति अधिनियम – विकिपीडिया) सालों से देश के गली, मोहल्लों, शहरों के किनारों पर अल्प कालिक बस्तियां बनाकर रहनेवाले, एक जगह से दूसरी जगह अपने काबिले को साथ लिए घूमते रहनेवाले ये लोग घुमंतू कहलाए जाते हैं | अपनी रोजी रोटी का कोई ठोस साधन नहीं, शिक्षा की कोई खासी व्यवस्था नहीं, जिससे व्यवसाय नौकरी के रास्ते इनके लिए ठप्प से हैं | ऐसे में अनेकों बार अपराध, चोरी, डकैती का रास्ते बड़ी आसानी से इनके सामने आ जाते हैं | जिससे अखबारों, समाचारों में अपराध सुर्ख़ियों में दिखाई देनेवाले मदारी, सपेरे, बनजारे, पारदी, कंजर, नट, सांसी, बावरियां, कबुतरें, ऐसी अनेक सी जनजातियां हैं जो हमारे देश में सभ्य समाज के हथिये पर बैठे सदियां गुजार देती हैं |

मैत्रेयी पुष्पा लिखित, 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास घुमंतू जनजाति 'कबूतरा' को केंद्र में रखकर लिखा गया है | बुंदेलखंड में लगभग विलुप्त होती जा रही इस कबूतरा जनजाति का पूरा ताना-बाना लोखिका ने यहां बुना है | जहाँ पर कबूतरा जनजाति की व्यवस्था, उनकी अपनी संस्कृति, रितरिवाज, जीवनशैली, प्रेम प्यार के किस्से, झगड़े, अपराध की कहानियां, वीरता, कबूतरा महिलाओं की नैतिकता के नए मानदंड सब कुछ मौजूद है | जो घुमंतू जनजाति का पूरा पूरा चित्र पाठकों के सामने उपस्थित कर देता हैं |

जिंदा रहने की जिद –

घुमंतू जनजातियों के पास पैसे कमाने के ठोस साधन न होने से अक्सर ये लोग चोरी डकैती जैसे कुमार्गो का अवलंब करते नजर आते हैं | जिससे सभ्य समाज की नजरों में ये अक्सर तिरस्कृत रहते हैं | पर इस बात की कोई चिंता इन्हें नहीं होती | इनके सामने एक ही उद्देश्य होता है जिंदा रहना | इनका जीवन संघर्ष जिंदा रहने के लिए होता है |

प्रस्तुत उपन्यास की कबूतरा स्त्री कदमबाई का पति जंगलिया बड़ा वीर, धैर्यवान है | गांव के कुलीन कृषक मंसाराम ने उसके हुनर को पहचान लिया है, जिससे वह जंगलियों को साथ लेकर गांव में आड़े तिरछे काम करता है | अपने विरोधकों से लड़ने के लिए वह जंगलिया को लेकर नई नई योजनाएं बनाता है | उसकी नजर गांव के प्रधान लल्लू राजा की पुरानी अटारी पर है जहां सोने की हनुमान की मूर्ति स्थापित है | मंसाराम के आदेश पर जंगलिया उसे चुरा लाता है | मंसाराम उस मूर्ति को जंगलिया की हिफाजत में रखना चाहता है | इस पर इन्कार दर्शाते हुए जंगलिया कहता है, 'इस कदम' (जंगलिया की पत्नी) ने अभी तक सोना देखा नहीं| हम सोना चुरातें हैं, पर बैयरों को नहीं दिखाते | सजने संवरने का मोह पाल बैठी तो ? हमें तो रोटी चाहिए मालिक | (पृ.१८, अल्मा कबूतरी) उस क्षण मंसाराम को लगता है जैसे कबूतरा को सोना, चांदी, रुपया, धन नहीं चाहिए | बस जिंदगी बनी रहे, जैसे तैसे जिंदा रहे यही इन घुमंतू जनजातियों का जीवनलक्ष्य होता है | वे न तो सभ्य समाज की तरह साधन संपत्ति का सपना देखते है न अमीर बनने का | जैसे ये सारी बाते उनके लिए कभी बनी ही नहीं है | बड़े बड़े सपने देखने से वे कतराते हैं | केवल जिंदा रहने की जिद लेकर ये जनजातियां सभ्य समाज के हाशिये पर अपनी जिंदगी गुजर देती हैं |

अपनी जनजाति के प्रति अभिमान की भावना –

स्वतंत्र भारत में समाज की मुख्य धारा से किनारे फ़ेंक दिये लोग भले ही अपराधी कबीले के रूप में समाज में तिरस्कार के पात्र हो परंतु ये राणी पदमिनी, राणा प्रताप, झलकारी बाई से अपना संबंध जोडते हैं | वे मानते हैं की वीरता उनकी रगों में है | इसीकारण हर प्रतिकूलता का सामना वे बडी वीरता के साथ कर सकते हैं | वीरता, शूरता, जुझारूपन के संस्कार इन्हें अपने ही परिवार में संस्कार रूप में प्राप्त होते हैं |

कदमबाई अपने पति के पीछे अपने बेटे को कबूतरा संस्कारों से संस्कारित करना चाहती है | वह चाहती है कि पति जंगलिया का हुनर, वीरता अपने बेटे राणा में वैसे के वैसे आ जाए | राणा अपने पिता जंगलिया का नाम रोशन करें | जब उसे राणा में कबूतरा संस्कारों की कमी महसूस होने लगती है तब निराश बनी कदम बेटे का हौसला बढ़ाते हुए पति, जंगलिया के शब्दों को उसके सामने रखती है, 'जंगलिया कहता था – ये रोज रोज के जौहर है, नए नए पैंतरे निकलते आते हैं | बेटा आलस हमारा दुश्मन है | शिकार करेगा नहीं तो शिकार हो जाएगा |' (पृ.३९, अल्मा कबूतरी) बहुत समझाने के बावजूद राणा जब कबूतरों के पैंतरे सीखने में असफल दिखाई देने लगता है तब बड़ी वेदना के साथ वह बेटे को समझाती है, 'पगले गाय भैंस बसावटों की निशानी होती है और हमारी जिंदगी खरपतवार, कज्जा लोग उखाड़ने पर आमादा रहते हैं | देखता नहीं, पुलिस पीटने आ जाती है | ठेकेवाले बेबात ही हमें खदेड़ते हैं | पर बेटा हम भी कम नहीं भूखे प्यासे भी तो पखाने लूटने से बाज नहीं आते |' (पृ.३८, अल्मा कबूतरी)

इस प्रकार कबूतरा जाति की बहादुरी भरी बाते सुनाकर वह राणा का हौसला जगाए रखना चाहती है | उसमें कबूतरा जनजाति की वीरता, धैर्य, हिम्मत जगाना चाहती है | कदमबाई की तरह हर कबूतरा अपनी जाति के प्रति समर्पित है | कहीं न कहीं

उनमें इस बात का भय है कि यदि हम लड़ेंगे नहीं तो मिटा दिए जाएंगे | अपना अस्तित्व बनाए रखने की जिद उन्हें अधिकाधिक जुझारू एवं सजग बनाती है |

जुझारूपन –

जुझारूपन कबूतरा जनजाति की स्वतंत्र पहचान है | जिंदा रहने की जिद इन्हें अधिकाधिक जुझारू बना देती है | कदमबाई का पति जंगलिया अपनी उम्र के १२ वे साल से अपना पराक्रम दिखाने लगा था | केवल ९ वर्ष की आयु में उसने एक साइकलसवार की साइकल के पहिए में डंडा डालकर उसकी सोने की अंगूठी चूरा ली थी और रिवाज के अनुसार उसे कबीले के प्रमुख को देने से इन्कार किया था | अपनी शादी में उसके ससूर के पैसों को लौटाने का उसका इरादा बड़ा नेक था और उसे पूरा करने के लिए दस मन गेहू चुराने की हिम्मत दिखाई थी | बाद में मंसाराम के लिए उसने खूब सारे ऐसे काम किए जिसमें नैतिकता भले ही दिखाई न दे परंतु जिंदा रहने के लिए उसकी लड़ाई उसका जुझारूपन दिखाती है |

कबूतरा स्त्री भी बड़ी जुझारू होती है | समाज द्वारा प्राप्त उपेक्षा, उनके पुरुषों की चोरी डकैती, अन्य गुनाहों के कारण उनके पुरुषों का जेल में बंद रहना, स्त्रियों का यौनशोषण इन सबके बावजूद इनका जुझारूपन इन्हें विशेष बनाता है |

प्रस्तुत उपन्यास की भूरीबाई अपने पति के देहांत के बाद बिल्कुल अकेली हो जाती है | पुरुषों द्वारा शोषित होती है फिर भी अपने बेटे रामसिंग को पढ़ाने का लक्ष्य रखती है | इसके लिए उसे बार-बार बलात्कारित होना पड़ता है फिर भी वह अपने लक्ष्य पर अटल रहती है |

दूसरी पीढ़ी की कदमबाई पति जंगलिया के देहांत बाद अपना सौंदर्य, शराब बनाने का हुनर और कबूतरा संस्कारों के दम पर बेटे राणा का लालनपालन बड़ी हिम्मत के साथ कर लेती है | उसे राणा को कबूतरा जनजाति का पक्का प्रतिनिधी बनाना है | इसके लिए वह स्वयं उसे शराब पिलाती है | उसके हाथों में शस्त्र देकर उसे चोरी करने के लिए प्रवृत्त करती है | पर जब वह देखती है कि राणा में कबूतरा जनजाति के लक्षण नहीं है तब वह दु:खी तो खूब बनती है परंतु बिना हिम्मत हारे जीवनराह पर बनी रहती है | इन दोनों महिलाओं की तरह अल्मा कबूतरी राणा से विवाह का सपना देखती है, पर उसका सपना पूरा नहीं हो पाता | उसे अनेकों बार पुरुषों से शोषित होना पड़ता है | बाद में सत्ताधारी राजनेता के संपर्क में आने पर वह राजनीति का मूल्य जन जाति है | जिससे वह राजनीति का दामन थामकर अपनी जैसी निचली जातियों के लिए कुछ ठोंस कार्य करने का लक्ष्य बनाती है | अत: हर प्रतिकूलता को सीढ़ी बनाकर आगे बढ़ने, हर अवरोध को पार करनेवाली यह कबूतरा महिलाएं अपनी जाति का जुझारूपन प्रस्तुत करती हैं |

कबीले की महिलाओं का यौन शोषण –

स्त्री के प्रति अनादर की भावना स्त्री शोषण का मूल कारण है | स्त्री चाहे किसी भी वर्ग की क्यों न हो पर उसके प्रति पुरुषों की अनादर की भावना ही उसे शोषित बनाती है | इसे पुरुष वर्ग की मानसिक बीमारी कहना अधिक योग्य है | प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित कबूतरा जनजाति की लगभग हर महिला यौन शोषण की शिकार है | सदियों से इस जनजाति के स्त्री पुरुषों का नसीब जैसे लगभग तय हो चुका है | लेखिका ने लिखा है, 'कबूतरा पुरुष या तो जंगल में रहता है या जेल में ..... स्त्रियां शराब की भट्टियों पर या हमारे बिस्तरों पर |' (मलपृष्ठ, अल्मा कबूतरी) अर्थात उच्चवर्णीयों या सभ्य समाज के पुरुषों की दृष्टि में इन स्त्रियों का स्थान लगभग तय हो चुका है | सभ्य समाज की मुख्यधारा से बाहर फेंके गए इस समाज ने अपनी इस वास्तविकता को मूक बनकर स्वीकार किया है |

प्रस्तुत उपन्यास तीन पीढ़ियों की कथा प्रस्तुत करता है | यहां पर तीनों पीढ़ियों की महिलाओं के साथ कबीले की लगभग हर स्त्री यौन शोषण की शिकार बनी है | अधिकांशत: आर्थिक प्रतिकूलता से उभरने के प्रयास में थे महिलाएं यौन शोषण का शिकार बनी हुई है | सदियों से शोषण की इस परंपरा को उन्होंने जैसे स्वीकार लिया है | तीसरी पीढ़ी की अल्मा में इस बात को लेकर अस्वस्थता जरुर है | अपनी व्यथा को उसने खोला है | वह कहती है, 'अपनी देह को देखती हूं तो घिना जाति हूं |' अपने से ही घूरती नजरें.. टपकाती लारें.. फूहड़ सीत्कारे.. फाहशा गालियां.. सस्ती हरकतें छूने को ललचाती हथेलियां.. अगर इन सबको

लगातार गिरनेवाले कूड़े में तब्दील कर दूं तो अल्मा.. औरत रहूं ही नहीं | मैं बन जाउंगी कूड़े का विशाल ढेर ..पाताल से आकाश तक फैला | ज़माने भर की विकृतियों को ढोती गंदगी का पहाड़ | (पृ.२८७, अल्मा कबूतरी) कबूतरा जनजाति की लगभग हर स्त्री की मनोवस्था यही है | यहां पर लेखिका का कबूतरा स्त्री की मनोवस्था में झांकने का प्रयत्न लीक से हटकर है | उन्होंने इन स्त्रियों को प्राप्त पीड़ा, अन्याय, शोषण को इन महिलाओं की जीवनविसंगति के रूप में रेखांकित नहीं किया है | इन स्त्रियों ने प्राप्त प्रतिकूलता से जीवन से लड़ने की हिम्मत अपने आप में निर्माण की है | इन्होंने जीवन और वेदना के रहस्य को समझा है | वेदना से उभरकर आगे बढ़ने, अपने जीवन के लक्ष्य को साध्य करने का हुनर इन्होंने प्राप्त कर लिया है | दुःख पहचानने और दुःख बांटने का आत्मविश्वास इन महिलाओं ने प्राप्त कर लिया है | यह लेखकीय कौशल है कि उन्होंने कबूतरा स्त्री की व्यथा को उसकी तीव्र जीवन आस्था के रूप में रेखांकित किया है |

नैतिकता के मानदंडों में परिवर्तन –

प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने परंपरावादी विचारों को बिल्कुल किनारे कर दिया है | पुराने नैतिक बोध का खुलकर विरोध करते हुए इन्होंने नैतिकता के नए मानदंड प्रस्तुत किए हैं |

उपन्यास के पात्र जंगलिया, भूरीबाई, कदमबाई, अल्मा अपने तरीके से जीवनराह पर चलते दिखाई देते हैं |

तीन पीढ़ी की इस संघर्ष गाथा में पहली पीढ़ी की भूरीबाई पति देहांत के बाद बेटे रामसिंग को पढ़ाने का लक्ष्य लेकर जीवनराह पर अग्रेसर होती है, जिस दरम्यान उसे बार बार शोषित होना पड़ता है | यही स्थिति कदमबाई की है वह भी जंगलिया के देहांत बाद अपना अस्तित्व बचाने के लिए मजबूर अवस्था में चित्रित है | जहाँ पर उसे कुलीन मंसाराम के प्रति आकर्षण भी है और घृणा भी | पर वह मजबूर अवस्था में जीवन संघर्ष करती चित्रित है | तीसरी पीढ़ी की आल्मा राणा से विवाह का सपना टूटने की स्थिति में सत्ताधारी राजनेताओं के संपर्क में आने पर राजनीति के बलबूतें निम्न जातियों के विकास के लिए काम करने की ठान लेती है |

भले ही ये महिलाएं अपने जीवन संघर्ष में अनेकों बार नैतिकता को त्याग चुकी महिलाएं प्रतीत होती हो | परंतु लेखिका ने उन्हें नैतिकता के नए मानदंडो के साथ रेखांकित किया हैं | जहाँ पर यह दिखाई देता है कि ये महिलाएं परंपरागत नैतिक नियमों को साथ लेकर नहीं चल रही है | उनके पास निरंतर लड़ते रहने की उर्जा है | जीवनलक्ष्य हैं | सपने हैं | नैतिकता के नए मानदंडो के साथ वे अपना लक्ष्य साध्य कर रहीं हैं | यह घुमंतू जनजाति की महिलाओं की खासी उपलब्धि है |

निष्कर्षत: स्वतंत्र भारत में समाज की मुख्यधारा से किनारे फ़ेंक दिए कबूतरा समाज के संपूर्ण ताने-बाने को लेखिका ने पूरी सक्षमता से रेखांकित किया है | साथ ही प्रस्तुत उपन्यास के स्त्री पात्रों के भावविश्व को लेखिका ने अत्यत सूक्ष्मत: से खोला है, यह इस उपन्यास की महत्वपूर्ण उपलब्धि है | स्त्री को स्त्री के नजरिए से देखने का यह पर्यास अत्यंत सफल एवं संवेदनशील है |

संदर्भ ग्रंथ :

१) अल्मा कबूतरी – मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली |
२) स्त्री चिंतन की चुनौतियां – रेखा कस्तवार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली |
३) नए दौर की नारी – डॉ. शंभुनाथ द्विवेदी, दिया डिस्ट्रीब्यूटर कानपूर |

भटक्या समाजातील स्त्रियांची आत्मकथने

डॉ. सर्जेराव पद्माकर
डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर महाविद्यालय,
पेठ-वडगांव जि. कोल्हापुर.
मो.८३२९८१२०१२

सारांश :

दलित लेखिकांची आत्मकथने मराठी साहित्यात आत्मचरित्र या वाड:मय प्रकाराचे स्वतंत्र स्थान आहे. त्याला ' दीर्घ परंपरा आहे. सर्वसाधारणपणे वाचकांनी या वाङ्मय प्रकाराबद्दल आस्थेने कुतूहल दाखविलेले आहे. मराठी वाङ्मयाच्या प्रवासात अनेक वळणे घेत हा साहित्य प्रकार मान्यता पावलेला आहे. विविध टप्प्यांच्या आधारे त्याचे विश्लेषण केले जाऊ शकते. इतके वैविध्य त्यात आढळते. अनेक अभ्यासकांनी त्याचे वेगळेपण आणि वैशिष्टये वेळोवेळी दाखविण्याचा प्रयत्न केलेला आहे. मराठीमध्ये पुरुषांच्या आत्मचरित्रांची आत्मकथनांची परंपरा सांगता येते. तशी ती स्त्रियांच्या आत्मकथनांची सांगता येते. या परंपरेत आपल्या व्यवच्छेदक वैशिष्टयांनी ही आत्मकथने नटलेली आहेत.

आपल्या जगण्याचा पट कमीअधिक प्रमाणात अभिव्यक्त करण्याचा साहित्यप्रकार म्हणून आत्मकथनाला विशेष महत्त्व आहे. स्वातंत्र्योत्तर कालखंडामध्ये भारतीय संविधानाने कार्यान्वित केलेल्या शिक्षणाच्या सार्वत्रिकीकरणामुळे इथला दलित, आदिवासी, भटके, विमुक्त इत्यादी सर्वच वर्गाने आत्मकथनाद्वारे आपले जीवन मांडण्याचा प्रयत्न केलेला आहे यामध्ये भटक्या जमातीच्या विमल मोरे व जनाबाई गिऱ्हे यांच्या आत्मकथनाचा प्रस्तुत निबंधामध्ये विचार मांडला आहे.

पारिभाषिक संज्ञा : आत्मचरित्र, साहित्यप्रकार, गोपाळ, जातपंचायत, शिंदळकी करणे, गोंधळी समाज

'मरणकळा' जनाबाई गिऱ्हे

'गाव तिथं पालं आणिक पाणी तिथं पालं', 'खाली धरती वर आभाळ', 'हातावरचं आणा आणि हातावरचं खा' असं भणंग जीवन जगणाऱ्या भणंग भटक्या समाजातील एक जमात म्हणते गोपाळ. या गोपाळ जमातीत जन्मलेल्या जनाबाई कचरु गिऱ्हे यांचे सन १९९२ रोजी प्रकाशित झालेले 'मरणकळा' आत्मकथन मराठी साहित्य प्रांतात गोपाळ समाजाचे प्रतिनिधित्व करते. गोपाळ समाजातील एक मुलीचा शिक्षणासाठीचा संघर्ष आणि गोपाळ समाजाच्या सामाजिक, सांस्कृतिक स्थितीचे दर्शन घडविणारे आत्मकथन म्हणून त्याकडे पाहता येते. 'मरणकळा' आत्मकथनाची मांडणी अशा एकूण ९ प्रकरणामध्ये केली आहे. आत्मकथनाची सुरुवात गोपाळ समाजाची तत्कालीन स्थिती कशी होती. याच्या कथनाने होते. सुरुवातीला आजी आजोबांच्या आठवणी सांगत आहे अशी रचना लेखिकेने केली आहे. प्रत्येक प्रकरणाचे शीर्षक पाहिल्यानंतर त्यांच्या अंतरंगातील आशय लक्षात येण्यास मदत होते. आजीने सांगितलेल्या आठवणी, जमातीची भटकंती, भूकेचे चित्रण, भीक मागणे, चोऱ्या करणे, शिक्षणासाठीचा संघर्ष, जातपंचायत, लग्नाच्या पध्दती, लेखिकेचे डी.एड. पर्यंतचे शिक्षण, लग्न, संसार, नोकरीच्या निमित्ताने होणारी धावपळ, त्यातून होणारा अपघात, पुन्हा नव्याने उभे राहून नोकरीत स्वतःला गुंतवून घेणे अशा सलग क्रमाने लेखिकेने आपला जीवनप्रवास कथन केला आहे. त्यामुळे मरणकळातील आशय अनुभव संपन्न, सरळ रेषेत असलेला दिसतो.

ज्या माणसांना घर नाही, गाव नाही, एका गावामध्ये तीन दिवसांपेक्षा अधिक काळ राहता येत नाही अशा भटकंती करीत भीक मागणाऱ्या या समाजाला अन्न, वस्त्र, निवाऱ्यासारख्या मूलभूत गरजा भागविणे कठीण असते, ही माणसे पालामध्ये राहत असतात. त्यांना खायला पोटभर अन्न मिळत नाही. आठरा विश्व दारिद्रय अनुभवास येणाऱ्या या समाजाचे दर्शन आपल्याला 'मरणकळा' आत्मकथनातून घडते.

'मरणकळा' चे आशयसूत्र :

समाजव्यवस्थेने गुन्हेगारीचा शिक्का मारलेल्या या समाजाला स्वतःच्या मालकीचे गाव, घर, जागा असे काहीच नाही. माणसाचा मृत्यू झाला तर पुरण्यासाठीही जागा नाही. ऊन, वारा, पाऊस यातून संरक्षण करण्यासाठी या समाजाला कशाचाही

आधार नाही. पोटातील भूक भागविण्यासाठी चोरी करणे, भीक मागणे, अनेकविध सोंगे घेणे अशा परिस्थितीला त्यांना सामोर जावं लागत असतं. अशा समाजामध्ये जन्मलेल्या जनाबाई गिहे यांनी स्वतः बरोबरच या समाजाचे दुःख, वेदना आणि संघर्ष यांचे वर्णन करुन धगधगते समाजवास्तव आपल्यासमोर ठेवले आहे.

वडीलांनी जनाबाईला शाळेत घातले तेंव्हा समाजाने विरोध केला. मुलीला शाळा शिकवणे या समाजाला पटत नाही. अशा समाजातील मुलगी शिक्षण घेते, शिक्षिका होते. आपल्या समाजातील भयंकर जीवन जगणारी माणसे, त्यांची सततची भटकती, चालीरीती, रुढी, परंपरा आणि समजूती यामध्ये अडकलेली आहेत. दसरा, दिवाळी, शिमगा, पाडवा है सण भटकंती करत भीक मागत साजरे केले जातात. हा समाज देवभोळा असल्याने काही बरे वाईट झाले तर ते देवाने केले असे तो मानतो. त्यामुळेच 'आसं कसं झालं? आमच्यावर देव का कोपला? आम्ही का देवाचं घोडं मारलं का?"[१]" यासारख्या प्रश्नांमधून ते दृष्टिस पडते. समाजातील चालिरिती, रुढी, परंपरा, अज्ञान अंधश्रध्दा यांचे वेळोवेळी दर्शन घडते.

स्वतःला येणारे अनुभव, दुःख, समाजाशी, कुटुंबाशी संघर्ष, संघर्षातून होणारी भांडणे, मारामारी, गावातून केली जाणारी हाकालपट्टी, समाजातील विविध विधी, सण, शिक्षण घेताना आलेल्या अडचणी, बेकारी, नोकरीसाठी दूर राहणे, प्रवासाचा त्रास, अपघात आणि त्यातून सावरुनही अनेकविध प्रसंगाना तोंड देत जगणे असा एकूणच जनाबाईच्या आयुष्यातील प्रवास 'मरणकळा' मधून घडलेला दिसतो.

शिक्षणासाठी संघर्ष :

अन्न, वस्त्र, निवारा या मानवाच्या मुलभूत गरजा पण या प्राथमिक गरजांचीच पूर्तता जिथे करता येत नाही, अशा ठिकाणी शिक्षण तर दूरची गरज ती कशी पूर्ण होणार ? या समाजातील लोकांचं पोट सतत पाठीला लागलेलं, त्याची भरती करण्यात आयुष्य संपत चाललेलं, ज्यांच्या आयुष्यालाच किंमत नाही अशा समाजात शिक्षणाचा प्रसार कसा होणार? अज्ञानाच्या अंधःकारात सापडलेल्या समाजातील एखादया व्यक्तिला शिक्षणासाठी फार मोठा संघर्ष करावा लागतो. जागोजागी अंधार असतो, विरोध असतो. समाजातील, कुटुंबातील विरोध मोडीत काढून गोपाळ समाजातील शिक्षण घेणारी जनाबाई ही पहिली मुलगी, मुलींना शिकविणे म्हणजे शिंदळकी किंवा भूताची बाधा होते, असा समज असणाऱ्या समाजाने लेखिकेला शाळेत घातले म्हणून त्यांच्या आजोबांना, वडीलांना बहिष्कृत केले. तरीही पंचायतीच्या निर्णयाला न जुमानता लेखिकेचे शिक्षण सुरु असते.

शिक्षण घेत असताना समाजाकडून अपमान, छळ, उपेक्षा सहन करावी लागते. जनाबाई जेंव्हा शाळेत जाते तेंव्हा तिच्या अवताराकडे पाहून एक बाई आपल्या मुलील तिच्या शेजारी बस देत नाही. मास्तरला तिला हाकलून दयायला सांगते. पारास्थता सामना करीत पालाबरोबर फिरत - फिरत तिसरीपर्यंतचे शिक्षण जनाबाई घेतात. 'पोटाप्रमाणेच पुस्तकांसाठीही भीक मागावी लागायची' असेही त्या नमूद करतात. या समाजातील स्त्रिया जात्यावर गाणी गाताना त्यातूनही टोमणे मारत. मुलीने शिकणे म्हणजे नाचक्की असे समजणाऱ्या या समाजातील लेखिकेचा चुलता म्हणत असे, 'बाप्या, बाप्या खेडर्याला जा अन् पोरीला घेऊन ये. आपल्या भिकाऱ्याच्या पोरी का कुठं शिकत्यात ? चालला पोरीला शिकवायला. आरं बा ! उंटाच्या गांडीचा का मुका घेतुया ? का त्वा शिकायचा नाद धरला? आन् पोर थाटात नेऊन घातलीया."[२]" शिक्षणासाठी घरातूनही विरोध असला तरी अशा विरोधाला न जुमानता प्रचंड इच्छाशक्तीच्या जोरावर संघर्षाला तोंड देत-देत लेखिका डी.एड.पर्यंतचे शिक्षण पूर्ण करते. अशा प्रकारे अज्ञानी असलेल्या गोपाळ समाजातील शिक्षणाविषयीच्या गैरसमजाचे दर्शन मरणकळातून घडते.

भूकेसाठी करावा लागणारा संघर्ष :

पाठीवर बिऱ्हाड घेऊन पोटासाठी गावोगाव भटकणाऱ्या या समाजाचा सगळ्यात मोठा प्रश्न असतो तो भूकेचा. रोजच्या रोजी रोटीचा. रोजी रोटीसाठी या लोकांना अनेक यातना सहन कराव्या लागतात. पोटातील भूकेमुळे निर्माण झालेल्या वास्तवावर प्रकाश टाकताना जनाबाई म्हणतात, 'पोटात सकाळपासून कणभर अन्न नव्हतं' जाता दिस कल्ला. चार वाजायला आले हुते, जेवणाच्या उसटया पत्रावळया उकिरडयावर टाकल्या तशा आम्ही धावलो. आमच्याबरोबर कुत्रीबी धावले. आम्ही एकीकडे वढीत हुतो आन् कुत्री एकीकडे वढीत हुते'."[३]" उकिरडयावर टाकलेल्या पत्रावळयावर कुत्र्याप्रमाणेच माणसेही तुटून पडतात.

हृदय पिळवटून टाकणाऱ्या या भूकेसाठीच्या प्रसंगातून जनावरांप्रमाणे माणसालाही जीवन जगावे लागते. पोटातील भूक भागविणाऱ्यासाठी या समाजातील लोकांना कराव्या लागणाऱ्या संघर्षातून कुत्र्यापेक्षाही किंबहुना जनावरांपेक्षाही भयंकर वास्तव जीणं वाटयाला आलेले दिसून येते. म्हणूनच भूकेपुढे, पोटापुढे माणसाचे सारे प्रश्न दुय्यम ठरतात. एकीकडे जनावरांप्रमाणे करावा लागणारा संघर्ष तर दुसरीकडे जगण्यासाठी भीक मागण्यासाठी घ्यावी लागणारी सोंगे या दोन्ही पातळीवरील वास्तव लेखिकेन मांडलेले दिसते. 'अंगात फाटकी तुटकी चोळी आणि इजार हुती त्याच्यातून अंगाला चटाचटा ऊन लागत हुतं. उन्हात चड्डी ओली व्हायची पाळी आली हती, आन् आमी जळगावात शिरलो... बानं इचार केला आन् बा मनला, पोरी आता म्या आंधळा हुतुया, माव्ह बोट धरं, खरोखरच बानं डोळं झाकले. म्या बाचा हात धरला अन् बानं गाणं मनाया सुरुवात केली, आंधळयाला कुटका देरे राम, रघुपती राघव राजाराम'.''[४]'' भीक मागण्यासाठी खरोखर आंधळा नसतानाही आंधळयाचं सोंग घ्यावं लागतं. आंधळा नसतानाही आंधळयाचं सोंग घेणारा माणूस, त्याची राहणी, भीक मागत असताना केविलवाणे होऊन म्हटले जाणारे गाणे. या सर्वच घटना प्रसंगातून गोपाळ समाजातील धगधगते समाज वास्तव आपल्या मरणकळा या आत्मकथनाद्वारे जनाबाई गिहे समाजासमोर ठेवताना दिसतात.

गोपाळ समाजातील स्त्रीजीवन :

दलित शोषित, पीडित भटक्या समाजातील स्त्रियांचे जीवन पुरुषांनी लिहिलेल्या साहित्यातून आले असले तरी स्त्रीने लिहिलेल्या स्त्रियांचे जीवन साहित्यातून अल्प प्रमाणात आले आहे. ज्यांना गाव नाही, घर नाही, तीन दिवसापेक्षा जास्त काळ एका ठिकाणी राहता येत नाही अशा समाजातील स्त्रियांचे जीवन अत्यंत हालाखीचे आहे. भारतीय समाजव्यवस्थेने स्त्रियांना दिलेले दुय्यमत्व त्यातही दलित स्त्रीला अतिशय वाईट अनुभवांना सामोरे जावे लागते. पुरुषांचे दास्यत्व स्वीकारुन पिढयान् पिढया तिला चाकोरीबध्द जीवन जगावे लागते. असाच एक जीवनानुभव लेखिकेने सांगितला आहे.लेखिकेला घरात काम करताना तिचा लहान मुलगा फार त्रास दयायचा म्हणून तिने मुलाला मारले. ही घटना लेखिकेच्या सासू आणि नणंदेने भर घालून नवऱ्याला सांगितली. ते ऐकून लेखिकेचा पती तिला म्हणतो, 'तुझं माझं नातं तुटलं, माझ्या घराबाहेर हो'. यावर लेखिका लिहिते, 'जंगलातल्या चुकलेल्या पाडसासारखी मी कावरीबावरी झाले हुते. हया दहा तोंडापुढं माझं एकटीचं तोंड आणि मला स्वातंत्र्य नव्हतं. त्यांचं ते खरं आणि माझं ते सारं खोटं असे समजून ते वागायचे हे सारं दुःख मी गिळून बसायची.''[५]'' अतिशय लहान-सहान घरगुती क्षुल्लक कारणावरुनसुध्दा स्त्री आणि पुरुषही कसे छळतात याचा नमुना आपल्याला पहावयास मिळतो.

गोपाळ समाजातील स्त्रीला जीवनात कुठेच स्थैर्य मिळत नाही. ती सतत कष्टामध्ये, धावपळीमध्ये अडकलेली असते. या आत्मकथनामध्ये गोपाळ समाजातील कष्टकरा स्त्रिया, भीक मागून जगणाऱ्या स्त्रिया, लेखिकेच्या आईला तिच्यानंतर मूल होत नाही म्हणून लेखिकेला 'सपाटपाटीची' असं हिणवणाऱ्या स्त्रिया, मुलीने शाळा शिकणे म्हणजे शिंदळकी करणे असं म्हणणाऱ्या स्त्रिया या सर्व स्त्रियांच्या मनाचे, भावभावनांचे, सुखदुःखाचे, कल्लोळाचे काळजाला भिडणारे चित्रण मरणकळामधून येते. पोरीची जात म्हणजे काचेचं भांड, ती शिकल्यानंतर वाईट वर्तन करेल, समाजाचे नाक कापेल या दृष्टीकोनातून हा समाज स्त्रीवर्गाकडे पाहतो. या सर्वांचे परिणामकारक चित्र 'मरणकळा' मधून उभे केलेले दिसते. परंतु व्यापक अर्थाने गोपाळ समाजातील स्त्रीचे चित्र उभे राहताना दिसत नाही.

भाषा विशेष :

मरणकळा मधून आलेली भाषा ही गोपाळ समाजाची बोलीभाषा आहे. बीड - अहमदनगर सीमारेषा परिसरातील भाषेतील अनेक शब्द त्यातून आविष्कृत झाले आहेत. गोपाळ समाजाची भाषा, बोलीभाषेतील म्हणी, वाक्यप्रचार, गाणी यातूनही ते समृध्द झाले आहे. या आत्मकथनाचे निवेदन प्रामुख्याने प्रथमपुरुषी स्वरुपातले आहे. आपले जीवन ओघवत्या शैलीत मांडल्याने आत्मकथनाला विलक्षण. प्रत्ययकारकता प्राप्त झालेली दिसते. लेखिकेने आपल्या पूर्वायुष्याचे कथन बोलीभाषेतून अत्यंत परिणामकारकरित्या साधले आहे. निवेदनातील सहजपणा, नि:संकोचता, छोटी छोटी वाक्ये यामुळे आत्मकथनाला आटोपशीरपणा आला आहेच. त्याचबरोबर यामुळे अस्सलपणाही प्राप्त झालेला दिसून येतो.

बोटी (मटणाचा तुकडा), ढोणूक (लाकूड), इलाज (उपाय), बाजिंदी (नखरैल) बीमोड (नाश) खळगूट (कालवण), सागुती (मटण), जल्लाद (हुशार, भारी) असे गोपाळ समाजात वापरले जाणारे शब्द आत्मकथनाला आशयघनत्व प्राप्त करुन देतात. हट्टाला पेटणे, टुमगी मागं लावणे, उरात धडकी भरणे, पाचवीला पुजणे, बारा बैलाचं बळ येणे, पाठीच धिर्ड काढणे अशा वाक्यप्रचारातून भटक्या समाजजीवनाची ओळख होते. 'मारणाऱ्याचा हात धरता येतो, बोलणाऱ्याचं तोंड धरता येत नाही, जित्याची खोड मल्यावाचून जात नाही"[६] आब्रूच खचतं बीन आब्रूचं पोसतं, बाप भीक मागू द्यायना आन् माय भाकर दिना अशा म्हणींमधून या समाजाचे जीवन, त्यांची नितीमत्ता, सस्कार, संस्कृती, व्यवहार स्पष्ट होतात. यातून आविष्कृत झालेल्या उपमा, संवाद, इंग्रजी शब्द, शिव्या, गाणी या सर्वच गोष्टींमधून 'मरणकळा' हे आत्मकथन समृध्द झाले आहे. त समाज वास्तवाला स्पर्श करणारे ठरत असल्यामुळे नलिनी महाडिक म्हणतात, 'जनाबाई गिहे यांनी मरणकळा' या आत्मकथनात आपल्या भटक्या जातीचे वास्तवपूर्ण चित्रण केले आहे."[७] ते योग्य वाटते.

समारोप :

स्वातंत्र्योत्तर काळात शिक्षणाची प्रकाशकिरणे समाजापर्यंत किंबहुना तळागाळापर्यंत पोहोचण्याची प्रक्रिया सुरु होती. या डॉ.बाबासाहेब आंबेडकरांच्या प्रेरणेतून ही किरणे तळागाळापर्यंत पोहोचत होती. पोटाची भूक शमविण्याचा ठाण मांडून उभा राहिलेला प्रश्न सोडविताना दलित समाजाला त्याहीपेक्षा दलित समाजातील स्त्रीला करावा लागणारा संघर्ष वेगळा अनुभव सांगून जातो. या भूकेबरोबरच शिक्षणासाठीचा संघर्ष तोही स्त्री असूनसुध्दा शिक्षण म्हणजे फारच विदारक अनुभव. असा विदारक अनुभव, परिणामकारक भाषा निवेदनशैलीमध्ये जनाबाई गि-हे यांनी मरणकळातून मांडला आहे. गोपाळ समाजाला स्वतःच्या गाव, घर असे काही नसतानाही हा समाज भटकंती करीत भीक मागत आपल्याला येणारं, आलेलं आयुष्य कंठत असतो. माणसाला माणूस असूनसुध्दा माणसासारखं जीवन जगता येत नाही. तर जनावरासारखं जीवन त्याला जागवं लागतं. हे भयानक वास्तव या आत्मकथनातून समोर येतं. मात्र हे वास्तव असलं तरी 'आपली कुठं इस्टीक वाया चाललीया, चार घरं मागतुया तवा पोटाला मिळतंया मला नको दोन बाया एका हाडाला दोन सुया"[८] दुसऱ्या लग्नाचा विचार नाकारणारी लेखिकेच्या वडिलांसारखी व्यक्तिरेखा ही वर्तमान परिस्थितीचा विचार केंद्रस्थानी ठेवणारी व्यक्तिरेखा परिणामकारक निश्चितच ठरते.

एकूणच गोपाळ समाज, या समाजातील मानवी मनाचे, स्त्री मनाचे त्यांच्या व्यथा, वेदना, संघर्ष, शिक्षणाचा संघर्ष यांचा मेळ बसविताना बोली भाषा, म्हणी, वाक्यप्रचार गोपाळ समाजातील सांकेतिक भाषा यांचा अतिशय उत्तम संयोग साधलेला दिसता.

'तीन दगडाची चूल'- विमल मोरे :

'तीन दगडाची चूल' हे विमल मोरे लिखित आत्मकथन एका वेगळ्या विश्वाची ओळख आपणाला करुन देते. 'तीन दगडाची चूल' हे आत्मकथन भटक्या विमुक्त जमातीमधील स्त्रियांनी लिहिलेल्या आत्मकथनामध्ये दुसरे आत्मकथन आहे. विमल मोरे यांचे हे आत्मकथन २००० साली प्रकाशित झालेले असून यामधून त्यांनी आपल्या जीवन जाणिवांसह स्वतः जगलेला समाज चित्रित केला आहे. 'तीन दगडाची चूल' मधून विमल मोरे यांनी स्वतः जगलेला समाज अगदी बारकाव्यांसह टिपलेला आहे. या समाजात असणाऱ्या रुढी, परंपरा, चालीरिती, समजूती, अंधश्रध्दा यांची स्पष्टपणे माहिती दिलेली आहे. या परंपरेत हा समाज कसा जगतो, तसेच उपेक्षितांतील उपेक्षित असणारे स्त्रियांचे जीवन या आत्मकथनातून मांडले आहे. भटक्या समाजातील लोकांची पोटाची भूक, पोटाच्या भूकेसाठी भटका समाज कशा प्रकारचे जीवन जगतो आहे याचे चित्रण विमल मोरे यांनी आपल्या या आत्मकथनातून केले आहे.

आत्मकथनाचा आशय :

समाजव्यवस्थेकडे स्त्रीच्या दृष्टिकोनातून पाहण्याचे परिणाम, रुढी, परंपरेत अडकलेल्या भटक्या समाजाला रोजची चूल पेटविण्यासाठी करावा लागणारा संघर्ष याचे केलेले चित्रण म्हणजे 'तीन दगडाची चूल' हे आत्मकथन होय. या आत्मकथनामध्ये विमल मोरे यांनी आपले लग्नापूर्वीचे कोल्हापूर (कळंबा) येथील जीवन व पालाबरोबर भटकंतीचे जीवन आणि लग्नानंतरचे

चळवळीतील घटना -प्रसंगाचे वर्णन करताना दिसून येतात. एका स्त्रीने भोगलेले दुःख फक्त तिचेच न राहता ते भटक्या समाजातील प्रत्येक स्त्रीचे होऊन जाते. विमल मोरे या लग्नापूर्वीची विमल नामदेव भोसले तिचा भाऊ अशोक हयाच्यामुळे प्रथम शाळेची पायरी चढते. विमलला शिक्षणासाठी तिची वहिनी सुमती ही मदत करते. कोल्हापूरमध्ये राहून शिक्षण घेता घेता सुटीच्या काळात पालाबरोबर जाणे, या समाजातील पुरुष अंबाबाईचा पुजारी होऊन भीक मागून आणतात, लहान मुलेही लाकडाच्या काठीला कापड गुंडाळून त्याची सटवाई करुन भीक मागतात. गोंधळी समाजातील स्त्रियाही पुरुषांच्या बरोबरीने काम करतात. भीक कोण वाढत नाही तेंव्हा भांडी विकायला स्त्रिया आणि पुरुषही जातात. या समाजात संशय घेणारे, दारु पिणारे पुरुष आहेत. ते दारु पिऊन बायकोला मारतात. स्त्रिया हे सर्व सहन करतात. असे भटक्या समाजातील चित्रण आपल्याला 'तीन दगडाची चूल' या आत्मकथनामध्ये पहावयास मिळते.

तसेच विमल मोरे यांच्या दुसऱ्या भावाचे (लिंगाप्पाचे) लग्न झाल्यानंतर पैशाच्या ओढाताणीमुळे आई-वडिलांची व भावंडांची वाटणी होते. त्यांची ताटातूट, अशोकदादाची बदली या घटना - प्रसंगातून हे आत्मकथन फिरताना दिसते. तरीही त्या शिक्षण घेतात. पण घरातील मानसिक त्रासामुळे आणि दारिद्र्यामुळे त्यांचे शिक्षण थांबते. त्याचवेळेस त्यांना दादासाहेब मोरे यांचे स्थळ येते. आणि त्यानंतर विमल नामदेव भोसले हया सौ.विमल दादासाहेब मोरे होतात. त्यामुळे आत्मकथनाला वेगळी दिशा मिळते. पालाबरोबर भटकंती करणारे त्यांचे जीवन चळवळीच्या मार्गाने धावताना दिसते. दादासाहेब मोरे यांच्याबरोबर त्या भटक्या विमुक्तांच्या कार्यक्रमाला जातात. त्यामुळे त्यांना भटक्या विमुक्तांचे प्रश्न समजतात. त्यांच्या अडचणी लक्षात येतात. तसेच त्या विटा येथील कार्यक्रमात अशिक्षित, अडाणी नंदीवाल्यांची शांताबाई आपल्या समाजाचे जीवन, स्त्रियांची दुःखे, वेदना मांडताना पाहतात. विविध ठिकाणी कार्यक्रम घेण्यासाठीच्या बैठका पाहतात. या कार्यक्रमातून आलेले अनुभव त्या आत्मकथनाच्या दुसऱ्या भागात मांडलेल्या आहेत. भटक्या - विमुक्तांचा मेळावा, उत्तम कांबळे यांच्या घरातील बैठक, याबरोबरच नाशिक येथे विमल मोरे यांनी पोटात दुःखण्याचे नाटक करुन मांत्रिकाचा ढोंगीपणा उघड केला. याचेही चित्रण या आत्मकथनात येते. दादासाहेब यांच्या सहवासामुळे त्या चळवळीत सहभागी होतात. आणि चळवळीतून आलेले अनुभव त्यांनी आत्मकथनाच्या उत्तरार्धात मांडले आहेत. तसेच दादासाहेब मोरे यांच्या नोकरीच्या निमित्ताने त्यांच्याबरोबर फिरताना जीवनाशी, परिस्थितीशी संघर्ष करण्याची तयारी ठेवताना त्या दिसतात. यामधून दगडाची चूल' चे अंतरंग दिसून येते.

भटकंतीचे चित्रण :

तीन दगडाची चूल' मध्ये विमल मोरे यांनी गोंधळी समाजाच्या वाटयाला आलेल्या भटकंतीचे चित्रण केले आहे.गोंधळी समाजाचे देवस्थान सांगली जिल्हयातील जत येथे आहे. गाव आहे पण पोटासाठी देवीचा पुजारी होऊन भीक मागत ही जमात गावोगावी फिरताना दिसते. चातुर्वर्ण्य व्यवस्थेत जगणाऱ्या माणसाने दिलेल्या भीकेवर हा गोंधळी समाज जगताना दिसतो. हा समाज गाव बदलताना कधी पायी तर कधी एस.टी. ने प्रवास करतो. या प्रवासाचे वर्णन करताना विमल मोरे सांगतात, 'पाचसहा दिवसातच आम्ही अथणीहून उगारला राहण्यासाठी आलो. उगारच्या बस स्टॅण्डवर आमच्या सात आठ कुटूंबातील चिल्ली-पिल्ली मिळून, तीस - पस्तीस लोकांची गर्दी त्या स्टॅण्डवर सर्व लोकांचं लक्ष वेधून घेत होती.''[६]'' यावरुन गोंधळी समाज संसार बरोबर घेऊन भटकंती करताना दिसतो. अशातहेने गोंधळी समाजातील लोक एका गावावरुन दुसऱ्या, दुसऱ्यावरुन तिसऱ्या गावाला भटकंती करत जगताना दिसतात.

पालावरचे जीवन :

पालावरील जीवनामध्ये सगळीच माणसे उघडयावर राहतात. बायकाही उघडयावर बसून आघोळ करताना दिसतात. अन्नही उघडयावर शिजवितात व खातातही. पालावरचं जावन जगताना दुःख, दैन्य, अंधश्रध्दा यामध्ये हा समाज गुंतलेला दिसून येतो. सर्व काही उघडयावर जगणं जगावं लागतं. सर्व उदरनिर्वाह हा वादळ-वाऱ्यात, ऊन-पावसात भटकतच करावा लागतो हे वास्तव विमल मोरे या आत्मकथनातून मांडतात. स्वतःच्या मालकाच्या चार भिंती असतात, त्याला घर म्हणतात हया विचारांपासून ही माणसं खूप लांब असतात. उध्वस्त जगण्याचा प्रवास या आत्मकथनातून अनेक ठिकाणी पहायला मिळतो.

चोरीचे प्रसंग :

गोंधळी समाज हा पोटासाठी भटकंती करतो. त्यामुळे तो अनेक ठिकाणी भीक मागत जगत असतो. ज्यावेळी कोणी भीक वाढत नाही त्यावेळी ही माणसे नविन व्यवसाय शोधतात असाच एक भांडी विकण्याचा धंदा चालू असतानाचा प्रसंग लेखिका सांगते. धंद्यामध्ये खूप घासाघीस करुन दुकानातील दरापेक्षा कमी किंमतीला भांडी विकावी लागतात. तेंव्ही ही माणसे भांडयाची मोड घेताना वजनाच्या पारडयाला चुंबक चिटकवतात. नविन भांडयाचे वजन करताना भांडयाला पारडयाला चुंबक चिकटवून लोकांना फसवतात. ही एक प्रकारे चोरीच असते. असे करताना सापडले तर त्यांना मार खावा लागतो. परंतु परिस्थिती तसं वागायला भाग पाडते. म्हणजे नाइलाजास्तव कसंतरी पोटाची भूक भागविण्यासाठी ही माणसं वेगवेगळया पध्दतीनं आपली जीवनपध्दती बनवून जगण्याचा प्रवास करतात.

शिक्षणाविषयी अज्ञान :

गोंधळी समाज भटकंती करुन जगणारा समाज आहे. रुढी, परंपरा, अंधश्रध्दा, देवधर्म यामध्ये गुरफटलेला आहे. भीक मागून जीवन जगणे आवश्यक असल्याने हा समाज शिक्षणापासून वंचित राहिलेला आहे. या समाजातील मुले शाळेत न जाता सटवाई घेऊन भीक मागायला जातात. त्यामुळे त्यांचे कसे - बसे पोट भरते. या समाजातील काही मुले शाळा शिकून नोकऱ्या करु लागले आहेत मात्र संख्या फार कमी आहे. मुलींना मात्र शाळेत पाठविले जात नाही. या आत्मकथनामध्ये लेखिकेला ज्यावेळी तिचा भाऊ अशोकदादा, शाळेत पाठवायचे म्हणतो तेंव्हा तिचे बाबा रागाने दादाला म्हणतात, आशा तुज डोस्कबिस्कं फिरलं का काय ? पुरीला शाळंत घालतु म्हणतूस... आमच्या जातात पुरा शाळेत जात्यात का? लय शिकलास म्हंजी शेना झालास व्हय?"[१०]" यावरुन असे दिसते की, त्यांच्या मते मुलगी कितीही शिकली तरी तिला चूल आणि मूल सुटलेले नाही आणि आपल्या जातीत पोरी शाळेत जात नाहीत. आणि शाळा शिकल्या तर त्याच लग्न होणार नाही. त्यांना घरी ठेवून घ्यावे लागेल. यावरुन असे दिसते की, गोंधळी समाजाच्या मुलींच्या शिक्षणाला विरोध आहे. अशाप्रकारे या आत्मकथनात विमल मोरे शिक्षणाविषयी, समाजाकडून आलेले अनुभव व स्वतःचे अनुभव व्यक्त करताना दिसतात. शिक्षण हेच सर्व प्रगतीचे लक्षण आहे हा विचारच अजून यांनी स्वीकारलेला नाही याचे चित्रण या आत्मकथनातून स्पष्ट होते.

गोंधळी समाजातील स्त्री जीवन :

शूद्र वर्णातील लोकांना सामाजिक व्यवस्थेत दुय्यम दर्जाची वागणूक दिली जात होती. या वर्गातील स्त्री ही शूद्राचे जीवन जगतच होती. पुरुषसत्ताक कुटुंबपध्दतीमुळे पुरुषांची दासी म्हणूनही जीवन जगत होती. अशी दुहेरी उपेक्षा भोगणारी स्त्री भटक्या आणि गावकुसाबाहेरच्या समाजरचनेत दिसून येते.

या आत्मकथनामधील स्त्री ही पुरुषांच्या खांदयाला खांदा लावून काम करताना दिसते. चूल आणि मूल यामध्येच अडकलेली दिसत नाही. तरीही तिच्या वाटयाला उपेक्षित असेच जीवन येते.राबराब राबूनही तिच्याबद्दल या समाजातील पुरुषाला जराही आपुलकी वाटत नाही. या समाजातील स्त्री कधीच शाळेची पायरी चढली नाही. लहानपणीच तिचे लग्न केले जाते. 'संसार म्हणजे काय?' हे समजण्याच्या आतच तिला मुलं होतात. अशा परिस्थितीत या समाजातील स्त्री पुढे आयुष्यभर चूल, मूल आणि कष्ट यामध्ये गुरफटलेली दिसून येते. या समाजातील स्त्री ही शिक्षणाविषयी अज्ञानी आहेच तशीच ती अंधश्रध्दाळूही आहे. या आत्मकथनामध्ये विमल मोरे लहान असताना तिला गोवर येतो. अगाला जखमा होतात. तरीही तिला दवाखान्यात घेऊन न जाता देवाधमाचच बघतात. घाडगेमावशी विमलला. गोवर का आला त्याचे कारण सांगते, देव धुवायला थाड पाणी टाक...' ही पानी पीत हुबी हती. हिनं तव्वाचं ताजं पानी टाकायचं सोडून उष्ट पाणी देवावर ओतलं मी लई चिडली होती हिच्यावर.तेंव्हा बोलले सुध्दा देवा आता या पोरीला काय तरी करील आनि थोडयाच दिवसात असं झालं."[११]" अशा प्रसंगातून त्याची दवाकड बघण्याची दृष्टी आणि या समाजातील स्त्री ही अंधश्रध्दाळू आहे, हे ही दिसून येते.या समाजातील स्त्रीचे जीवन हे पुरुषी वर्चस्वाखाली दबलेले असल्याचे दिसते. या समाजातील स्त्री नवयाबरोबरीने घराबाहेर पडून भांडी विकण्याचा आणि पोट भरण्यासाठी धडपडताना

दिसते. तरीही या समाजातील पुरुष आपल्या बायकांना मारहाण करताना दिसतात आणि या स्त्रिया हा छळ निमूटपणे सहन करतात.अशा अनेक प्रसंगातून या समाजातील स्त्रियाचं जीवन समजून घेता येते.

जातपंचायत :

भटक्या आणि विमुक्त जमातीमधील लोक हे अंधश्रध्दा, दारिद्र्य, लाचारी यामध्येच जीवन जगताना दिसतात. भटक्या विमुक्तांमध्ये प्रत्येक जमातीची जातपंचायत असल्याची दिसते. गोंधळी समाजातही जातपंचायत आहे. या समाजात कोणी रुढी, परंपरा मोडून काही केले तर जातपंचायत बसविली जाते. तसेच प्रकरण मिटवायचे असेल तर दंड भरुन घेतला जातो. जातपंचायतच्या निर्णयाविरुध्द जर कोणी गेले तर त्याला सर्व समाज वाळीत टाकतो. म्हणजे त्याला बहिष्कृत केलं.जातं त्यामुळे वाळीत टाकण्याच्या भितीने जातपंचायत जो निर्णय देईल तो निर्णय सर्वजन पाळतात. आणि तो सर्वांसाठी बंधनकारक असतो.

भाषा विशेष :

या आत्मकथनामधील गोंधळी समाज भटकंतीच्या निमित्ताने कोल्हापूर, बेळगांव, बोरगांव, खकई, माळीनगर(सोलापूर), गोंधळयांची वाडी (जत), उमदी, अथणी, बनाटी, उगार, निपाणी, संकेश्वर, सौंदत्ती, मिरज,सांगली, चिकोडी, या परिसराशी त्यांचा संबंध आल्याने या परिसरातील भाषेचा प्रभाव या समाजावर झालेला आहे. संवादासाठी हा समाज वापरत असलेली भाषा पुढीलप्रमाणे दिसून येते.

आमच्या घरातील माणसं वेगवेगळया दिशेनं मागून खात फिरत होता. परंतु 'आषाढ' मात्र एकत्रच करत होती.' आई व विमल आषाढाला यशोदाकाकीकडे जातात तेंव्हा आंब्बूआक्का आईला म्हणाली, थोरली आय... त्वा कवा आलास?

आताच आली... त्वा कशी हायीस?

बरंच म्हणायचं... इमल, त्वा बी आलीस व्हय?

मी म्हणाले, व्हय... आकाड बगाया आली."[१२]" या संवादासाठी वापरलेल्या भाषेशिवाय या समाजाची सांकेतिक अशी भटक्यांची गुप्तभाषा आहे.

'नामदेवमामा... चिडक कणशी गासका लागत्याती "[१३]" (नामदेवमामा . बघ, माणसं इगडंच येत आहेत) 'पांडुरंग, उगचं खंबडा करवाडू नटी... पाकत्याली... दुसरीकडं खुकानु"[१४]" (पांडुरंग उगीच भांडण करु नकोस... लोक मारतील... दुसरीकड जाऊ...

या आत्मकथनामध्ये कोल्हापूर, सांगली, परिसरात वापरले जाणारे संवाद आले आहेत.पूर्वार्धातील भाषेत सहजता दिसते.पण उत्तरार्धातील भाषेत सहजता दिसत नाही. या आत्मकथनामध्ये विमल मोरे यांनी बोलीभाषेचा वापर केलेला आहे. भाषेतील म्हणी, वाक्प्रचार, उखाणे, लग्नात रुखवताच्यावेळी घ्यायची नावे, गोंधळयांची गीते यांचाही वापर केलेला दिसून येतो. उदा.:

'घरात नाही दाना आनि हवालदार म्हणा... "[१५]" देव आला द्याला आनं पदर न्हाय घ्याला"[१६]"... 'कर न्हाय त्याला डर कसली?"[१७]"... संवादासाठी बोलीभाषेत वापरली जाणारी विरोधात्मक वाक्येही प्रसंगावधानाने वापरली आहेत.

उदा:

१) बाय हाय का कसाबीण...'

२) 'गोरीपान पोरगी काळी ठिक्कर पडली' ...

लग्नप्रसंगाच्या वेळी नवरा-नवरीने घ्यावयाची नावे उखाण्यातून घेण्याची प्रथा असलेली दिसते.

उदा :

'चलती है बस उडती है धूल, शुभांगी के हात मे गुलाब का फूल"[१८]"... रुखवताच्या वेळी घ्यावयाची नावे.

आला आला रुखवत, त्यावर होतं गाजार, आणि ईनबायला पोरं हजार तर नुसता भुतांचा बाजार...."[१९]" इत्यादी

उखाण्यातून रुखवताच्या वेळी शाब्दिक टोले मारले जातात. प्रश्नात्मक कुट पध्दतीचे उखाणेही रुखवताच्या वेळी घेतले जातात. हा समाज भटका समाज असल्यामुळे त्यांना सतत गावोगावी भटकंती करावी लागते. त्यामुळे प्रादेशिक भाषेचा प्रभाव त्यांच्या भाषेवर दिसून येतो. महाराष्ट्र आणि कर्नाटकच्या सीमावर्ती भागामध्ये बोलली जाणारी भाषा, बोलीचा वापर व्यक्तीच्या नावामध्ये झालेला दिसतो.

उदा:- लिंगाप्पा, मयप्पा, तायाप्पा, यल्लमा इ. चळवळीमधून वापरली जाणारी आक्रमक, ग्रामीण आणि नागरी भाषा दिसते.

'तीन दगडाची चूल' मधील गोंधळी समाज हा सतत भटकंती करत असतो. त्यामुळे त्यांना निश्चित गावं नाही. स्वतःचे असे घर नाही. स्थिरता नाही. अनेक गावी भटकत असतात. आपली पाले, संसार डोक्यावर घेऊनच हा समाज सतत इकडून तिकडे भटकत असतो. त्यांना तीन ते चार दिवसापेक्षा जास्त एका गावत राहता येत नाही. या भटकंतीतच जन्म, मृत्यू, अंत्यविधी व इतर विधीही पार पाडले जातात. अशा भटक्या आयुष्याची फरपट 'तीन दगडाची चूल' या आत्मकथनातून स्पष्ट होताना दिसते. एक विदारक जगण्याचं प्रभावी चित्रण या आत्मकथानातून समोर आलेले दिसते.

निष्कर्ष :

- फार कमी भटक्या समाजाच्या स्त्रियांनी आत्मकथने लिहिली आहेत.
- सतत भटकंती हा स्थायीभाव दोन्ही आत्मकथनातून स्पष्ट होतो.
- रूढी-प्रथा आणि परंपरा जीवापाड जपणारा हा समाज आहे.
- अंधश्रद्धाळू वृत्तीमुळे स्त्रियांना अनेक दुःखे भोगावी लागतात.
- भटक्या समाजातील स्त्रियांचे जीवन चित्रण प्रभावी आले आहे

संदर्भसूची :

1. जनाबाई गिऱ्हे -'मरणकळा', प्रचार प्रकाशन कोल्हापुर १९९२, पृ. १२
2. जनाबाई गिऱ्हे -'मरणकळा', प्रचार प्रकाशन कोल्हापुर १९९२, पृ. ३३
3. जनाबाई गिऱ्हे -'मरणकळा', प्रचार प्रकाशन कोल्हापुर १९९२, पृ. १७
4. जनाबाई गिऱ्हे -'मरणकळा', प्रचार प्रकाशन कोल्हापुर १९९२, पृ. १४
5. जनाबाई गिऱ्हे -'मरणकळा', प्रचार प्रकाशन कोल्हापुर १९९२, पृ. ७९
6. जनाबाई गिऱ्हे -'मरणकळा', प्रचार प्रकाशन कोल्हापुर १९९२, पृ. ८७
7. जनाबाई गिऱ्हे -'मरणकळा', प्रचार प्रकाशन कोल्हापुर १९९२, पृ. ८
8. जनाबाई गिऱ्हे -'मरणकळा', प्रचार प्रकाशन कोल्हापुर १९९२, पृ. २१
9. विमल मोरे -'तीन दगडाची चूल', मेहता पब्लिशिंग हाऊस, पुणे २०००, पृ. ५९
10. विमल मोरे -'तीन दगडाची चूल', मेहता पब्लिशिंग हाऊस, पुणे २०००, पृ. २
11. विमल मोरे -'तीन दगडाची चूल', मेहता पब्लिशिंग हाऊस, पुणे २०००, पृ. ६६
12. विमल मोरे -'तीन दगडाची चूल', मेहता पब्लिशिंग हाऊस, पुणे २०००, पृ. ३१
13. विमल मोरे -'तीन दगडाची चूल', मेहता पब्लिशिंग हाऊस, पुणे २०००, पृ. १६
14. विमल मोरे -'तीन दगडाची चूल', मेहता पब्लिशिंग हाऊस, पुणे २०००, पृ. ०७
15. विमल मोरे -'तीन दगडाची चूल', मेहता पब्लिशिंग हाऊस, पुणे २०००, पृ. १४
16. विमल मोरे -'तीन दगडाची चूल', मेहता पब्लिशिंग हाऊस, पुणे २०००, पृ. १९९
17. विमल मोरे -'तीन दगडाची चूल', मेहता पब्लिशिंग हाऊस, पुणे २०००, पृ. ८१
18. विमल मोरे -'तीन दगडाची चूल', मेहता पब्लिशिंग हाऊस, पुणे २०००, पृ. ८

छप्परबंद समाजाची सामाजिक स्थिती

डॉ. मनिषा विनायक शिरोडकर.
सहयोगी प्राध्यापक
यशवंतराव चव्हाण समाजकार्य
महाविदयालय, जकातवाडी,
ता. जि. सातारा.

सारांश :

'भटके' हा शब्द 'नॉमेड' या इंग्रजी शब्दांचे रूपांतर आहे.नोमॅड हा शबद 'नेमो' या ग्रीक शब्दापासून तयार झाला आहे.आणि नेमो याचा अर्थ 'पशुपालक' असा होतो. युरोपपीन देशांमध्ये दाट जंगलाच्या अभावामुळे व कुरणांच्या उपलब्धतेमुळे तेथील मानवी समूह दीर्घकाळ पशुपालक अवस्थेमध्ये होते. परंतु भारतामध्ये मात्र पशुपालक, शिकारी व अन्नशोधक या तिन्ही प्रकारचे समूह मानवी संस्कृतीच्या सर्व टप्यांत दिसून येतात.

पारिभाषिक संज्ञा : संथाल, भिल्ल्, कोरकू, गोंड, कैकाडी, माकडवाले, गारूडी, गोपाळ, चित्रकथी, जोशी, पारधी, कंजारभाट, छप्परबंद, नंदीबैल

स्पष्टीकरण

भारतातील आदिम व विमुक्त जमातींचे तीन प्रमुख गट आढळून येतात.

१. ज्या जमाती हजारो वर्षापासून मानवी संस्कृतीपासून अलग पडलेल्या असून अत्यंत दाट जंगलात राहतात.
उदा : संथाल, भिल्ल्, कोरकू, गोंड, इ.

२. आपले वसतिस्थान उद्धवस्त झाल्याने नागर संस्कृतीच्या आसपास राहणा-या परंतु भीक मागणे किंवा आदिम कौशल्याचा वापर करून उपजीविका करणा-या जमाती. उदा: कैकाडी, माकडवाले, गारूडी, गोपाळ, चित्रकथी, जोशी, पारधी, कंजारभाट, छप्परबंद, नंदीबैल इ.

३. जातिव्यवस्थेच्या आधाराने पण गावाबाहेबर राहणा-या जमाती. उदा: रामोशी, बेरड, वडार, घीसाडी, गोंधळी इ.

भारतामध्ये जोपर्यंत जंगलाचे वैपुल्य होते तोपर्यंत नागरभागामध्ये एक संस्कृतीसंकर चालू होता. तर दुस-या बाजूला जंगलामध्ये आदिम टोळयांची बदल नाकारणारी, थिर्जलेली संस्कृती गुण्यागोविंदाने नांदत होती. वाढत्या लोकसंख्येने जेव्हा नगरे अपूरी पडू लागली, शेतीसाठी व नगरे निर्माण करण्यासाठी नव्या भूभगाची गरज पडू लागली तेव्हा मोठया प्रमाणात जंगले जाळण्यास व तोडावयास सुरूवात झाली. खांडववन जाळून निर्माण झालेले इंद्रपस्थ हे अशा प्रकारचे एक उदाहरण आहे. जंगलाचे नैसर्गिक छत्र हरवल्यानंतर अन्नाच्या अभावामुळे त्रस्त झालेल्या या टोळया, कधी जंगलाचा माल घेऊन, कधी प्राण्यांची कातडी घेऊन, शिकवलेले पक्षी व प्राणी घेऊन, एकटया दुकटयाने किंवा कारागिराच्या स्वरूपात नागरभागत प्रवेश करू लागल्या. राजासाठी शिकार करून पुरविणे, शिकवलेले बहिरी ससाणे व चित्ते पुरविणे व त्या बदल्यात अन्न मिळवणे या स्वरुपाचे संबंध या टोळया व नागरी समाज यांच्यामध्ये राहिले. त्यांच्या आदिम संस्कृतीमुळे त्यांच्यमध्ये 'साठा' करण्यची प्रवृत्ती नसते. म्हणून त्यांना मिळणा-या मोबदल्याचे स्वरूप एखादयादुस-या वेळचे अन्न किंवा भीक असेच असे. जमीनीवर, झांडावर किंवा अन्नावर कोणाची व्यक्तीगत मालकी असू शकते ही कल्पनाच आदिम कायदयामध्ये नसल्याने जेव्हा अन्न मिळणार नाही तेव्हा सापडलेली तेथील कंदमुळे, अन्नधान्य, लाकुडफाटा निसर्गाची देणगी म्हणून या जमाती घेऊन जातात. ब्रिटीश कायदयाप्रमाणे जंगले, नदया, शेती जमिनी यांच्या मालकी हक्कासंबंधात कायदे तयार झाले. या कायदयाची या जमातींना माहिती असणे शक्य नव्हते. किबहुना निर्सग ही कोणा एकाची खाजगी मालकिची गोष्ट असू शकते ही कल्पनाही त्यांना मानण्यासारखी नव्हती. म्हणून या जमातीचे कायदे व ब्रिटिश सरकारचे कायदे यांच्यामध्ये संघर्ष निर्माण झाला व त्याचीच परिणीती म्हणून हे निसर्गाचे पुत्र नागरसमाजात चोर व गुन्हेगार ठरले व त्यांच्या वाटयाला दीर्घकाळ तुरूंगवास आला. या सर्व जमाती गुन्हेगारी जमाती म्हणून ओळखल्या जाऊ

लागल्या छप्परबंद ही जमात देखील या जमातीतील एक या लेखामध्ये छप्परबंद समाजाबद्दलाची माहिती विस्तृतपणे मांडण्याचा प्रयत्न केला आहे.

छप्परबंद :

मागेल व राजपूत सैन्यामध्ये तंबू किंवा राहुटया बांधण्याचे काम ही जमात करीत असे, म्हणून या जमातीस 'छप्परबंद' म्हणून ओळखतात. परंतू खोटी नाणी पाडणारी जमात म्हणूनच छप्परबंदाना ओळखले जाते. ते स्वत:ला भातू जमातीचे समजतात. उत्तरेकडे या जमातीस 'खुलसूर्ये' म्हणजे खोटी नाणी तयार करणारा असे म्हणून ओळखतात.

छप्परबंदाचे मूळ वसतिस्थान :

छप्परबंद हे मूळचे पंजाबकडील असून ते राजस्थानातून दक्षिण भारतात आले. मोगलांच्या आणि रजपूतांच्या सैन्यांमध्ये छप्परबंद, सैन्यांचा जेथे मुक्काम पडेल त्या ठिकाणी तंबू ठोकण्याचे काम करीत असत. जसजश्या मोगल्यांच्या स्वा-या होऊ लागल्या तसतसे छप्परबंद या सैन्याबरोबर दक्षिणेकडे आले. (१६८७-८८)साली हे लोक दक्षिणेकडे आले. सन १७१४ पर्यंत छप्परबंद मोगल सैन्याबरोबर औरंगाबाद, अहमदनगर, श्रीरंगपटटणम या ठिकाणी आले होते. १७१४ पर्यंत विजापूर येथील छप्परबंद हे मोगलांकडे होते, पुढे ते मराठयांच्या सैन्यात नोकरी करू लागले. १८१८ सालापर्यंत छप्परबंद हे पेशव्यांच्य सैन्याचा एक भाग होते. पेशवाई बुडाल्यानंतर बहुसंख्य छप्परबंद परत उत्त्र हिंदुस्थानात निघून गेले. राहिलेले छप्परबंद निजामाच्या प्रदेशात तालीकेटा, तसेच विजापूर जिहयात बागेवाडी व मुददे्बिहाळ तालुक्यात दिसून येतात. मोगलांकडे नोकरी करीत असतानाच छप्परबंद नाणी पाडण्याची कला शिकलेले होते. इंग्रजांची राजवट सुरु झाल्यावर छप्परबंद बेरोजगार झाले. उपजीविकेसाठी दुस-यांच्या शेतावर काम करु लागले. अगदी तूरळक प्रमाणावर शेळया – मेंढया पाळू लागले. परंतू यामधून त्यांची रोजीरोटी चालणे कठीण होते. छप्परबंद जगण्यासाठी त्यांना येत असलेल्या नाणी पाडण्याच्या कलेचा खोटी नाणी पाडण्यासाठी उपयोग करु लागले. तयार केलेली खोटी नाणी शेतकरी, अडाणी स्त्रिया यांना देऊन त्यांची फसवणूक करु लागले. अशा प्रकारच्या फसवणुकीदद्ल छप्परबंदांना पकडण्यात येऊ लागले. १८७१ च्या गुन्हेगार जमातीच्या कायदयानुसार छप्परबंद जमात गुन्हेगार ठरविण्यात आली.

छप्परबंद जमातीचे स्वरुप :

छप्परबंद जमात ही सोळाव्या – सतराव्या शतकामध्ये धर्मांतर करुन मुस्लिम झाली असावी असे असले तरी मुस्लिम धर्मांचे पुणे रितिरिवाज ही जमात पाळत नाही. छप्परबंद पुरुष फकिरासारखा वेष धारण करतात. तर बायका हिंदू स्त्रियांप्रमाणे पेहराव करतात. व हिंदू मुस्लिम दोन्ही समाजात वापरत असलेले दागिने वापरतात. बागलकोट परिसरात राहणारे छप्परबंद स्वत:ला शेख समजतात. परंतू मुस्लिमधर्मीय त्यांना आपल्या मुली देत नाहीत. त्यामुळे मुस्लिमांशी यांचा बेटी-व्यवहार होत नसल्याचे दिसते. छप्परबंद फिरतीवर आपल्या बायका नेत नाहीत. बायका म्हातारी माणसे व मुले एका ठिकाणी पालात ठेवून, तीन ते दहा जणांची टोळी करुन ते मोहिमेवर निघतात. साधारणत: ते मोहरमनंतर घर सोडतात आणि वर्ष – सहा महिन्यांनी परततात. घर सोडण्यापुर्वी ते आपल्या कुटुंबाची जगण्याची व्यवस्था करुन जातात त्यांच्या बायका रजया शिवतात. मोहिमेवर असताना छप्परबंद पुरुष या रजया विकण्याचेही काम करतात. छप्परबंद जमातीत भीर, भयार, सजन, हार, अमट, निमट, खडतार ही आडनावे आहेत.

छप्परबंदांची बोलीभाषा :

छप्परबंदांची बोलीभाषा ही राजस्थानी भाषा आहे. कारण त्यांच्या भाषेचा बाज हा राजस्थानी भाषेशी जुळणारा आहे. त्यांच्या भाषेमध्ये राजस्थानी भाषेतील अनेक शब्द सामील झालेले आहेत. छप्परबंद महाराष्ट्र, गोवा व कर्नाटकामध्ये स्थायिक झाल्यामूळे या प्रातातील मराठी, कोकणी व कनडी भाषा ते सफाईदारपणे बोलतात. छप्परबंद आपल्या भाषेस 'भातुवली भाषा' असे म्हणतात. इतर गुन्हेगार जमातीप्रमाणे छप्परबंदसुध्दा सांकेतिक भाषेचा वापर करतात. त्यास ते 'पारुशी' भाषा असे म्हणतात.

छप्परबंदांचे धार्मिक जीवन :

मुस्लिम राज्यकर्त्यांच्या सततच्या सहवासामुळेच छप्परबंद मुस्लिम झाले असे दिसून येते. ते जरी मुस्लिमांप्रमाणे नमाज पडत असले तरी इतर आदिम जमातींच्या धार्मिक जीवनाप्रमाणेच त्यांचे जीवन असल्याचे दिसून येते. आजही अनेक छप्परबंद कुटुंबांच्या घरी पूर्वजांचे टाक केलेले दिसून येतात. त्याच बरोबर जत्रा – खेत्रा, शकुन घेणे, बळी देणे या सर्व प्रथा त्यांच्यात चालत आल्या आहेत. आजही त्या सुरु असल्याचे दिसते. ब्रिटीश काळात खोटी नाणी खपविणे हाच यांनी प्रमुख व्यवसाय स्वीकारलेला होता. साधेभोळे लोक, स्त्रिया यांना ते आपले सावज बनवीत प्रथम आपल्याकडील खरे रुपये दाखवून त्या बदल्यात चांदीची नाणी सुटी नाणी म्हणून मागत चांदीची नाणी मिळाल्यावर हळूच रुपयाची खोटी देऊन पोबारा करीत. छप्परबंद हे सुफी पंथाच्या पिराचे भक्त आहेत. पीर हे त्यांचे छापे व इतर साहित्य, त्यांचा देव पीरमाखन याच्यापुढे ठेवत ते पीराची पूजा करीत आणि त्याला कोंबडयाचा बळी देत. अंगात येण्यावर आणि भूताखेतांवर त्यांचा मोठा विश्वास आहे. साथीचे रोग आल्यावर हे इतर भटक्या जमातीप्रमाणे रानातल्या देवीची जत्रा करतात.

छप्परबंदांचे लग्न :

छप्परबंद जरी मुस्लिम असले तरी त्यांच्या लग्नपदधतीमध्ये हिंदूच्या अनेक चालीरीती आढळून येतात. लग्नाच्या वेळी मेहेर-रक्कम ठरविलेली असते. मेहेर रक्कम दिल्याशिवाय वैवाहिक जीवन सुरु करता येत नाही.

छप्परबंदांची जात-पंचायत :

इतर भटक्या जमांतीप्रमाणे छप्परबंद जमातीमध्ये जात-पंचायतीस महत्व आहे. छप्परबंद जमातीस पोलिसांत किंवा कोर्टकचेरीत तक्रार घेऊन जाण्यास मनाई आहे. जमातीमध्ये चोरी, फसवणूक, मारामारी करणे, अनैतिक संबंध ठेवणे हा गन्हा होऊ शकतो. जमातीमध्ये जे घराणे प्रतिष्ठित असेल त्याला पंच होण्याचा मान मिळतो. प्रमुख पंचांना मदत करण्यासाठी जे काम करतात त्यांना 'खोगीर' म्हटले जाते. अनैतिक संबंध ठेवणा-या व्यक्तीस जमातीतून बहिष्कृत केले जाते किंवा तिने गुन्हा कबुल केला, तर तिला दंड केला जातो. छप्परबंद कधीही गुन्हा कबुल करीत नाहीत. त्यांच्या बायका कधीही पांलिसात व कोर्टात गुन्हा कबुल करीत नाहीत. पोलीस किंवा कोर्टात जमातीबद्दल माहिती देणा-यास पंचात बहिष्कृत करते.

मर्तिकांचे विधी :

शेराच्या झाडाच्या लांब फांदयांची तिरडी तयार करतात. त्यावर गवत टाकतात. प्रेताला नवीन कपडे घातले जातात. प्रेताला ताटीवर ठेवल्यावर पुरुष मेला असेल तर त्याच्या बायकोस बोलावून घेतात. तिला मेहेरची रक्कम दिली आहे का, असे विचारतात. जर मेहेर दिला नसेल तर तिला माफ करुन टाकण्यास सांगितले जाते. नव-याने मेहेर दिला नाही म्हणून मेहेरची रक्कम माफ करुन ती देवाजवळ माफी मागते. तिरडी उचलण्याचा प्रथम हक्क भावकीतील मुलांना दिला जातो. त्यांनी तिरडी उचल्यावर प्रेताला दफन करतात. दफनविधी होईपर्यंत मृताचे घर साफ करतात व भावकीतील लोक गुळभात, डाळभाताचे जेवण तयार करतात. मयतीस गेलेले लोक हातपाय धुऊन मृताच्या घरी जमा होतात. मृताच्या नातेवाईकांचे सात्वन करतात आणि तयार केलेले वरणभाताचे जेवण किंवा चहापान करुन परत आपआपल्या घरी निघून जातत. तीन दिवसांनंतर मृताला आवडणा-या वस्तू स्मशानात जाऊन मेलेल्या व्यक्तीच्या थडग्याजवळ ठेवतात. प्रार्थना करतात आणि आणलेल्या वस्तू जमलेल्या लोकांना वाटतात आणि कावळयाला घालतात. मृताच्या घरामध्ये चाळीस दिवस सुतक पाळले जाते. या काळात नवीन कपडे घालत नाहीत. हजामत करीत नाहीत, लग्नासारखे कोणतेही मंगलकार्य करीत नाहीत.

रिहानाब्बसली ट्रस्ट :

वरील विवेचनावरुन स्पष्ट होते की छप्परबंद जमात अतिशय मागासलेली आहे. यांच्या विकासासाठी रिहानाब्बसली ट्रस्ट त्यांच्याच लोकांनी धारवड येथे स्थापन केला आहे. छप्परबंद समाज महाराष्ट्र, गोवा व कर्नाटक मध्ये आढळून येतो. रिहानाब्बसली ट्रस्ट च्या माध्यमातून तिनही राज्यातील छप्परबंद समाजाचा अभ्यास करण्यात आला व त्याचा अहवाल शासनाला सादर केला आहे. पण दुदैवाने त्या अहवालावर अजून तरी काहीही कारवाई झाली नाही. छप्परबंद समाज विकासापासून अजूनही वंचीत आहे. मुळात हा समाज अस्तित्वात आहे हेच ब-याच जणांना माहित नाही.

छप्परबंद समाजातील शिक्षणांचे प्रमाण :

अत्यंत अत्यल्प आहे. शिक्षणाचे प्रमाण जेमतेम एक टक्का भरेल. शिक्षण नसल्यामुळे विकासाची दारे त्यांच्यासाठी बंद आहेत. भटक्या जमातीचा दाखला उपलब्द नसल्यामुळे शासनाच्या सोयी व सवलतींचा लाभ घेता येत नाही. अंधश्रध्दा मोठया प्रमाणात आढळते.

कोरोनाच्या काळात या समाजाचे खुप हाल झाल्याचे ट्रस्ट च्या कार्यकत्यांनी सांगीतले शासनाच्या सोयी व सुविधा मिळविण्यासाठी लागणारी कागदपत्रे व दाखले उपलब्द नसल्याने उपासमारीची वेळ त्यांच्यावर आली. छप्परबंद समाज संख्येन कमी असल्यामुळे व खंबीर नेतृत्वाची कमतरता असल्याने शासन दरबारी दाद देत नाही.

या समाजातील माहिला अजूनही विकासाच्या प्रक्रिये पासून ब-याच लांब आहेत. परंपरेन त्यांना जखडून ठेवण्यात आले आहे.

अत्यंत हालाकीचे जीवन जगत असलेली छप्परबंद जमात ही दिवसेंदिवस जास्त प्रमाणात मागासलेली होत आहे. त्यांना आपला पारंपारिक व्यवसाय पूर्णपणे सोडून दिलेला आहे व हे लोक मोलमजूरी करण्याच्या कामात दिसून येतात.

चिरंतन विकास उददीष्टांच्या आधारे छप्परबंद समाजाचा विचार केला असता फारच दयनीय असे चिञ या समाजाचे उभे राहते. सद्याच्या जागतिकीकरण, उदारीकरण आणि खाजकीकरण या परिस्थितीत देखील हा समाज प्रचंड मागसलेला असल्याचे दिसून येते.

शिक्षण :

या समाजाचे शिक्षणाचे प्रमाण फक्त ०.९ % एवढे आहे रिहानाब्बसली ट्रस्ट एका बाजुला समाजातील सर्व घटकांपर्यंत शिक्षण पोहचविण्यासाठी शासनाने मोफत शिक्षणाचा अधिकार, शिक्षणाचे सार्वत्रिकरण,शैक्षणिक धोरणे, शिक्षण आपल्या दारी अनौपचारिक शिक्षण असे विविध कार्यक्रम राबविले आहेत. मग प्रश्न पडतो की शासनाने एवढे प्रयत्न देखील हा समाज शैक्षणिक दृष्टया वंचित का आपल्या देशाचा ७५ वा स्वातंत्रय उत्सव आपण सदया साजरा करीत आहेत. पण तरीही छप्परबंद समाज अजूनही मागासलेलाच आहे. डॉ.बाबासाहेब आंबेडकरांनी सांगितले होते कि शिका, संघटित व्हा आणि संघर्ष् करा. पण हा समाज जर शैक्षणिक दृष्टया अतिमागास असेल तर संघटनाचे व संघर्षाचे महत्व कसे समजणार.

त्यांच्या कुटुंबामध्येच जर कोणी शिकलेला नसेल तर शिक्षणाचे महत्व व शिक्षणामुळे होणार विकास त्यांना समजणारच नाही. सतत भटकंती करणारा छप्परबंद समाज एका ठिकाणी स्थायिक नसल्यामुळे शिक्षणापासून वंचितच राहिला आहे. मुलांच्या बाबतील तर शिक्षणाची दयनीय अवस्था आहे कारण त्यांची लग्न खुप कमी वयात केली जातात. मुलींचे लग्न करून मोकळ होणे हा विचार त्यांचे पालक करीत असतात. मुळात पालकच अशिक्षित असल्याने शिक्षणाचा फायदा चांगले आयुष्य जगण्यासाठी होतो हेच त्यांना समजलेले नाही. रूढी व परंपरा सांभाळण्यातच व्यस्त असलेला समाज शिक्षण व विकास याकडे डोळसपणे कसा पाहणार.

व्यसनाधिनता :

शिक्षणाचा अभाव, रोजगाराच्या मर्यादीत संधी, मोल मजूरी कसेतरी पोट भरणारा समजा व्यसनाधिनतेकडे लगेच वळतो. कुटुंबातील पुरूष जर व्यसनी असेल तर कौटुंबिक गरजा भागल्या जात नाहीत. व दारिद्रयांचे चक्र निर्माण होते. शिक्षण नाही म्हणून रोजगार नाही – व्यसनाधिनता – आरोग्याची समस्या – दारिद्रय अशा चक्रामध्ये हा समाज जगत आहे. जी काही मोलमजूरी मिळत आहे ती दारू, सिगरेट सारख्या व्यसनासाठी खर्च करीत असतात महिलांमध्ये देखील तंबाखुच्या मिश्रीचा वापर आढळतो. व्यसनांचा परिणाम हा आरोग्यावर होताना दिसतो.

आरोग्य :

महिलांमध्ये कुपोष्णाचे प्रमाण अधिक असल्याचे दिसून येते. पोषक आहारा बदद्ल पुरेशी जागरूक नाही. मुलींची कमी वयात लग्न, लगेच बांळतपण व आई व बाळ कुपोषित या चक्रांत या समाजातील महिला अडकलेल्या आहेत. ब-यांच महिला गर्भनिरोधक न वापरल्यामुळे खुप कमी अंतराने गरोदर राहतात. त्याचा परिणाम त्यांच्या आरोग्यावर होताना आढळतो. महिला व

बालके कुपोषित असल्याने विविध आजाराच्या बळी पडतात. माता व बालमृत्यूचे प्रमाण देखील या समाजामध्ये अधिक असल्याचे दिसून येते. आरोग्याच्या विविध समस्यांना त्यांना सामोरे जावे लागते.

रोजगार :

मोलमजूरी करणे हाच एक रोजगाराचा पर्याय आढळून येतो. मोलमजूरी मिळाली नाही तर बेरोजगार रोजगाराच्या संधी जरी शासनाने उपलब्द करून दिलेल्या असल्या तरी नागरीकत्वाचे दाखले या समाजाकडे उपलब्द नसल्याने शासनाच्या योजनांचा लाभ घेउ शकत नाहीत. कायम स्वरूपाचा रोजगार उपलब्द नसल्याने हा समाज गरीबीकडून अतिगरीब होतांना दिसतो.

सारांश :

छप्परबंद समाजाला विकासाच्या मुख्य प्रवाहात आणण्यासाठी विशेष प्रयत्न करणे अत्यंत गरजेचे आहे. अत्यल्प शिक्षण असणारा समाज शिक्षणांनेच सुधारेल. भटक्या जमातीसाठी असणा-या आश्रमशाळांमध्ये या समाजातील जास्तीत जास्त मुल कशी येतील यावर काम करणे गरजेचे आहे. नुसती मोलमजूरी करुन कौटुंबिक गरजा भागवणे शक्य नाही म्हणून स्व्यंरोजगाराच्या विविध संधी उपलब्द करायला पाहिजेत. सामाजिक धोरणांचा वापर करुन या समाजाचा विकास कसा सादय करता येईल याचाच एक स्वतंत्र अभ्यास करुन या समाजाला मुख्य प्रवाहात आणायला विशेष प्रयत्न करायला पाहिजेत.

संदर्भ :

१. विमुक्तायन : लक्ष्मण माने, यशवंतराव चव्हाण प्रतिष्ठान,मुंबई, १९९७.

२. रिहानाब्बसली ट्रस्ट च्या कार्यकर्त्यांकडून प्रत्यक्ष मुलाखतीतून माहिती संकलित केली आहे.

भटक्या विमुक्त जाती-जमातीच्या आत्मकथनांमधील सामाजिकता

शितल संग्राम सालवाडगी
शिक्षणमहर्षी बापूजी साळुंखे
महाविद्यालय, कराड
भ्रमणध्वनी: 7420958057
ई-मेल shital.salawadagi@gmail.com

सारांश :

भारतीय समाजात जातीनिहाय समाजरचनेमुळे माणसाला पशूपेक्षाही हीन जीवन जगावे लागले. अशाच भटक्या विमुक्त जाती-जमाती म्हणजे पोट भरण्यासाठी गावोगावी भटकंती करीत आपले जीवन जगत होते. पण शिक्षणामुळे त्यांच्यात बदल झाले व त्यांच्या जीवनाला कलाटणी मिळाली. ते एका ठिकाणी स्थिर झाले. भटक्या विमुक्त जातीतील आत्मकथने अभ्यासताना त्यांच्या जीवनातील असंख्य प्रसंग वेदना देणारे आहेत याची अनुभूती होते.

पारिभाषिक संज्ञा : भटक्या विमुक्त जाती-जमाती, ग्रामीण, स्त्रीवादी, आदिवासी, विज्ञान, लोकप्रिय, मुस्लिम, दलित, भटक्या विमुक्तांचे साहित्य

प्रस्तावना:

समाज आणि साहित्य यांच्या मध्ये एक घनिष्ठ संबंध असतो. साहित्य हे समाजाचा आरसा, प्रतिबिंब आहे, असे मानले जाते. म्हणूनच तर समाजातील विविध घटकांवर साहित्यातून प्रकाश टाकला जातो. कोणत्याही भाषेतील साहित्यात नित्य नवे प्रवाह उदयाला येणे हे त्या भाषेच्या साहित्याचे जिवंतपणाचे लक्षण आहे. हे प्रवाहच साहित्याला समृद्ध-संपन्न करीत असतात आणि साहित्यात असणारे चैतन्य टिकून ठेवण्याचे कार्य करतात. साहित्यामध्ये नवे प्रवाह, नवे स्वत्व, जाणिवा घेऊन लेखन करणारे लेखक नसतील तर ते साहित्य निर्जीव असल्याप्रमाणे भासते. स्वातंत्र्यप्राप्तीनंतर मराठी साहित्यात अनेक प्रवाह निर्माण झाले. त्यातून त्या-त्या लोकांच्या जीवन जाणिवा प्रकट होत गेल्या आणि त्यामुळेच मराठी साहित्य आहे आणखीनच समृद्ध व संपन्न झाले.

साठोत्तरी कालखंडात साहित्यात ग्रामीण, स्त्रीवादी, आदिवासी, विज्ञान, लोकप्रिय, मुस्लिम, दलित, भटक्या विमुक्तांचे साहित्य असे नवीन प्रवाह उदयाला आले. कोणत्याही साहित्य प्रवाहाचा उगम हा अचानक वा उगीच निर्माण होत नाही. तर त्या पाठीमागे काही कारणे, प्रयोजन, हेतू प्रेरणा असतात. नवे विचार, नवी साहित्यदृष्टी, बदलते सामाजिक, राजकीय संदर्भ, शिक्षणामुळे आलेली स्थिरता व बदललेली मानसिकता यातूनच हे नवे प्रवाह साहित्यात रुजले व वाढले. दलित साहित्य प्रवाहाशी समांतर असणारा समाज म्हणजे भटका विमुक्त समाज. या समाजातील लोकांचे जीवन, त्यांना उदरनिर्वाहासाठी करावे लागणारे स्थलांतर यातूनच त्यांच्या जीवनाबद्दल असणाऱ्या विद्रोही जाणिवा साहित्यात उतरू लागल्या. म्हणूनच प्रस्तुत शोधनिबंधात तून मी "भटक्या विमुक्त जाती-जमातीच्या निवडक आत्मकथनांमधील सामाजिकता" या विषयावर माझे अभ्यासपूर्ण विचार मांडण्याचा प्रयत्न करीत आहे.

विषय विवेचन:

दलितांच्या वंचनाच्या जवळ जाणाऱ्या किंबहुना त्याहीपेक्षा खडतर जीवन जगणाऱ्या विमुक्त जाती-जमातींच्या लोकांचे साहित्य पाहण्यापूर्वी यांची पार्श्वभूमी अभ्यासणे मला महत्त्वाचे वाटते. दलित लोकांना गावात स्थान नसले तरी ते गावकुसाबाहेर स्थिर जीवन जगत होते, पण याउलट भयानक परिस्थिती भटक्या विमुक्तांची होती. 'आज या गावी तर उद्या त्या गावी', यांचा एक ठावठिकाणा नव्हता. उदरनिर्वाहासाठी सतत गावोगावी भटकंती करीत फिरणे. एकाच ठिकाणी राहून आपले पोट भरेल असे उत्पन्नाचे साधन त्यांना गुन्हेगार या शिक्क्यामुळे मिळालेच नाही. आजही काही प्रमाणात या जाती-जमाती सर्वत्र भटकंती करत

आपले जीवन जगताना दिसतात. दारिद्र्य, अज्ञान, निरक्षरता, समाजाची हीन वागणूक या ंमुळे या समाजातील लोक गुन्हेगारीकडे वळताना दिसतात. स्वतःचे गाव, स्वतःच्या मालकीची जमीन नाही, घर नाही, अस्थिरता, स्थलांतर, भटकंती करणारा, पोटाची खळगी भरण्यासाठी सतत धावणारा भटका समाज अनेक वर्षे शिक्षणापासून वंचित राहिला. अत्यंत दरिद्री, अज्ञानी, अंधश्रद्धाळू आणि सामाजिक दृष्ट्या मागासलेल्या या समाजातील अनेक लोकांची आजही अवस्था बदललेली नाही.

संज्ञा/ संकल्पना:

प्रस्तुत शोधनिबंधात आलेल्या संज्ञा म्हणजे भटक्या याचा अर्थ भटकणारा, अस्थिर आहे तर विमुक्त या शब्दाचा अर्थ मोकळा सुटलेला असा अर्थ आहे. (मराठी शब्दरत्नाकर, वा.गो.आपटे)

व्याख्या:

रामनाथ चव्हाण:

व्यापाराच्या निमित्ताने गावोगावी भटकत असलेला आणि भिक्षा मागून किंवा काही पारंपारिक कलेच्या आधाराने स्वतःची उपजीविका करणारा लोकसमूह अनेक वर्षांपासून महाराष्ट्रात वेगवेगळ्या जाती- जमातींच्या नावाने जीवन जगताना आढळतो, अशा या समूहाला भटके-विमुक्त म्हंटले आहे

मोतीराज राठोड:

भटका म्हणजे एका ठिकाणी न थांबणारा

१) उपरा:

कैकाडी भटक्या जमाती के चित्रण आपल्या 'उपरा' या आत्मकथेतून लक्ष्मण माने यांनी केले आहे. या आत्मकथनाचे प्रमुख दोन टप्पे आहेत. पहिल्या टप्प्यात शिक्षण व दुसऱ्या टप्प्यात शिक्षण घेत असताना पदरी आलेल्या जीवन-जाणि‍वा अशा दुहेरी पातळीवर त्यांनी स्वतःच्या कुटुंबाच्या किंबहुना समूहाच्या संघर्षाचा आलेख मांडला आहे. लक्ष्मण मानेचे हळूहळू विकसित होत गेलेले व्यक्तिमत्व कसे बहरते? याचे चित्रण आत्मकथनातून येते, तसेच ग्रामीण भागातील आणि तेथील घोर अंधारमय जीवन जगणारे दरिद्री लोक व त्यांचे जगणे याचे दर्शन लेखक घडवितात.

लेखकाला लेखक करण्यासाठी केवळ एखादे निमित्त पुरेसे होते केवळ स्वतःच्या जीवन जाणिवा, स्वतःच ा बौद्धिक, मानसिक प्रवास इतरां पुढे मांडणे हा त्यांचा उद्देश नव्हता, तर त्यातून भटक्या-विमुक्तांच्या प्रश्नांवर प्रकाश टाकून त्यावर विचारमंथन व्हावे हा होता. लक्ष्मण माने म्हणतात, "या पुस्तकांना भटका विमुक्त जाती-जमातीच्या प्रश्नांवर सामाजिक मंथन सुरू झालं भटक्यांचे प्रश्न सामाजिक चर्चेचा विषय झाले आणि त्यांच्यासाठी काम करणाऱ्या मंडळींच्या कामाला चालना मिळेल तरी पुस्तक लिहिण्याचे श्रम सार्थकी लागले असे मी समज ीन." (दलितांची आत्मकथने संकल्पना व स्वरूप डॉ वासुदेव मुलाटे स्वरूप प्रकाशन जाने.१९९९, पृ.१०६)

स्वतःच्या आत्मकथनाचे निमित्त करून स्वसमुहाचे जीवन, त्यांची होणारी होरपळ, अगतिकता, समाजाकडून मिळणारी हीन वागणूक त्यांना सांगायची होती व ते काम त्यांनी अत्यंत तटस्थपणे, परखडपणे, वास्तवदर्शी पातळीवरून केलेले दिसते. त्यासाठी लेखकाने दिलेली प्रसंगानुरूप माहिती, वर्णन केलेले चित्ररूपी प्रसंग, हृदय हेलावून टाकणारे आहेत. त्यामुळेच ते वाचकांच्या मनाला जाऊन भिडतात. त्यात पारदर्शकता, प्रामाणिकपणा, प्रांजळपणा असलेल ा दिसतो. 'जे जगलो, जे भोगलं, अनुभवलं, पाहिलं ते-ते येथे अवतरले आहे', असे लक्ष्मण माने म्हणतात.

एखाद्या उपेक्षित, वंचित समाजाच्या व्यथा-वेदनांना वाट करून देणे, ही त्या-त्या जाती-जमातीच्या जातपंचायतीच्या दृष्टीने गुन्हा करण्यासारखे आहे. त्यासाठी जातीबाहेर फेकले जाण्याची शिक्षा आहे. तरीसुद्धा आपल्या शिक्षणाच्या जोरावर, लेखणीच्या बळाने या वंचित समाजाला प्रस्थापितांसमोर मांडण्याचे धाडस लक्ष्मण माने यांनी केले आहे. शिक्षण घेऊन अक्षरांची सोबत करून त्यांनी अगोदरच एक गुन्हा, अपराध केला होता. कैकाडयांनी आपल्या कौटुंबिक परंपरेनुसार कणगी वळणे हेच पूर्वापार चालत आले होते. पण इथे तर काय कैकड्याचा पोर (लक्ष्मण माने) अक्षरांना वळण देण्याचे स्वप्न बघत-बघत साक्षर झाला.

कैकाडी जातीला ना गाव, ना घर, ना दार त्यांच्यासाठी जमीन आणि डोक्याला आकाशाचे छप्पर हेच घर होते. पोटाची खळगी भरण्यासाठी पायाला भिंगरी बांधून आज या गावात तर उद्या त्या गावात अशी त्यांची जीवनगाथा. अशा या समाजातीलच बापू कैकड्याने एक स्वप्न पाहिले, ते म्हणजे आपल्या मुलाने मास्तर व्हावे. ही भाबडी आशा-आकांक्षा उराशी घेऊन त्याने मुलाला शिक्षण सोडून दिले नाही. ज्या गावात जाईल तिथे शिक्षण निरंतर चालू राहिले व त्यातून त्याने स्वतःला घडविले. गरिबीने त्रासलेली वैतागलेली माणसे एकमेकांवर चिडत, भांडत, रागावत असत, पण ते सारे क्षणिक असायचे राग मावळला की ते एकमेकांना जपत असत. आपल्या मुलाला शिस्त लावण्यासाठी प्रसंगी त्याला मारणारा बाप 'उपरा' मध्ये दिसतो. आपल्या जातीचे सर्वांगीण चित्रण त्यांच्या या आत्मकथनात रेखाटले आहे. आपल्या कुटुंबाचे वर्णन करताना आपले पूर्वज कसे शूर होते याचेही चित्रण यातून दिसून येते. अंधश्रद्धेला बळी पडलेला हा समाज अनेकदा काळुबाईचा धावा करताना दिसतो. आर्थिक बाजूने कमी असली तरी देवांच्या जत्रा वेळच्यावेळी झाल्याच पाहिजेत, असा आग्रह दिसतो. न्याय निवाडे करण्यासाठी जात पंचायत असते. त्यामध्ये कै पंचापुढे (जामीन घेणारा) वादी प्रतिवादी च्या वतीने बाजू मांडतो. स्त्रीला स्वतःचे काहीच अस्तित्व नसते . गुलामापेक्षाही हीन जीवन तिला लाभले आहे. प्रसंगी पैशासाठी स्त्रीला तारण ठेवण्याचीही पद्धत आहे. बालविवाहाची पद्धत समाजामध्ये रूढ आहे. विविध दोषांनी युक्त अशा अंध:कारमय वातावरणात आयुष्य जगणाऱ्या समूहाचे व त्यांच्या जीवनाचे दर्शन या आत्मकथनातून घडते.

२) उचल्या:

जाती पाती वर आधारलेल्या समाजात असाही एक समाज आहे, ज्याला गावगाड्यात काहीच स्थान नाही. ज्याला ना गाव, ना घर, ना निश्चित जागा असा समाज की जो भटकंती करत जगत होता. त्यांना समाजाने नाकारले प्रसंगी त्यांनी संसार चालवण्यासाठी लेकरा बाळांचे पोट भरण्यासाठी जो मार्ग मिळाला, त्यातून पोट भरण्यासाठी धडपड चालूच ठेवली. त्यासाठी कधी त्यांना त्या समाजाच्या वर्तणुकीमुळे चोरी सुद्धा करावी लागली आणि म्हणूनच ह्या लोकांच्या माथी चोर, लबाड, भामटे असा शिक्का समाजाकडून त्यांच्या जन्मताच बसला. अशा समाजापैकी 'संतामुच्चर' या नावाने ओळखली जाणारी ही जात संपूर्ण भारताबरोबरच महाराष्ट्रातही आहे. पण ही जात महाराष्ट्रात पाथरूट, टकारी भामटा, उचल्या, गिरनेवडार,कामाटी, घंटीचोर, वडार या अनेक नावांनी ओळखली जाते. अशा गुन्हेगार समजल्या जाणाऱ्या या भटक्या जमातीत लेखक लक्ष्मण गायकवाड यांचा जन्म झाला. हा एक कार्यकर्ता असून जेमतेम नववीपर्यंत शिकलेला तरुण त्याने 'उचल्या' या आत्मकथनातून त्याच्या बरोबरच या भटकंती करणाऱ्या समाजाचे चित्रण केलेले दिसते. जन्मानेच गुन्हेगार ठरविलेल्या या जातीच्या लोकांच्या उपजीविकेची सर्व साधने, सर्व मार्ग हिरावून घेतलेल्या या समाजापुढे चोऱ्या करणे, लबाड्या करून फसवणूक करणे या शिवाय पर्यायच नव्हता. मनोगतामध्ये लक्ष्मण गायकवाड म्हणतात, भूक शमविण्यासाठी सर्व रस्ते बंद झाल्यामुळे भुरट्या चोऱ्या करणारी जमात चोर ठरते पण याच प्रस्थापितांच्या समाजात कोट्यावधी रुपयांची चोरी करणारे याच समाजातील प्रतिष्ठित उच्चभ्रू लोक समाजात ताठ मानेने फिरतात. हा समाजातील फार मोठा विरोधाभास ते दाखवून देतात. त्या समाजात सामूहिक चोरीचा प्रकार दिसून येतो. गर्दीमध्ये चोरी करणे, चपला-बूट चोरणे, शेतातील धान्य पिकाची चोरी करणे, प्राणी चोरणे या सगळ्या प्रकारातून त्यांना पोट भरण्यासाठी दोन वेळचे अन्न मिळते.

लहान मुलांना म्हणजे आठ-नऊ वर्षांच्या मुलांनाही चोरीची प्रशिक्षण दिले जाते. पोलिसांनी पकडल्यानंतर या मुलांनी नावे सांगू नयेत म्हणून त्यांचा छळ केला जातो. त्यांना उपाशी ठेवले जायचे यातून त्यांना पोलिसांपुढे टिकून राहण्याचे कौशल्य आत्मसात होईल, ही अपेक्षा टोळी वाल्यांची असे. पोटाची भूक भागविण्यासाठी विविध प्रकारचे प्राणी मारून खाल्ले जात असे. कधी- कधी तर उंदीर,मुंगुस, खारी मारून खाल्ली जायची.

अन्न,वस्त्राबरोबरच त्यांच्या निवाऱ्याची व्यवस्थाही फाटकी आणि तितकीच गलिच्छ असे. आरोग्य आणि स्वच्छता यांच्या बाबतीत तर ते कधीच प्रगत आणि आग्रही नव्हते. त्यांचे जीवन भूक, दारिद्र्य, बकालपणा, घाणेरडेपणा आणि जगण्याची धडपड यातच व्यतित झाले. सतत पोलिसांचा ससेमिरा पाठीमागे असायचा. या जमातीत अंधश्रद्धेचं वर्चस्व असलेले दिसते. लेखक

शाळेत गेल्यामुळे आपल्या मुलांना साथीचे आजार झाल्याचे आरोप समाजातील लोक करताना दिसतात. विविध रिती, प्रथा या समाजात असलेल्या दिसतात.

३) गबाळ:

भटक्या फिरस्ती जमातींमधील आणखी एक महत्वाची जमात म्हणजे कुडमुडे जोशी ही होय. या जमातीचे लोकही पोटाची खळगी भरण्यासाठी गावोगावी भटकंती करीत फिरत असतात. लोकांना त्यांचे भविष्य सांगण्याच्या नावाखाली त्यांना फसवून त्यांच्याकडून ऐपतीप्रमाणे पैसे मागून घ्यायचे अशा समाजात जन्माला आलेला एक मुलगा शिक्षणाची कास धरून साक्षर होतो व आपल्या बरोबरच आपल्या समाजाचे ही दुःख मांडतो, अशाच सुजाण मुलाचे म्हणजेच दादासाहेब मोरे यांचे आत्मकथन हे 'गबाळ' होय.

ही जमात इतर भटक्या जमातीप्रमाणे श्रम करून जगणारी नाही तर ब्राह्मण जातीतील जोश्यांप्रमाणेच बुद्धिप्रामाण्यवादी आहे. दोन काठ्या उभारून त्यावर पोती टाकून तयार केलेले पाल म्हणजेच त्यांचे घर आहे. धर्मावर आधारित असलेल्या समाजाची व्यवस्था माणसाला माणसापासून दूर नेते. पशुंपेक्षाही हीन वागणूक त्यांना मिळते आणि म्हणूनच या आत्मकथनामधून कठोर, परंपरावादी, प्रस्थापित, उच्चभ्रू लोकांबद्दलचा संताप व्यक्त होतो. दादासाहेब कुटुंबाचा शोध घेत असताना मारुतीच्या मंदिराचा आश्रय घेतात पण मंदिराचा पुजारी त्यांना रागावून बाहेर काढतो. त्यावेळी या अशा जातीत का जन्माला घातले आहेस? असा प्रश्न विचारून ते देवाला दोष देतात. हे आत्मकथन दुःखाचे ओझे, गबाळ आहे असे लेखकाला वाटते. प्रत्येक आत्मकथनकार हा निमित्तमात्र आहे त्यांच्या आत्मकथनातून ते या उपेक्षित समाजाचे प्रतिनिधित्व करताना दिसतात. समाजातील प्रत्येक घटकाचे ते गबाळ आहे, असे लेखकाला वाटते. धर्मभोळ्या व अंधश्रद्धाळू माणसांशी लबाडपणे वागून स्वतःचा चरितार्थ चालविणारी ही जमात स्वतः ही धर्मभोळी, अंधश्रद्धाळू आहे. एकमेकांसोबत समूहात एकत्र राहणारी ही जमात दैनंदिन जीवनात सुख-दुःखात आपुलकीने सहभागी होतात. अन्याय, कष्ट यांनी खचून न जाता जिद्दीने उभा राहताना दिसतो. शाळेत जाण्याची इच्छा व्यक्त करताच मास्तरांनी ही भिकाऱ्याच्या मुलाला शाळेत प्रवेश देता येणार नाही, अशी दमदाटी केली. माणसाला माणूस म्हणून नाकारणाऱ्या मानवी समाजाचे विषमतापूर्ण चित्रण 'गबाळ' या आत्मकथनात रेखाटले आहे. त्यात कुठेही राग, चीड, त्रागा दिसून येत नाही. उलट अत्यंत संयम ठेवून लेखक आपल्या व्यक्तिमत्त्वाची जडणघडण वाचकांसमोर उलगडतात.

४) आभरान:

हे एका युवा कार्यकर्त्याचे आत्मकथन आहे. लेखक पार्थ पोळके हेही अशाच भटक्या समाजातील आहेत, की जो अंधश्रद्धेच्या पायावर उभा आहे. 'पोतराज' या भटक्या जमातीचे चित्रण या आत्मकथनातून येते. या समाजात देवांनासुद्धा माणसाने विभागले आहे. उच्चवर्णीय यांचे देव वेगळे व क्षुद्रांचे देव वेगळे. अशाच मरीआईचा भक्त असणाऱ्या पोतराजाचे खडतर आयुष्य 'आभरान' या आत्मकथनातून मांडले आहे.

मरिआई देवीचा कोप झाला की बरकत येत नाही, दुःख येते, संकटांचा मारा सुरू होतो, आजारपण, रोगराई पसरते. यामुळे अशा कुटुंबातील मोठा मुलगा देवीचा पोतराज म्हणून सोडला जातो. पोतराजाच्या अंगावर देवीच्या नावाने धारण केलेली वस्त्र म्हणजे 'आभरान' होय. 'आभरान' विषयी पार्थ पोळके उपहासाने व उपरोधाने म्हणतात की 'आभरान' म्हणजे इथल्या व्यवस्थेने पोतराजाला दिलेली राजवस्त्रच, सगळ्या आयुष्याच्या चिंता करायला लावणारी.

प्रत्यक्ष वडीलच पोतराजाचे जीवन जगत होते हे लेखकाने जवळून पाहिले होते. काबाडकष्ट करून भीक मागून लेखकाला शिक्षण देण्याचा प्रयत्न आई वडिलांनी केला म्हणूनच ते या समाजाचे 'आभरान' समाजासमोर मांडू शकले. पोटाच्या भुकेचा प्रश्न याही समाजापुढे आ वासून उभा राहिलेला आहे. अंधश्रद्धा व ज्ञान यांनी वेढलेला समाज अनेक अंधश्रद्धांना बळी पडताना दिसतो. अनेक प्रसंगातून लेखकांनी ते वाचकांसमोर रेखाटले आहे. भटका समाज असूनही मरिबाला शिक्षण व डॉक्टर बाबासाहेबांच्या विचारांची कास धरावी लागली व यातूनच आपले कल्याण होईल हा आशावाद जागा झाला. एका पोतराजाचा मुलगा शिक्षणामुळे पुढे समाजकारण राजकारण करू लागला. आपल्या वडिलांचे 'आभरान' त्यांनी दूर फेकले, जाळले, हा विचार

महत्त्वाचा आहे. आपल्या कुटुंबातील या अभूतपूर्व स्थित्यंतराची मालिका लेखकाने रेखाटली, शिवाय अन्याय, परंपरा, रूढी, दारिद्र्य निरक्षरता, अंधश्रद्धा यात वर्षानुवर्षे हीन जीवन जगणाऱ्या समाजाचे दुःखही ते मांडतात. ग्रामीण भाग, जीवन, रीतीरिवाज, सण-उत्सव यांचे चित्रण आत्मकथनातून येते. हे आत्मकथन फक्त पार्थ पोळके यांचे नसून ते संपूर्ण 'पोतराज' समाजाचे प्रतिनिधित्व करताना दिसते.

५) कोल्हाट्याचं पोर:

भटकंती करणाऱ्या जातींपैकी कोल्हाटी ही एक जमात महाराष्ट्रात आपला उदरनिर्वाह करत आहे. याच जमातीतील किशोर शांताबाई काळे यांचे आत्मकथन म्हणजे 'कोल्हाट्याचं पोर'. महाराष्ट्र हा विविध लोककलांनी समृद्ध आहे. त्यातीलच लोकप्रिय लोककला म्हणजे तमाशा या कलेवर जगणारा समाज म्हणजे कोल्हाटी समाज. विवाह पद्धतीला नाकारणारा समाज, स्त्रीच्या जीवावर मौजमजा करणारा पुरुष हा या जातीतच दिसून येतो. स्त्री म्हणजे जणू घरात पैसे आणण्याची एक मशीन आहे. ही मशीन जशी जुनी, निकामी होईल तशी तिला किंमत मिळत नाही आणि तिची वाईट अवस्था होत असे. नाचणारनीच्या पोटी जन्म घेऊन डॉक्टर होण्यात किशोरचे यश आहे, पण समाजाने जन्मत:च अनौरस ठरविल्याचे दुःख सुद्धा खूप मोठे आहे. माणसाच्या हातात कर्म- कर्तृत्व आहे, पण जन्म कुठे घ्यावा हे मात्र त्याच्या हातात नाही, अशाच प्रकारचे दुःख भोगणारा समाज या व्यवस्थेने निर्माण केला.

नाचणारीच्या पोटी जन्म घेतलेल्या मुलांची अवस्था या आत्मकथनातून किशोर काळे यांनी व्यक्त केली आहे. त्या समाजातील उच्चभ्रू प्रतिष्ठित लोकांचे मनोरंजन करत असताना ती रखेल म्हणून त्यांच्याकडे रहावे लागे. समाजातील विरोधाभास लेखकाने आपल्या आत्मकथनातून मांडला आहे. कोल्हाटी समाजातील चिरा उतरणे, दाडी लावणे यासारखे अनेक प्रसंग त्यांच्या आत्मकथनातून आलेले दिसतात. एका स्त्रीला आपलं मूल, आपलं कुटुंब सोडून फक्त पैशासाठी एखाद्या व्यक्तीकडे जाऊन राहावं लागतं. त्याला आपला पती म्हणून स्वीकारावं लागतं, ही सामाजिक जाणीव अगतिकता यातून व्यक्त होते. कोल्हाटी समाजामध्ये जन्माला आलेल्या किशोर काळे यांनी आपल्या आत्मकथनातून या कोल्हाटी समाज जीवनाची संस्कृती त्यांच्या जीवन-जाणिवा या आत्मकथनातून व्यक्त केल्या आहे त.

६) मरणकळा:

गावकुसाबाहेर जगणाऱ्या समाजातील स्त्रियांनीही आपल्या आत्मकथनातून आपल्या समाजाच्या व्यथा-वेदना मांडण्याचा प्रयत्न केलेला आहे. यामध्ये अशा पद्धतीचे लेखन करणाऱ्या जनाबाई गिर्हे यांचे नाव घ्यावे लागेल. जनाबाई कचरु गिर्हे हे त्यांचे पूर्ण नाव. गोपाळ समाज म्हणून भटकंती करणाऱ्या भटक्या विमुक्त जातीतील या लेखिका आहेत. भटक्या-विमुक्त समाजामधील पहिल्या लेखिका होण्याचा मान त्यांना मिळाला . गाव तिथं पाल आणि पाणी तिथं पालं. खाली धरती वर आभाळ हातावरच आणा, हातावरच खा, असं जीवन जगणाऱ्या भणंग, भटक्या समाजातील एक समाज म्हणजे गोपाळ समाज. पोटासाठी गाव गाव दारोदार भटकणाऱ्या बिऱ्हाड पाठीवर घेऊन भटकणाऱ्या या समाजाचा सगळ्यात मोठा गहन प्रश्न म्हणजे भाकरीचा. पोटाची खळगी भरण्यासाठी जिवाचे रान करावे लागणारया समाजात शिक्षण दूर- दूर पर्यंत कुठेही दिसत नव्हते. अज्ञान, दारिद्र्य , अंधश्रद्धा यांचा याही समाजात पगडा दिसून येतो. स्वातंत्र्योत्तर काळात आंबेडकरांच्या विचारांमुळे शिक्षणाची किरणे दलितांपर्यंत पोचली. यामुळेच जनाबाई कचरू गिर्हे यांचे पती शिकले आणि त्यांनी गोपाळ समाजाची परंपरा, त्या समाजाचा इतिहास यामध्ये संशोधनात्मक लेखन केले आणि यातूनच जनाबाईंना आत्मकथन लेखनाची प्रेरणा मिळाली असे त्या आपल्या आत्मकथनाच्या मनोगतात सांगतात. गोपाळ समाजातील एक मुलगी शिक्षण घेऊन मोठी होते आणि स्वतःच्या जीवनाबद्दल लेखन करते, ही गोष्ट साधी नाही. त्यासाठी तिला कितीतरी अग्निदिव्यातून जावे लागले होते. हे आपणाला 'मरणकळा' या आत्मकथनातून वाचायला मिळते. असणारी भूक यांच्या तांदळाचे दर्शन त्यांच्या जीवनामध्ये दिसते भुकेसोबतच अंधश्रद्धा यांचेही दर्शन या भणंग, अज्ञानी समाजाच्या जगण्यातून दिसते.

'मरणकळा' म्हणजे अज्ञान, दारिद्रय यांचे थैमान असलेले आत्मकथन आहे. दारिद्र्याचे दर्शन घडविणारे असंख्य प्रसंग लेखिका यामध्ये रेखाटताना दिसतात. शाळेत जात असताना समाजाकडून झालेला विरोधही आपणाला या आत्मकथनातून जाणवतो.

समारोप:

प्रस्तुत शोध निबंधातून 'भटक्या विमुक्त जाती-जमातीच्या आत्मकथनातील सामाजिकता' या विषयावर विवेचन करण्याचा प्रयत्न केला. प्रत्येक आत्मकथनाचे एक स्वतंत्र असे स्थान भाषेत निर्माण झाले. जे जगलो, जे भोगले ते समाजासमोर मांडणे हे एक आव्हानच होते आणि ते या लेखकांनी मांडले. प्रत्येक आत्मकथनाचा उद्देश हा आपल्या समाजाचे दु:ख, वेदना समाजासमोर आणणे हे होते. हे सर्व लेखक निमित्तमात्र असल्याचे दिसते.

संदर्भ ग्रंथसूची :

१) महाराष्ट्रातील भटका समाज: संस्कृती व साहित्य – डॉ.ना.धों.कदम,प्रतिमा प्रकाशन,१९९५

२) दलितांची आत्मकथने: संकल्पना व स्वरूप – डॉ. वासुदेव मुलाटे, स्वरूप प्रकाशन

३) दलित आत्मकथन – प्रा.चंद्रकुमार नलगे,डॉ.गंगाधर पानतावणे,१९८६

४) दलित साहित्य वेदना व विद्रोह – भालचंद्र फडके,श्री विद्या प्रकाशन,१९७७

५) महाराष्ट्रातील निवडक जाती-जमाती – डॉ.एस.जी.देवगावकर,२००९

६) दलित साहित्य चर्चा आणि चिंतन – डॉ.गंगाधर पानतावणे,साकेत प्रकाशन,१९९३

आदिवासी जमातीचे सामाजिक जीवन

डॉ. ज्योती रामराव रामोड.
एम.ए.बी.एड.एम.फिल.पीचडी.सेट.
बाबुरावजी घोलप महाविद्यालय
सांगवी, पुणे.
मो. नं.- 9673774269
ई-मेल-jr9673774269@gmail.com

सारांश :

भारतीय समाज अनेक जाती-जमाती धर्म,पंथ,वर्ण यांनी बनलेला आहे.भारतातील प्रत्येक प्रांतात विविध जाती-जमाती आपल्या वैशिष्ट्यपूर्ण जीवनपद्धती जगत राष्ट्रनिर्माणच्या प्रक्रियेत सहभागी आहेत. संपूर्ण देशात विविध भागांमध्ये या जमाती विभागल्या गेल्या आहेत. या जमातीत विभाजन झालेले असले तरीही यांच्यात एकता, अखंडता, आदर, प्रेम, विश्वास आणि परंपरा त्यांच्या कृती व सामाजिक जीवनातून दिसून येते.भारत देशात प्राचीन संस्कृतीचा वारसा आजही जपला जात असलेला दिसतो.

विविध धर्म आणि जाती जमातींमध्ये काळानुरूप विविध विचारप्रवाह रूढ होत जातात आणि समाजात अशा प्रकारचे बदल पाहायला मिळतात. प्राचीन काळातील स्मृती ग्रंथात आदिवासींचा उल्लेख दिसून येतो.प्राचीन काळात अनुलोम-विलोम यांच्या शरीरसंबंधातून निर्माण झालेली जमात म्हणजे आदिवासी होय असे काही अभ्यासकांचे मत आहे. आदिवासी या शब्दाचा अर्थ त्या त्या ठिकाणचे मूळ रहिवासी होय. आदिवासी समाजाची विचार शैली समजून घेऊन त्यांना प्रेरणा देऊन समाजाच्या वैचारिक प्रवाहात सहभागी करून घेतले पाहिजे.

आदिवासी समाज आपल्या परंपरा, प्राचीन वारसा,रीती-रिवाज आजही जतन करताना दिसतो हे या समाजाचे विशेष आहे. डोंगराळ भागात राहणाऱ्या या आदिवासींचे सामाजिक जीवन अत्यंत कठीण व संघर्षमय आहे . या शोधलेखांमध्ये आदिवासींच्या सामाजिक जीवनाची माहिती घेतली जाणार आहे.

पारिभाषिक संज्ञा : आदिवासी, महादेव कोळी, भिल्ल, गोंड, वारली, कातकरी, मन्नेरवारलू, नाईकडा, अंध, ठाकूर, गावित, कोलाम, कोरकू, धोंडीया,मल्हार कोळी, माडिया गोंड, परधान, पारधी.

आदिवासी जमाती

महाराष्ट्र राज्यातील एकूण लोकसंख्येपैकी 9. 27 % आदिवासी आहेत. आदिवासी लोकसंख्येच्या बाबतीत महाराष्ट्राचा देशात चौथा क्रमांक लागतो. "राज्यात बहुसंख्य आदिवासी ठाणे, नाशिक, धुळे,जळगाव, अहमदनगर, पुणे, नांदेड, अमरावती, यवतमाळ नागपूर,भंडारा,चंद्रपूर,गडचिरोली, रायगड या जिल्ह्यात केंद्रित झालेले आहेत." तसेच या आदिवासी जमातीचा विचार करता त्यात महादेव कोळी, भिल्ल, गोंड, वारली, कातकरी, मन्नेरवारलू, नाईकडा, अंध, ठाकूर, गावित, कोलाम, कोरकू, धोंडीया,मल्हार कोळी, माडिया गोंड, परधान, पारधी या जमातींचा समावेश होतो.[1]

सामाजिक पैलू :

आदिवासी समाज जीवनाचा सर्वांगीण विचार करता या समाजाच्या वधु वर निवड, पद्धतीत शारीरिक सौंदर्य, पवित्र विषयक कल्पना, विवाह समयीचे वय, घटस्पोट कुटुंब, धार्मिक व जादू विषयक विचार, आर्थिक सामाजिक व शैक्षणिक प्रक्रिया

यासारख्या विविध बाबींची आवर्जून दखल घेतली जाते. या समाजात केंद्र कुटुंब,संयुक्त कुटुंब आणि विवाह संबंधित कुटुंबाचे प्रकार सर्वत्र आढळून येतात. कुटुंब हे मग मातृवंशी असो की पितृवंशीय दोन्ही प्रकारच्या कुटुंब पद्धतीला धर्माला आत्यंतिक महत्त्व असते. अज्ञान, दारिद्र्य आणि निसर्गाच्या सान्निध्यात राहणारे या समाजाचा ईश्वरावर अत्यंत विश्वास असतो. "निसर्गाच्या चमत्काराने अनाकलनीय स्वप्न,झोप, जन्म-मृत्यू इत्यादी विषयांचे गुड हा समाज मानतो.अलौकिक शक्तीवर कमालीचा विश्वास ठेवतो." [2]

आदिवासींचे सामाजिक जीवन इतरांपेक्षा खूप भिन्न आणि अलिप्त स्वरूपाचे असते. आदिवासी मानव समुह म्हणजे ग्रामीण नागरी समाज जीवनापासून दूर वनात राहणारा जंगले, डोंगर या दुर्गम भागात राहिल्यामुळे विशिष्ट अशी समाजाची रचना लहान-लहान वस्तीतून होते."एक गाव अनेक बाबतीत दुसऱ्या गावाशी संबंधित असते.गावाला पाडा असेही म्हणतात कधीकधी एका पाड्यातील माणसे दुसऱ्या पाड्यातील माणसाची दत्त संबंधाने जोडलेले असतात." [3]

प्रत्येक आदिवासी जमातीची स्वतंत्र बोली भाषा असते. बोली भाषेला लिखित स्वरूप प्राप्त झालेले नसल्याने आदिवासींचा कोणताही व्यवहार हा लिखित स्वरूपात नसतो. आदिवासींची गीते, म्हणी, वाङमय, कथा, कोडी हे सारे त्या त्या समाजाच्या जीवनावर आधारित असते.एका पिढीकडून दुसऱ्या पिढीकडे याचे संक्रमण झालेले दिसते एकंदरीत मौखिक परंपरेतून सामाजिक इतिहासाच्या पाऊलखुणा आढळून येतात. आदिवासींच्या पूर्वीच्या सामाजिक जीवनाचा विचार करता काही कठोर नियम होते.

सार्वजनिक पाणवठे, सार्वजनिक संस्थांनी, गावाच्या वेशीतून वाजत गाजत जाणे,वरात गावात फिरू देणे,चांगल्या घरात राहणे एवढेच नव्हे, तर शिंपी नाव्ही वगैरे जातींचे लोक सुद्धा पुरुषांचे कपडे शिवत नसत,केस कापत नसत एकंदरीत सामाजिक कार्यात त्यांना सहभागी होता येत नसे.सगळ्या संस्थांवर जाती व्यवस्थेचा पगडा असल्याने हिंदू समाज जीवनात व्यक्तीला मर्यादित कार्यक्षेत्रात राहावे लागत असे."जातीव्यवस्था ही एक सामाजिक रचनेचे व्यवस्था म्हणून रूढ होती. सामाजिक विकासाची सुरुवात शैक्षणिक प्रवाहातून होणे गरजेचे आहे. "[4]

जन्माला येणाऱ्या मुलाला शारीरिक अस्तित्वासोबतच नवजात बालकांचे समाजाच्या एका जबाबदारी घटकात प्रक्रियेद्वारे रूपांतरण होते.त्या प्रक्रियेत सामाजीकरण म्हटले जाते. सामाजीकरण ही सतत चालणारी प्रक्रिया आहे. आदिवासी समाजात एकत्र होणे किंवा वेगळे होणे या भावना समप्रमाणात दिसतात. शिक्षणाचा अभाव असला तरीही विविध सण-उत्सव उपक्रम यातून आदिवासींचे सामाजिक जाणीव दिसून येते. "माणूस समाजा शिवाय जगू शकत नाही आणि मानवाशिवाय समाज बनू शकत नाही. त्यामुळे मानव व समाज एकाच नाण्याच्या दोन बाजू आहेत. आदिवासींच्या विविध भागांमध्ये भिन्न भिन्न प्रकारचे उत्सव, सण साजरे केले जातात शिवाय गाणी, भारुड गीते, कथा,ओव्या यातून समाजजीवनाची वेगळी ओळख दिसून येते." [5]

आदिवासी जमातीत सामाजिक जीवनात काही नियम असलेले दिसून येतात. म्हणजेच सार्वजनिक उपक्रमात सर्वांचा सहभाग पंचायती,सभा, न्यायनिवाडा, यातून दिसून येते. आपल्या समाजात एकोप्याची भावना जोपासली जावी हा त्यामागील हेतू होय.प्रेम, सद्भावना,आदर,एकनिष्ठता या मूल्यांची जोपासना केली जाते. गावात यात्रा, जत्रा, मेला असे सार्वजनिक कार्यक्रम संघभावनेचा विकास करण्याच्या हेतूने राबवले जातात." सामूहिक खेळ देवी देवतांची पूजा,हाट बाजार,वनभोजन, भंडारा यांचेही आयोजन केले जात असे.यात पुरुषाबरोबर स्त्रियांचाही समावेश मोठ्या प्रमाणावर दिसून येतो.समाजाचे स्वरूप हळूहळू बदलत जाते.बदलत्या काळानुसार विविध विचारप्रवाहा नुसार बदल होत जातात. उदरनिर्वाहाचे साधन, रोजगाराचे साधन म्हणून कुटुंबाइतका समाजही महत्त्वाचा आहे."[6]

आदिवासी समाजाचे प्रमुख लक्षण म्हणजे "समान बोलीभाषा,समान धर्मचरण, समान संस्कृती,समान सामाजिक नियमन यामुळे आदिमानवाच्या संपूर्ण आचार-विचारांत एकजिनसीपणा दिसून येतो." पारंपारिक जीवनाचे सातत्य शतकानुशतके अखंडितपणे चालू आहे याचे कारण हेच आहे.आदिवासी समाज पूर्वी पासून चालत आलेल्या परंपरा, रितीरिवाज यांचे कटाक्षाने पालन करतो. आदिवासींची संस्कृती हा त्यांच्या सामाजिक जीवनाचा मूळ गाभा आहे.[7]

महाराष्ट्रात आढळून येणाऱ्या विविध जमातींमध्ये सामाजिक वैशिष्ट्ये चालीरिती, सांस्कृतिक विविधता, धार्मिक विविध परंपरा यात सारखेपणा आढळत नाही. "आदिवासींचे सामाजिक जीवन हे त्यांच्या भोवतालच्या भौगोलिक,आर्थिक आणि परंपरागत चालत आलेल्या परंपरांनी बनलेले आहे. आदिवासी समाजात स्त्रियांनाही मानाचे स्थान आहे." आदिवासींचे सामाजिक भावविश्व निसर्गमय आणि प्रतिभाशाली असते.आदिवासी आणि निसर्ग यांच्यात भावनांचे अतूट नाते असते. निसर्गाच्या सानिध्यात जीवन जगत असल्याने निसर्गाबद्दल प्रेम,काळजी,आदर, संरक्षण या भावना त्यांच्या वर्तनातून प्रतिबिंबित होतात.[8]

समारोप:

आदिवासी जमातीचे सामाजिक जीवन विविध अंगातून व्यक्त होते. त्याची जीवनशैली,सामाजिक जीवन अतिशय साधे, सरळ आणि निसर्ग प्रिय आहे.आदिवासीच्या, वस्त्या गावे यांच्यात एकोप्याची भावना, पर्यावरणाबाबत जागृती दिसून येते. समाजाचा विकास हा तेथील मानव समूहावर अवलंबून असतो.आदिवासी लोकाचे समाजाचा विकासाच्या प्रवाहात आणि निसर्ग संवर्धनात मोठ्या प्रमाणावर योगदान आहे.

आदिवासीच्या विविध जमातीत सामाजिक विविधता थोड्याफार प्रमाणात दिसून येते. सामाजिक जीवनाचे प्रतिबिंब मोठ्याप्रमाणावर मौखिक परंपरेतून व्यक्त होते. आदिवासींच्या वर्तनातून सामाजिक मूल्यांची जोपासना केली जाते. सामाजिक दृष्टिकोनातून संस्कृतीची देवाण-घेवाण एका पिढीकडून दुसऱ्या पिढीकडे केली जाते. आदिवासींच्या जीवनाला समाज आणि संस्कृती या दोन्ही गोष्टी अत्यंत महत्त्वपूर्ण आहेत.

अशा प्रकारे आदिवासी जमाती कोणकोणत्या आहेत. या जमाती कोणत्या भागात विस्तारल्या गेल्या आहेत. या जमातीचे सामाजिक पैलू कशा पद्धतीने संस्कृतीच्या माध्यमातून विकसित होत गेले. तसेच आदिवासींच्या सामाजिक मूल्यांची रुजवणूक कशी झाली. याची सविस्तर माहिती वरील विवेचनावरून स्पष्ट होते.

संदर्भ ग्रंथसूची :

1. चौधरी सविता, (2015):आदिवासी चेतना, अतुल प्रकाशन,कानपुर. पृष्ठ. क्र.18
2. काचोळे.दा.धो., (2009):आदिवासी समाज शास्त्र, कैलास प्रकाशन, औरंगाबाद.पृ.क्र.15
3. कुबल रमेश, (2006):आदिवासी नाटके, आय.एन.टी. प्रकाशन,मुंबई. पृ. क्र.14
4. ठाकूर सुंदरसिंह, (2006): आदिवासी समाजाचे समाजशास्त्र,निर्मल प्रकाशन, नांदेड. पृ.क्र.67
5. भवाळकर तारा, (1989): लोकनागर रंगभूमी, नीहारा प्रकाशन, पुणे, पृ. क्र.33
6. गारे गोविंद, (2000): भारतीय आदिवासी समाज आणि संस्कृती, अमृत प्रकाशन, औरंगाबाद. पृ. क्र.129
7. नाडगोंडे गुरुनाथ, (2012): भारतीय आदिवासी,कॉन्टिनेन्टल प्रकाशन, पुणे. पृ.क्र.8
8. कांता अभय, (2018): परिवर्तनाचा वाटसरू, कसबा पेठ,पुणे. पृ. क्र.33

"भटक्या विमुक्त जमातीची क्षेत्रीय पहाणी"

प्रा. डॉ. घाडगे डी. के
विवेकानंद महाविद्यालय कोल्हापूर (स्वायत्त)
Email – devanandghadge071@gmail.com

सारांश –

भारतीय जातीसमुदायाचा अभ्यास करत असताना आपल्याला त्याचे वेगवेगळ्या स्वरुपात वर्णन करावे लागेल. त्यामध्ये विमुक्त, भटके, अर्धभटके अशा पद्धतीने त्याचे वर्णन केले गेले आहे. भारतीय पातळीवर भटक्या जाती जमातीचा अभ्यास करत असताना आपल्याला असे दिसून येते कि भारतामध्ये जवळपास ५७१ विमुक्त जमाती, १०६२ भटके व २५ अर्धभटके अशा एकूण १६५८ जमाती असल्याचे आढळून येते. त्यामध्ये काहींना गुन्हेगार जमाती म्हणून समजले गेले. ज्या गुन्हेगार जमाती आहेत त्यामध्ये १४ जमाती या विमुक्त जमाती म्हणून त्यांची गणना केली. त्याचबरोबर ज्या ४७ जमाती आहेत त्या जमातीपैकी काहींना नोंदणीकृत जमाती म्हणून संबोधले गेले. तसेच त्यांना Notified tribes असे म्हंटले गेले, तर ज्यांची नोंदणी नाही अशांना De Notified tribes असे म्हंटले गेले.

Keywords – गुन्हेगार जमाती, भटक्या जमाती

प्रस्तावना –

जगातील सर्व देशात भटक्या आदिवासी जमातीचे अस्तित्व असल्याचे आपल्याला दिसून येते. विशेषतः आशिया, आफ्रिका आणि अमेरिका या खंडातील देशात आदिवासी जमाती मोठ्या प्रमाणात आढळतात. १९९७ च्या आकडेवारीनुसार जगातील ७० देशात आदिवासी जमाती आढळून येतात. त्यांची संख्या हि कमी अधिक प्रमाणावर आहे. जगभर सर्वत्र राष्ट्रीय सीमेमुळे आदिवासी लोक हे अनेक भागात विभागलेले आहेत उदाहरणार्थ इनूईट (एस्किमो) लोक हे, कॅनडा, ग्रीनलंड, संयुक्त संस्थाने आणि रशिया या देशात विखुरलेले आहेत. आफ्रिकेतील फुलंगी जमातीचे लोक ८ देशात पसरलेले आहेत. 'यपुअन्स' हे इंडोनेशियातील आदिवासी आहेत. 'पापुआ' न्युगिनी, मिसा व लुशाई जमातीचे लोक भारत आणि म्यानमार या देशाच्या भूमीवर पसरलेले आहेत. जवळपास ५०% लोक मिस्रो म्यानमारमध्ये राहतात. आदिवासी लोक हे चौथे जग म्हणून ओळखले जाते. जागतिक सभेने दुसऱ्या (साम्यवादी गट) आणि तिसऱ्या (विकसनशील गट) जगापासून वेगळे असल्याचे स्पष्ट केले आहे.

अभ्यासाचा उद्देश –

१. भटक्या विमुक्त जाती जमातीचा संवर्गनिहाय अभ्यास करणे.
२. भटक्या विमुक्त जातीच्या सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक बाबीचा अभ्यास करणे.
३. भटक्या विमुक्त जमातीच्या गुन्हेगारी प्रकृतीचा अभ्यास करणे.

आदिवासी समाजजीवनाचा अभ्यास करत असताना मानववंशशास्त्रज्ञ आणि समाजशास्त्रज्ञ यांनी त्यांचे विविध दृष्टीकोनातून विवेचन केले आहे. आदिवासी समाज हा समग्र समाजातील एक प्रकार आहे. आदिवासीमध्ये भटक्या आणि विमुक्त जमातीचा विभाग हा प्रमुख अभ्यास समाजाला जातो. भारतीय राज्यघटनेच्या अनुच्छेद ३४२ प्रमाणे भटक्या जमातीच्या बाबतीत असे दिसून येते कि त्यांनी त्यांची स्वतःची एक स्वतंत्र भाषा, संस्कृती, सण, उत्सव, रूढी-परंपरा यांचे एक वेगळेपण टिकवून ठेवलेले आहे. या जमाती प्रामुख्याने दऱ्या-डोंगरात तसेच जंगलव्याप्त प्रदेशात आपले वास्तव्य करतात म्हणून त्यांना जंगलातील जाती, वनवासी जनजाती अशा विविध नावाने ओळखले जाते. भारतीय संविधानात त्यांचा समावेश अनुसूचित जमाती असा करण्यात आलेला आहे. समाजशास्त्रज्ञ आणि मानववंशशास्त्रज्ञ यांनी त्यांची वेगवेगळी वैशिष्टे सांगितलेली आहेत.

आदिवासी जमातीची वैशिष्टे –

१. या जमातीला तंत्रज्ञान अवगत नव्हते.
२. जंगलातील झाडपाला, फुले, फळे, डिंक, लाख, मध जमा करून आपली उपजीविका करणे.

३. शिकार, मासेमारी करणे, त्यावर उपजीविका करणे.

४. चोऱ्या माऱ्या करणे, लुटालूट करणे आणि उपजीविका करणे इत्यादी

भारतीय समाजशास्त्रज्ञ डॉ. जी. एस. घुर्ये यांनी त्यांना तथाकथित मुळचे रहिवासी व मागसलेले हिंदू (backword hindu) असे म्हटले तसेच डॉ. डी. एन. मुजुमदार यांनी 'समान नाव असणारा, एकाच भूप्रदेशावर वास्तव करणारा, एकच भाषा बोलणारा व विवाह व्यवसाय इत्यादी बाबतीत समाज निषेध नियमांचे पालन करणारा व परस्पर उत्तरदायित्व निर्माण करण्याच्या दृष्टीने एक पद्धतशीर व्यवस्था स्वीकारणाऱ्या कुटुंबाचे किंवा कुटुंब समूहाचे एकत्रीकरण म्हणजे आदिवासी होय' अशी व्याख्या केली.

आदिवासी समाजाची संकल्पना –

इंग्रजीमधील Tribe या शब्दाचा अर्थ 'जमात' असा होतो. आदी पासून किंवा अगदी सुरवातीपासून ज्यांचे वास्तव्य हे जंगलात, दऱ्याखोऱ्यात आहे अशांना आदिवासी असे म्हटले जाते. 'डॉ. व्हेरीयर एल्विन आणि ठक्करबाप्पा' यांनी आदिवासींना 'Aboriginal' म्हणजेच मुळचे निवासी असे संबोधले तर भारतीय संविधानात आदिवासींना अनुसूचित जमाती असा उल्लेख केला गेला.

१९६२ मध्ये 'शिलॉंग' येथे आदिवासींची एक जागतिक परिषद भरली होती. या परिषदेमध्ये आदिवासी जमातीची एक व्याख्या केली. त्या परिषदेनुसार आदिवासी कोणाला म्हणावे तर "समान भाषा बोलणारा, एकाच पूर्वजांपासून आपली उत्पत्ती सांगणारा, एका विशिष्ट भूप्रदेशावर वास्तव्य करणारा, तांत्रिक ज्ञानाच्या दृष्टीने मागासलेला, अक्षर ओळख नसलेला व रक्तसंबंधावर आधारित असलेला गट तसेच सामाजिक व राजकीय प्रथाचे प्रामाणिकपणे पालन करणाऱ्या एकजिनसी गटाला आदिवासी म्हटले गेले."

महाराष्ट्रातील भटक्या जमातीचे स्वरूप -

महाराष्ट्रात भटक्या विमुक्त जमातीची एकूण ४७ इतकी संख्या मानली गेली आहे. त्यापैकी १४ जमाती या विमुक्त जमाती ह्या ब्रिटीशांच्या काळात गुन्हेगार जमाती म्हणून जाहीर केल्या गेल्या होत्या तर १८ जमाती या भटक्या जमाती म्हणून ओळखल्या गेल्या. या जमातीच्या पोटजातीचा विचार केला तर त्यांची एकूण संख्या सुमारे २०० पेक्षा अधिक असल्याचे दिसून येते. या सर्व जमाती या स्वतःला स्वतंत्र आणि इतर जमातीपेक्षा वेगळ्या मानतात. या जमाती अंतर्गत रोटीबेटी व्यवहार केले जात नाहीत मात्र अलीकडील काळात त्यांच्यात मोठ्या प्रमाणात बदल होत असल्याचे चित्र दिसून येते. या जमातीचे लोकजीवन हे भिन्नभिन्न स्वरूपाचे असून या जमाती ह्या माळरान, डोंगरमाथ्यावर राहताना दिसून येतात. प्रत्येक जमातीचे पाल हे वेगवेगळे असून त्यांच्या प्रत्येकाच्या पालावर वेगवेगळ्या रंगाचे झेंडे निशाण असते. भटक्या जमातीची वर्गवारी बघता आपल्याला असे दिसेल कि त्यांना,

१. कलावंत जमाती

२. कष्टाची कामे करणाऱ्या जमाती

३. देवदेवतांच्या नावाने भिक मागणाऱ्या जमाती

४. ज्योतिष आणि भविष्य सांगणाऱ्या जमाती

५. व्यवसाय करणाऱ्या जमाती

६. पशुपालक जमाती

७. पशुपक्ष्यांची शिकार करून जगणाऱ्या जमाती होय.

उदरनिर्वाहाचे कोणतेच साधन नसल्यामुळे त्यांना चोऱ्या करणे, दरोडे घालणे व गुन्हेगारी मार्गानेच आपली उपजीविका करण्याचे मार्ग शिल्लक ठेवले. एकाअर्थाने या देशातील भटक्या विमुक्त जमातीची वाटचाल गुन्हेगारीकडे केली असे म्हंटल्यास अतिशोक्ती ठरणार नाही आणि हे केवळ इथली वर्गव्यवस्था व समाजव्यवस्था त्याला कारणीभूत आहे.

स्वातंत्र्याची ७० वर्षे उलटून गेली पण भटक्या जमातीची स्थिती अजूनही सुधारलेली नाही. भारतात आजघडीला जवळपास १४ कोटी भटक्या विमुक्त जमातीची लोकसंख्या आहे. त्यांना भारतीय संविधानात घटनात्मक संरक्षण देवूनही त्यांची स्थिती न घरका न घाटका अशीच आहे.

भटके कोणाला म्हणावे –

भटके किंवा भटक्या जमाती या आदिवासी समाजाचा एक भाग आहे. भटकी जमात हि एक संकल्पना आहे. त्यांचा एक स्वतंत्र गट म्हणून विचार केला जातो. भटक्या जमातीचे लोक हे कायम एका ठिकाणी स्थायिक नसतात.
ते अन्न-पाण्याच्या आणि निवाऱ्याच्या शोधात सतत भटकंती करत असतात त्यामुळे त्यांना भटके असे म्हंटले गेले. ते ठराविक काळातच एका ठिकाणी स्थायिक होतात. भटक्या जमातीची अर्थव्यवस्था हि साधी आणि सरळ स्वरुपाची असते. त्यांच्या गरजा भागवल्या जातील एवढेच ते उत्पादन करतात. या भटक्या विमुक्त जमाती ह्या भारताच्या सर्वच प्रांतात कमी अधिक प्रमाणावर दिसून येतात. महाराष्ट्रात ज्या भटक्या विमुक्त जाती जमाती आहेत त्यांची गावपातळीवर नोंद झाल्याचे दिसून येत नाही. ज्यांची नोंद झाली त्यांना 'Notified Tribes' आणि ज्यांची नोंद झाली नाही त्यांना 'DeNotified Tribes' असे म्हंटले गेले. ३६ राज्य आणि ७ केंद्रशासित प्रदेशांचा अभ्यासदौरा या पाहणीत असे आढळून आले कि, देशात असा एकूण ५७१ विमुक्त, १०६२ भटके व २५ अर्धभटके अशा एकूण १६५८ जमाती असल्याचे आढळून येते.

महाराष्ट्रात Nomadic Tribes आणि De Notified Tribes आहेत. अशा भटक्या जमातीची संवर्गनिहाय नोंद करण्यात आलेली आहे. २०११ च्या जनगणनेनुसार अनुसूचित जाती जमातींची संख्या हि ४७ एवढी आहे. त्यात De Notified Tribes ची लोकसंख्या हि १,०५१,०२१३ एवढी आहे. ज्या De Notified Tribes आहेत त्यात बेरड, बेस्तर, भामटा, कैकाडी, कंजारभट, लमाणी, फासेपारधी, भामटा राजपूत, रामोशी, वडार, वाघारी आणि छप्परबंद या १४ जमातीचा (VJNT) व्ही. जे. एन. टी. या संवर्गात समावेश करण्यात आला आहे.

Nomadic Tribes –

महाराष्ट्रात ज्या भटक्या विमुक्त जमाती आहेत त्यामध्ये बावा, बेलदार, भारुडी, गारुडी, चित्रकथी, घिसाडी, गोंधळी, गोपाळ, जोशी, रावळ, वासुदेव, भुते, चलवादी, गोला, हेलवे, काशी कापडी, कोल्हाटी, मरीआईवाले, मसंजोगी, नंदीवाले, पांगुळ, शिकलगार, ठाकर, वैदू इत्यादी जमातींचा समावेश होतो. या सर्व जमातींचा प्रत्येक राज्यात वेगवेगळ्या संवर्गात समावेश होतो.

तक्ता क्रमांक १

क्रमांक	राज्य	बंजारा	वडार	कैकाडी	पारधी	कंजारभाट	बेरड
१	अरुणाचल प्रदेश	ST	SC	SC	SC	SC	SC
२	कर्नाटक	SC	SC	SC	ST	ST	ST
३	दिल्ली	SC	SC	SC	ST	ST	SC
४	उत्तर प्रदेश	OBC	OBC	SC	ST	ST	ST
५	ओडीसा	ST	SC	SC	ST	ST	SC
६	बंगाल	ST	ST	ST	ST	ST	SC
७	बिहार	ST	ST	SC	ST	ST	ST

८	गुजरात	ST	ST	SC	ST	ST	ST
९	हिमाचलप्रदेश	SC	SC	SC	ST	ST	ST
१०	राजस्थान	SC	SC	SC	ST	ST	SC
११	महाराष्ट्र	DNT	DNT	SC	ST	DNT	DNT
१२	तामिळनाडू	DNT	DNT	SC	ST	DNT	DNT

प्रा. मोतीराज राठोड

(Denotified and Nomedic tribes in Maharashtra)

तक्ता क्रमांक २

१	बहुरूपी	अरुणाचल प्रदेश NT	गुजरात NT	महाराष्ट्र NT	मध्यप्रदेश NT	कर्नाटक SC
२	बावा	गुजरात SC	महाराष्ट्र NT	मध्यप्रदेश NT	-	-
३	बेलदार	मध्यप्रदेश SC	ओडीसा SC	उत्तरप्रदेश SC	बंगाल SC	महाराष्ट्र NT
४	भामटा	महाराष्ट्र NT	अरुणाचल प्रदेश DN	गुजरात DNT	-	-
५	भोई	कर्नाटक SC	ओडीसा SC	महाराष्ट्र NT	-	-
६	बुडबुडके	महाराष्ट्र NT	अरुणाचल प्रदेश NT	गुजरात NT	-	-
७	चलवादी	महाराष्ट्र NT	अरुणाचल प्रदेश SC	गुजरात NT	-	-
८	चीत्तपराधी	महाराष्ट्र ST	गुजरात NT	मध्यप्रदेश NT	कर्नाटक NT	-
९	डावरी गोसावी	महाराष्ट्र NT	गुजरात NT	उत्तरप्रदेश NT	-	-
१०	गाडीलोहर	महाराष्ट्र NT	मध्यप्रदेश NT	गुजरात NT	राजस्थान NT	-
११	घंटीचोर	महाराष्ट्र NT	गुजरात NT	मध्यप्रदेश NT	दिल्ली NT	-
१२	गारुडी	महाराष्ट्र NT	गुजरात NT	मध्यप्रदेश NT	-	-
१३	घिसाडी	महाराष्ट्र NT	गुजरात NT	मध्यप्रदेश NT	दिल्ली NT	राजस्थान NT
१४	भोला	महाराष्ट्र NT	गुजरात NT	अरुणाचल प्रदेश NT	-	कर्नाटक NT
१५	गोंधळी	महाराष्ट्र NT	अरुणाचलप्रदेश NT	कर्नाटक NT	गुजरात NT	-
१६	गोपाळ	महाराष्ट्र NT	मध्यप्रदेश NT	गुजरात NT	-	-
१७	जोगी	महाराष्ट्र NT	हिमाचलप्रदेश SC	तामिळनाडू DNT	गुजरात NT	-

१८	कहार	महाराष्ट्र NT	गुजरात NT	मध्यप्रदेश NT	-	-
१९	कापडी	महाराष्ट्र NT	गुजरात NT	मध्यप्रदेश NT	-	-
२०	कोल्हाटी	महाराष्ट्र NT	मध्यप्रदेश NT	कर्नाटक NT	-	-
२१	मसन जोगी	महाराष्ट्र NT	अरुणाचलप्रदेश DNT	कर्नाटक SC	-	-
२२	शिकलगार	महाराष्ट्र NT	पंजाब SC	दिल्ली SC	हिमाचलप्रदेश SC	-
२३	त्रिमाली	महाराष्ट्र NT	गुजरात NT	कर्नाटक SC	अरुणाचलप्रदेश SC	-
२४	वासुदेव	महाराष्ट्र NT	गुजरात NT	मध्यप्रदेश NT	-	-

वरील सर्व जमाती या कलावंत जमाती, कष्टाचे कामे करणाऱ्या जमाती, देव देवतांच्या नावाने भिक्षा मागणाऱ्या जमाती, ज्योतिष, भविष्य सांगणाऱ्या जमाती, व्यावसायिक जमाती, पशुपालक जमाती आणि पशुपक्षी यांच्या शिकारी करून जगणाऱ्या जमाती म्हणून त्यांना ओळखले जाते. वरील विवेचनाच्या आधारे आपणास असे म्हणता येईल कि, भारतात ज्या भटक्या विमुक्त जाती जमाती आहेत त्यांचे वेगवेगळ्या संवर्गात वर्गीकरण करण्यात आलेले आहे.

संदर्भसूची –

१. गारे गोविंद – २००५ – आदिवासी साहित्य संमेलन अध्यक्षीय भाषण, सुगावा प्रकाशन,पुणे
२. चौधरी उद्धव – १९९६ – महाराष्ट्रातील आदिवासी संशोधन पत्रिका, पुणे
३. पिंगळे भीमराज – १९९० – वनताली व उपेक्षित जग – खंड २ अभिजन प्रकाशन बीड
४. माने लक्ष्मण – १९९७ – विमुक्तायन – महाराष्ट्रातील निवडक जमाती एक चिकित्सक अभ्यास, यशवंतराव चव्हाण प्रतिष्ठान, मुंबई
५. राठोड मोतीराज – २००५ – आदिवासी पारधी पुनर्वसनासाठी अभ्यास पहाणी पथकाचा अहवाल, धुळे
६. भोसले नारायण – २००८ – भटक्यांची जातपंचायत, परंपरा आणि संघर्ष प्रकाशन पुणे सहाय बी. एस – १९९७ – आदिवासी भटक्या जमातीच्या कल्याणाचा मार्ग

"बंजारा समाजाचे सामाजिक जीवन"

प्रा. आर्या सुनील कुलकर्णी
विवेकानंद कॉलेज,
कोल्हापूर (स्वायत्त)
Email :kulkarni.aarya95@gmail.com

सारांश :-

विविधता आणि एकता अस्तित्वात असलेल्या आपल्या भारत देशात अनेक जाती, जमाती, वंश, वर्ण, पंथ, धर्माचे लोक वास्तव्य करतात. जवळपास १३९ कोटी लोकसंख्या असलेल्या या देशात समाजामध्ये असमान वितरण झालेले आपणास लक्षात येते. काही जाती जमाती या उच्च, श्रीमंत आहेत तर काही निम्न आहेत तर काही जाती जमातींना भटके व विमुक्त जाती जमाती म्हणून घोषित करण्यात आलेले आहे. अशा अनेक भटक्या आणि विमुक्त जातीजमातीपैकी एक जमात म्हणजे बंजारा, ज्याला 'लमाण' असे देखील संबोधले जाते. लमाण या शब्दाची लमाणी, लभाण, लभाणी इत्यादी अनेक रूपे आहेत.

आयुष्यभर भटके जीवन जगून धान्याची विक्री करणे, गोणपाट तयार करणे, दारू तयार करणे, मध, डिंक गोळा करणे, हत्यारे अवजारे बनवणे इत्यादी पारंपारिक व्यवसाय करणाऱ्या बंजारा समाजाचे जीवन अत्यंत साधे होते.

ब्रिटीशांच्या आगमनानंतर दळणवळणाची विविध साधने अस्तित्वात आली तसेच यंत्रांच्या सहाय्याने वस्तूची निर्मिती होण्यास प्रारंभ झाला त्यामुळे बंजारा समाजाचा पारंपारिक व्यापार करण्याचा व्यवसाय संपुष्टात आला. उपासमारीसारख्या संकटाशी बंजारा समाजाला समजा करावा लागला. याच काळात बंजारा समाजात व्यापारी प्रवृत्ती नाहीशी होऊन गुन्हेगार प्रवृत्ती जोपासली गेली. गुन्हेगार जमात म्हणून इंग्रज सरकारने त्यांना शिक्कामोर्तब केले.

पारिभाषिक संज्ञा : बंजारा, लमाण, लदेणी

प्रस्तावना :-

भारत हा विविधतेने नटलेला देश आहे. भारतात अनेक जाती जमातीचे लोक वास्तव्य करतात. प्रत्येक जाती, जमाती, पोटजातीची परंपरा, रितीरिवाज, संस्कृती, खानपान, चालीरीती जरी वेगवेगळे असले तरी त्यांची भारतात निर्माण झालेली विविधता आणि एकता निराळीच आहे. अशा लोकशाही स्विकारलेल्या देशात काही जाती जमातींना भटके विमुक्त म्हणून घोषित केले आहे.

महाराष्ट्रामध्ये साधारणपणे भटक्या आणि विमुक्त जाती जमातींची लोकसंख्या जवळपास ५ लाख इतकी दिसून येते. त्याचबरोबर संपूर्ण भारतामध्ये भटक्या विमुक्त जमातीची लोकसंख्या हि ६० लाखाच्या जवळपास असलेली दिसून येते. साधारणपणे महाराष्ट्रात भटक्या जमाती या जवळपास दीड लाखाच्या आसपास असल्याचे २००८ चा रेणके आयोग सांगतो मात्र २०११ च्या अहवालानुसार महाराष्ट्रामध्ये भटक्या विमुक्त जमातीची लोकसंख्या हि ५ लाख इतकी दिसून येते. भारतामध्ये जवळपास ५५० जाती आणि विमुक्त जमाती अस्तित्वात आहेत. त्यामध्ये महाराष्ट्रामध्ये १४ जमाती या गुन्हेगार जमाती म्हणून ओळखल्या जातात. बेरड, बेस्तर, भामटा, रामोशी, वडार, छप्परबंद, बंजारा, पारधी, कैकाडी, कंजारभट, राजपूत भामटा, इत्यादी अनेक भटक्या विमुक्त जाती जमाती महाराष्ट्रात अस्तित्वात आहेत. यापैकी बंजारा हि भारतात विखुरलेली परंतु काही राज्यात अनुसूचित जमात व काही राज्यात अनुसुचीबाहेर असलेली भटकी जमात असे बंजारा समाजाचे अस्तित्व आहे. या भटक्या व विमुक्त जमातीचा अभ्यास या संशोधन लेखात केला आहे.

भारताच्या प्राचीन भाषांच्या साहित्यामध्ये 'बंजारा' शब्दाच्या उत्पत्तीचा वेगवेगळ्या पद्धतीने अर्थ लावण्याचा प्रयत्न केलेला आहे. ऋग्वेदात व्यापाराशी संबंधित असणाऱ्या व्यक्तींना वाणिज्य सांगितलेले आहे. वाणिज्य या संस्कृत शब्दास हिंदी

पर्यायी शब्द आहे 'बनज'. पुढे बनज यास रा प्रत्यय जोडून बनजारा असा शब्द तयार झाला. 'बनज करणारा बनजारा' झाला असा उल्लेख कै. बळीराम पाटील यांच्या बंजारे समाजाचा इतिहास या पुस्तकात केलेला आहे.

बंजारा समाजाची शास्त्रीय भाषेतून व्याख्या करणे कठीण आहे. "सर्वसाधारणपणे जे लोक तांडा संस्कृतीशी एकरूप झालेले आहेत, देविदेवतांविषयीच्या कल्पना समान स्वरूपाच्या आहेत, जादूटोणा, भूताखेतावर विश्वास ठेवणारा व पोषाखाच्या संदर्भात वेगळेपण दाखवणारा समुदाय म्हणजे लमाण बंजारा समाज होय." साधारणपणे बंजारा समाज व्यापाराच्या निमित्ताने ज्या ज्या प्रांतात गेला त्या त्या प्रांतात बंजारांना वेगवेगळ्या नावाने ओळखण्यात येऊ लागले. लमाण, लमाणी, लंबाडा, गोर बंजारा, शिंगवाले बंजारा, लमान, मथुरिया, गोर, लदेणीया इत्यादी अनेक नावांनी बंजारा समाजाला ओळखण्यात येते.

उदिष्टे :-

१. बंजारा समाजाचे भारतीय समाजातील स्थान अभ्यासणे.
२. बंजारा समाजाची उपजीविकेची साधने अभ्यासणे.
३. बंजारा कुटुंबातील स्त्रियांचा दर्जा अभ्यासणे.

गृहीतके :-

१. बंजारा समाजाला भारतामध्ये भटके विमुक्त म्हणून संबोधले जाते.
२. ब्रिटीशांच्या आगमनानंतर बंजारा समाजातील पारंपारिक व्यवसायाचा ऱ्हास झाला.
३. बंजारा समाजातील स्त्रियांचा दर्जा दुय्यम प्रकारचा आहे.

स्पष्टीकरण :-

त्रि. ना. अत्रे यांनी त्यांच्या गावगाडा या ग्रंथामध्ये भारतीय समाजात जे वेगवेगळे मानवी समूह आहेत त्यांची विभागणी दोन भागात केलेली आहे. पहिला म्हणजे गावगाड्यातील समूह आणि दुसरा म्हणजे गावागाडयाबाहेरील. भारतीय व्यवस्थेतील जो समूह म्हणजेच ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य व शुद्र या गटाचा समावेश पहिल्या समूहात केलेला आहे आणि गावगाड्याच्या बाहेर राहणारे जे भटके समूह आहेत त्यांना भटक्या आणि विमुक्त जाती म्हणून समजण्यात आले. भटक्या आणि आदिम जमातीमध्ये त्रि. ना. अत्रे यांनी पुन्हा तीन विभाग केलेले आहेत. यामध्ये गावाबाहेर राहणाऱ्या जमातीमध्ये महार, मांग, रामोशी आणि गोंधळी या जमातींचा समावेश केला आहे. दुसर्या भागामध्ये गावगाड्यापासून सुरक्षित अंतरावर असलेल्या जमाती म्हणजेच कैकाडी, वडार, गारुडी, कंजारभट, डोंबारी यांचा सामावेश केला. तिसऱ्या भागामध्ये ज्या जातीचा समावेश केला त्यात पारधी, गोंड, ठाकर, बंजारा, कातकरी, माकडवाले, गोसावी या विमुक्त जाती जमातींचा समावेश केलेला आहे.

बंजारा समाजाच्या चालीरीती व आदिवासी चालीरीतींमध्ये साम्य असलेले दिसून येते. भारतामध्ये विशाल भूमीवर बंजारांचे वास्तव्य आहे. महाराष्ट्र, म्हैसूर, राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात, उत्तरप्रदेश, ओरिसा, पंजाब, हरियाणा इत्यादी अनेक ठिकाणी त्यांची वस्तीस्थाने आहेत. प्राचीन काळी बंजारांचा प्रमुख व्यवसाय व्यापार होता. दळणवळणाची साधने नसल्यामुळे बैलांच्या सहाय्याने व्यापार करणारी हि जमात भारताच्या कानाकोपऱ्यात पोहोचली. बैल हा व्यापाराचा मुख्य आधार असल्यामुळे या बंजारा जमातीतील लोकांनी गाई बैलांची संख्या वाढवली. राजस्थानमध्ये वास्तव्य असलेली हि बंजारा जमात युद्ध, दुष्काळ, परकीय आक्रमणे अशा कठीण परिस्थितीचा सामना करीत हि जमात
राजस्थान सोडून वेगवेगळ्या प्रदेशात निघून गेले असावेत. या सर्व परिस्थितीमुळे राजस्थानमधील स्थिती अनुकूल राहिली नाही त्यामुळेच अनेक बंजारा लोकांनी मिळेल त्या ठिकाणी जंगलांच्या सानिध्यात जीवन जगण्यास प्रारंभ केला असावा आणि तेव्हापासूनच त्यांचे जीवन भटके बनले असावे अशी शक्यता आहे.

पूर्वीच्या काळी अतिशय प्राथमिक स्वरूपाचे व्यवसाय बंजारा लोक करत होते. बैलांच्या पाठीवर मीठ, गहू, तांदूळ यांच्या गोण्या ठेवून दुसऱ्या प्रांतात किंवा देशात जाऊन त्यांचे वितरण करण्याचे काम बंजारा करत असत. बैलांच्या सहाय्याने केला जाणारा जो व्यापार आहे त्याला बंजारे 'लदेणी' म्हणत असत. गाई बैलांचा तांडा त्यांच्याजवळ खूप मोठा होता त्यामुळे

पशुपालनासारख्या व्यवसायाला त्यांनी सुरुवात केली. त्याकाळी ते बैलांची खरेदी विक्री करण्याचा व्यवसाय ते मोठ्या प्रमाणावर करत. गाई बैलांना चारापाण्यासाठी बंजारे जंगलात घेऊन जात, मिळालेल्या फावल्या वेळेत सूतकताई करून ते गोणपाट तयार करत असत. ताग, आंबाडी यापासून सूत तयार करून त्याची विक्री केली जात असे आणि त्यावर ते आपली उपजीविका करत असत. मोहाची फुले, गुळ, नवसागर यापासून बंजारे दारू तयार करत असत. दारू तयार करणाऱ्या मोठमोठ्या कारखान्यांना शासन परवानगी देत असे पण जे उपजीविकेसाठी हा व्यवसाय करतात त्यांना मात्र गुन्हेगार समजले जाते.

बंजारे जंगलाच्या सानिध्यात राहत असल्यामुळे फळांच्या संकलनाबरोबरच मध, डिंक गोळा करून त्याची विक्री करण्याचा व्यवसाय बंजारे मोठ्या प्रमाणावर करत असत. आजही जंगलांच्या सानिध्यात राहणारे बंजारे मध गोळा करण्याचे काम करतात तसेच घरगुती कुक्कुटपालन, शेतीव्यवसाय देखील बंजारे करतात. परंतु ब्रिटीशांच्या आगमनानंतर मात्र बंजारा समाजाचे चित्र बदललेले दिसते. नवीन वाहतुकीची साधने अस्तित्वात आल्यामुळे तसेच यंत्रांमुळे त्यांचा पारंपारिक व्यापार करण्याचा व्यवसाय संपुष्टात आला. उपसमारीसारख्या संकटांशी बंजारा समाजाला सामना करावा लागला. काही बंजारी शेती, मजुरी यासारखे व्यवसाय करू लागले तर काही पोटापाण्यासाठी गुन्हेगारीकडे वळले. साधारणतः बंजारा समाजाचे घरफोडी, दरोडा, गुरे, मेंढ्या चोरणे, बेकायदेशीर दारू गाळणे हे त्यांचे प्रमुख गुन्हे होते. अर्थातच दळणवळणाची साधने अस्तित्वात आल्यामुळे आणि विज्ञान तंत्रज्ञानातील प्रगतीमुळे बंजारा जमातीचे व्यवसाय संपुष्टात आले.

भारतीय समाजातील कुटुंबव्यवस्थेप्रमाणे बंजारा समाजातदेखील पितृसत्ताक कुटुंबपद्धती अस्तित्वात आहे. बंजारा समाजातील वडिलोपार्जित संपत्तीचा वारसदार मुलगा असतो तसेच आर्थिक व्यवहार देखील बंजारा समाजातील पुरुषांच्या सहमतीने केले जातात. मुलामुलींच्या विवाहासंबंधीचे निर्णय घेण्यामध्येसुद्धा स्त्रियांचा सहभाग नसतो. बंजारा समाजातील स्त्रिया या पहाटे तीन पासून रात्रीपर्यंत अखंडपणे घरचे कामकाज करत असतात. एकंदरीत कामाची तुलना करताना पुरुषांपेक्षा स्त्रिया जास्त कामे करतात परंतु पितृसत्ताक व्यवस्था असल्यामुळे स्त्रियांचे काम बंजारा समाजामध्ये काम समजले जात नाही.

बंजारा समाजात आजदेखील बहुपत्नीत्वाची प्रथा अस्तित्वात आहे. एकापेक्षा अनेक स्त्रियांशी विवाह करणे बंजारा समाजात शौर्याचे लक्षण समजले जाते. पहिल्या पत्नीपासून मुल होत नसेल तर बंजारे दुसरे लग्न करतात तसेच पहिल्या पत्नीला मुलीच असतील तरीही बंजारे दुसऱ्या स्त्रीशी विवाह करतात. एकंदरीत बंजारा समाजात देखील मुलगीला परक्याचे धन मानले जाते. सुधारलेल्या संस्कृतीच्या संपर्कामुळे व आरोग्यविषयक सुविधांमुळे कुटुंबनियोजनाचे महत्व बंजारा समाजाला पटलेले आहे परंतु कुटुंबनियोजन शस्त्रक्रिया हि स्त्रियांनीच केली पाहिजे असा समज बंजारा समाजाचा आहे. पुरुष शस्त्रक्रियेमुळे लैंगिकतेत बाधा निर्माण होईल असा समज पुरुषांमध्ये आहे. कोणत्याही प्रसंगाला आत्मविश्वासाने सामना करणे हे शिक्षणामुळे शक्य होते परंतु स्त्रीला स्वातंत्र्य दिल्यास समाजाचे संतुलन बिघडेल आणि तिच्यावर समाजच एक कलंक लावेल या भीतीने स्त्रियांना आजदेखील चार भिंतीमाध्येच ठेवले जाते. त्यामुळे आदिवासी, ग्रामीण दऱ्याखोऱ्यात राहणाऱ्या स्त्रियांचे जीवन आजदेखील अंधारातच आहे. एकंदरीत या सर्व उदाहरणांवरून बंजारा समाजातील स्त्रियांचे स्थान दुय्यम असल्याचे सिद्ध होते.

संदर्भसूची :-

१. अत्रे. त्रि. ना., गावगाडा,१८३७
२. पवार रुक्मिणी, बंजारा लोकजीवन पद्धती,कैलाश पब्लिकेशन,२००५
३. सोनवणी संजय, जातीसंस्थेचा इतिहास
४. माने लक्ष्मण, विमुक्तायन,महाराष्ट्रातील निवडक जमाती एक चिकित्सक अभ्यास, यशवंतराव चव्हाण प्रतिष्ठान मुंबई, १९९७
५. गोविंद गारे, आदिवासी साहित्य संमेलन अध्यक्षीय भाषण, २००५, पुणे

स्वातंत्र्याची पंच्याहत्तरी आणि उपेक्षित वंचित घटक

प्रा. डॉ. विजय माने
यशवंतराव चव्हाण समाजकार्य महाविद्यालय.
जकातवाडी, सातारा.
फोन नंबर ८६०५२००९६९

सारांश :

आजही भटक्या विमुक्त समाजाची लोक हलाखीचे जीवन जगत आहेत. भारताला स्वातंत्र्य मिळाल्यापासून या जाती-जमातींच्या विकासासाठी फारसे प्रयत्न करताना कोणतेही राज्य व केंद्रीय सरकार दिसत नाही. या भटक्या विमुक्त समाजाच्या विकासासाठी म्हणून तोंडदेखले राष्ट्रीय व राज्य पातळीवरील सरकारे काम करत असल्याचे भास होतात आतापर्यंत या समाजाच्या अभ्यासासाठी अनेक अभ्यास गट केंद्र व राज्य पातळीवरील आयोग तसेच समित्या स्थापन करण्यात आलेले आहे. परंतु या सर्व समिती आयोगांनी सादर केलेल्या अहवालावर व शिफारशींवर कोणत्याही सरकारने गांभीर्याने विचार केलेला आहे असे दिसत नाही. या भटक्या जाती-जमातींच्या भवताली ब्रिटिश साम्राज्याने उभे केलेले तीन तारेची कुंपणे स्वतंत्र भारत सरकारने काढून टाकली असली तरी प्रशासकीय पातळीवर, कायदा व सुव्यवस्थेची अंमलबजावणी करणाऱ्या यंत्रणा तसेच मुख्य प्रवाहातील समाजाच्या मानसिकतेत या समुदायांच्या बाबतीत सकारात्मक व्यवस्था निर्माण करण्यासाठी अपयशी ठरलेले दिसून येत आहे. भटक्या विमुक्त समाजातील हे लोक सुद्धा या देशाचे नागरिक आहेत, त्यांना सुद्धा जगण्याचा संविधानिक अधिकार आहेत हे आपण विसरता कामा नये. त्यामुळे केंद्र व राज्य सरकारने या समुदायाच्या अधिकारांचे रक्षण केले पाहिजे. अजूनही या समाजाच्या सखोल अभ्यासाची गरज आहे. ते व त्यांची संस्कृती, त्यांची भाषा, त्यांच्या चालीरीती, निसर्गाकडे बघण्याचा त्यांचा दृष्टिकोन या सगळ्याचे संरक्षण व संवर्धन झाले पाहिजे हिच अपेक्षा. एकंदरीत भटक्या विमुक्त जाती जमाती मधील माणसांना आत्मसन्मानाने, स्वाभिमानाने जगता यावे यासाठी या समाजातील शिकून शहाण्या झालेल्या पिढीने पुढे येऊन यांना शहाणे करण्याची जबाबदारी उचलणे गरजेचे आहे. अशी एक पिढी कार्यरत होत असताना या समाजाच्या बाबतीत अभ्यास होणे, विचार मंथन होणे गरजेचे आहे, तरच तळागाळातील या समाजाला समता पूर्वक आपलं स्वतंत्र अस्तित्व टिकवता येईल व स्वतःचा विकास साधता येईल.

पारिभाषिक संज्ञा : भटके-विमुक्त, नंदीवाले, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र

प्रस्तावना :

नुकताच आपण 26 जानेवारीला भारताचा प्रजासत्ताक दिन साजरा केला. हा उत्सव साजरा करत असताना देशात आपण ज्या ज्या क्षेत्रांमध्ये प्रगती केलेली आहे त्याची मांडणी विविध दृकश्राव्य माध्यमांच्या मार्फत लोकांपर्यंत पोहोचत होती. भारताने विज्ञान तसेच तंत्रज्ञानाच्या क्षेत्रामध्ये अफाट प्रगती केलेली आहे. शिक्षण, आरोग्य, व वाहतुकीच्या सुविधा तसेच शेती, अशा अनेक क्षेत्रांमध्ये भारताने झपाट्याने विकास साधलेला. या विकासामुळे भारत येत्या काळामध्ये जागतिक महासत्ता बनेल असे चित्र निर्माण होताना दिसत आहे. या बदलांचा व प्रगतीचा वापर करून भारतीय समाज विकासाकडे व प्रगतीकडे वाटचाल करू लागला आहे. परंतु हे होत असताना याच देशातील भटका विमुक्त समाज मात्र अजून या ना त्या कारणाने विकासा पासून व प्रगती पासून मैलोन् मैल दूर आहे.

भटके-विमुक्त :

नैसर्गिक आपत्तींच्या मुळे मानवी समाजाचे स्थलांतर प्राचीन काळापासून जगभर होत राहिले आहे. स्थलांतर करण्याची ही घटना मानवी भटकंतीची पहिली पायरी होय असे समजायला हरकत नाही. काळाच्या ओघा मध्ये मानवाने शेतीचा शोध

लावला व तो स्थिर जिवन जगू लागला. विज्ञान-तंत्रज्ञानाच्या तसं शिक्षणाच्या प्रगतीने मानव एक ठिकाणी कायमस्वरूपी आपली वस्ती करून स्थिर झाला. त्यामुळे नैसर्गिक आपत्तीमुळे निर्माण झालेली भटकंती ही तत्कालीन स्वरूपाची समजली गेली. परंतु युद्ध, व्यापार, धार्मिक व सामाजिक बहिष्कार या घटकांचा विचार करतात स्वसंरक्षणासाठी व स्वतःच्या अस्तित्वासाठी स्थलांतराचा मार्ग स्वीकारायला लागलेला समुदाय देखील भारतीय समाज व्यवस्थेमध्ये फार मोठ्या प्रमाणात दिसून येतो. हा समुदाय उपजीविकेसाठी पुढील काळात भटक्यांचे जीवन जगायला लागला व त्यातूनच विविध प्रकारच्या भटक्या समुदायांची निर्मिती झाली असावी. या समुदायातील भटकंतीचे हे चित्र या देशातील इंग्रज सत्तेपर्यंत च्या काळात व तिथून पुढे ऐंशी नव्वदच्या दशकापर्यंत चालत आलेले आपल्याला दिसून येते.

ब्रिटिशांच्या आगमनानंतर त्यांना इथल्या नैसर्गिक साधन संपत्तीचा वापर करून त्यांच्या औद्योगीकरणाला रसद पुरवायची होती, व त्यामुळे त्यांनी त्यांच्या सोयीसाठी काही कायदे केले. त्या कायद्यांमुळे इथल्या भटक्या विमुक्त समाजातील मंडळींच्या जल, जंगल, जमीन या नैसर्गिक साधनसंपत्तीच्या वापर करण्यावर मोठ्या प्रमाणात निर्बंध लागले. यामुळे इंग्रज सत्ताधारी व भटका विमुक्त समाज यांच्यामध्ये संघर्ष सुरू झाला.

गुन्हेगारी कायदा व भटके-विमुक्त :

१८७१ साली या देशात ब्रिटिशांनी जगाच्या पाठीवर इतरत्र कुठेही नसणारा अमानवी व अमानुष अशा स्वरूपाच्या गुन्हेगारी कायद्याची निर्मिती केली. त्यामुळे देशातील १९८ भटक्या जमातींना गुन्हेगार जमाती म्हणून त्यांनी घोषित केले. या कायद्याअंतर्गत ब्रिटिश यंत्रणेला या जमातीच्या लोकांना बंदिस्त तिन तारेच्या कुंपणात डांबून ठेवता आले. पर्यायाने भटक्या विमुक्त समाजाला आपले जीवन हे पारतंत्र्यात जगावे लागू लागले. पुढे या गुन्हेगारीचा शिक्का मारून बंदिस्त केलेल्या समुदायाला स्वातंत्र्य मिळाल्यानंतर देखील मुक्तता मिळालेली नव्हती, त्यांना या तीन तारेतून मुक्त होण्यासाठी १९५२ साल उजाडावे लागले. या तीन तारेच्या कुंपणात मुक्त झालेल्या समुदायाला भारतामध्ये भटके-विमुक्त म्हणून संबोधले जाऊ लागले. गुन्हेगारी कायद्याच्या जोखडातून व तीन तारखेच्या वसाहतीतून हे लोक जरी मुक्त झाले असले तरी त्यांच्याकडे पाहण्याचा गावगाड्यातील लोकांचा तसेच प्रस्तावित समाजातील लोकांचा दृष्टिकोन मात्र बदलला नाही. इंग्रजांनी या भटक्या-विमुक्तांच्या भोवती निर्माण केलेले संशयाचे वर्तुळ भारतीय समाज माणसावर तसेच असल्याचे जाणवते. अर्थातच या भटक्या विमुक्त जमातीतील लोकांवर होणारे अन्याय अत्याचार हे आजही पूर्णता नाहीसे झालेले नाहीत. स्वातंत्र्य प्राप्तीनंतर डॉक्टर बाबासाहेब आंबेडकरांनी राज्यघटनेची निर्मिती केली. त्यांनी स्वातंत्र्य, समता, बंधुभाव या तत्त्वांचा भारतीय राज्यघटनेमध्ये स्वीकार करून इथल्या विषमतावादी समाजव्यवस्थेने भटक्या विमुक्तांवर लादलेले विविध निर्बंध संपवण्यासाठी विविध तरतुदी केल्या. या तरतुदींच्या आधारे मागासलेल्या भटक्या-विमुक्त समाजाच्या विकासाबरोबरच स्त्री पुरुष समानता, अस्पृश्यता निर्मूलन, कामगार कल्याण व इतर सामाजिक न्यायाला अनुसरून विविध कायदे समाजात प्रस्थापित केले.

भारतीय समाज व्यवस्था व भटका विमुक्त समाज :

भारतीय समाजव्यवस्थेत, जातीव्यवस्था, वर्ण व्यवस्था, धर्मव्यवस्था व त्यास अनुसरून असणाऱ्या प्रथा, परंपरा, रूढी, संकेत व यावर आधारित असणारी सामाजिक व आर्थिक विषमतावादी समाजव्यवस्था ही भारतीय समाजाच्या विकासाला मारक ठरत आली आहे. भारतामध्ये प्रामुख्याने जगाच्या पाठीवर इतरत्र कुठे नसलेली समाज व्यवस्थेची रचना ही जाती व वर्णव्यवस्थेवर आधारलेली आहे. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र या चार वर्णानानुसार श्रमाचे विभाजन करण्यात आले आहे. अशा वर्णव्यवस्थेवर व जातिव्यवस्थेवर आधारलेल्या समाजा मध्ये प्रत्येक जाती-जमातीची एक स्वतंत्र रूढी परंपरा असलेली दिसून येते. याला अनुसरूनच या प्रत्येक जाती जमातीकडे उदरनिर्वाहासाठी व आपल्या दैनंदिन गरजा भागवण्यासाठी काम करण्याची देखील एक स्वतंत्र पध्दती होती व काही प्रमाणात आत्ता देखील ती अस्तित्वात आहे. या जातिव्यवस्थेच्या वर्णव्यवस्थेच्या बाहेर भारतीय समाज व्यवस्थेमध्ये एक फार मोठा भटका समाज आहे. आज अनेक कारणांमुळे जातिव्यवस्थेच्या सामाजिक दुरी वाढलेल्या आहेत तसेच आर्थिक विषमता ही टोकाला पोहोचलेली आहे. अशातच कोणतीही नैसर्गिक अथवा मनुष्यनिर्मित

आपत्ती येते तेव्हा गावकुसाबाहेरच्या तुटलेल्या, जगण्याच्या साधनांसाठी झगडणाऱ्या भटक्या विमुक्त समाजावर आणि विशेषता त्यांच्या स्त्रियांवर आपत्ती चा घाला बसतो. मुळातच भटक्या-विमुक्तांच्या जगण्याची परवड संपलेली नाही अशा परिस्थितीत स्त्रियांच्या हाला प्रस्तावना पारावार राहिलेला नाही. भटक्यांची आर्थिक व्यवहार हे आजच्या काळात उपलब्ध असणाऱ्या नैसर्गिक साधनसंपत्तीच्या अधीन राहिलेले नाहीत तर जमीनदारांच्या श्रीमंतांच्या सावकारांच्या मेहरबानीवर राहिलेले आहेत
हा समाज आपल्या पोटाची खळगी भरण्यासाठी वेगवेगळी कामे करत होता व आजही करत आहे. हि भटक्या समाजातील मंडळी गावोगावी फिरून करमणुकीचे खेळ करत होती व प्रस्थापित समाजाची करमणुक काम करत होते. तर दुसऱ्या बाजूला काहींनी आपले देव आपल्या डोक्यावर घेऊन त्यांच्या माध्यमातून आपल्या उदरनिर्वाहाची सोय केली होती. याच पद्धतीने अस्वल, साप, माकड, बैल, पोपट व तत्सम प्राण्यांचा वापर करमणुकीसाठी किंवा भविष्य सांगण्याच्या नावाखाली करून भटके आपला उदरनिर्वाह करत होते.

भारतात भटक्या-विमुक्तांची लोकसंख्या सोळा कोटी असल्याचे तर महाराष्ट्रात दीड कोटी असल्याचे सांगितले जाते. महाराष्ट्रातील या दीड कोटी भटक्या समाजातील लोकसंख्येपैकी निम्मे भटके हे निव्वळ सतत स्थलांतर करणारे आहेत. यामध्ये मोठ्या प्रमाणात देवदेवतांच्या नावाने भीक मागणारे व त्या सदृश्य उपजीविकेसाठी वेगवेगळे व्यवसाय करणाऱ्यांची संख्या फार मोठी आहे. रेणके आयोगाच्या २००८ च्या अहवालानुसार दारिद्र्यरेषेखालील जगणे वाट्याला आलेल्या भटक्यांची संख्या या समाजात 84 टक्के असल्याचे तसेच 98 टक्के लोक भूमिहीन असल्याचे नोंदवले गेले आहे. बहुतांशी लोकांकडे आपले नागरिकत्व सिद्ध करण्यासाठी आवश्यक असलेली कागदपत्रेही नाहीत त्यामुळे त्यांना शासनाच्या योजनांचा लाभ घेता येत नाही किंवा मिळत नाही. या समाजातील अपवादात्मक मंडळींनी बँकेमध्ये आपली खाती उघडलेली दिसून येतात. त्यामुळे जवळ-जवळ 98 टक्के लोकांना बँकेचे कसल्याही प्रकारचे अर्थसाह्य मिळत नाही. तसेच हे लोक त्यांच्या अस्थायी व अस्थीर व्यवसायामुळे सतत स्थलांतर करत असून पालावर किंवा अस्थाई स्वरूपाच्या झोपड्यांमध्ये राहतात. हा भटका विमुक्त समाज देशातील सगळ्यात दुर्लभ दुर्लक्षित घटक असून तो सर्वाधिक निरक्षर, गरीब व साधन हिन वर्ग आहे.

भटक्या विमुक्तांची उपजीविकेची साधने :

भटक्या समाजामध्ये प्रामुख्याने प्राण्यांचा वापर करून आपली उपजीविका करणारे काही विशिष्ट समूहदाय होते. यामध्ये प्रामुख्याने अस्वल घेऊन फिरणारे दरवेशी होते, साप, मुंगुस व अजगर यांचा खेळ करणारे गारुडी होते, माकडाच्या मदतीने करमणूक करून खेळ करणारे माकड वाले होते, बैल घेऊन फिरणारे नंदी वाले समाजातील लोक होते तर पोपटाच्या साह्याने भविष्य सांगून माणसांना स्वप्न दाखवणारे भविष्य सांगणारे होते. तसेच अंगभूत लवचिकतेचा वापर करून तसेच दोरी व इतर साहित्याचा वापर करून करमणुकीचे खेळ करणारा डोंबारी व कोल्हाटी समाज, देवासाठी आपल आयुष्य वेचणारा व त्याची सेवा करण्यासाठी आयुष्यभर झटणारा वाघ्या मुरळी समुदाय हे सातत्यानं भटकंती करूनच आपला उदरनिर्वाह करत होते. वैदू सारखा समुदाय औषधी वनस्पती कंदमुळे देऊन समाजाची वैद्यकीय गरज आजीही भागवतात तर दुसऱ्या बाजूला गोंधळी आराधी या भटक्या जमाती अंबाबाईच्या नावानं गोंधळ जागरण घालून स्थिर समाजाच्या अध्यात्मिक गरजा भागवत आहेत व त्या बदल्यात मिळणाऱ्या भिक्षेवर आपला उदरनिर्वाह करत आहेत. हा संपूर्ण समुदाय भटका व अनेक रूढी परंपरा च्या मध्ये गुरफटून अशिक्षित अडानी राहिलेला आहे. वैज्ञानिक प्रगतीमुळे व विकासाच्या नावाखाली करमणुकीची वेगवेगळी माध्यमं उपलब्ध झाल्यामुळे या मंडळींच्या खेळाकडे माणसं दुर्लक्ष करू लागलीत. सर्व प्रकारच्या दृकश्राव्य माध्यमांच्या मदतीने भविष्य देखील आम्हाला घरपोच उपलब्ध व्हायला लागले असल्यामुळे या भटक्यांच्या कडून भविष्य ऐकण माणसांनी टाकून दिल आहे. मायबाप सरकारने वन्य प्राण्यांच्या संरक्षणासाठी कायदे केले परंतु तेच कायदे या भटक्या समुदायातील जी मंडळी प्राण्यांचा वापर करून आपली उपजीविका करत होते त्यांच्या मुळावरच उठले. सामाजिक स्थित्यंतरामुळे व इतर अनेक कारणांमुळे गावगाड्यातील बारा बलुतेदार अठरा अलुतेदार तसेच भटका विमुक्त समाज यांची एकमेकावर जि उपजीविका चालत होती ती आज कालबाह्य झालेली आहे. पारंपरिक कला कौशल्यांवर आधारलेले आहे भटक्या विमुक्त जमातींचे व्यवसाय कालबाह्य झालेले आहेत.

त्यामुळे या भटक्या जाती-जमातींना खेड्यात जगणं अशक्य होऊ लागला आहे. परिणामी गेल्या काही वर्षापासून या विविध भटक्या विमुक्त जाती जमाती शहराकडे येऊ लागले आहेत.

भटक्या विमुक्तांची सद्यस्थिती :

आज अनेक शहराच्या झोपडपट्ट्यांन मध्ये, रेल्वे स्टेशन व रेल्वे रुळाला लागून, गटाराच्या काठाला, धोकादायक वळणाच्या जवळ, उग्र घाणेरड्या वासाचा जवळ, सार्वजनिक बंदिस्त संडास जवळ आपल्या राहुट्या उभ्या करून ही माणसं आज राहत आहेत. उदरनिर्वाहासाठी वेगवेगळे मार्ग शोधत आहेत. त्यांच्याकडे शिक्षण नाही त्यामुळे आधुनिक ज्ञान विज्ञानाची कौशल्य त्यांना आत्मसात करता आलेली नाहीत. परिणामी शहरी संस्कृती मध्ये गुजराण करण्यासाठी या जमातींना अनेक कठीण प्रसंगांना सामोरे जावे लागते. उपजीविकेची पारंपरिक साधने संपुष्टात आल्यामुळे आज या समाजातील मंडळी फुगे व प्लास्टिकच्या वस्तू, स्वयंपाक घरातील किरकोळ वस्तू, चाकुला धार लावणे, छत्र्या दुरुस्त करणे, झाडपाल्याचे औषध देणे, केसावर साहित्य विकण्याचे, जत्रांमध्ये कपडे विकण्याचे, फण्या कंगवे व इतर कलाकुसरीच्या वस्तू विकून तसेच यात्रांमध्ये व गावोगावी फिरून गोंदण्याचा व्यवसाय करून आज हा समाज आपली उपजीविका करत आहे. देशी दारूच्या दुकानांमध्ये ग्लास विसळून, शहरातील भंगार प्लास्टिक गोळा करून या भटक्या विमुक्त समाजातील स्त्री पुरुषांना आपली उपजीविका भागवावी लागते.

भटका विमुक्त समाज व त्यांच्या स्त्रिया :

स्त्री मग ती कोणत्याही समाजातील असो भारतीय व्यवस्थेमध्ये तिच्याकडे पाहण्याचा दृष्टिकोन हा पुरुषसत्ताक चष्म्यातूनच राहिलेला आहे. त्यांना सातत्याने दुय्यमत्वाची, कनिष्ठ, उपभोग्य वस्तू, अशीच वागणूक दिलेली आहे. तसेच चूल व मूल या दोन गोष्टीं पुरतीच मर्यादित यांची भूमिका आहे असेल ठरवून टाकलेले आहे. सवर्ण समाजातील स्त्रियां पेक्षा मागास भटक्या विमुक्त स्त्रियांवर कौटुंबिक, सामाजिक, आर्थिक अत्याचार अन्याय अधिक प्रमाणात होताना दिसतात. अज्ञान अंधश्रद्धा रूढी परंपरा यांच्या गर्तेत अडकलेल्या या समाजातील स्त्रियांना माणूस म्हणूनही स्थान नाही. भटक्या विमुक्त जाती जमातीतील स्त्रियांना जन्मताच अशुभ मानले गेले जाते अपवाद काही समुदाय सोडले तर. स्त्री मग ती कोणत्याही समाजातील असो जन्मताच तिच्यावर घडणाऱ्या दुय्यम, कनिष्ठ, परावलंबीतत्वाच्या संस्कारांमुळे ती स्वतःला त्यादृष्टीनेच लेखते व आपलं दुय्यमत्व मान्य करून काम करत असते. साधारणतः भटक्या विमुक्त समाजातील स्त्रियां ज्या वातावरणात ज्या अवस्थेत राहतात, वाढतात, जगतात व समस्यांना तोंड देतात त्यामुळे त्यांची मानसिकतेने आपलं दास्यत्व स्वीकारला असत.

पारंपारिक व्यवसाय व उद्योगधंदे संपुष्टात आल्यामुळे स्वभाविकच या भटक्या समाजातील स्त्रियांना पुरुषांच्या बरोबरीने अर्थार्जन करण्यासाठी घरा बाहेर पडावे लागते. कुटुंबाचे पालन पोषण करण्यासाठी हातभार लावावा लागतो. स्त्री व पुरुष एकत्र कमाई करत असले तरी मिळालेल्या मिळकतीवर मात्र पुरुषांचाच संपूर्ण हक्क असतो. त्यामुळे ती कष्ट करूनही कमावणारी असूनही परावलंबित्वाचे, पुरुषप्रधान व्यवस्थेतील जीवन जगताना दिसते. तिला विचारांचे, आर्थिक, सामाजिक अधिकार बहुतांशी वेळेला नकार लिहिले आहेत.

भटका विमुक्त समाज व त्यांची मुले :

भटक्या विमुक्त समाजातील आजच्या घडीला स्त्री पुरुष उपजीविकेच्या साधनांची पूर्तता करण्यासाठी घराबाहेर पडलेले आहेत. मुले तान्ही असतील तर या समाजातील स्त्रिया ती मुलं आपल्या झोळीत घेऊन पाठीवर बांधून काम करत असताना व कामाच्या ठिकाणी घेऊन जाताना दिसतात. परंतु जी मुलं तीन चार वर्षाची झालेली आहेत शाळेत जाणे योग्य झालेले आहेत अशी मुलं त्यांच्या अस्थायी स्वरूपाच्या किंवा आज काही गावांमध्ये ही मंडळी गावकुसाच्या बाहेर जिथं कोणत्याही सुविधा उपलब्ध नाहीत अशा ठिकाणी स्थायिक झालेली आहेत. आई-वडील दोघेही पोट भरण्यासाठी लागणारी साधन सामग्री तयार करण्यासाठी कष्टाची कामे करण्यासाठी बाहेर पडलेली असतात व अशा अवस्थेमध्ये घरी राहिलेल्या या मुलांकडे फारसं कुणी लक्ष देण्यासाठी उपलब्ध नसतं. काही वडीलधारी मंडळी आजारी असली तर घरी थांबलेली असतात परंतु त्यांचेही लक्ष या

मुलांच्या कडे फारसे नसते कारण त्यांना त्यांच्या आजारांना बॅड सावन सोडलेले असते. अशा सर्व परिस्थितीमध्ये ही मुलं बहुतांशी वेळेला फक्त मध्यान भोजन उपलब्ध होते म्हणून अंगणवाड्यांमध्ये तसेच शाळेत जातात, अन्यथा इतर वेळी ही मुलं शिक्षणाच्या परिघाबाहेर राहणेच पसंत करतात. घरी शिक्षणाचा अभाव त्यामुळे शिक्षणाच्या प्रक्रियेतील काही अडले तर विचारायची सोय नाही. कारण घरात याच्या अगोदर चे पिढ्यांनी शाळेचे तोंड पाहिलेलं नाही त्यामुळे अभ्यासक्रमातून समजावून सांगणारं कोणी नाही. शाळेत शिक्षकांना विचारावं तर तेवढे धाडस नाही, अशा परिस्थितीमध्ये मग हळूहळू एखाद दुसरा विषय नावडता होत जातो व काळाच्या ओघात शाळा नावडती होते.

भटक्या विमुक्त समाजातील मुलींच्या शिक्षणाचा प्रवास तर त्यांच्या फार लहान वयातच सुटलेला असतो. एक तर तिला घरी राहून आपल्या लहान बहिण-भावंडाची काळजी घ्यायची असते किंवा मग भावकीतल्या लहान मुलांचा सांभाळ करायचा असतो. ती थोडी कशी झाली मोठी झाली की मग घरातले पाणी भरण्याचं भांडी कपडे धुण्याचं तसेच हळूहळू स्वयंपाक करण्याची जबाबदारी तिच्यावर येते. अशा परिस्थिती मध्ये भटक्या-विमुक्त समाजातील मुलींच्या शिक्षणाचा प्रवास फार लवकर संपुष्टात येतो. काळाच्या ओघामध्ये मुलगी कळती झाली की आई वडील तिचे लवकरात लवकर लग्न लावून स्वतःला एक पवित्र कार्य केलं म्हणून मुक्त करून घेतात. लहान वयात लग्न झाल्यामुळे बहुतेक वेळेला या मुलींना देखील लवकरच बाळंतपणाला सामोरे जावे लागते त्यामुळे माता व बालक दोन्ही कुपोषित अवस्थेत पुढील जीवन जगत असतात. बहुतेक वेळेला भटक्या विमुक्त समाजातील मुलं दहावी किंवा बारावी पर्यंत जाऊन थांबतात. इंग्रजी, गणित, विज्ञान यासारख्या त्यांच्या दृष्टीने अवघड असणाऱ्या विषयांचा जोखड त्यांना पेलता येत नाही, व मग या विषयांमध्ये या इयत्तांमध्ये नापास झाले की पुन्हा ही मुलं शाळेचं तोंड बघत नाहीत. अशा पद्धतीने कमी शिक्षण व कसल्याही स्वरूपाची कौशल्य विकसित न झाल्यामुळे या मुलांच्या निमित्ताने पुन्हा बाजारांमध्ये अकुशल मजुरांची भर पडते ज्याचा भांडवलदार यथोचित वापर करून घेतात. शिक्षणाचा तसेच कौशल्यांचा अभाव असल्यामुळे बहुतेक वेळेला ही मुलं अंगमेहनतीची व पडेल ते काम करून आपला उदरनिर्वाह करायला सुरुवात करतात. अशा पद्धतीने भटक्या विमुक्त समाजातील मुलं ही लहान वयात कामाला लागतात दोन पैसे मिळवायला लागतात आणि मग सख्या सवंगड्यांच्या संगतीने साथीने व्यसनांना जवळ करतात.

भटका विमुक्त समाज व त्या समाजातील पुरुष :

लहान वयात लग्न झाल्यामुळे आणि कुटुंबाची जबाबदारी आल्यामुळे ही पुरुष मंडळी मिळेल ती तसेच पडेल ते काम करून आपला व आपल्या कुटुंबाचा उदरनिर्वाह करत असतात. पौष्टीक व सकस आहाराचा अभाव असल्यामुळे बहुतेक वेळेला हे पुरुष देखील कुपोषित असतात. बऱ्याच वेळेला सकस आहाराचा अभाव व व्यसनाधीनतेमुळे या पुरुषांना देखील अनेक आजारांना सामोरे जावे लागते. शिक्षणाचा अभाव आणि कोणत्याही उपजिविकेसाठी आवश्यक असणाऱ्या कौशल्याच्या अभावामुळे हे पुरुष बहुतेक वेळेला आपल्या जातीशी सदृश्य असणारे व्यवसाय करताना दिसतात. नंदीवाले समाजातील पुरुष मोठ्या प्रमाणात जनावरांचा बाजारांमध्ये हेडेगिरी करताना दिसतात. मोठ्या प्रमाणात जनावरांचा व्यापार व त्या क्षेत्रामध्ये ही मंडळी. यात्रांमध्ये खेळण्याची स्टॉल लावणे, भंगार गोळा करणे, किराणा मालाच्या दुकानात, कपड्याच्या दुकानात पडेल ती काम करून काही मंडळी आपली उपजीविका भागवताना दिसतात.

एकूणच भटक्या विमुक्त समाजातील स्त्रीया, मुले व पुरुष यांचे सामाजिक आर्थिक राजकीय अस्तित्व नगण्य आहे हे कुठे जन्माला आले व कुठे मेले याचा तथाकथित मुख्य प्रवाहातील मंडळींना फारसा फरक पडत नाही. राजकारणी हे फक्त त्यांच्या फायद्यासाठी निवडणुकांमध्ये स्वस्तात वापरायला मिळणारे मनुष्यबळ म्हणूनच यांच्याकडे पाहत असतात. सदन व उच्चभ्रू समाजातील मंडळी त्यांची पडेल ती कामे करणारा एक स्वस्त मजूर म्हणून या समाजाकडे पाहात असतो.

संदर्भ-

[i] मराठी विश्वकोश खंड-12, संपा- लक्ष्मणशास्त्री जोशी, म.रा.म.वि.नि. मं. मुंबई, आवृत्ति- 1985, पृ.सं- 19

*उदरनिर्वाहासाठी किंवा व्यवसायाच्या निमित्ताने भटकनार्या लोकांना सर्वसाधारणपणे 'भटके' असे म्हटले जाते. परन्तु त्यांचे मूल फार पुरातन संस्कृतीत असल्याचे आढलते. इंग्रजीत त्यांचा उल्लेख 'नोमड्स' असा करतात. 'नोमड्' हा शब्द 'नोमी' किंवा 'नेमो' (गुरे चारणे) या ग्रीक शब्दापासून तयार झालेला आहे. कायमस्वरूपी घर नाही किंवा शेतजमीन नाही, परन्तु गुरांचे कलप आहेत असे लोक घुरांसाठी चराऊ कुरनांच्या शोधार्थ सतत भटकत असतात. अशा लोकांना उद्देशून 'नोमड्स' हा शब्द वापरला जातो.

[ii] साठोत्तरी मराठी वांग्मयातील प्रवाह, संपा- शरणकुमार लिंबाले, भटक्या-विमुक्तांचे साहित्य, दादासाहेब मोरे, दिलिपराज प्रकाशन प्रा.लि. पुणे, द्वि.आ- 2014, पृ.सं- 323

*परिस्थितीच्या दबावामुले किंवा आर्थिक विपन्नावस्थेमुले काही भटक्या जमाती गुन्हेगारीकडे वळल्या. त्यांना 'गुन्हेगार जमाती' म्हणून ओलखले जाते.

'निलोफर' उपन्यास में चित्रित विमुक्त और घुमन्तू जनजातिय परिवार

डॉ. कल्पना पाटोळे
गोपाल कृष्ण गोखले महाविद्यालय, कोल्हापुर
Email - kalpanapatole707@gmail.com
Mob No. - 9527678500

सारांश-

घुमन्तू जनजातिय समाज में विवाह एक धार्मिक संस्कार न होकर सामाजिक समझौता है। करनट, कंजर आदि जनजातियों में नारी को अधिक महत्ता प्रधान की गई है। कुछ जनजातियों में युवक-युवतियों को अपेक्षा से अधिक स्वतंत्रता प्राप्त होती है, यद्यपि उन पर वृध्द सदस्यों का प्रत्यक्ष अधिकार रहता है। उदाहरण के लिए नागा जनजाति में मोरूंग नामक कुमार-गृह की स्थापना की जाती है, जहाँ पर युवक-युवतियाँ मुक्त रूप से अमोद-प्रमोद तथा प्रेमभाव प्रकट करती हैं। इसी प्रकार जनजातिय समाज में विवाह से पूर्व और विवाह के बाद भी यौन के क्षेत्र में पर्याप्त स्वतंत्रता मिलती है। थारू जाति में यौन स्वच्छंदता दिखाई देती है। उनमें स्त्रियों का स्थान उच्च होने के कारण पुरुष स्त्रियों के अधीन होते है।

बीज शब्द- विवाह, समाज, जाति, परिवार

प्रस्तावना

विमुक्त और घुमन्तू जनजातिय परिवार भारत की एक महत्वपूर्ण इकाई है। अपनी संस्कृति का विशेष ध्यान रखनेवाले ये परिवार बहुत कुछ आत्मनिर्भर होते है। इनमें आयु तथा लिंग के आधार पर श्रम विभाजन किया जाता है। "जनजातिय परिवार व्यक्तिवाद की भावना से बहुत दूर और सामूहिकता के सच्चे प्रतीक है। इनका प्रमुख कार्य धार्मिक विश्वासों के आधार पर सदस्यों को संगठित रखना, बच्चों को अपनी संस्कृति की शिक्षा देना और आत्मनिर्भरता को प्रोत्साहन देना है।"[1] इस प्रकार आधुनिक युग में सभ्य समाजों के संपर्क में आने के बाद भी ज्यादातर जनजातियों अपने मौलिक जीवन का ही प्रतिनिधित्व करते है। जनजातिय परिवार एक विशेष भौगोलिक पर्यावरण, भिन्न सांस्कृतिक मूल्यों तथा यौन संबंधों में अधिक स्वतंत्रता होने के कारण सभ्य समाजों की अपेक्षा इनके परिवार का रूप नितांत भिन्न होता है। भारतीय जनजातियों में गोंड, खासी, करूट, कंज़र, नागा, थारू, संथाल, भील, खस, बनजारे, जौनसार आदि प्रमुख जनजातियाँ हैं। जो स्थान तथा पर्यावरण के अनुसार परिवार में विश्वास करती है। वे संयुक्त परिवार को भाई-बंध कहते हैं। खासी जनजाति में मातृसत्ताक परिवार होते हैं और परिवार की उत्तराधिकारिणी स्त्री होती है।

विमुक्त घुमंन्तु समुदाय हमेशा आर्थिक अभाव से जूझते हुए दिखाई देते हैं| आर्थिक विफलता के कारण दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं तथा सुविधाओं का नितांत अभाव इन परिवारों में रहता है | परिवार के सभी सदस्य जीविकोपार्जन के लिए श्रम करते हैं | जी तोड़ मेहनत करने पर भी इनको भोजन, वस्त्र तथा निवास की समस्याओं का सामना करना पड़ता है | अत्यंत दलित एवं दिनता के कारण इनका जीवन मात्र विडंबना बन जाता है | यही कारण है कि पूँजीपति, शासन तथा अन्य वर्ग के लोग विमुक्त घुमंन्तु लोगों का शोषण करते हैं | परिणामस्वरुप इनके हाथों सामाजिक अपराध भी हो जाते है | "ये परिवार अर्थाभाव के कारण सामाजिक अपराधों में अवलिप्त दिखाई देते हैं | इनमें यौन उच्छृखलता तथा स्वच्छंदता के भी कुलक्षण दिखाई देते हैं|"[2]

हिंदी साहित्य की बहुचर्चित उपन्यासकार कृष्णा अग्निहोत्री के 'निलोफर' उपन्यास में विमुक्त और घुमन्तू जनजातिय परिवारों की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तुत उपन्यास की बैगा जनजाति में परिवारों का अस्थायी रूप दिखाई देता है। यह जनजाति परंपरागत रूप से अस्थायी कृषि करती है। उनके पास न हल है न बैल है, न सिंचाई के साधन वे कुल्हाड़ी से जंगल काटते हैं। और कुदाल से उस स्थान को खोदकर खेत बनाते हैं। इस स्थान पर वे मात्र एक साल कृषि करते हैं और अगले साल नया स्थान खोज लेते हैं। उनके पास न स्थायी भूमि है, न जमीन पर अधिकार आदिवासी मंगलू की बातों से यह स्पष्ट होता है. "हमारा जहाँ मन चाहता है हम धान, मक्का बोते हैं वर्ना तो भूखों मरें।"[3] अतः पिछड़ापन, अभाव और भूमिहीन होने के कारण इस जनजाति के परिवारों को स्थायी आवास प्राप्त नहीं होता है।

प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित जनजातिय परिवारों में अर्थाभाव के कारण उत्पन्न अनेक समस्याएँ पायी जाती है। जिसके कारण परिवार विघटित हो रहे है। जुग्गी की आर्थिक स्थिती कमजोर है। उसे पहनने को कपड़े नहीं मिलते और खाने को पेटभर रोटी नहीं मिलती। वह पानी पिकर ही गुजारा करती है। जुग्गी झूकी और दो घूट पानी ढलाव से पीया और बोली, हमारा जल भगवान ही

बहुत अच्छा है। इसे पीकर ही एक-दो दिन भूखे जिया तो जा सकता है।"[4] आर्थिक अभाव से ग्रस्त जुग्गी पति के होते हुए भी अपने आप को बेच देती है। वह कहती है, "रूपया! मैंने तो कब से एक टकसाली रूपया देखा भी नहीं।"[5] अर्थाभाव से विवश होकर उसे अपना शरीर बेचना पड़ता है. अन्यथा उसे अपने पति से बहुत लगाव है, प्रेम है। अर्थाभाव के कारण ही वह अपने पति के चैती के साथ संबंध को भी स्वीकारती है क्योंकि चैती उसके लिए हिरन का सिका गोश्त भेजती है। वह अपने पति झींगुर से कहती है, "ठिक है, चैती अच्छी है तू कभी-कभी वहाँ चला जाया कर।"[6] आर्थिक अभाव के कारण झाँझर का पिता उसे बेचना चाहता है। झाँझर का कथन यहाँ दृष्टव्य है, "मेरा बास (बाप) सचमुच मुझे किसी दिन उस पंडित के हाथ बेच देगा मैं तुम्हारे साथ चलूंगी|"[7] अतः अर्थ प्राप्ति के लिए झाँझर का बाप अपनी बेटी को बेचना चाहता है। उसी प्रकार झलकिया का ससुर भी अर्थाभाव के कारण उसे बेच देता है। वह अपनी व्यथा स्पष्ट करती हुई कहती है, "मैं क्या करूँ? मेरे ससूर ने एक बोरी ज्वार और तीन सौ रूपये लेकर मुझे फिर उसके साथ भेज दिया।"[8] अतः इसी कारण झलकिया को बेटे से भी वंचित होना पड़ता है।

विवाह मनुष्य में पारिवारिक उत्तरदायित्व एवं आत्मत्याग जैसी भावनाओं का विकास करता है। घुमन्तू जनजातिय समाज में विवाह एक धार्मिक संस्कार न होकर सामाजिक समझौता है। करनट, कंजर आदि जनजातियों में नारी को अधिक महत्ता प्रधान की गई है। कुछ जनजातियों में युवक-युवतियों को अपेक्षा से अधिक स्वतंत्रता प्राप्त होती है, यद्यपि उन पर वृध्द सदस्यों का प्रत्यक्ष अधिकार रहता है। उदाहरण के लिए नागा जनजाति में मोरूंग नामक कुमार-गृह की स्थापना की जाती है, जहाँ पर युवक-युवतियाँ मुक्त रूप से अमोद-प्रमोद तथा प्रेमभाव प्रकट करती हैं। इसी प्रकार जनजातिय समाज में विवाह से पूर्व और विवाह के बाद भी यौन के क्षेत्र में पर्याप्त स्वतंत्रता मिलती है। थारू जाति में यौन स्वच्छंदता दिखाई देती है। उनमें स्त्रियों का स्थान उच्च होने के कारण पुरुष स्त्रियों के अधीन होते है। संथाल जाती में विवाह के पूर्व भी लैंगिक संबंध स्थापित हो सकता है। इस जाति में बहुपतित्व तथा बहुपत्नीत्व निषेध है। भीलों में विवाह के पूर्व एक बार परीक्षण विवाह भी होता है। भीलों में कुछ कृषक होते हैं तो कुछ यायावर होते हैं।

गोंड जनजाति में भी विवाह पूर्व कामक्रिया होती है। वे सामान्यतः सेवा, अपहरण, धन व्यय करके विवाह संपन्न करते हैं। इनमें विधवा विवाह वैध है। खस जनजाति में भी स्त्रियों को मातृ-कुल में मुक्त भोग का अधिकार रहता है। इस जाति में बहुपतित्व की प्रथा प्रचलित है। बड़े भाई की पत्नी सभी भाईयों की सम्मिलित पत्नी होती है। वे अतिथी को पत्नी द्वारा शय्या सेवा प्रदान करती है। सामाजिक नियमों का उल्लंघन करनेवाले को प्रायश्चित करना आवश्यक होता है। "अतः ये परिवार अपनी परम्पराओं से आबध्द होने के कारण सामान्य परिवारों से भिन्न है। इनके पिछड़े रहने का प्रमुख कारण यह रहा है कि ये आरंभ से ऐसी अज्ञात भूमियों तथा अंचलों में रहते आ रहे है, जहाँ यांत्रिक सभ्यता तथा आधुनिक जीवन-प्रणाली की वैज्ञानिक हलचल समय पर नहीं पहुँच पाई।"[9]

कुछ जनजातियों में दहेज वर पक्ष को नहीं बल्कि वधू पक्ष को देने की प्रथा है। 'निलोफर' में बरेला जनजातिमें यही प्रथा दिखाई देती है। लड़की के पिता को दहेज दिए बिना उनमें शादी संपन्न नहीं होती। आदिवासी युवक मधुआ झलकिया से प्रेम करता है। वह उससे शादी करना चाहता है. लेकिन झलकिया के पिता दहेज के रूप में दो सौ रूपए की माँग करते हैं। गरीब मधुआ के पास इतने पैसे नहीं होते, वह परेशान होता है। मास्टर अशोक से रुपये मिलते ही वह अपनी शादी तय करता है। प्रसन्न चित्त से वह अशोक से कहता है | "मेरी भाभी की ऊगी (सगी) बहन को भगाकर ले जाऊँगा। उसके लिए लुगरा और लहंगा लेना है। बड़े दिनों से माँग रहा था, परन्तु ससुर पूरे दो सौ रूपये पर अडा ही रहा। जब रूपये टनाटन गिनाये, तब लड़की को भगाने की बात तय हुई।"[10] लड़की का पिता लड़केवालों से अधिक दहेज पाने की लालसा करता है। दहेज की इस पध्दति में भी नारी ही शोषित पाई जाती है। उसे एक चीज की तरह इस्तेमाल किया जाता है। अर्थाभाव से त्रस्त झझर के पिता संतो अपनी लड़की की इच्छा एवं पसंद नहीं बल्कि उसके माध्यम से अधिक रूपये प्राप्त करना चाहता है। झाँझर डॉ गोविंद से कहती है, "घर पर जरा सा मोटा आटा पिसो तो गाली मिलती है। वो तो बाप को लगता है कि मेरे बहुत दाम लगेंगे, इसलिए वे दोनों मुझे जिंदा रखे हैं।"[11] यहाँ पर वधु-मूल्य की प्रथा के कारण अपने माता पिता के घर में नारी का शोषण दिखाई देता है। प्रस्तुत उपन्यास की बरेला जनजाति में परिवार का अलग ही रूप सामने आता है। यहाँ विवाह के उपरान्त पिता बेटे एवं बहू को अलग रखते हैं। इसके पीछे अर्थाभाव या कलह जैसा कोई कारण नहीं होता बल्कि पति-पत्नी को रोजी-रोटी के लिए सक्षम बनाने की भावना होती है। मधुआ के पिता उसके विवाह के बाद अलग झोपड़ी बनाते हैं। इससे मास्टर अशोक की कुछ समझ में नहीं आता और वह मधुआ के पिता से इसका अर्थ पूछता है। इस पर मधुआ का पिता अशोक से कहता है, "तो क्या? हमसब बेटी को अलग ही रखते हैं। देखिए, डंगरी फैल जाएगी। रूपया

कमाएगा तो टाटला लगा देगा।"[12] यहाँ विवाह के बाद पुत्र रोजी-रोटी के लिए सक्षम बने इसलिए पिता उसे अलग रखता है। लेकिन उस पर पिता का नियंत्रण भी रहता है। इस तरह विमुक्त और घुमन्तू जन समुदाय में परिवार विघटन का एक अलग प्रकार यहाँ पर स्पष्ट होता है।

आज के वैज्ञानिक युग में अंधविश्वास एवं अधश्रध्दाओं के लिए कोई स्थान नहीं है। परन्तु जनजातिय परिवारों में अज्ञान एवं वैज्ञानिक दृष्टी के अभाव के कारण भूत-प्रेत संबंधी अनेक मान्यताओं का प्रचलन है। नीलोफर' उपन्यास में बैगा और बरेला आदिवासियों में अंधविश्वास के कारण भूतप्रेत पर विश्वास किया जाता है। पकरू की पत्नी बीमार पड़ती है, "भूत लग गया बाबा, कुछ कर गुनियाँ को ढूंढ़।"[13] घरवाले भूत की बाधा की आशंका को झाडने हेतु गुनिया को बुलाते है। संता सरदार की बेटी झाँझर को सॉप काटता है तो अनपढ़ बारेला आदिवासी झाड़-फूंक द्वारा उसका जहर उतारते हैं। समय पर डॉक्टर गोविंद के पहुँचने से उसकी जान बचती है। इस प्रकार आज के वैज्ञानिक युग में भी कुछ जनजातिय परिवारों पर अघविश्वास तथा अंधश्रध्दाओं का प्रभाव दिखाई देता है, जो परिवार में तनाव का कारण बन जाता है।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि राष्ट्र और समाज की दृष्टि से विमुक्त और घुमन्तू जन समुदाय भारत की एक महत्त्वपूर्ण ईकाई है। यह समुदाय श्रमजीवी होते हैं। उनकी पारिवारिक इकाई में कोई किसी पर भारतुल्य नहीं होता| परिवार के सभी सदस्य काम करते हैं| रोटी के सामने कौलिन्य नगन्य माना जाता है। जनजातिय परिवार अभावग्रस्त, शोषित एवं साधारण सुविधाओं से भी वंचित होते है| परन्तु विपन्नता एवं विवशता की दशा में भी इन परिवारों में उदारता मानवीयता और अपनापन अधिक मिलता है। निष्कर्षतः उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है की वर्तमान युग में औद्योगीकरण, नगरीकरण, स्त्री शिक्षा, धन-प्रचुरता और व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों के कारण भारतीय पारिवारिक भावना की व्यापकता संकुचित होती जा रही है। परंतु स्वतंत्र भारत में सभ्य समाज की मुख्यधारा से कोसों दूर अँचल में रहनेवाले तथा अनेक समस्याओं का सामना करनेवाले विमुक्त और घुमन्तू जनजातिय परिवार 'वसुधैव कुटुंबकम' की उदात्त भावना को सही अर्थों में आज भी चरितार्थ कर रहे है।

संदर्भ ग्रंथ :

1 डॉ गोपाल कृष्ण अग्रवाल, भारतीय सामाजिक संस्थाएँ पृ. 450
2. डॉ. त्रिभुवन सिंह, हिंदी उपन्यास और
3. महेंद्र कुमार जैन, हिंदी उपन्यासों में पारिवारिक चित्रण पृ. 24
4. कृष्णा अग्निहोत्री, निलोफर, पृ. 72
5. कृष्णा अग्निहोत्री, निलोफर, पृ. 59
6. कृष्णा अग्निहोत्री, निलोफर, पृ. 59
7. कृष्णा अग्निहोत्री, निलोफर, पृ. 64
8. कृष्णा अग्निहोत्री, निलोफर, पृ. 143
9. कृष्णा अग्निहोत्री, निलोफर, पृ. 143
10. कृष्णा अग्निहोत्री, निलोफर, पृ. 124
11. कृष्णा अग्निहोत्री, निलोफर, पृ. 143
12. कृष्णा अग्निहोत्री, निलोफर, पृ. 125
13. कृष्णा अग्निहोत्री, निलोफर, पृ. 60

खानाबदोश नटों के जीवन का यथार्थ दस्तावेज : शैलूष

डॉ. मालोजी अर्जुन जगताप,
सहायक प्राध्यापक,हिंदी विभाग,
सांगोला कॉलेज सांगोला
९९२१४७३८०७,

सारांश –

हिंदी साहित्य में शिवप्रसाद जी के कथा साहित्य का अर्थ-सन्दर्भ अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। वे एक गहन सर्जनात्मक अन्तर्दृष्टि रखनेवाले और संवेदनशील है, जिसे भारतीय इतिहास-संस्कृति की विवेक प्रक्रिया ने कई भीतरी-बाहरी चुनौतियों को झेलकर प्रतिफलित किया है। शिवप्रसाद सिंह की सृजन-चेतना और उसमें निहित इतिहास की यातना-वेदना, नियति का एक ऐसा जीवन्त, अर्थवान और धड़कता हुआ रचना संसार है जिसमें अतीत वर्तमान से संवाद करता है, सांस्कृतिक संवेदना मानवीय अनुभव तत्कालीन यथार्थ को अभिव्यक्त करती है। शिवप्रसाद सिंह के लिए कथा की 'विधा' महज माध्यम है, जिसका लक्ष्य है इतिहास और कहानी की संवेदना के भीतर से समाज, संस्कृति और इतिहास की अन्तःप्रेरणाओं से साक्षात्कार कराना।

'शैलूष' शिवप्रसाद सिंह का नटों के संघर्षपूर्ण जीवन, लोकजीवन एवं लोकसंस्कृति का चित्रण करनेवाला श्रेष्ठ उपन्यास है। शैलूष में नटों के अभावग्रसत जीवन, रीति-रिवाज, विवाह परंपरा, अंधविश्वास, सामाजिक सद्भावना तथा नारी सम्मान आदि का सूक्ष्म चित्रण किया हैं। उपन्यास की कथा का केंद्र सावित्री है, जो नट कबील के सरदार जुड़ावन की पत्नी है। वह नई सोच तथा दूरदृष्टि रखनेवाली नारी है। जमीदार घुरफेंकन के अत्याचार, हिंसा के शिकार नटों के जीवन एवं संघर्ष का विस्तार से वर्णन किया गया है। बदलते परिवेश का प्रभाव भी नटों पर दिखाई देता है। उन्होंने अब गाँव-गाँव घुमना बदं कर दिया है। शिकार करना, नाचना, खेल दिखाना, शरीर बेचना बंद किया है। खेती करनी शुरु की हैं। घुरूफेंकन की पराजय और नट की जीत आदिवासियों के विकास के किरण रूप में आए हैं। अत: हम कह सकते हैं कि नटो की कबीलाई जीवन एवं संस्कृति को चित्रित करने में यह उपन्यास सफल हुआ है।

बीज शब्द – नट,शैलूष,खानाबदोश,आदिवासी उपन्यास,आदिवासी आदिवासी साहित्य

प्रस्तावना-

शिवप्रसाद सिंह उन हिंदी कथाकारों में से हैं जो अपने ही बनाए मार्ग को परिवर्तित कर नए रुप में स्थापित करते हैं। उनके उपन्यास 'अलग अलग वैतरणी', 'गली', 'नीला चाँद', और 'शैलूष' उनकी इसी रचनात्मक शक्ति का परिचायक हैं। 'शैलूष' आदिवासी नटों के यायावर जीवन पर अधारित लिखी श्रेष्ठ कृति हैं। इस उपन्यास का प्रकाशन 1989 में नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली द्वारा हुआ।

'शैलूष' शिवप्रसाद सिंह के अनुभूति का नीचोड़ हैं। इस संदर्भ में शिवप्रसाद सिंह कहते हैं, ''यायावर जीवन, जरायम पेशा, खानाबदोश नटों की जिंदगी मैं दस वर्ष की उम्र से आज तक न केवल देखता रहा बल्कि वह दु:ख स्वप्न की तरह मेरे दिमाग पर छायी रही।''[1] इसी अनुभूत पीड़ा को शैलूष में वाणी देंने का कार्य लेखक ने किया हे। 'शैलूष' में नटों में आ रहे परिवर्तन आर्थिक दुरावस्था, विद्रोह, नई चेतना, संघर्ष, रीति-रिवाज, लोकगीत, नारी का साहस, गैर आदिवासियों से नटों का संबंध, धार्मिक सद्भावना आदि का अत्यंत यथार्थ रुप में चित्रण किया गया हैं। लोकसंस्कृति पर आधारित इस कृति में नट जनजाति के जीवन के अंतर्विरोध, आर्थिक विपन्नता, शारीरिक संबंधो की जड़ता, नई चेतना, संघर्ष और शोषण आदि विभिन्न संदर्भो का प्रस्तुतिकरण हुआ हैं। खानाबदोश नटों के जीवन के संघर्षो को लेखक ने परत-दर-परत उकेरकर शैलूष में संजोया हैं। शैलूष के संदर्भ में भगवतीशरण मिश्र लिखते हैं, ''संपूर्ण उपन्यास नटों के जीवन और उनके जीवनयापन संबंधित संघर्ष पर आधारित हैं। अवश्य ही लेखक ने नटों के जीवन को समीप से देखा हैं तभी वह अनेक रहन-सहन से लेकर उनकी संस्कृति तक का विश्वसनीय चित्र उपस्थित करने में सफल हो सका हैं।''[2] नटों के यायावरी जीवन में घटनेवाली तमाम बाह्यशक्तियों जमींदार, पुलिस, प्रशासन राजनेता आदि के दबाव, अत्याचार, अन्याय और छल कपट को लेखक ने सावित्री, जुड़ावन, रुपा, लल्लूनट आदि पात्रों के माध्यम से जीवित कर दिया हैं।

'शैलूष' का केंद्र चंदौली तहसील का 'रेवतपुर' गाँव और गाँव के जुड़ावन कबीले के नट हैं। कथा का केंद्र भूमिहीन नटों

को सरकार द्वारा चालीस एकड़ भूमि प्रदान की गई हैं। इस भूमि पर पिछले बीस साल से जुड़ावन कबीला निवास करता हैं लेकिन गाँव के जमींदार घुरुफेंकन तीवरी इस जमीन को पाना चाहता हैं, इस जमीन के लिए अनेक नटों का खून बहता हैं। जमीन के लिए नटोंद्वारा किया गया संघर्ष इस उपन्यास को प्रमुख कथावस्तु हैं। रेवतीपुर गाँव के नट जो जरायम पेशा जनजाति हैं। उनका जीवन अभावों से भरा हुआ हैं। रोजी रोटी के लिए उन्हे नाच गाना, अलग अलग शारीरिक कसरते, खेल दिखाने पड़ते थे। सब्बो याने सावित्री जो ब्राह्मण कन्या थी उसने जुड़ावन नट से प्रेमविवाह किया था। सावित्री ने अपना घर बार छोड़कर नटों के मुक्त जीवन को अपनाया था। जुड़ावन के लिए नटनी बन जाती हैं। नटों के विकास एवं परिवर्तन के लिए सावित्री पूरा जीवन समर्पित करती हैं और अंत में उनके लिए जान भी दे देती हैं। सावित्री याने सब्बो मौसी के कारण चोरी, शिकार, भीख माँगना, देह बेचना आदि कार्य नटों ने बंद कर दिए हैं। सब स्वाभिमान के साथ जीवन जीना चाहते हैं। सावित्री से नट कबीला, पुलिस, कलेक्टर सभी प्रभावित हैं। जुड़ावन कबीले के नट तो उसके अनुमति के बिना एक भी कदम आगे नही चलते हैं। वह सावित्री से ड़रते भी और उसके ज्ञान का सम्मान भी करते हैं।

जमीदार घुरफेंकन ब्राह्मण हैं। नटों और हरिजनों को सरकारने बाटी जमीन उसीके पूर्वजों की हैं। उस जमीन को हड़पने के लिए अनेक पैंतरे अपनाता हैं। पहले बशीरा नटों के कबीलों को बुलाता हैं। उसे लगता हैं नट ही नटों को काट सकता हैं। ब्राह्मण टोली, नट, गुंडे, पुलिस सभी प्रकार के प्रयास नटों को जमीन से खदेड़ने के लिए करता हैं लेकिन सब्बो मौसी की चतुरता तथा नटो के शोर्य से अंत तक उसे जमीन नहीं मिलती। जमीनदारी तो धीरे-धीरे खत्म होती जा रही हैं लेकिन जमीनदारों का अहंकार नहीं खत्म हो रहा हैं। पुलिस अधिकारी प्रतापसिंह कहता हैं, ‘‘आपके पूर्वज रहे होंगे राजा रईस उन्होंने जमींदारो के दिनों में कलेक्टर, इंस्पेक्टर और उनके सारे अमला को मांस-मदिरा खिला-पिलाकर, नजराना या डलिया देकर अपने मन मुताबिक सब कुछ करा लिया होगा। लेकिन अब यह सब नहीं चलेगा।’’[3] यह वाक्य खत्म होती जमींदारी का प्रमाण हैं। इस उपन्यास में नासीर, प्रतापसिंह, कलेक्टर को आदिवासियों के सहायक रुप में दिखाया हैं। जो आदिवासियों के विकास के लिए प्रयास करते हैं। इनके यह एक प्रमाणिक प्रयत्न एक छोटी सी क्रांति ला सकती हैं। जमीदार के हर पैंतरे का जबाब सब्बो मौसी के पास हैं। वह कृष्ण की सेवक हैं उपर से शांत और अंदर से विद्रोही, आग हैं। वह बुरी परंपरा, शोषण, अत्याचार, लाचारी का विरोध करती हैं। लेकिन हक लिए कभी नटों को हाथयार उठाने से भी रोकती नहीं हैं। वह धर्म-भेद एवं जातिभेद का विरोध करती हैं सभी हरिजनों, बशीरा के मुसलमान नटों को भी साथ-साथ चलने को कहती हैं। नौजादिक, मानिक, ननकू, अमिरात, रुपा, तहिरा, माला, सूरज, वासुदेव सभी उसके आदेशो का पालन करते हैं। सावित्री भी अपने को टनी कहनें का गर्व महसूस करती हैं। सब्बो मौसी नारी की स्वतंत्रता और आत्म रक्षा को महत्वपूर्ण मानती हैं। रुपा तहिरा को स्वतंत्रता देती हैं, हसिंया चलना सिखाती हैं। वह रुपा के संदर्भ कहती हैं, ‘‘हमारी रुपा केवल नट कन्या नहीं हैं। वह अत्याचार के लिखाफ जेहाद बोलनेवाली पलिता हैं।’’[4] शैलूष में नारी को महत्त्व दिया हैं। नटों में नारी प्रधान परिवार होते हैं। इसलिए पहले मान ‘नथिया’ बंजारिन को दिया जाता हैं। नट सावित्री को भी नथिया का ही स्थान देते हैं।

‘शैलूष’ उपन्यास में सब्बो मौसी के कथा के साथ-साथ मानिक-रुपा, करीम-सलमा, अमिरत ताहिरा, सुधाकर-रेवती, जुड़ावन-सावित्री आदि की पेरमकथाएँ हैं। कलेक्टर सारस्वत मौसी को मानता हैं। शैलूष में नटों को अधिक विद्रोही एवं साहसी स्वाभीमानी दिखाया हैं। डॉ. रामविनोद सिंह शैलूष के संदर्भ में लिखते हैं ‘‘नटों की जिंदगी के अंतर्विरोध उसकी सांस्कृतिक चेतना में आते हुए बदलाव, रीति-रिवाज, लोकगीत, लोकविश्वास, आर्थिक, विषमता और अभाव के कारण टूटती नैतिकता, सामाजिक जीवन के साथ निजी जीवन की झ◌ॉ◌ंकिया, बाह्य समाज से नटों के संबंध उनके जुझारू ओर विलासी स्वभाव का बड़ा ही सूक्ष्म विश्लेषण किया गया हैं।’’[5] लेखक विस्थापित नटों के जीवन से बेचैन होता दिखाई देता हैं। परिणामस्वरूप वह उन्हें स्थापित करने का भी प्रयास करता हैं। ‘जुड़ावन’ नट कबीले का सरदार हैं लेकिन उसका प्रधान रुप विकसित नहीं हुआ हैं इसलिए तो मौसी तक बुजुर्ग लल्लू नट से विचार विमर्श करती हैं। मौसी ने नटों को स्वाभिमान, सयंम की शिक्षा दी हैं। गंदी राजनीति आदिवासी कबीलों और उनकी संस्कृति को खत्म कर रही हैं इस पर सावित्री कहती हैं, ‘‘आज हमारा आदिवासी गरीब, गरीब से भी नीचे यानी दरिद्र होता जा रहा हैं। क्यों मानिक, ऐसा क्यों? ऐसा इसलिए हैं कि तुम्हारे नेता दों मुहे सांप की तरह दोनों को गटकना चाहते हैं मालिक को भी और मजदूर को भी।’’[6] मौसी इन गंदे राजनेताओ के चाल में नटों को कभी फसनें नहीं देती हैं। घुरुफेंकन 40 एकड़ जमीन हड़पने के लिए नटों की झोपड़ियाँ जला देता हैं। ताहिरा जैसी नट कन्याओं पर बलत्कार करवाता हैं। यह घुरुफेंकन

तिवारी पूँजीपतियों का प्रतिनिधित्व करता हैं। उसमें शोषक प्रवृत्ति, लालच, अनैतिकता, कपट, नीचता और भ्रष्टता कूट-कूटकर भरी हुई हैं। जो ताहिर अली, जीतू कसाई, करिमन, बशीर, नजीर, छबीला जैसे गुंडों के माध्यम से नटों के जीवन को ध्वस्त करने का प्रयास करता हैं।

निष्कर्ष -

'शैलूष' में नटों के संघर्ष के साथ साथ लोकजीवन और लेक संस्कृति का अत्यंत सूक्ष्म एवं सटीक चित्रण मिलता हैं। संयुक्त परिवार, विविध मान्यताएँ, विवाह परंपरा, नारी सम्मान, व्यसनाधीनता, अंधविश्वास, अशिक्षा, यौन-संबंध, वेशभूषा, रीति-रिवाज, स्वाभिमान, स्वच्छंद जीवन का भी चित्रण हुआ हैं। नटों के पूर्वजो के इतिहास को भी चित्रित किया हैं। लोकगीतों का अधिक प्रयोग हुआ हैं इसमें से धानरोपनी के समय, विवाह, लड़ाई के समय गीत गाते नटों को दिखाया हैं। जैसे रुपा और मानिक के विवाह समय लड़कियाँ हाथ में डालकर यह गीत गाती हैं|

गोहुअन (उपन्यास) और आदिवासी स्त्री का विद्रोह

डॉ. इबरार खान
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
मिर्ज़ा ग़ालिब कॉलेज
गया- 823001 (बिहार)
मो. 8712375016
ई-मेल ibkhan88@gmail.com

सारांश

आदिवासियों की ज़मीन पर ठाकुर आर्मड लोग कब्जा किये रहते हैं। जो विवादित ज़मीन है उसे सरकार लेगी और क्षतिपूर्ति देगी। सवाल ये है कि ये विवादित ज़मीन है। सरकार किसे क्षतिपूर्ति देगी? मामलों को रफा दफा करने के लिए सब लोग बैठक करते हैं।

बीज शब्द- आदिवासी, जनजाति, शोषण ।

प्रस्तावना

भारत में स्त्रियों की स्थिति में धीरे-धीरे सुधार हो रहा है। इस हेतु विभिन्न संस्थाओं, व्यक्तियों द्वारा सतत प्रयास जारी है। स्त्रियों के विषय में देखें तो प्रत्येक धर्म व जाति की स्त्री में स्त्रीत्व के नाते समानता तो है परन्तु उनकी सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक हैसियत में अंतर है। यही अंतर हमें सोचने पर विवश करता है कि सभी स्त्रियाँ समान नहीं हैं और उनकी वर्जनाएँ तथा प्रताड़नाएँ भी समान नहीं हैं।

भारत की सामाजिक स्थिति को देखें तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र (दलित) दिखते हैं। यह बँटवारा तो हिन्दू धर्म के अनुसार है। इस्लाम में हालांकि जातिगत व्यवस्था के लिए कोई जगह नहीं है लेकिन मुसलमानों के यहाँ भी जातिभेद नहीं है ये कहना गलत है। आदिवासी समाज की अपनी एक अलग ही दुनिया है। हाँ, ये अवश्य है कि वहाँ भी तथाकथित मुख्यधारा के सामाजिक लोग पहुँचकर आदिवासी स्त्रियों पर अपना अधिकार जमाने, उनका शोषण करने का एक मौका भी नहीं छोड़ते। आदिवासियों की ज़मीन फर्जी काग़ज़ात के जरिये हड़प लेना तो जैसे आम बात रही है।

हमारे सामने एक प्रश्न आता है कि आखिर आदिवासी किसे कहा जाए? आदिवासी के लिए 'वनवासी', 'गिरिजन', 'मुसहर' (कम प्रचलित लेकिन गाँवों में प्रचलित) आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। आदिवासियों के संदर्भ में डॉ. विनायक तुकाराम लिखते हैं- "वर्तमान स्थिति में 'आदिवासी' शब्द का प्रयोग विशिष्ट पर्यावरण में रहने वाले, विशिष्ट भाषा बोलने वाले, विशिष्ट जीवन पद्धति तथा परंपराओं से सजे और सदियों से जंगलों-पहाड़ों में जीवन यापन करते हुए अपने धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को संभालकर रखने वाले मानव-समूह का परिचय करा देने के लिए किया जाता है और बहुत बड़े पैमाने पर उनके सामाजिक दुख तथा नष्ट हुए संसार पर दुख प्रकट किया जाता है।"[1] आदिवासी को भारतीय संविधान के अनुच्छे 342 में अनुसूचित जनजाति के रूप में बताया गया है। हमारे कई तथाकथित विद्वान लोग 'आदिवासी' शब्द का प्रयोग करने से बचते हैं। जबकि 'आदिवासी' शब्द में आदिवासियों की पहचान, उनकी अस्मिता समाहित है। रत्नाकर भेंगरा, सी.आर. बिजोय लिखते हैं- " 'आदिवासी' शब्द आदिवासियों की भावनाओं के अनुरूप है। उन्हें अनुसूचित जनजाति कहने का एक ही अर्थ है- उन्हें समाप्त करना। अभी तक उन्हें गिरिजन, वनवासी, दास, दस्यु तथा जंगली आदि कहा जाता रहा है, जिसकी चर्चा कई विद्वानों ने अपनी पुस्तकों में की है। एम.सी. रॉय ने अपनी पुस्तक में इन्हें इस तरह के अपमानजनक शब्दों का दंश झेलना पड़ा है। जो आज तक जारी है।"[2] सही बात तो यह है कि एक साजिश के तहत लोग उन्हें 'वनवासी' आदि कहते हैं। हमारे विद्वान 'आदिवासी' शब्द का प्रयोग नहीं करेंगे। उसकी जगह तरह-तरह के शब्द ढँढ़कर लाएँगे। सत्य तो यही है कि आदिवासी श्याब्द ही ज्यादा ठीक है। माया बोरसे लिखती हैं- "आदिवासी समाज ऐसा समाज है जिसके नाम में ही उसकी पहचान छिपी हुई है। आदिवासी शब्द के लिए मूल निवासी शब्द का प्रयोग भी किया जाता है। अर्थात् आदिवासी समाज इस भूमि का मूल निवासी है और वही इस भूमि का उत्तराधिकारी भी है।"[3] इन सबके बीच आज उसी आदिवासी को, मूल निवासी को उसके जंगल से दूर होने के लिए विवश किया जा रहा है।

दलितों के संदर्भ में चर्चा करते समय गाँधी जी का जिक्र भी आता है। हमें यह देखकर आश्चर्य होता है कि गाँधी जी स्वयं भी आदिवासियों की स्थिति को लेकर चिंतित थे। उन्होंने 'हरिजन सेवक' में दिनांक 18.01.1942 को लिखा था- " 'आदिवासी' नाम उन लोगों को दिया है, जो कि पहले से ही इस देश में बसे हुए थे। उनकी आर्थिक स्थिति हरिजनों से शायद ही अच्छी होगी। लम्बे अरसे से अपने आपको 'उँचे वर्गों' के नाम से पुकारने वाली हमारी जनता ने उनके प्रति जो बेपरवाही बताई है, उसका परिणाम उन्हें भोगना पड़ा है।"[4] वर्तमान में 'हरिजन' शब्द गैरकानूनी है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि विभिन्न धर्मों के मानने वालों ने आदिवासियों के लिए कुछ काम किये, लेकिन उसमें उनका अपना स्वार्थ भी जुड़ा था। इस संदर्भ में यह बताना आवश्यक है कि ईसाइयों ने आदिवासियों के बीच काफी काम किया। उनकी शिक्षा व उनके स्वास्थ्य पर ध्यान दिया। हाँ, ये अलग बात है कि उनका मूल उद्देश्य आदिवासियों को ईसाई बनाना था।

आदिवासियों की परिस्थति पर रमणिका गुप्ता ने प्रचुर मात्रा में लेखन कार्य किया है। वे लिखती हैं- "आदिवासी खदेड़े जाते रहे, विस्थापित किये जाते रहे और वे यायावरी बंजारों सी जिंदगी जीने के लिए बाध्य किये जाते रहे। इनकी ज़रूरत थी जंगल, जल, ज़मीन और महाजनों सामंतों से मुक्ति। उनके साथ अस्पृश्यता की समस्या उतनी बड़ी नहीं थी, चूँकि वे समाज से ही अलग-थलग रहते थे। उनका स्वाभिमान ही उन्हें आबादी से दूर जंगलों में ले गया था।"[5] वर्तमान में उन्हें इन्हीं लंगलों से दूर किया जा रहा है। आज जबकि हम कोविड-19 से जंग लड़ रहे हैं। डोज (खुराक) पर डोज (खुराक) ले रहे हैं। फर्स्ट डोज, सेकंड डोज और अब बूस्टर डोज। इसके बावजूद मास्क और सैनिटाइजर/साबुन का प्रयोग जारी है।

आदिवासी तथाकथित सभ्य समाज से दूर रहे, लेकिन वर्तमान संदर्भों में उसका उन्हें लाभ मिला। बकौल ककसाड़ पत्रिका के संपादक राजाराम त्रिपाठी- "यह महामारी वन ग्रामों में तथा विशेषकर जनजातीय क्षेत्रों में प्राय: स्वस्थ आदिवासी, वनवासियों का बाल भी बाँका नहीं कर पाई है।"[6] इसमें कोई संदेह नहीं है कि आदिवासी प्राकृतिक सौंदर्य व प्रकृति के करीब रहते हैं। इससे उन्हें स्वच्छ, वायु, पोषण से युक्त खाद्य पदार्थ मिलते हैं जिससे उनके शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बहुत अच्छी होती है। इन सबके बीच हम उन्हें उनके अधिकारों से वंचित नहीं कर सकते और करना भी नहीं चाहिए।

आदिवासी स्त्रियों पर भी विद्वानों/विदूषियों ने लेखनी चलाई है। उन्हीं में एक नाम महाश्वेता देवी का है। इस संदर्भ में रमणिका गुप्ता का नाम भी उल्लेखनीय है। हम यहाँ महाश्वेता देवी द्वारा लिखित उपन्यास 'गोहुअन'पर विचार-विमर्श करेंगे। महाश्वेता देवी के तीन उपन्यास 'दौलति', 'बासमती' और 'गोहुअन' एक पुस्तक के रूप में 'दौलति' नाम से प्रकाशित है। इन तीनों उपन्यासों में आदिवासी में आदिवासी स्त्री केंद्र में है। 'गोहुअन' उपन्यास में आदिवासी स्त्री का नाम 'गोहुअन' सर्प को दृष्टिगत रखते हुए रखा गया है। यह एक विषैला सर्प होता है, जिसका ज़हर बहुत घातक होता है और इसके डसने से मृत्यु तक हो सकती है।

इस उपन्यास में तत्कालीन पलामू बिहार (वर्तमान झारखण्ड) की कथा है। वहाँ के आदिवासी विशाल भूँइया के विषय में यह कहा जाता है कि वह खदान में खुदाई के समय मिट्टी धँसने से मर गया। उसकी पत्नी 'झालो' जिसकी एक बेटी सोना है उसे सोना दासी की माँ कहकर पुकारा जाता है। यह उपन्यास आदिवासियों को बँधुआ मज़दूर बनाकर उनसे काम कराने की भी कथा कहता है। झालो (बाद में गोहुअन) केचकि गाँव की रहने वाली है। ठेकेदार लक्ष्मण सिंह यह जानना चाहता है कि आखिर इस झालो नामक महिला का नाम 'गोहुअन' कैसे पड़ गयी? गाँव में बँधुआ प्रथा के विषय में भी चर्चा होती है कि यह कितनी पुरानी है? कोई कहता ये दास प्रथा भगवान ने ही बनाई है। कोई कहता पलामौ के पहाड़, नदी-नाले और अंगल जितने पुराने हैं। ये बँधुआ दास प्रथा भी उतनी ही पुरानी है। केचकि गाँव में माधो सिंह खरोयार आता। वह बताता ये सारी बातें झूठी हैं। वह बताता है- "पलामो में पहले चेरो जाति का राजा था। उन्होंने कभी किसी को बँधुआ नहीं बनाया।"[7] वह आगे भी बताता है- "भैया! चेरो, खरोयार, कोल, दुसाद, गंजू, घासी, नागेसिया, परहाइया- ऐसी ही तमाम जातियों के लोग थे। ऐसी कई जातियों के लोग यहाँ आबाद थे।"[8] केचकि में राजपूत, ब्राह्मण व आदिवासी लोग रहते थे। मालिक वर्ग राजपूत था। ये राजपूत लोग आपस में भी ज़मीन-जायदाद के लिए लड़ते रहते थे। राजपूतों का अपना वर्चस्व भी था। चाहे राजनीति के बीच चाहे जनता के बीच लेकिन वे जितनी सुविधा की अपेक्षा करते थे उन्हें नहीं मिलती थी। कारण था उनका आपसी विवाद। एक राजपूत एक केस में वकील से बात करते हुए कहता है- "वकील साहब! आप तो कायस्थ हैं, राजपूत की हठ आप समझ नहीं सकते। हम पैदाइशी लड़ाकू हैं। इतिहास गवाह है। पलामौ में भी हम अदालत में लड़ते-भिड़ते हैं, कभी मैदान नहीं छोड़ते। जिस राजपूत के पास जगह-ज़मीन हो पर कोई

मामला-मुकदमा न हो, वह कैसा राजपूत? उसे तो हम कायर कहते हैं।"[9] इस कथन पर न जाने क्यों हँसी आती है। किसी ज़मीन यदि आदिवासियों की ज़मीन कब्जा करके ज़मीन वाले बन बैठे।

लाठा-टोली नामक जगह केचकि के अंतर्गत थी लेकिन काफी दूर थी। जहाँ लाठा-टोली समाप्त होती थी। वहीं से विवादास्पद ज़मीन शुरू होती थी। उस ज़मीन के अंतिम छोर पर विशाल का घर था। वहाँ उसकी पत्नी गोहुअन रहती थी। उसके नाम गोहुअन पड़ने के पीछे एक विशेष घटना है। विवादित ज़मीन का नाप-जोख के सिलसिले में अमीन साहब आए। तम्बू लगाए गए। इसके पहले के अमीन लोग चावल, घी, बकरा तथा बँधुआ परिवारों से औरतें भी लेते थे। इस बार जो अमीन आए वे बहुत ईमानदार थे। इस कैम्प में चपरासी, चैन-मैन, कानूनगो थे। इसके साथ-साथ एक तहसीलदार भी आया था। यह पलामौ का निवासी था। उसे औरतों का चस्का था। बस उसी मैदान में ये लोग शौच के लिए आते थे। तहसीलदार वहीं झाड़ी में छिपा बैठा था। उसने झालो को दबोच लिया। वह चीखने लगी और अंतत: तहसीलदार के हाथ में दाँत काट लिया। बड़ा झमेला हुआ। सरपंच जी बताते हैं कि उस समय मैं सरपंच था। मेरे ऊपर भी दबाव पड़ रहा था। सातवान आदि ने मुझसे कहा- "ऐसे अपराध पर आप भी विचार कीजिए औरतों की इज्जत इसी तरह लूटी जाती रही तब तो दंगा फसाद करके लोग इधर-उधर भाग जाएंगे। गरीबों को तो वकील-अदालत-पुलिस किसी पर विश्वास नहीं। मारपीट कर भाग जाएंगे। और यह भी कितने ताज्जुब की बात है कि हम लोग अछूत हैं, हमारा छुआ पानी तक अछूत है, लेकिन हमारी औरतें अछूत नहीं।"[10] तहसीलदार को अमीन बाबू ने डाँट-फटकार कर वापस भेज दिया। कैम्प उठा लिया गया। अमीन साहब ने झालो के सिर पर हाथ रखकर कहा- "ये मक्कार तुम्हारी इज्जत लूटने आये थे। तुमने तो गोहुअन की तरह सिसकार कर उसे डस ही लिया।"[11] इसी से झालो का नाम गोहुअन पड़ गया।

गोहुअन तक-वितर्क भी करती थी। विशाल ने कुछ पैसा लिया था। उसी के आधार पर गोहुअन से सरपंच जी बेकार कराना चाहते थे लेकिन उसी आदिवासी स्त्री ने ऐसा फटकारा कि सरपंच जी देवता बन गये। गोहुअन ने कहा- "जिसने रुपया लिया है, उसी को बेगार खटना पड़ेगा। मैंने अँगूठा नहीं लगाया, रुपये नहीं ली, मैं क्यों बेगारी करूँ?"[12] इधर गोहुन का पति खुदाई के दौरान मिट्टी दबने से मर जाता है ऐसा लोग समझते हैं। वहाँ पैसे कम मिलते हैं सो रुपये फिर दो सौ रुपये की नोट के लालच में मजदूर खुदाई करते हैं और मिट्टी धँसने से मर जाते हैं। विशाल किसी तरह बच जाता है। जहाँ तक विज्ञापनों का सवाल है तो वे केवल दिखाने के लिए होते हैं। उससे गरीबों को कोई खास लाभ नहीं मिलता।

इस उपन्यास से यह भी बात ज़ाहिर होती है कि आदिवासियों की ज़मीन पर ठाकुर आर्मड लोग कब्जा किये रहते हैं। जो विवादित ज़मीन है उसे सरकार लेगी और क्षतिपूर्ति देगी। सवाल ये है कि ये विवादित ज़मीन है। सरकार किसे क्षतिपूर्ति देगी? मामलों को रफा दफा करने के लिए सब लोग बैठक करते हैं। उस बातचीत के अंश देखने पर हमारे होश उड़ जाते हैं। पूरी साजिश का पर्दाफाश हो जाता है। "पुराने काग़ज़ात देखे जाएँ तो यह बात सामने आयेगी कि वह ज़मीन आदिवासियों की हैं। वह भी किन आदिवासियों की? .... परहाइया और नागे सियाओं की। केचकि खण्ड उन्हीं का था। हम तो अब भी कुछ ज़मीन का लगान मोरी के बाप के नाम से भरते हैं और जो नागेसिया लोग पहाड़ के ढाल पर चूहों की तरह रह रहे हैं, वे ही उस ज़मीन के असली मालिक हैं।"[13] एक दिन रात में विशाल आता है। वह सारी बातें बताता है। हँसी-खुशी का माहौल है। उसने समुन्दर (सरपंच) से कहा- "हाँ, मालिक! उस सौ रुपये का कोई हिसाब नहीं दूँगा मैं। मेरी ...कामियौती .... खत्म। ....आइए, आइए, बाबू लक्ष्मण सिंह ठेकेदार! थोड़ा हिसाब तुम्हारा भी बाकी है। सत्रह जानें गयी थीं, लक्ष्मण बाबू? ...लाठा टोली के लोग मालिकों को और लक्ष्मण के घेरकर नज़दीक आते जा रहे थे। हर व्यक्ति गोहुअन लग रहा था। जिसकी फुफ्कार में निश्चित मौत थी।"[14] आपसी एकता और समझदारी से आदिवासी किस तरह अपने मालिक का काल बन सकता है, यह इस उपन्यास में साफ तौर पर दिखता है।

इस उपन्यास में आदिवासी स्त्री की चेतना, उसका विद्रोह दिखने के साथ-साथ हमें आदिवासी समाज के कष्ट उनकी जिंदगी, बँधुआ दास प्रथा, शोषण चक्र आदि दिखते हैं। आज की युवा पीढ़ी बिजली की माँग करती है। ट्यूबवेल लगाने, उन्नत खेती करने की बात करती है। इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि उपन्यास में दिखने वाली युवा पीढ़ी अपनी चेतना से अपने अधिकारों के प्रति सजग है। यहाँ गोहुअन एक प्रतीक है। जिसका महाश्वेता जी ने सफल प्रयोग किया है। गोहुअन (झालो) आदिवासी स्त्री की अस्मिता के लिए लड़ती है। उसे आज का हमारी तथाकथित सभ्य समाज 'तेज़ औरत है', 'ज़बानदराजी करती है' भले ही कहे लेकिन ये उस आदिवासी स्त्री का विद्रोहात्मक स्वर है। इसे विद्रोहात्मक स्वर को अवश्य ही सुना जाना चाहिए। उस पर तवज्जो दी जानी चाहिए।

संदर्भ-सूची

1. आदिवासी कौन, रमणिका गुप्ता, सं. 2016, पृ. 26-27, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. वही, पृ. 36
3. वही, पृ. 86
4. मेरे सपनों का भारत, मोहनदास करमचंद गाँधी, संग्रहकर्ता- आर.के. प्रभु, सं. दूसरा मई, 2018, पृ. 274, सर्वसेवा संघ प्रकाशन राजघाट, वाराणसी।
5. आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, सं. रमणिका गुप्ता, सं. 2008, पृ. 7
6. ककसाड़, संपादक - राजाराम त्रिपाठी, वर्ष 6, अंक 66, जुलाई-अगस्त, 2021 संयुक्त अंक, पृ. संपादकीय (4), मुख्य कार्यालय - सी-54 रिट्रीट अपार्टमेंट, पटपड़गंज, दिल्ली
7. दौलति, महाश्वेता देवी, अनुवाद - दिलीप कुमार बनर्जी, सं. 2013, पृ. 161, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. वही, पृ. 161
9. वही, पृ. 169
10. वही, पृ. 185
11. वही, पृ. 185
12. वही, पृ. 183
13. वही, पृ. 195
14. वही, पृ. 202

"घुमंतू जनजाति का दहकता दस्तावेज : पराया"

डॉ. गायकवाड शितल माधवराव
हिंदी विभाग (सहाय्यक प्राध्यापक)
शिक्षणमहर्षी बापूजी साळुंखे महाविद्यालय, कराड
चलभाष 9921280932

सारांश

महाराष्ट्र में इस जनजाति के अंतर्गत नौ उपजातियां पायी जाती हैं । जिसमें बोरीवाले, धुताले, कामठी, कैजी, लमाण, माकडवाले, उर कैकाडी, भामटा तथा कुंचेकरी आदि । इसमें भारतीय समाजव्यवस्था की उपेक्षित घुमंतू 'कैकाडी' जनजाति का जनजीवन एवं संस्कृति का विवेचन एवं अपने जीवन संघर्ष को लक्ष्मण माने ने प्रस्तुत किया हैं । इस जनजाति की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक आदि समस्याओं को उजागर किया हैं । भूख के कारण इनकी हुई दुरावस्था दरिद्रता एवं दुःख दर्द का मार्मिक चित्रण इसमें हुआ हैं ।

बीज शब्द – जनजाति, भटका, घुमंतू ।

प्रस्तावना

भारत देश में घुमंतू जनजातियां हर क्षेत्र में हैं । प्राचीन काल से यह अस्थिर एवं असुरक्षित हैं । परंपरागत समाज व्यवस्था एवं गाँव में इन्हे कहीं भी स्थान नहीं मिल पाया । कहीं शारीरिक कला कौशल दिखाकर, वन औषधियाँ बेचकर छोटे-छोटे कामकाज कर, भीख मांगकर यह जनजाति अपना उदरनिर्वाह चलाती है । इनमें से कुछ जनजाति भूख से बेहाल होकर पेट के भूख की आग शांत करने के लिए मजबूरन चोरी कर अपना पेट भरती हैं । लेकिन स्थिर समाज के लोगों ने उसे गुनहगार साबित किया है । इसलिए हमेशा हीन-दीन, तुच्छता की दृष्टि से इनकी ओर देखा जाता हैं । गाँव के बाहर अज्ञान, रुढी-परंपरा के कारण दैववाद एवं अंधश्रद्धा की शिकार यह जनजाति बन चुकी हैं । स्थिर समाज से मिली अवहेलना, अन्याय, अत्याचार, बलात्कार, छुआछूत आदि को झेलकर अपने बच्चों तथा गधे-घोडों, कुत्ते, भैंस, उंट, भेड-बकरियाँ आदि के साथ गृहस्थी पीठ पर लादकर झुंड के झुंड दिशाहीन भटकती हैं ।

घुमंतू को मराठी में 'भटका'या 'भटके' यह शब्द प्रचलित हैं । जिसका अर्थ हैं -'जो हमेशा भटकता है या घुमंतू जीवन यापन करता है ।' घुमंतू जनजाति के लिए अंग्रेजी में, 'नोमॅडिक ट्राइब' शब्द प्रचलित हैं । बृहत अंग्रेजी-हिंदी कोश में नोमॅड या नोमाड का अर्थ दिया है - " अस्थिरवासी, यायावरीय, चलवासी, पर्यटनशील, विचरणशील, भ्रमणप्रिय, घुमन्ता, घुमक्कड, खानाबदोश ।"1 इसी कोश में ट्राइब का अर्थ है वन्यजाति, गणजाति, जनजाति, जत्था, टोली, कबीला, आश्रय, गोत्र, गण, वर्ग, वंश, कुल, कुटूंब, जाति, कौम, नसल, प्रकार, भाँति, श्रेणि, किस्म, राजनीतिक विभाग, उपवंश, उपकुल, अनुवंश, अनुकूल और 'ट्राईबमॅन' का अर्थ है "वनजातियक, जनजातियक, जनजातिय, आदिवासी, कबायली, आदमी ।"2 हिंदी विश्वकोश में 'घुमक्कड', भटकना, आदि शब्द मिलते हैं । यहां भटकना का अर्थ तीन प्रकार से दिया गया हैं, "एक व्यर्थ इधर-उधर घुमना फिरना । दो रास्ता भूल जाने के कारण इधर-उधर घुमना और तीन भ्रम में पड़ना । भटकाना का अर्थ हैं गलत रास्ता बताना, ऐसा रास्ता बताना जिसमें आदमी भटके । धोखा देना, भ्रम में डालना ।"3 इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि, जिसे धोखा देकर, भ्रम में डालकर, गलत रास्ता बताकर भटकाया गया और भ्रम में पडकर सही जीवनयापन का रास्ता भूल जाने के कारण जो लोग जीवनयापन के लिए इधर-उधर दिशाहीन घुमते या भटकते रहते है वहीं घुमंतू जनजातिया हैं ।

घुमंतू जनजातियों के अध्ययनकर्ता रामनाथ चव्हाण घुमंतू जनजाति की परिभाषा में कहते है कि, "उपजीविका के लिए पीढी- दर-पीढी घुमंतू जीवन होने के कारण स्थिर समाज के लोगों से यह समाज अनेक सालो से वंचित रहा हैं । कहने के लिए अपना गाँव नहीं, खेती करने के लिए अपनी स्थिर जगह नहीं ऐसी उनकी अवस्था हैं ।"4

पहले इन जनजातियों को गुनहगार घोषित किया जाता था, लेकिन 1952 में यह गुनहगार कानून रद्द किया गया और 11 एप्रिल 1960 में भारत के प्रधानमंत्री पं.जवाहरलाल नेहरू ने महाराष्ट्र के सोलापूर में सेटलमेंट कॉलनी के लोगों को 'विमुक्त' अर्थात 'विशेष रुप से मुक्त' कहकर संबोधित किया । तब से इन गुनहगार जनजातियों को विमुक्त जनजाति कहा जाने लगा । लेकिन भारत स्वतंत्रता के 75 वर्ष बाद भी आज इन घुमंतू जनजातियाँ की स्थिति बहुत कुछ मात्रा में जैसी की वैसी ही दिखाई देती है, आज भी वह गाँव -गाँव भटकते फिरते नजर आते हैं इनके पास ना ही कोई रोजगार के साधन हैं या ना ही कोई

अपनी जमीन। स्थिर समाज व्यवस्था और पुलिस आज भी इनकी ओर गुनहगार दृष्टि से ही देखती हैं। साहित्य की कुछ रचनाओं के माध्यम से जिस प्रकार सर्व प्रथम दलितों ने फुले, शाहू, आंबेडकर जैसे महामानवों की प्रेरणा से अपनी व्यथा-कथा को वाणी देने का प्रयास किया तो धीरे-धीरे उनकी स्थिति में कुछ परिवर्तन आया। बिलकुल उसी प्रकार आज के समय में कुछ घुमंतू जनजातियों के रचनाकार अपने भोगे हुए यथार्थ को समाज के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहे है और मानव के अधिकार की पहचान अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहे हैं।

घुमंतू जनजातियों की विभिन्न दशाओं का चित्रण भारतीय साहित्य की विविध विधाओं कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा आदि विभिन्न प्रकारों में मिलता हैं। महाराष्ट्र में आज मराठी साहित्य में घुमंतू जनजाति के स्वकथनों की संख्या लगभग तीस के आसपास मिलती है। उसमें से सात स्वकथनों का हिंदी में अनुवाद हुआ हैं। इसमें लक्ष्मण गायकवाड का 'उचक्का', लक्ष्मण माने का 'पराया', किशोर शांताबाई काले का 'छोरा कोल्हाटी का', दादासाहब मोरे का 'डेराडंगर', भीमराव गस्ती का 'बेरड', मच्छिंद्र भोसले का 'जीवन सरिता बह रही है', पार्थ पोलके का 'पोतराज' आदि स्वकथनो के माध्यम से इन रचनाकारो ने दलित चेतना के प्रभाव से कुछ शिक्षित युवक अपने एवं अपने समाज के जीवन की संघर्ष गाथा अभिव्यक्त करने लगे हैं। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, शैक्षिक आदि स्तरों पर किस प्रकार इस जनजाति को उपेक्षित स्थान समाज में मिलता हैं उसको अपने स्वकथनों के माध्यम से इन्होंने चित्रित किया हैं। प्रस्तुत आलेख में घुमंतू जनजाति का प्रसिद्ध स्वकथन लक्ष्मण माने लिखित 'पराया' का संदर्भ लेकर इस जनजाति की दयनीय अवस्था को प्रस्तुत कर एक मनूष्य ने दूसरे मनूष्य की संवदेना की पहचान कराने का प्रयास किया गया हैं।

'पराया' यह स्वकथन मराठी साहित्य के प्रसिद्ध रचनाकार लक्ष्मण माने का हैं। इसको मराठी में 'उपरा' नाम से ग्रंथाली प्रकाशन, मुंबई से 25 दिसंबर 1960 में प्रकाशित किया गया हैं। इसका हिंदी अनुवाद दामोदर खडसे ने 'पराया' नाम से सन 1993 में साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली से प्रकाशित किया हैं। महाराष्ट्र में इस जनजाति के अंतर्गत नौ उपजातियां पायी जाती हैं। जिसमें बोरीवाले, धुताले, कामठी, कैजी, लमाण, माकडवाले, उर कैकाडी, भामटा तथा कुंचेकरी आदि। इसमें भारतीय समाजव्यवस्था की उपेक्षित घुमंतू 'कैकाडी' जनजाति का जनजीवन एवं संस्कृति का विवेचन एवं अपने जीवन संघर्ष को लक्ष्मण माने ने प्रस्तुत किया हैं। इस जनजाति की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक आदि समस्याओं को उजागर किया हैं। भूख के कारण इनकी हुई दुरावस्था दरिद्रता एवं दुःख दर्द का मार्मिक चित्रण इसमें हुआ हैं। लेखक अपने मंतव्य में लिखते है कि, "जो जिया, जो भोगा, अनुभव किया, देखा,वही सब लिखता गया। वही जीवन बार-बार जीता गया।" 5 अर्थात् मानेजीने अपने इस स्वकथन में भोगे हुए यथार्थ को प्रस्तुत किया हैं।

लक्ष्मण माने ने इसमें 'कैकाडी' जनजाति के समाज जीवन के विविध पहलुओ को प्रस्तुत किया हैं। इसमें घुमंतू की समाजव्यवस्था, भटकन की विवशता, पीडित स्त्री-जीवन, बच्चों एवं वृद्धों का दयनीय जीवन, जातपंचायत, घुमंतू का परिवार उसकी वेशभूषा, वैवाहिक संस्कार, रीतिरिवाज, रुढी-परंपरा, अंधश्रद्धा, त्यौहार, जातिभेद एवं छुआछूत आदि का वास्तविक चित्रण हुआ हैं।

'कैकाडी' जनजाति के लोग अपने उदरनिर्वाह हेतु हमेशा गाँव-गाँव भटकते रहते हैं। यह लोग बेत या बाँस आदि के वृक्षों की पतली टहनियों से डालियाँ, टोकरियाँ, सूप आदि बूनकर गाँववालों को बेचते हैं और अपना उदरनिर्वाह करते हैं। एक गाँव में तीन-चार दिन ही जहां बेत और बाँस मिलते हैं वहीं पर ये अपना डेरा लगाते हैं। गृहस्थी की चीजें और बच्चों को गधे पर लादकर गाँव-गाँव भटकते हैं। बापू कैकाडी और जयसिंह की गृहस्थी इसप्रकार भटकती देख लेखक कहते है, " मुझे राधी (गधी का नाम) पर बिठाया। समी भागी (गधी का नाम) पर बैठी... किसन्या को बाप ने कंधे पर उठा लिया। पुष्पी को मेरे सामने राधी पर बिठाया। लाली को माँ ने गोद में ले लिया और गधे चल पडे...। इस तरह हमारी सवारी सारी गृहस्थी के साथ निकल पडी।"6 जिस गाँव में यह जनजाति आसरा देखकर अपनी गृहस्थी बिठाती वह जगह अक्सर गाँव के लोगों की शौच की जगह रहती है, वहाँ पर या शमशान की जगह पर साफ-सफाई कर तीन पत्थरों का चूल्हा बनाकर खाना बनाते हैं। दिनभर माँ डालियाँ, टोकरी बेचने के लिए आसपास के गाँव दूर-दूर तक पैदल चली जाती। जब तक घर पर माँ नही आती तब तक बच्चे भूखे-प्यासे या कहीं कुछ माँगकर "देरी माई, बचा-खूचा, दे दो चाची।"7 कहकर लोगों के सामने हाथ जोडकर भीख माँगकर अपनी भूख मिटाते हैं। धूप के दिनों मे भूख से बेहाल बच्चों का विदारक चित्रण 'पराया' में स्वयं लेखक कहते हैं "मैंने बासी रोटी इमली के पानी में भिगों रखी थी।

पेट में आग धधक रही थी। आँखों से आँसूओं की धारा बह निकली थी। घर में कुछ भी नहीं था।"8 इस प्रकार भूख के कारण हुई ऐसी विदारक स्थिति से स्वयं लेखक और उनकी जनजाति से गुजरना पडता था।

इस जनजाति का अस्थिर जीवन होने की वजह से इनमें स्कूली शिक्षा नसीब में नहीं होती। लक्ष्मण माने जैसा एखाद बच्चा स्कूल में जाने की कोशिश करता है लेकिन स्थिर समाज के लोगों द्वारा दुर्व्यवहार का सामना उनको करना पडता हैं। मास्टरजी उसका स्कूल में दाखिला तक करते नहीं है और उनके पिताजी से कहते है कि, "अरे भिखारियों के लिए भी कहीं स्कूल होती हैं? अरे उनके पढने के बाद टोकरियाँ कौन तैयार करेगा ? यह सब नहीं चलेगा। बडे आये पढने वाले।"9 इस प्रकार की बात सुनकर लेखक के पिताजी और उनके आँखों मे ंपानी आ जाता हैं। उनको शिक्षा के बारे में प्रोत्साहित नही बल्कि उससे दूर किया जाता हैं। लेकिन फिर भी लेखक शिक्षा प्राप्त कर ही लेते है। बाल्यावस्था से ही वह मजदूरी भी करते है। बैंड बजाना, लकडियां काटना, उसे बेचना, बच्चों को संभालना, अखबार और पाव बटर बेचना आदि काम वह करते थे।

वेशभूषा में फटे - मैले कपडे ही इनके नसीब में होते हैं।ऐसी स्थिति में गाँव के बदमाश गुंडों की नजर उनकी स्त्रियों पर पडती हैं। और उनको बलात्कार जैसी समस्या का सामना भी करना पडता हैं। इसलिए वह स्त्रियां आठ-आठ दिन नहाती नहीं थी, अपने बाल संवारती नहीं थी। और अपना चेहरा आईने में देखती नही थी। लेकिन फिर भी कभी-कभी इनपर अतिप्रसंग हो ही जाता था। लेखक की पारु मामी जरा सुंदर है औंर वह थोडी साफ-सूथरी रहती हैं उसे गहरी नींद में सोई देखकर उसका मुँह बांधकर चार गुंडे उसे उठाकर ले जाकर बलात्कार करते है तब पारुमामी दर्द से बेहाल होकर कहती हैं - " बहुत जुल्म हो गया रे बाबा। अब क्या करूँ ? कहकर रोने लगती हैं... बहुत वेदना सही... दरिंदो ने नहीं छोडा, शरीर का चिथडा कर दिया।"10 इस अत्याचार के बाद उसका पति उसे छोड देता है और वह पागल होकर मर जाती हैं। इस स्वकथन में इस जनजाति के स्त्री की पीडा को भी प्रस्तुत किया गया हैं।

उच्च जाति के लोग घुमंतू जनजाति के साथ किस प्रकार जातिभेद करते हैं इसको भी यहां दिखाया गया हैं। सवर्णो की शादी में भोजन के लिए सवर्णों के साथ निम्न जाति के लोग बिठाए नही जाते थे। 'पराया' का लेखक जब अपने मित्र के साथ सवर्णों की शादी में जाते है, सब के साथ वह भी भोजन के लिए बैठते है तब उसे भरी पंगत से उठाया जाता हैं। उच्च जात का लडका लेखक का कान पकडकर भरी पंगत से उसे उठातें हुए कहता हैं, "तेरी माँ की....कुछ पता भी है या नही ? चलो यहाँ से।"11 इस प्रकार 'कैकाडी' जनजाति का लडका उच्चजाति की वर्ग में पंगत में बैठने से उनको अपमानित किया जाता है तब लेखक के पिताजी भी उसे डरा धमकाकर अपनी औकात में रहने के लिए कहते हैं।

स्कूल के अंतिम दिनों में लेखक सभी लडकों के साथ सवर्ण लडकी के बाजू में खडे रहकर फोटो निकालता हैं तो लडकी के पिता लेखक के पिताजी को मार देते हैं। एक मनुष्य होकर दुसरे मनुष्य के साथ छुआछूत जैसा व्यवहार उनके साथ किया जाता हैं। इतना ही नहीं निम्नजाति के होने के कारण लेखक को 'सातारा' में कमरा किराये पर नहीं मिलता। शशि नाम के लडकी के साथ वह अंतर्जातिय विवाह करते है, अपनी आर्थिक समस्या दूर करने के लिए जब समाज कल्याण विभाग में अर्ज करते हैं तो उन्हें नकारा जाता हैं। अकेला अस्पृश्य होगा तो मदत मिलेगी ऐसा कहा जाता हैं तब अपनी व्याकुलता व्यक्त करते हुए वह कहते हैं "महार को कम से कम महारियत होती है। गाँव से कुछ न कुछ मिलता रहता हैं। सिर पर जैसी भी हो एक छत होती हैं.....। निरंतर भटकते रहनेवाला, दिसा मैदान के आदमी को अस्पृश्य नही मानते। फिर क्या कहते हैं? पेट के लिए पावों में घिर्री बांधनेवाला आपका कौन?"12 इस प्रकार जातिभेद जैसी प्रमुख समस्या भी इसमें उजागर हुई हैं।

इस जनजाति में देवी-देवता की आराधना के समय तथा कभी कडी मेहनत मजदूरी के कारण व्यसनाधीनता भी पायी जाती हैं। देवता के प्रसाद के रुप में दारु ग्रहण की जाती हैं। छोटों से लेकर वृद्धों तक सभी यह प्रसाद ग्रहण करते हुए स्वयं लेखक कहते है- "खग्या, इंद्या, म्हाद्या, मैं, माँ, पारी किसी को भी प्रसाद नहीं छोडना था। नारियल का टूकडा और घुंट-घुंट दारु सबने लेनी थी। ना नहीं करना होता इसलिए सबको दी"13 जातपंचायत जब बैठती है तब पंच लोग झगडे-तंटों का निर्णय करके न्यायदान करते हैं तब भी वह शराब आदि का सेवन करते है और गरिब और स्त्रियों का शोषण पंच लोग करते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि, लक्ष्मण मानेजी ने 'पराया' के माध्यम से 'कैकाडी' इस घुमंतू जनजाति के जीवन की कथा एवं व्यथा को स्पष्ट किया गया है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, शैक्षिक क्षेत्र में उनको स्थिर समाजव्यवस्था से उपेक्षाभरी दृष्टि से देखा जाता हैं। जातिभेद, जातपंचायत द्वारा उनका शोषण, स्त्रियों की दयनीय स्थिति, भूख से बेहाल, पीडित इस जनजाति का दुःख-दर्द अपने स्वअनुभव के माध्यम से लेखक ने समाज के सामने लाने का प्रयास किया

हैं। जरुरत है आज ऐसी जनजातियों को अपने हक और अधिकारों की पहचान दिलाने की। क्योंकि वह भी एक मनुष्य हैं तो समाज में उच-निचता की दरी को दूर कर एक मानवतावादी दृष्टि निर्माण कर हर एक मनूष्य की संवेदनशीलता को जागृह करने में निश्चय ही इस रचना ने सफलता हासिल की है ऐसा कहा जा सकता हैं।

संदर्भ सूची

1) डॉ.हरदेव बाहरी -बृहत अंग्रेजी हिंदी कोश भाग-1, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, सं.1969, पृ. 1219
2) वहीं, पृ.2001
3) वसु नगेंद्रनाथ -(सं) हिंदी विश्वकोश, भाग 7, पृ.22
4) चव्हाण रामनाथ-जाति आणि जमाती, मेहता पब्लिशिंग हाऊस, पुणे, तृ.सं.2000, पृ.43
5) लक्ष्मण माने -पराया, अनुवाद दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, सं.1993,पृ. इस पडाव से
6) वहीं पृ. इस पडाव से
7) लक्ष्मण माने -पराया, पृ.13
8) लक्ष्मण माने -पराया, अनुवाद दामोदर खडसे, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, सं.1993 पृ. इस पडाव से
9) वहीं, पृ.इस पडाव से
10) वही, पृ.42,
11) वहीं, पृ.56
12) लक्ष्मण माने -पराया, पृ.111
13) लक्ष्मण माने-पराया, अनुवाद दामोदर खडसे साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, सं.1993, पृ.इस पडाव से

विमुक्त घुमंतू समुदाय का जीवन दर्शन

डॉ विश्वनाथ किशन भालेराव
हिंदी विभाग प्रमुख एवं शोध निर्देशक
शिवाजी महाविद्यालय, उदगीर
जिला - लातूर महाराष्ट्र
dr.bvishawanath@gmail.com
9922176988

सारांश

भारतीय समाज वर्ण व्यवस्था पर आधारित होने से बहुत ही पेचीदा लगता है। वर्ण व्यवस्था को समझना बहुत ही कठिन कार्य है। मनुष्य को मनुष्य के रूप में समानताओं में जीने का अधिकार नहीं है। जाति व्यवस्था की जड़े सांस्कृतिक मानवीय मूल्यों को तहस-नहस कर देती है। एक जाति और दूसरी जाति एक दूसरे के उच्च नीचता का भेदभाव करती है। वर्ण व्यवस्था ने कठोरता से इसका पालन किया है। इसलिए एक वर्ण दूसरे वर्ण के बीच सहजता से जी नहीं सकता। वे आपस में हजारों परंपराएं लेकर जी रहे हैं। वे आपस में रोटी बेटी व्यवहार ने कर सकते। चौथे वर्ण की व्यवस्था बहुत ही दयनीय थी। गांव के बाहर के अस्पृश्य लोगों को वर्ण व्यवस्था में जानवर से भी अधिक गई गुजरी जिंदगी जीने पड़ता था। वर्ण व्यवस्था में यह बड़ी विचित्र पद्धति थी। मानव मानव में भेद करने वाले षड्यंत्रकारी दीवारें इसने खड़ी कर दी थी।

बीज शब्द- विमुक्त, घुमंतू, आदिवासी, जनजाति।

प्रस्तावना

भारतीय समाज सांस्कृतिक दृष्टि से महान रहा है। प्राचीन समय से वसुधैव कुटुंबकम को हमारा राष्ट्र अत्याधिक महत्व देता रहा है। इस कारण देश में महान और महानतम जीवन मूल्य , सामाजिकता , धर्म और धार्मिकता के कठोर नियम नहीं के बराबर थे। हमारे देश में उत्तरोत्तर कालखंड में वर्ण व्यवस्था निर्माण होती गई है। देश में अनेक धर्म और हजारों जातियां बन गई है। बहुधार्मिक, बहुभाषिक और बहूजातीय समाज में मौजूद मनुष्य जीवन विभिन्न क्षेत्रों में बंट गया था। हमारा देश वसुधैव कुटुंबकम की पाखंडी प्रवृत्ति को दिखावे के लिए महत्व देता है क्या ऐसा प्रतीत होता है। सच में कुटुंब को महत्व देने के बजाय जाति धर्म संप्रदाय आदि में हमारा समाज विभाजित हो चुका है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में जब हम या आप सोचते हैं तो हमें लगेगा जो प्राचीन कालीन सभ्यता और संस्कृति जो महान था। आज के संदर्भ में वह बहुत ही भयानक और विकृत प्रवृत्ति में तब्दील हो गया है। मनुष्यत्व को नकारने वाला लगता है। क्योंकि अनेक समस्या हमारे मानवीय जीवन को जाति , उपजातियों में विभाजित धर्म पर आधारित है। सदियां बीत गई है विकास के नाम पर उपेक्षित जीवन जीने को मजबूर है। विमुक्त घुमंतू आदिवासी जनजातियों को भारतीय समाजिक परिदृश्य में जब हम देखते हैं तो यह जनजातियां भूखे बेबस लाचार नंगे घुमक्कड़ बने हुए यायावरी करते हुए दिखाई देते है। न इन्हें घर है न कोई रहने का ठिकाना, न गांव में जगह है नहीं शिक्षा का द्वार खुला है, न पहचान पत्र है न राशन कार्ड,न वोट का अधिकार है न मानव होने का सम्मान , यह सभी जनजातियां भारतीय परिप्रेक्ष्य में उपेक्षित , वंचित, अपराधिक जीवन जीने को मजबूर है। ऐसे समुदायों का जीवन दर्शन आज के आजादी के अमृत महोत्सव में हमें सोचने के लिए विवश कर देता है। हमारी और हमारे समाज की मानसिकता उनके प्रति आज भी बदली नहीं है। क्योंकि ब्रिटिशओं ने उन्हें अपराधी की मोहर उनके समुदायों के माथे पर लगा दी गई थी। सरकारी अधिकारियों की मानसिकता में भी आज यह रची और बसी हुई है। इन जनजातिय समुदायों को संदेह की नजरों से देखा जाता है। इनके ऊपर घुमंतू जाति का होने के कारण जानबूझकर जेलों में बंद

किया जाता है। आज महाराष्ट्र में अनेक जनजातियां जैसे पारधी उन्हें अपराधी की दृष्टि से देखा जाता है। यह हमारे देश के लिए शर्मनाक बात है। मनुष्य होने के बावजूद जानवर बनने को विवश हो जाते है।

भारतीय समाज वर्ण व्यवस्था पर आधारित होने से बहुत ही पेचीदा लगता है। वर्ण व्यवस्था को समझना बहुत ही कठिन कार्य है। मनुष्य को मनुष्य के रूप में समानताओं में जीने का अधिकार नहीं है। जाति व्यवस्था की जड़े सांस्कृतिक मानवीय मूल्यों को तहस-नहस कर देती है। एक जाति और दूसरी जाति एक दूसरे के उच्च नीचता का भेदभाव करती है। वर्ण व्यवस्था ने कठोरता से इसका पालन किया है। इसलिए एक वर्ण दूसरे वर्ण के बीच सहजता से जी नहीं सकता। वे आपस में हजारों परंपराएं लेकर जी रहे हैं। वे आपस में रोटी बेटी व्यवहार ने कर सकते। चौथे वर्ण की व्यवस्था बहुत ही दयनीय थी। गांव के बाहर के अस्पृश्य लोगों को वर्ण व्यवस्था में जानवर से भी अधिक गई गुजरी जिंदगी जीने पड़ता था। वर्ण व्यवस्था में यह बड़ी विचित्र पद्धति थी। मानव मानव में भेद करने वाले षड्यंत्रकारी दीवारें इसने खड़ी कर दी थी। गांव में जाति ही मनुष्य की पहचान थी। जाति के आधार पर मनुष्य को मूल्य प्राप्त होता था। ग्राम व्यवस्था से जुड़ी हुई अनेक जातियां 12 बलुतेदार जातियों की श्रेणी में आती है और 18 आलुतेदार जातियां भी ग्राम व्यवस्था का हिस्सा थी। गांव में हर जाति का अपना अलग अस्तित्व था। हर जाति का अपना व्यवसाय था। वह पीढ़ी दर पीढ़ी पर वही एक व्यवसाय करते रहते थे। जाति आधारित व्यवसाय के कारण उस जाति के व्यक्ति को उसी प्रकार का महत्व प्राप्त होता था। हर जाति गांव में अपने व्यवसाय से पहचानी जाती थी। जैसे चमार दर्जी माली सोनार महार मांग आदि विभिन्न जातियां वर्ण व्यवस्था से प्रताड़ित जीवन जीने को विवश थी। इनके अलावा अलग-अलग जातियां आलुतेदार की श्रेणी में आती है। इन समुदायों के अलावा भी गांव से कोसों दूर बाड़ी बस्ती तांडे और जंगलों में जीने वाली विमुक्त घुमंतू जनजातियों का एक अलग प्रकार की दुनिया है। वे घुमंतू समुदाय विवश होकर स्वाधीनता के बाद भी संघर्ष कर रहा है। उनकी अपनी संस्कृति है । अपनी भाषा है और अपना दर्द है। यह भारत के मूलनिवासी है। जिनका व्यवसाय जल जमीन जंगल और यायावरी से जुड़ा रहा। यह जातियां हमारी देश की पहचान थी। लेकिन जैसे-जैसे समय बदला वैसे वैसे उन जातियों के प्रति एक अलग व्यवस्था तैयार होने लगी। विमुक्त घुमंतू जनजाति हजारों वर्षों से जीवन जीने की लालसा से घुमंतू जीवन जी रही है। विमुक्त घुमंतू जनजातियों में अनेक उपजातियां हैं। उन्हें गांव की संस्कृति से कोसों दूर रखा है। उनकी जिजीविषा गांव से जुड़ने की है। उनका दर्द हमारे शरीर पर रोंगटे खड़े कर देता है। संवेदना को बयां कर देता है। वह वैविध्य का चित्रण उनकी कथाओं और कहानियां में पढ़ने और सुनने को मिल सकता है। हमें लगेगा कि उनकी जिंदगी एक जगह पर टीकी नहीं है। बार-बार घुमंतू जीवन जीने की जिजीविषा से वह बेचैन है। वर्ण व्यवस्था पर आधारित सामाजिक संरचना जैसे जातियां उपजातियां किसी न किसी तरह गांव में रहती है। गांव का मुखिया उन जातियों पर अपना अधिकार जताता है। उनका शोषण करता है। वैसे इन विमुक्त जनजातियों को गांव में बसने के लिए जगह नहीं मिल पाती। आज भी जंगलों में जीवन जीने के कटिबद्ध है। पीढ़ी दर पीढ़ी घुमंतू जनजातियों को पैदाइशी परिवार का भरण पोषण करने के लिए यायावरी को ही महत्व देते हैं। हर घुमंतू जनजातियों की अपनी अपनी परंपराएं रीति रिवाज व्यवसाय बोली भाषाएं कलाएं हैं। उनका अपना लोकजीवन है। एक समुदाय की बस्ती के आचार विचार ,खान पान, वेशभूषा , परंपराएं, रीतिरीवाज, बोली भाषाएं दूसरे बस्ती से मेल नहीं खाते। हर विमुक्त घुमंतू जनजाति एक दूसरे से भिन्न है। एक का दूसरे से किसी भी प्रकार का मेल नहीं होता। जाति व्यवस्था की कटघरे को यह भी घुमंतु समुदाय तोड़ नहीं पाया है। क्योंकि वर्ण व्यवस्था धर्म व्यवस्था जाति व्यवस्था के कटघरे में यह भी बंदिश्त है। शिक्षा का अभाव जाति प्रथा के प्रभाव से धर्म की अज्ञानतावश वे मानसिक गुलाम बन चुके हैं। इनमें भी स्पृश्य अस्पृश्य जैसी छुआछूत जाति एवं उप जातियों में निर्माण हुई है। गांव की व्यवस्था से इनका सीधा संबंध नहीं आया। लेकिन कुछ कारणों से या व्यवसाय के कारण इनका अन्य समुदायों से कुछ पलों के लिए संपर्क हुआ है। जैसे विमुक्त घुमंतू जनजातियों के व्यवसाय, मनोरंजन के कारण, सपेरा तमाशा गीत डोंबारी आदि अपनी कला के द्वारा गांव के लोगों का मनोरंजन कर वे जीवन जीते हैं। गांव के लोगों ने उन्हें कभी भी अपना जैसा नहीं समझा। स्वतंत्रता के बाद भी उत्तर भारत में ही नहीं अन्य राज्यों में इन्हें अत्याचार से

रूबरू होना ही पड़ता है। झूठे आपराधिक मामले उनपर दर्ज किए जाते हैं। हमारी संस्कृति में इन्हें वनवासी उपेक्षित तथा अपराधिक जिंदगी जीने के लिए विवश बना दिया है।

विमुक्त घुमंतू जनजातियों का व्यवसाय अलग प्रकार का रहा है। कुछ जातियां भगवान के नाम पर भिक्षा मांगते है। तो कुछ पशुओं का पालन पोषण करने वाली जनजातियां है। कुछ जनजातियां कलाकार है। कुछ जनजातियां लोगों का भविष्य बता कर तथा प्राणियों की शिकार करके या परिश्रम कर जीवन जीती है। कुछ जनजातियां व्यवसाय करने वाली भी है। लेकिन इनके प्रति भारतीय समाज की मानसिकता संकोचित ही रही है। इन विमुक्त घुमंतू जनजातियों ने भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में सन 1857 में बढ़-चढ़कर योगदान दिया था। अंग्रेजों ने इनके साहस और शौर्य को पहचान कर इन्हें अपराधी घोषित करने का षड्यंत्रकारी निर्णय किया। अंग्रेजों ने बाद में सन 1871 में क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट कानून बनाकर विमुक्त घुमंतू जनजातियों को अपराधी बना दिया। इसलिए अपराधी होने की भय से घुमंतू जनजातियों स्थाई रूप से कहीं पर भी नहीं रह सकी। वह देश में घुमक्कड़ प्रवृत्ति से जीवन जीने के लिए मजबूर हो गई। देश में अंग्रेजों ने 198 विमुक्त घुमंतू जनजातियों को अपराधीक होने की सूची में डाल दिया है। जैसे बस्तर , कैकाडी , कंजारभाट, आबू, बंजारा , राजपारधी, राजपूत , रामोशी , छप्परबंद, पारधी, बावारिया, कालबेलिया, सपेरा , सिकलीगर , बंदाकलंदर आदि अनेक ऐसी घुमंतू जनजातियां अंग्रेजों के सत्ता के विरुद्ध विद्रोह में लड़ती रही है। इन जनजातियों के हौसले और शौर्य से घबराकर अंग्रेजों ने इन समुदायों पर अपराधिक जनजाति अधिनियम कानून बनाकर इन्हें पीढ़ी दर पीढ़ी को अपराधिक घोषित कर दिया था।

देश की आजादी के बात सन 1947 में इन तमाम विमुक्त घुमंतू जनजातियों को पैदाइशी अपराधी बनाया गया था। इनके प्रति भारतीय धर्म एवं जातियां कभी भी विमुक्त घुमंतु जातियों के अपराधिक समस्या को हल करना नहीं समझा। वे मां मिट्टी और मानुस के साथ देश को स्वतंत्रता दिलाने में कटिबद्धता जिए है। लेकिन सही रूप में वह आजादी इन्हें नहीं मिली। समाज में इन विमुक्त जनजातियों की छवि अपराधी के रूप में ही रही है। इनके समुदायों के लिए जो कानून सन 1924 में सेटलमेंट वसाहत बनाया और इन्हें जड़ों से उखाड़ दिया गया। विमुक्त घुमंतू समुदाय को अन्य भारतीय समाज ने सहायता नहीं की। विमुक्त घुमंतू जाति पंचायत इस किताब में रामनाथ चव्हाण ने लिखा हैं - " धर्म ग्रंथों के आधार पर किसी व्यक्ति को जन्म से ही अस्पृश्य बना देना और आपराधिक कानून बनाकर विमुक्त घुमंतू जनजातियों में जन्म लेने वाले हर व्यक्ति को अपराधी घोषित करना यह दोनों घटनाएं भारतीय इतिहास में मानवता की दृष्टि से उतनी ही अमानवीय और विकृत प्रवृत्ति की है।"[1]

देश आजाद होने के बाद भी यह विमुक्त घुमंतू जनजातियों को आजादी नहीं मिली। अपराधी कानून से मुक्ति इन्हें नहीं मील पाई। भारतीय संविधान में डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने जो प्रावधान किए थे वह प्रावधान सन 1960 में प्रधानमंत्री नेहरू जी ने लागू किए थे। विमुक्त घुमंतू जनजातियों की अपराधिक मोहर उन्होंने तोड़ने का काम किया था। लेकिन वास्तव में यह जनजातियां जातिवादी धर्मवादी मानसिकता के समाज द्वारा आज भी अपराधी की जिंदगी जीने को मजबूर है। शासन प्रशासन विभाग में पुलिस अधिकारी हो या हमारा सभ्यताओं लैस भारतीय समाज हो इन जनजातिय समुदायों के प्रति सोंच नहीं बदली। हमारे देश की कुल जनसंख्या के 9.75 प्रतिशत अर्थात लगभग 12 करोड़ की आबादी विमुक्त घुमंतू जनजातियों की है। इसमें से ज्यादा जनसंख्या झारखंड राज्य में 17% आबादी है। भारत के अन्य राज्यों में लक्ष्यदीप, मिजोरम ,नागालैंड ,मेघालय ,अरुणाचल दादर नगर हवेली , मणिपुर , सिक्किम , त्रिपुरा छत्तीसगढ़ , ओरिसा , मध्य प्रदेश ,तमिलनाडु, बिहार केरला, उत्तराखंड ,और महाराष्ट्र आदि राज्यों में यह दिखाई देती है। सन 2018 में सूचना और प्रसारण मंत्रालय ने सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार द्वारा इन जनजातियों की जनसंख्या की स्थिति का विवरण दिया है। कई प्रदेशों में जनजातिय समुदाय नाम मात्र है। कुछ राज्यों में इनकी संख्या अधिक है। प्रत्येक समुदाय की अलग-थलग विविधता दिखाई देती है।

भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर देश के जनजातियों को चार मुख्य भागों में विभाजित कर सकते हैं। जैसे हिमालय क्षेत्र , मध्य भारत का क्षेत्र, पश्चिम भारत का क्षेत्र , तटवर्ती दीप समूह के साथ दक्षिण भारत का क्षेत्र आदि। इन सभी में इन जनजातियों की अलग-अलग विविधताएं जैसे - खानपान, वेशभूषा , रिती रिवाज, परंपराएं, बोली भाषाएं,तिजत्यौहार , प्रार्थनाएं ,एक दूसरे से मेल नहीं खाती। यह विविधताएं भारतीय संस्कृति में हजारों वर्षों से बहुभाषिक, बहू धार्मिक और बहुजातीय ,बहूसंस्कृती रही है। हर जनजाति स्वतंत्र होती है। एक जनजाति दूसरी जनजाति से किसी भी प्रकार से जुड़ नहीं पाती।

जनजातियों का मुखिया इन्हें पर अधिकार रखता है। वह गतिविधियों का संचालन करता है। संपूर्ण देश में इन जनजातियों का समुदाय फैला हुआ है। देश की चार बड़ी जनजातियां भील, मीणा ,गुमानी, संथाल आदि है। भाषा प्रजाति सांस्कृतिक विशेषता की दृष्टि से यह जनजातियां प्रजातांत्रिक व्यवस्थाओं के तहत जीवन जीना चाहती है। लेकिन इन्हें सरकारी उदासीनता , धर्म व्यवस्था तथा शिक्षा के अभाव कारण उन्हें अनेक समस्याओं से जूझना पड़ रहा है। यह जनजातियां आर्थिक मामले में आत्मनिर्भर नहीं हो पाई है। न ही इनकी जातियां आत्मनिर्भर हो चुकी है।

आजादी के बात विमुक्त घुमंतू जनजातियों को गांव से तो बेघर होकर ही रहना पड़ता है अपितु जंगलों बस्ती तांडे से भी बेघर होकर महानगरों में , झुग्गी झोपड़ियों में , कारखानों में, मीलों में, इट भट्टीयों पर मजदूरी करने के लिए विवश होना पड़ा है। उनका जीवन बहुत ही विदारक है। इनके प्रति सरकार तथा प्रशासन का व्यवहार अशोभनीय है। अशिक्षित होने के कारण उन्हें और उनके परिवार को सभ्य समाज द्वारा धोखा दिया जाता है। उनके बच्चों को तथा पत्नियों को मजबूरी का शिकार होना पड़ता है। नारियों पर अत्याचार होता है। बेगुनाह होने के बावजूद भी गुनहगार ठहराया जाता है। भूख के लिए उन्हें लाचार होना पड़ता है। इन्हें कुछ लोग टिशू पेपर की तरह इस्तेमाल करते हैं और अपना काम करवा लेते हैं। यह दास्तान घुमंतू जनजातियों की है। वे प्रकृति के पूजक है । धरती के पुत्र है। भारत के मूलनिवासी है। जल जमीन जंगल पर राज करने वाले यहां के वे राजा थे। खुशहाली से जीवन जिया करते थे। लेकिन इन्हें उपेक्षितों की जिंदगी जीने के लिए अंग्रेजों आलावा भारतीय समाज ने भी कोई कसर नहीं छोड़ी। इनके जीवन को खोखला बना दिया है। जहां तक आदिवासी साहित्य और उनकी जीवन शैली की बात है तो आदिवासी सामूहिक जिंदगी जीता है।

"व्यक्तिवादी नहीं है जबकि बाकी संस्कृति या व्यक्तिवादी है। यही है दृष्टिकोण का अंतर । हम कब्जा करना चाहते हैं और वह सहयोग पूर्वक जीना चाहते हैं। इसलिए आदिवासी साहित्य मूल्यों से भी लैस है और असीम भी। हमारे वाड़मय से कहीं बड़ा है उनका वाड़मय और विशाल है। उनका लोक साहित्य यह दिल से हम अपने लोगों के बीच ले जाए तो न सिर्फ हमारे और उनके बीच एक दर्द का रिश्ता कायम होगा बल्कि हमारे जीवन मूल्यों में सुधार होगा।" 2

विभिन्न वर्गों में बटा समाज आज भी देश की संपन्नता के मुख्य प्रवाह से नहीं जुड़ पाया है। सत्ता बदलती है लेकिन विमुक्त घुमंतू जनजातियों की व्यवस्था नहीं बदली। शासन प्रशासन की शोषणकारी नीतियां उन्हें प्रताड़ित जीवन जीने में विवश कर देती रही है। आज हम आजादी का अमृत महोत्सव मना रहे हैं फिर भी यह विमुक्त घुमंतू जनजातियों विस्थापन का उपेक्षित जीवन जीने का को मजबूर है। संस्कृति सभ्यता और विकास के मकड़ीजाल में फंसने लगी है। जिन्हें प्राचीन संस्कृति में सभ्यता से प्रेम था। जमीन जंगलों में इन्हें प्रेम था। उसी से इन्हे खदेड़ दिया गया है। प्रकृति ही उनके जीवन का धरोहर थी। लेकिन आज विकास के नाम पर प्राकृतिक जड़ों से इन जनजातियों को उखाड़ कर फेंक दिया गया है। इनका अपना अस्तित्व था एक अलग से सामाजिक पहचान थी। लेकिन आज हमारी सोच ने इनके प्रति उदासीनता का रवैया अपनाया है। विमुक्त घुमंतू जनजातियों के लोकगीत लोक नृत्य लोकजीवन त्यौहार उत्सव अलग-अलग प्रकार के हैं। हर एक का दूसरे से मेल नहीं होता। फिर भी उनका दर्द , उनकी पीड़ा एक ही है कि उन्हें वजूद से नेस्तनाबूद न किया जाए। उन्हें जीने की लालसा है। मनुष्य के रूप में हमें भी

आज़ादी से जिंदगी जीने का अधिकार मिले। यह सोच उन्हें भी मानवता का संबंध जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इन्हें हर प्रकार के अधिकार मिलने चाहिए। भारत के आम व्यक्तियों को मिलते हैं। शिक्षा आरोग्य आवास आर्थिक सहायता हर जगह इन्हें बराबरी का अधिकार देने की आवश्यकता है। तभी कहीं जाकर यह हमारी तरह मनुष्य के रूप में जीवन जी पाएंगे। नहीं तो हजारों वर्षों से वे मनुष्य होकर भी प्रताड़ित जीवन जीने लगे हैं। विमुक्त घुमंतू होने के कारण सभ्य समाज की षड्यंत्र का वे शिकार है। उनके साथ बदसलूकी की जाती है। धोखाधड़ी का व्यवहार किया जाता है। उनके मां बहनों पर खुलेआम अत्याचार होता है। झुग्गी झोपड़ियों को जलाया जाता है। बेवजह उन्हें अपराधी घोषित किया जाता है। जेल में बंद कर उन्हें गुनहगार ठहराया जाता है। इन्हें इस भयावह स्थिति से मुक्ति मिलनी चाहिए। तभी तो वे विमुक्त हो जाएंगे। जो भारतीय संविधान उन्हें समानता स्वतंत्रता और बंधुता का हक्क देता है। घुमंतू जनजातियों को भारतीय शासन द्वारा हर तरह से सहायता करना चाहिए। नहीं तो एक समुदाय मनुष्य होकर जंगलों के जानवरों से भी गई गुजरी जिंदगी जी रहा है। उन्हें इससे मुक्ति देने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ

1 भटक्या विमुक्तांची जात पंचायत - रामनाथ चव्हाण पृष्ठ 22

2 आदिवासी केंद्रित हिंदी साहित्य संपादक डॉ ऊषा राणावत ,

3 डॉ सतीश पांडेय, डॉ शीतला प्रसाद दुबे -- हाशिए से - रमणिका गुप्ता

घुमंतू बंजारा समाज की संस्कृति

प्रा.डॉ. महावीर रामजी हाके
असोशिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय,
गंगाखेड जि. परभणी
मो.9423143835
ईमेल:- mrhake67@gmail.com

सारंश

बंजारा जाति में तांडे का नायक ही सही दृष्टि में न्यायाधीश होता है। नायक ही संरक्षक भी होता है। तांडे की उचित अनुचित घटना का पूरा दायित्व नायक पर ही होता है। नायक निष्पक्ष भाव से न्याय करता है। न्यायदान के समय यदि सगा भाई अथवा बेटा दोषी हो तो, उसे भी सजा दी जाती है। वह सजा उसे भूगतनी ही पडती है। अन्यथा उसे तांडे से बहिष्कृत करने का भी पूरा अधिकार नायक को होता है।

बीज शब्द- बंजारा, जनजाति, पंचायत।

प्रस्तवना

हमारे देश में बंजारा जनजाति की संख्या काफी मात्रा मे है जो घुमन्तु अवस्था में स्थान स्थान पर गाँव या पहाडों के निकट स्थिर हो चुकी है। इन समस्त बंजारो के विविध तांडो का सर्वेक्षण करके लोकगीतों का संकलन करने का सफल प्रयत्न किया गया है। लोकगीतों के माध्यम से बंजारा जनजाति का जीवन एवं संस्कृति को चित्रित करने का प्रयास किया गया है। लोकगीत ही जीवन का महत्वपूर्ण अंग होने के कारण समस्त जीवन का दर्शन किया गया है। लोकगीत खेतों, परिवारों, खलिहानों में सहजता से प्रवाहित होते है। तथा उत्सव , व्रत, त्योहार आदिस्थानों पर स्त्रियों एवं पुरूष नृत्यगान करते है। जिसमें संगीत के साधन के रुप में डफ का उपयोग किया जाता है। रात्रि के समय जब तांडे में भजन का कार्यक्रम संपन्न होता है उस वक्त संगीत साधन के रुप में नगाडा, थाली और झांजरियों का उपयोग किया जाता है।

घुमन्तु जातियों मे **'बंजारा'** बोली का समावेश किया जाता है। बंजारा को लमाण-लमाणी आदि नामों से भी जाना जाता है।

उत्पत्ति :- बंजारा लोग भारतवर्ष में अपनी अलग पहचान के साथ फैले हुए हैं। भारत के मूल संस्कृत शब्द **'लमण'** के लवण, लभान, लमान आदि भिन्न शब्द रुप है। लमाणी अथवा , बंजारी लोग बैल की पीठ पर लवण (नमक) की बोरियाँ डालकर देश-विदेश भ्रमण करते थे। अतएव उन्हेः लवण का व्यापार करने वाले लमाणी कहा गया है।

बंजारा शब्द से खैर संचार करना, यह भी अर्थ ध्वनित होता है। भारत के कुछ प्रान्तों में बंजारों को अनुसूचित जाति में और महाराष्ट्र में उन्हे विमूक्त जाति में समाविष्ठ कर लिया गया है। कुछ लोग **वन** में जाकर रहने लगे है। इस **'वन'** से भी शायद **'बनजारा' 'बंजारा'** शब्द बना होगा।

मराठी विश्वकोश में लिखा है "**महाराष्ट्र के कुछ जिलों में उन्हें बंजारी, बनजार, लमाण आदि नामों से पहचाना जाता हैं। वाणिज्य अथवा** वणज **इन शब्दों पर से बंजारा-बनजार और लवण (नमक) की बोरियों का लेनदेन करने वाले लोग** लमाणी **कहलाने लगे।**"[1]

अत: बंजारा अथवा लमाणी शब्दों के साथ भ्रमन्ती और वाणिज्य वृत्ति जुडी हुई है, बंजारो का घूमना यह स्थायीभाव समझना होगा।

मूल स्थान:- बंजारा लोगों के मूलस्थान के सम्बंध में अब तक विद्वानो एकमत नहीं है। में स्थूल रूप से कहा जाता हैं कि वे मुल राजस्थान के वे खुद को महाराणा प्रताप के वंशज भी कहते है। राजस्थान में मध्यप्रदेश, आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र में आए होंगे। उन्हे अलग-अलग प्रान्तों में भिन्न-भिन्न नामों से संबोधित किया जाता है। मराठी विश्वकोश में लिखा है कि : "**बंजारा लोगों को आन्ध्रप्रदेश में सुगाली, दिल्ली में शिरकीवन , राजस्थान-केरल में गवरिया और गुजरात में चारण नाम से पुकारा जाता है।"** [2]

बंजारा समाज में जो खुद को उच्च जाति का समझते है, वे राठोड, पवार, जाधव, आडे, चव्हाण आदि उपनामों से प्रसिध्द है। निम्न जातियों मे दाढी अथवा ढालियाँ जाति के लोगों का समावेश है।

व्यवसाय :- बंजारा लोगों का पहले प्रमुख व्यवसाय नमक का आयात निर्यात करना था। किन्तु बाद में काफी परिवर्तन हुआ। अब बंजारा गाँव के बाहर दूर '**तांडा**' बनाकर रहतें है। बंजारा लोग गाय, बैल, भैंस, बकरी आदि जानवरों का पालन करते हैं। बंजारा लोग जानवरों की देखभाल प्राणों से भी ज्यादा करतें है। बंजारा की गाय अथवा लमाणी का बैल तुरंत पहचाना जाता है। वे रात दिन जानवरों की सेवा में लगे रहते है। वे दूध, घी आदि की भी शहरों में जाकर विक्री करते हैं। वे गोणपाट , ताग आदि की डोरियाँ, थैलिया बनाकर बेचते थे। '**बंजारा**' लोगो में मनुष्य के प्रति सेवा भावना होती है। इस सम्बंध की एक घटना का उल्लेख करते हुए डॉ. भीमराव पिंगले लिखते हैं-

"सन **1396 से सन 1408 के बीच भारत में बडा भयानक अकाल पडा था। बहुत से लोग रोटी के बिना मर रहे थे। उस समय बंजारा लोगों मे बैलों पर चीन, ब्रम्हदेश, तिब्बत , ईरान आदि देशों में से अनाज लाकर लोगों की प्राण रक्षा की थी। कुछ तांडा नायकों का यह कथन है।"** [3]

इस कथन से यह प्रमाणित होता है की, बंजारा लोग कठिन स्थिति में भी नही डरते सेवाधर्म को सही धर्म मानते हैं।

वेशभूषा एवं अलंकरण : 'बंजारा' समाज में पुरूषों की वेशभूषा आम आदमी की तरह शर्ट (बाराबंडी) , धोती (दोन) पटका, जोडा और कमर पर '**पारा**' नामक धातु बाँधते हैं। विशेष बात यह है कि हर आदमी को सिर के बाल कम किन्तु चोटी लम्बी रचना आवश्यक है।

बंजारा महिलाओं की पोशाक एक खास विशेषता समझी जाती है। भारत के किसी भी कोने में '**बंजारा**' महिला उसकी पोशाक से तुरंत पहचानी जा सकती है। महिलाओं की पोशाक लहँगा, चोली (काँच की) फडकी (चूनरी) होती है। वे उसमें केश को गोंडे लगाती है। कहा जाता है कि अपने पति के नाम से बंजारिन अपने केशों को सजाती है। पुरूष के साथ महिलाए भी श्रम करती है। बंजारा महिलाएँ साहसी, परंपरा प्रिय होती है। कुछ बंजारा महिलाओं के सिर पर '**सींग**' नामक गहना रहता है जिस पर उनकी चुनरी शोभायमान होती है। इस सम्बन्ध में डॉ. धर्मराज सिंह लिखते है- "**पोशाक एवं आभूषण मानव प्रकृति के प्रत्यक्ष पक्ष है। आदिम जनजाति की वेशभूषा एवं अलंकार उनके व्यक्तित्व को विशिष्ट गरिमा प्रदान करतें है।"** [4] बंजारा लोगों की संगीत, नृत्य में भी विशेष रुचि होती है। उनमें नगारा, साँप, मोर आदि नृत्य के प्रकार लोकप्रिय है।

विवाह पध्दती :- बंजारा जातियों में विवाह के समय तांडे के नायक को प्रमुख स्थान दिया जाता है। लडका लडकी परस्पर पसंद होने के बाद वरपक्ष की ओर से पाँच छ: आदमी नायक के साथ वधु पक्ष के पास जाते है। वधू पक्ष को '**देज**' (दहेज) के रुप में चार बैल देने पडते हैं। वरपक्ष की ओर से वधू को गहने के रुप में नथ, पैजम, बिलवर , मंगलसूत्र , कमरपट्टा आदि देने पडते हैं। कही कही वधू पिता को दहेज के रुप में पाँच सौ रुपये भी देने पडते हैं। किन्तु आजकल यह प्रथा बंद होती जा रही है और अब वधू पक्ष को ही दहेज के रुप में हजारों रुपये देने पड रहें हैं। यदि लडका पढा-लिखा है, तो दहेज और बढा-चढाकर देना पडता है। बंजारा जातियों में तलाक की पध्दति है। जात पंचायत के सम्मुख पति अथवा पत्नी को तलाक देनी पडती हैं। पहले पंच पति-पत्नी को समझाते है, सहमति न होने पर तलाक के लिए मंजूरी देते हैं।

बंजारा समाज में अनैतिक बर्ताव करने पर पुरूष और महिला को दण्ड देना पडता है। श्री. उत्तम कांबले के अनुसार - **"किसी युवक अथवा युवती ने यदि अनैतिक बर्ताव किया है। तो पंचायत उन्हे जाति-बहिष्कृत करती है।. यदि फिर जाति में उन्हे आना हो तो पंच के कहने पर दावत-शराब और चार हजार रुपये दण्ड देना पडता है। दण्ड की रक्कम बाद में पंच के सदस्य बाँट लेते हैं"** [5] पंचायत द्वारा अनैतिक व्यवहार के लिए दण्ड लेकर अपराधियों को फिर जाति में समाविष्ट करना आदि प्रथाएँ उत्तम हैं।

देवी-देवता तथा त्यौहार :- बंजारा जाति के लोग हिन्दु धर्म के त्यौहार हिंन्दू समझकर मनाते हैं। उसमें विशेष रुप से होली का त्यौहार मजे के साथ बंजारा पुरूष-महिलाएँ गाना-गाते, खेल-खेलते हुए मनाते हैं। हिंदू धर्म के अन्य त्यौहार दीपावली-दशहरा भी बंजारा लोग घूमघाम से तांडे पर एक साथ मनाते हैं। बंजारा लोग जगदम्बा के भक्त या पुजारी कहलाए जाते हैं। दशहरे के दिन बकरे की बलि देने की भी प्रथा हैं।

परमेश्वर, देवी-देवताओं एवं धर्मगुरू आदि पर बंजारा लोगों को दृढ विश्वास हैं। वे देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए बकरे की बलि देना जरुरी समझते है। बंजारा समाज में महात्मा सेवालाल महाराज, संत रामाराव महाराज जैसे सत्पुरूष हुए हैं। जिनको सारे बंजारा लोग अपने गुरू कहकर पुकारते है। उनके नाम से रोजाना भजन पूजन करते हैं।

न्याय पंचायत :- बंजारा जाति में तांडे का नायक ही सही दृष्टि में न्यायाधीश होता है। नायक ही संरक्षक भी होता है। तांडे की उचित अनुचित घटना का पूरा दायित्व नायक पर ही होता है। नायक निष्पक्ष भाव से न्याय करता है। न्यायदान के समय यदि सगा भाई अथवा बेटा दोषी हो तो, उसे भी सजा दी जाती है। वह सजा उसे भूगतनी ही पडती है। अन्यथा उसे तांडे से बहिष्कृत करने का भी पूरा अधिकार नायक को होता है।

कभी-कभी नायक तांडे के जेष्ठ व्यक्ति के अनुभव का भी लाभ उठा सकता है। अनुभवी व्यक्ति के शब्दों को नायक प्रमाण मानकर **'न्याय'** की घोषणा करता है। बंजारा लोग समझते हैं कि न्याय का मतलब केवल सजा दण्ड ही नहीं है अपितु अपराधी को सुधरने का मनुष्य बनने का अवसर देना भी है।

मृतक संस्कार :- बंजारा जाति में मृतक संस्कार हिंदू धर्म के अनुसार ही होता है। आदमी की मृत्यू होने के बाद अग्नि स्पर्श से अंत्यविधी होती है। मृतक आदमी के तेरह दिन के बाद सभी को भोजन दिया जाता है। इसमे कही कही पर मद्य माँस का आयोजन भी किया जाता है। बंजारा लोगों की श्रध्दा है कि परमेश्वर सबका भला करता है। संकटो को दुर करने वाला एकमात्र भगवान और गुरू सेवालाल है।

निष्कर्ष :- बंजारा जाति के सम्बंध में उपरोक्त तथ्यों से जानकारी होने के बाद इस जाति के सन्दर्भ में नये प्रश्न उभर कर आते है। डॉ. रुक्मिणी पवार कहती है कि, **"बंजारा लोगों की विभिन्न प्रथाओंका पुनराध्ययन होना जरुरी है। उनकी प्रथाओं के पीछे नए संदर्भ प्रतीत होते हैं।"** [6]

बंजारा लोगों की बोली भाषा **'गोलमाटी'** है। इस पर राजस्थानी हिन्दी, मराठी का प्रभाव होने के बावजूद भी इसमें कुछ और ही मधुरता प्रतीत होती है। जीवन को समृध्द करने में **'बोली'** का स्थान अनन्य होता है। इस पार्श्वभुमिपर इसका ज्ञान होना अनिवार्य है।

संदर्भ :-

1) मराठी विश्वकोश-खण्ड-10, संपादक -लक्ष्मणशास्त्री जोशी , पृ.1215
2) वही पृ. 1215
3) वनवासी व उपेक्षित जग : डॉ. भीमराव पिंगले , पृ-311
4) अरूणाचल की आदि जनजाति का अध्ययन डॉ. धर्मराज सिंह-पृ-48
5) भटक्यांचे लग्न - उत्तम कांबळे, पृष्ठ-23
6) दैनिक लोकपत्र- सौरभ , पृ-01.

विमुक्त और घुमंतू जन समुदाय की दशा और दिशा

डॉ. शिंदे मालती धौंडोपन्त
सहयोगी प्राध्यापक
नारायणराव वाघमारे महाविद्यालय, आ.बालापुर
ता. कलमनुरी,जी.हिंगोली (महाराष्ट्र) 431701
e-mail_ shindemd2010@gmail.com
Mob- 9421867650

सारंश

- विमुक्त जनजातियाँ वे हैं, जिन्हें ब्रिटिश शासन के दौरान लागू किये गए आपराधिक जनजाति अधिनियम के तहत अधिसूचित किया गया था, जिसके तहत पूरी आबादी को जन्म से अपराधी घोषित कर दिया गया था।
- घुमंतू जनजातियाँ निरंतर भौगोलिक गतिशीलता बनाए रखती हैं, जबकि अर्द्ध-घुमंतू जनजातियाँ वे हैं, जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर आवाजाही तो करती हैं, किंतु वर्ष में एक बार मुख्यतः व्यावसायिक कारणों से अपने निश्चित निवास स्थान पर ज़रूर लौटती हैं।

बीज शब्द- घुमंतू, विमुक्त, समुदाय।

प्रस्तावना

1. वे लोग जिनका कोई स्थायी निवास नहीं होता और जिसके कारण वे हमेशा एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते हैं
2. जो बहुत घूमता हो
3. जिसके रहने अथवा ठहरने का कोई निश्चित स्थान नही अंग्रेजी से हिंदी शब्दकोश: "घुमंतू" शब्द के बारे में जानकारी। व्याकरण, विलोम, पर्यायवाची और वाक्य प्रयोग के साथ हिंदी भाषा में "घुमंतू" का अर्थ और अनुवाद जानें। हिंदी में "घुमंतू" का अर्थ क्या है? "घुमंतू"
4. बताते चलें कि ब्रिटिश हुकूमत ने जिन कट्टर सशस्त्र विद्रोही समुदायों को क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट, 1871 के तहत जन्मजात अपराधी घोषित कर दिया था और भारत सरकार ने आजादी के 5 वर्ष बाद 31 अगस्त 1952 को ब्रिटिश हुकूमत के काले कानून क्रिमिनल ट्राईब्स एक्ट से मुक्त कर दिया था, अब वे **विमुक्त** जनजातियां कहलाती हैं।

हैदराबाद में बीते 24-25 दिसंबर 2018 को विमुक्त व घुमंतू जनजातियों के मुद्दों को लेकर दो दिवसीय परिचर्चा का आयोजन किया गया। देश भर से इस समुदाय के प्रतिनिधियों ने भाग लिया और आपस में एकजुट होकर 'एक जाति, एक रिजर्वेशन' की मांग पुरजोर तरीके से रखने का फैसला किया। फारवर्ड प्रेस की खबर : **विमुक्त,** घुमंतू व अर्द्ध-घुमंतू जनजातियों के लोगों ने अपनी पहचान और अपने अधिकारों को लेकर गोलबंद होना शुरू कर दिया है। इसी क्रम में हैदराबाद में दो दिवसीय परिचर्चा बीते 24-25 दिसंबर 2018 को संपन्न हुई। देश भर से आए इन समुदायों के प्रतिनिधियों ने परिचर्चा के दौरान एक सुर में इस बात पर कड़ी आपत्ति व्यक्त की कि हम सब वे जनजातियां हैं, जिन्हें सरकार ने विमुक्त करार दिया है। देश भर में इन समुदायों के लोग हैं, जो अपनी पहचान के संकट से जूझ रहे हैं।दो दिवसीय परिचर्चा के दौरान इस बात पर सहमति बनी कि जिन जनजातियों का संविधान में नाम तक नहीं है, उन्हें संविधान में जगह देने के लिए सरकार के समक्ष पुरजोर तरीके से मांग रखी जाए। इसके तहत संविधान में धुमंतू जनजाति, अर्द्ध-घुमंतू और विमुक्त जनजाति, ये तीन शब्द तत्काल जोड़े जाएं। इसके साथ ही इन जनजातियों की जनगणना कराई जाए, ताकि पता चल सके कि पूरे भारत में कहां-कहां और कितने-कितने इन जनजातियों के लोग हैं। अभी तक इस तरह की कोई जनगणना नहीं हुई है। बालकृष्ण रेणके कमीशन[1] का हवाला देकर बताया गया कि लगभग 20 राज्यों में डीएनटी की आबादी है। हालांकि, एक अन्य इदाते कमीशन का हवाला देकर बताया गया कि पूर्वोत्तर के राज्यों में भी घुमंतू जनजातियों के लोग हैं।[2] बैठक में इसके अलावा इस बात पर भी आपत्ति व्यक्त की गई कि खानाबदोश विमुक्त, घुमंतू जनजातियों के लोगों के लिए कोई योजनाएं क्यों नहीं हैं? जबकि अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति व अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए अलग-अलग योजनाएं हैं। वक्ताओं के मुताबिक, हालत यह है कि घुमंतू लोग कहीं डीएनटी, तो कहीं एनटी, तो कहीं एसएनटी कहे जाते हैं। इतना ही नहीं कहीं ये जनजातियां ओबीसी, तो कहीं एससी, तो कहीं अल्पसंख्यक वर्ग में शामिल हैं। मुस्लिम समुदाय में भी

डीएनटी हैं। इसमें घुमंतू वे लोग हैं, जो कलंदर हैं, सपेरा हैं। ये सभी आदिवासी लोग थे, लेकिन किसी कारण से इन सबने मुस्लिम धर्म अपना लिया। आज इनकी स्थिति यह है कि अभी तक मुस्लिम समाज ने इन्हें स्वीकार नहीं किया है और इन्हें घर के दरवाजे तक नहीं जाने दिया जाता है।नेशनल कैंपेन फॉर डीएनटी राइट्स से जुड़े डांडी वेंकट ने बताया, *"वे लोग राष्ट्रीय स्तर पर इन जातियों को जोड़ने के लिए संगठन खड़ा करने जा रहे हैं। महाराष्ट्र के भारत विटकार व वो खुद इस काम में जुट गए हैं, ताकि 'एक जाति एक रिजर्वेशन' की मांग वो पुरजोर तरीके से कर सकें। उन्होंने बताया कि इन घुमंतू जनजातियों की स्थिति का अंदाजा इससे ही लगाया जा सकता है कि तेलंगाना, महाराष्ट्र जैसे राज्यों में इन्हें ओबीसी की श्रेणी में रखा हुआ है, तो वहीं आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, बिहार, छत्तीसगढ़ व दिल्ली में एससी श्रेणी में आते हैं। इसलिए हम लोग 'एक जाति एक रिजर्वेशन' की मांग कर रहे हैं, ताकि सभी जातियों को आगे बढ़ने का मौका मिल सके*नेशनल एलायंस ऑफ डिनोटिफाइड नोमेडिक एंड ट्राइब्स आर्गेनाइजेशन के संयोजक सुब्बा राव ने कहा, *"घुमंतू विमुक्त जनजातियों की अनदेखी अब बिलकुल बर्दाश्त नहीं की जाएगी। अब केवल बातों व आश्वासनों से काम नहीं चलने वाला है। हम घुमंतुओं और विमुक्तों को भी रीप्रजेंटेशन चाहिए। दलितों, अनुसूचित जातियो -जनजातियो, अन्य पिछड़े वर्ग का रीप्रजेंटेशन जब अलग-अलग है, तो घुमंतुओं का क्यों नहीं? हम हिन्दू नहीं हैं, हम डीनोटिफायड ट्राइब्स हैं। हमें न तो एससी के हिस्से का लाभ चाहिए, न एसटी समुदाय का और न ही ओबीसी वर्ग का। हमें अलग से रिजर्वेशन चाहिए; एक जाति-एक रिजर्वेशन के तहत। हम सब अपनी बिरादरी विमुक्त, घुमंतू और अर्ध घुमंतू जनजातियों के लिए प्रतिबद्ध हैं और राष्ट्रीय स्तर पर मुहिम शुरू की जा रही है, ताकि दूर-दराज बैठे इस समुदाय के लोगों को भी एक छतरी के नीचे लाया जा सके।"* सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता राज्य मंत्री ने हाल ही में संसद को सूचित किया है कि वर्ष 2019 में देश में विमुक्त, घुमंतू और अर्द्ध-घुमंतू समुदायों के लिये विकास एवं कल्याण बोर्ड (DWBDNCs) का गठन किया गया था।

- कल्याण बोर्ड का गठन तीन वर्ष की अवधि के लिये किया गया था, जिसे अधिकतम पाँच वर्ष की अवधि के लिये बढ़ाया जा सकता है।

प्रमुख बिंदु

खानाबदोश/घुमंतू जनजातियों के समक्ष मौजूद चुनौतियाँ

- रेनके आयोग (2008) द्वारा प्रस्तुत आँकड़ों की मानें तो भारत में लगभग 1,500 घुमंतू एवं अर्द्ध-घुमंतू जनजातियाँ और 198 विमुक्त जनजातियाँ हैं, जिनमें तकरीबन 15 करोड़ भारतीय शामिल हैं।
    - ये जनजातियाँ अब भी सामाजिक एवं आर्थिक रूप से हाशिये पर मौजूद हैं और इसमें से कई जनजातियाँ अपने मूल मानवाधिकारों से भी वंचित हैं।
- सबसे महत्त्वपूर्ण मुद्दा उनकी पहचान को लेकर है।
- **बुनियादी अवसंरचना सुविधाओं का अभाव:** इन समुदायों के सदस्यों के पास पेयजल, आश्रय और स्वच्छता आदि संबंधी बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं। इसके अलावा ये स्वास्थ्य देखभाल और शिक्षा जैसी सुविधाओं से वंचित रहते हैं।
- **स्थानीय प्रशासन का दुर्व्यवहार:** विमुक्त, घुमंतू और अर्द्ध-घुमंतू समुदायों के संबंध में प्रचलित गलत और अपराधिक धारणाओं के कारण आज भी उन्हें स्थानीय प्रशासन और पुलिस द्वारा प्रताड़ित किया जाता है।
- **सामाजिक सुरक्षा कवर का अभाव:** चूँकि इन समुदायों के लोग प्रायः यात्रा पर रहते हैं, इसलिये इनका कोई स्थायी ठिकाना नहीं होता है। नतीजतन उनके पास सामाजिक सुरक्षा कवर का अभाव होता है और उन्हें राशन कार्ड, आधार कार्ड आदि भी नहीं जारी किया जाता है।

- इन समुदायों के बीच जाति वर्गीकरण बहुत स्पष्ट नहीं है, कुछ राज्यों में इन समुदायों को अनुसूचित जाति में शामिल किया जाता है, जबकि कुछ अन्य राज्यों में उन्हें अन्य पिछड़े वर्ग (OBC) के तहत शामिल किया जाता है।
- हालाँकि इन समुदायों के अधिकांश लोगों के पास जाति प्रमाण पत्र नहीं होता और इसलिये वे सरकारी कल्याण कार्यक्रमों का लाभ नहीं उठा पाते हैं।विमुक्त, घुमंतू और अर्द्ध-घुमंतू समुदायों हेतु कल्याणकारी एवं विकास कार्यक्रम तैयार कर उन्हें कार्यान्वित करना।
- उन स्थानों/क्षेत्रों की पहचान करना जहाँ ये समुदाय निवास करते हैं।
- मौजूदा कार्यक्रमों तक इन समुदायों की पहुँच में मौजूद अंतराल का आकलन करना और उसकी पहचान करना, इसके अलावा विभिन्न मंत्रालयों/कार्यान्वयन एजेंसियों के साथ सहयोग के माध्यम से यह सुनिश्चित करना कि मौजूदा कार्यक्रम इन समुदायों की विशेष आवश्यकताओं को पूरा करें।
- विमुक्त, घुमंतू व अर्द्ध-घुमंतू समुदायों के संदर्भ में भारत सरकार और राज्यों/केंद्रशासित प्रदेशों की योजनाओं की प्रगति की निगरानी तथा मूल्यांकन करना।

विमुक्त, घुमंतू और अर्द्ध-घुमंतू समुदायों से संबंधित योजनाएँ

- **डीएनटी के लिये डॉ. अंबेडकर प्री-मैट्रिक और पोस्ट-मैट्रिक छात्रवृत्ति**
    - यह केंद्रीय प्रायोजित योजना वर्ष 2014-15 में विमुक्त, घुमंतू और अर्द्ध-घुमंतू जनजाति (DNT) के उन छात्रों के कल्याण हेतु शुरू की गई थी, जो अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति या अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) श्रेणी के अंतर्गत नहीं आते हैं।
    - इसके तहत पात्रता के लिये आय सीमा प्रतिवर्ष 2 लाख रुपए निर्धारित की गई है।
    - यह योजना राज्य सरकारों/केंद्रशासित प्रदेशों के प्रशासन के माध्यम से कार्यान्वित की जाती है। योजना का वित्तपोषण केंद्र और राज्य द्वारा 75:25 (केंद्र:राज्य) के अनुपात में किया जाता है।
    - यह योजना विमुक्त, घुमंतू और अर्द्ध-घुमंतू समुदायों के बच्चों विशेषकर बालिकाओं के बीच शिक्षा के प्रसार में सहायक है।
- **डीएनटी बालकों और बालिकाओं हेतु छात्रावासों के निर्माण संबंधी नानाजी देशमुख योजना:**
    - वर्ष 2014-15 में शुरू की गई यह केंद्र प्रायोजित योजना, राज्य सरकारों/ केंद्रशासित प्रदेशों/केंद्रीय विश्वविद्यालयों के माध्यम से लागू की गई है।
    - योजना का उद्देश्य अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति या अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) श्रेणी के अंतर्गत न आने वाले DNT छात्रों को छात्रावास की सुविधा प्रदान कर उन्हें उच्च शिक्षा प्राप्त करने में सक्षम बनाना है।
    - इसके तहत पात्रता के लिये आय सीमा प्रतिवर्ष 2 लाख रुपए निर्धारित की गई है।
    - केंद्र सरकार पूरे देश में प्रतिवर्ष अधिकतम 500 सीटें प्रदान करती है।
    - योजना का व्यय केंद्र और राज्य के बीच 75:25 (केंद्र:राज्य) के अनुपात में साझा किया जाता है।

विमुक्त, घुमंतू और अर्द्ध-घुमंतू समुदाय

- विमुक्त जनजातियाँ वे हैं, जिन्हें ब्रिटिश शासन के दौरान लागू किये गए आपराधिक जनजाति अधिनियम के तहत अधिसूचित किया गया था, जिसके तहत पूरी आबादी को जन्म से अपराधी घोषित कर दिया गया था।
    - वर्ष 1952 में इस अधिनियम को निरस्त कर दिया गया और समुदायों को विमुक्त कर दिया गया।
- घुमंतू जनजातियाँ निरंतर भौगोलिक गतिशीलता बनाए रखती हैं, जबकि अर्द्ध-घुमंतू जनजातियाँ वे हैं, जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर आवाजाही तो करती हैं, किंतु वर्ष में एक बार मुख्यतः व्यावसायिक कारणों से अपने निश्चित निवास स्थान पर ज़रूर लौटती हैं।

घुमंतू और अर्द्ध-घुमंतू जनजातियों के बीच अंतर करने हेतु विशिष्ट जातीय या सामाजिक-आर्थिक मानकों को शामिल नहीं किया जाता है, बल्कि यह उनकी गतिशीलता से प्रदर्शित होती है।राजस्थान "डीएनटी बोर्ड" के पूर्व अध्यक्ष गोपाल केसावत के अनुसार जीवनभर घूमने के चलते बंजारा समुदाय "सफर" का पर्याय बन गया है। ब्रिटिश काल में 1859 के "नमक कर विधेयक" के कारण बंजारों का नमक का पैत्रक व्यवसाय छिन्न भिन्न हो गया और आज ये लोग घूम घूमकर गोंद, कम्बल, चारपाई जैसे सामान बेचकर जीवन यापन कर रहे हैं। इसी प्रकार राजस्थान के गाड़िया लोहार भी ऐसी घुम्मकड जाति है जो अपना घर बनाकर नहीं रहती, बल्कि कलात्मक बैल गाड़ी में चलता फिरता घर बनाकर घूमते रहते हैं। इस जाति का दर दर भटककर लोहे का काम करने के कारण ही इन्हें "गाड़िया लोहार" कहा जाता है। राजस्थान की अन्य घुमंतू जाति रेबारी को राइका, गोपालक, देवासी, देसाई इत्यादि नामों से जाना जाता है। ये लोग मुख्यत: पशुपालक रहे हैं और पशुओं को लेकर देश के दूर दराज क्षेत्रों में घूमते रहते हैं तथा ज्यादातर झोंपड़ी बनाकर रहते हैं। देश का जन जन इन जातियों की जीवन शैली को देखकर मानता है कि ये घुमंतू हैं। लेकिन बीजेपी की राजस्थान सरकार और केंद्र सरकार का सर्वे इन्हें घुमंतू जाति नहीं मानता। यह बीजेपी सरकार की संवेदनहीनता की पराकाष्टा है और दिमागी दिवालियापन है। मौजूदा सरकार इन जातियों की मूल पहचान को छिपाकर और सर्वे के नाम पर भ्रम पैदा करके इन जातियो को आरक्षण से वंचित कर दूसरी प्रभावशाली जातियो आरक्षण का लाभ देना चाहती है जिसे घुमंतू समाज बर्दास्त नहीं करेगा।

केसावत के अनुसार राजस्थान में अशोक गहलोत सरकार के समय "नवजीवन योजना" तथा राज्य सरकार का "डीएनटी बोर्ड" गठित करके घुमन्तु समाज को मुख्यधारा में लाने के प्रयास शुरू हुए थे। लेकिन वर्तमान वसुन्दराराजे जी के नेतृत्व वाली बीजेपी सरकार ने "डीएनटी बोर्ड" के काम को ठप्प कर दिया है। "नवजीवन योजना" भ्रस्ताचार की भेंट चढ़कर पंगू हो चुकी है। वर्तमान शासन में घुमंतू समाज पर जुल्म और अत्याचार बढ़ते ही जा रहे हैं। लगातार समाज कंटकों द्वारा डीएनटी समाज की बस्तियों में आगजनी करने, उनकी जमीन हडपने, मारपीट करने, महिलाओं के साथ छेड़खानी व अभद्र व्यवहार करने, डीएनटी जातियों को पुलिस द्वारा बेवजह प्रताड़ित करने और झूठे मुकदमों में फंसाने इत्यादि की घटनाएँ बढ़ती ही जा रही हैं। गोपाल केसावत ने कहा है कि डीएनटी समाज इस सुनियोजित अपमान और अत्याचार को सहन नहीं करेगा। अब देश और प्रदेश का डीएनटी समाज लगातार जाग्रत होकर संघठित हो रहा है और अपने सम्मान व हक़ के लिए आगामी विधानसभा व लोक सभा चुनावों में एकजुट होकर अपनी ताकत का प्रदर्शन करने को तत्पर है। राजनितिक दलों द्वारा यदि डीएनटी समाज को उसकी आबादी के अनुपात में सम्मानजनक प्रतिनिधित्व नहीं दिया जाता है।तो डीएनटी समाज मुँह तोड़ जवाब देगा।बालकृष्ण रेनके आयोग" की सिफारिशों को आज तक लागू नहीं किया गया है। वर्तमान में नरेन्द्र मोदी जी की बीजेपी सरकार पूर्ण बहुमत में होते हुए भी "रेनके आयोग" की रिपोर्ट लागू नहीं कर रही है। उलटा उन्होंने घुमंतू जातियों का पुन: सर्वे करने के नाम पर एक दूसरा आयोग बनाकर घुमंतू समाज को गुमराह करने का काम किया है। पिछले वर्ष मोदीजी की सरकार के सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय के अधीन आने वाले इस "राष्ट्रीय विमुक्त, घुमंतू व अर्द्ध घुमंतू जनजाति आयोग" द्वारा किये गए सर्वे की सूची में राजस्थान की घुमंतू जातियो जैसे – रेबारी, बंजारा और गाड़िया लोहार इत्यादि को शामिल नहीं किया गया है। इस केन्द्रीय आयोग के नेतृत्व में तीन साल से घुमंतू जातियो को जोड़ने का सर्वे चल रहा है। लेकिन राजस्थान सरकार की सिफारिश के अभाव में इन जातियों को घुमंतू श्रेणी की न मानना बीजेपी सरकार की संवेदनहीनता को दर्शाता है। बीजेपी सरकार के सर्वे न जाने किस तकनीक और तथ्यों के आधार पर

किये जाते हैं जो उन्हें मुख्यधारा से प्रथक रेबारी, बंजारा और गाडिया लोहार जैसी जातियाँ घुमंतू नजर नहीं आ रही हैं। इन तीन जातियों का मामला तो मिडिया में उजागर हो गया है, किन्तु ऐसी आशंका है कि इन जातियों के अलावा भी गलत सर्वे के कारण कई अन्य घुमंतू जातियां भी केंद्रीय डीएनटी आयोग की सूची में शामिल होने से वंचित हो सकती हैं**सुशील पांडेय, भोपाल।** देश में नागर, लोक और अरण्यक जातियों की संस्कृति, ज्ञान परंपरा, कला बोध पर विमर्श होते आ रहे हैं, किंतु घुमंतू समुदायों और उनकी संस्कृति पर न के बराबर अध्ययन उपलब्ध है, जबकि मध्य प्रदेश में ही करीब 30 प्रकार की घुमंतू जनजातियां निवासरत हैं।17 अगस्त 2018,जयपुर

जयपुर पिंक सिटी प्रेस क्लब में आयोजित प्रेस वार्ता को संबोधित करते हुए राजस्थान "डीएनटी बोर्ड" के पूर्व अध्यक्ष गोपाल केसावत ने कहा कि

भारत में घुमंतू , विमुक्त व अर्द्ध घुमंतू समुदाय (DNT Community) की आबादी लगभग तीस करोड़ और राजस्थान में लगभग एक करोड़ से ज्यादा है। राजनीतिक दृष्टि से यह समुदाय एक बहुत बड़ा वोट बैंक है। इस समुदाय की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत और आजादी के आन्दोलन का गौरवशाली इतिहास रहा है। 1857 की क्रांति के दौरान डीएनटी समुदाय की अंग्रेजों के विरुद्ध क्रांतिकारी भूमिका की गवाह वर्तमान में दिल्ली की तीस हजारी कोर्ट है। इस कोर्ट ने 1857 की क्रांति के तीस हजार क्रांतिकारियों को फाँसी की सजा सुनाई थी, जिसमें अधिकांश क्रांतिकारी डीएनटी समुदाय से थे। इसी आधार पर इस कोर्ट का नाम तीस हजारी पड़ा। 1857 की क्रांति के बाद भी डीएनटी समुदाय अंग्रेजों के विरुद्ध निरंतर विद्रोह करता रहा, जिसे नियंत्रित करने के लिए ब्रिटिश हुकूमत ने इस बहादुर कौम को 1871 में "क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट" के तहत बंदी जीवन जीने के लिए विवश कर दिया था। देश की आजादी के बाद पं. जवाहरलाल नेहरु और तत्कालीन कांग्रेस के अन्य प्रादेशिक नेताओं के प्रयासों से इन्हें 31अगस्त 1952 को क्रीमिनल ट्राइब्स एक्ट से मुक्ति मिली। 06 अप्रैल 1955 को पं. जवाहर लाल नेहरु ने ही डीएनटी समुदाय को चित्तोढ़गढ़ के किले में प्रवेश कराकर उन्हें अपने गौरवशाली अतीत से रूबरू कराया था तथा डीएनटी समुदाय के हाथों से "विजय स्तंभ" पर तिरंगा पहनवाकर डीएनटी समुदाय के लिए स्वतंत्रता की घोषणा की थी।दुर्भाग्य की बात है कि आजादी के सात दशक बीत जाने के बाद भी आज डीएनटी समाज सामाजिक, शेक्षणिक, राजनीतक और आर्थिक मोर्चे पर देश की मुख्यधारा से प्रथक रह गया है और एक तरह से बहिस्कृत जीवन जीने के लिए विवश कर दिया गया है। करोड़ों की आबादी होते हुए भी डीएनटी समाज का एक भी व्यक्ति MLA और MP नहीं बन पाया है। बने भी कैसे ? राजनीतिक दल डीएनटी समाज को टिकिट ही नहीं देते हैं। आज घुमंतू समाज के लोग अशिक्षित, बेरोजगार और बेघर रहकर बेइज्जत हैं तथा राजनीतिक व्यवस्था के एजेंडे से कोसों दूर रहकर खुले आसमान, पुलों के नीचे और तरपालों में अपना जीवन जीने को विवश हैं।

2006 में मनमोहन सिंह के नेतृत्व वाली UPA सरकार ने बालकृष्ण रेंके की अध्यक्षता में " डीएनटी आयोग " बनाया था, जिसकी रिपोर्ट 2008 में सरकार के समक्ष प्रस्तुत हो गई थी। आयोग की कई सिफारिशे थी ,उन्ही सिफारिशों को लागू करवाने की मांग समस्त डीएनटी समुदाय करता है

(1) डीएनटी समाज के लिए शिक्षा और नौकरी में अलग से 10 प्रतिशत आरक्षण हो।

(2)अलग बजट का प्रावधान हो।

(3) डीएनटी जातियों का अलग से मंत्रालय हो।

(4) डीएनटी जातियों के लिए बोर्डिंग स्कूल खोलें जाएँ।

(5) डीएनटी जातियों के रहने के लिए जमीन और मकान बनाकर दियें जाएँ।

(6) डीएनटी जातियों का स्थायी आयोग बनाया जाय।

(7) पंचायत स्तर पर डीएनटी गाँवों को राजस्व गाँव घोषित किये जाए

(8) राजस्थान में घुमन्तू समुदाय आज भी पहचान के संकट से जूझ रहा है ,कहीं उसे राशन कार्ड नहीं मिलता है तो कहीं जाति प्रमाण पत्र के लिए दर दर की ठोकरें खानी पड़ रही है,यह दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है कि आज भी घुमन्तू समुदाय देश का नागरिक होने की पहचान से वंचित है ,सरकार विदेश से आये लोगों के लिए एनआरसी बना रही है मगर जो लोग हजारों साल से इसी जमीन के बाशिंदे है ,उनका कोई रिकॉर्ड नही रखना चाहती ,हम मांग करते है कि देश भर के घुमन्तू समुदायों की वास्तविक गणना हो तथा

उन्हें उनकी आबादी के अनुपात में हर क्षेत्र में भागीदारी दी जाये।

(9) घुमन्तू समुदाय की आजीविका ,आवास तथा श्मशान आदि की समस्याओं का तुरन्त हल किया जाये, अकसर यह देखा गया है कि घुमन्तुओं के पास न रहने को प्लॉट है,न खेती या व्यापार के लिए जमीन है ,हालात इस कदर बुरे है कि मरने के बाद दो गज जमीन तक नसीब नहीं हो रही है ,ऐसे में एक भारतीय नागरिक होने के नाते संविधान प्रदत्त जीने के अधिकार का इस वर्ग के लिए कोई मतलब नहीं रह गया है ,अतः हमारी मांग है कि प्रत्येक घुमन्तू को आवासीय,व्यावसायिक भूखण्ड दिया जाये तथा इस वर्ग के लिए सार्वजनिक उपयोग और शमसान आदि के लिए अलग से जमीनों का आवंटन हो

(10) घुमन्तू समुदाय विभिन्न श्रेणियों में विभाजित है,उसकी कुछ उपजातियां अनुसूचित जाति में तो कुछ जनजाति में ,कोई अन्य पिछड़े वर्ग में तो कोई सामान्य ,यहां तक कि विभिन्न धर्मों में है ,लेकिन सबकी समस्याएं एक जैसी है ,हालात एक जैसे है ,इसलिए हमारी मांग है कि देश भर के तकरीबन 700 घुमन्तू, अर्धघुमंतू और विमुक्त समुदायों को मिलाकर एक अलग घुमन्तू कैटेगरी बनाई जाये और उनको सत्ता ,संसाधनों में समुचित प्रतिनिधित्व दिया जाये।

(11) राजस्थान,मध्यप्रदेश,छतीसगढ़ में होने जा रहे विधानसभा चुनावों में घुमन्तु समुदाय को उनका हक सुनिश्चित किया जाये,राजस्थान में 50 सीटें विभिन्न दल इस समुदाय को दे,ऐसी मांग हम रख रहे है।

(12)घुमंतुओं की परिस्तिथियों के मद्देनजर उनको बीपीएल में लिया जाए,खाद्य सुरक्षा के तहत कवर किया जाये,सबको निशुल्क आवासीय व व्यवसायिक भूखंड मिले ,सबको नागरिकता का प्रमाण पत्र मिले,सबको न्याय व समान अवसर प्राप्त हो ,यह घुमंतुओं का मुक्ति संग्राम है,इसी सिलसिले में 31 अगस्त 2018 को घुमन्तु मुक्ति दिवस बड़े पैमाने पर शाहपुरा,भीलवाड़ा में आयोजित किया जायेगा ।

(13)अखिल भारतीय स्तर पर मुक्ति दिवस समारोह के लिए केंद्र व राज्य सरकारे 31 अगस्त को राष्ट्रीय अवकाश घोषित करेप्राचीन काल से ही भारत की लोक कला एवं लोक संस्कृति को संजोए रखने में विमुक्त घुमंतू व अद्र्ध घुमंतू जनजातियों की अहम भूमिका रही है। इसके बावजूद आजादी के 74 सालों बाद भी हमारे देश तथा समाज का ध्यान इन जनजातियों की तरफ नहीं गया है, जबकि हम सभी इस बात से भली भांति वाकिफ हैं कि इन्हीं लोगों के क्रांतिकारी सहयोग की वजह से हम आजाद भारत का हिस्सा बने हैं। यह हमारे देश की विडंबना है कि इन जनजातियों की कुल आबादी का 10 प्रतिशत हिस्सा भी हमारे समाज की मुख्य धारा से नहीं जुड़ पाया है तथा सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक और राजनीतिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। भारत की विमुक्त घुमंतू एवं अद्र्ध घुमंतू जनजातियों में करीब 840 जातियां शामिल हैं। देश की आजादी के बाद से अब तक इन समुदायों के लिए महज 8 आयोग बने हैं, जिन्होंने प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से घुमंतू जनजातियों को पिछड़ेपन की सूची में शामिल करने एवं सुरक्षित आरक्षण की सिफारिश की है, परंतु इस समुदाय की राजनीतिक भागीदारी नगण्य होने के कारण किसी भी आयोग की रिपोर्ट को संसद में पेश नहीं किया गया। घुमन्तु समुदाय के लिए यूपीए सरकार द्वारा गठित बालकृष्ण रेनके आयोग व एनडीए सरकार द्वारा गठित दादा इदाते आयोग की रिपोर्ट अभी तक ससंद में पेश नहीं की गई है।

यह भी देखें: <u>भारत का घुमन्तु समुदाय आखिर कब तक अपने होने न होने का सबूत देता रहेगा?</u>

दरअसल संसद के मानसून सत्र में 'बालकृष्ण रेनके आयोग' और 'दादा इदाते आयोग' की रिपोर्ट लागू करने के संबंध में पूर्व राज्यमंत्री गोपाल केसावत ने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नाम जयपुर जिला कलेक्टर डॉ. जोगाराम को ज्ञापन सौंपा था। इस ज्ञापन के अंतर्गत यह मांग की गई थी कि बालकृष्ण रेनके आयोग व दादा इदाते आयोग की रिपोर्ट को संयुक्त रूप से मानसून सत्र में संसद में रखकर लागू किया जाए। सरकारी नौकरियों में विमुक्त, घुमंतू तथा अर्द्ध घुमंतु जनजातियों के लिए 10 फीसदी आरक्षण सुरक्षित किया जाए। वैश्विक महामारी कोरोना वायरस से तबाह हुई घुमंतू और अर्द्ध घुमंतु जनजातियों के लिए एक हजार करोड़ के विशेष आर्थिक पैकेज की घोषणा की जाए। साथ ही विमुक्त घुमंतू एवं अर्द्ध घुमंतू जनजाति भारत में सर्वाधिक रूप से पिछड़े व वंचित हैं।

इसलिए स्थाई आयोग का गठन करना चाहिए और आयोग में विमुक्त घुमंतू एवं अर्द्ध घुमंतू से संबंधित जातियों के व्यक्तियों की ही नियुक्ति होनी चाहिए। केंद्र की मोदी सरकार ने लोकसभा चुनाव को ध्यान में रखते हुए आर्थिक रूप से पिछड़े सामान्य वर्ग के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण लागू कर दिया गया. जबकि 20 करोड़ विमुक्त और घुमंतू जनजातियों की कोई फ़िक्र किसी भी राजनीतिक दल और सरकार को नहीं है. केंद्र की मोदी सरकार ने लोकसभा चुनाव को ध्यान में रखते हुए आर्थिक रूप से पिछड़े सामान्य वर्ग के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण लागू कर दिया गया. जबकि 20 करोड़ विमुक्त और घुमंतू जनजातियों की कोई फ़िक्र किसी भी राजनीतिक दल और सरकार को नहीं है.

केंद्र की मोदी सरकार ने लोकसभा चुनाव को ध्यान में रखते हुए आर्थिक रूप से पिछड़े सामान्य वर्ग के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण लागू कर दिया गया. जबकि 20 करोड़ विमुक्त और घुमंतू जनजातियों की कोई फ़िक्र किसी भी राजनीतिक दल और सरकार को नहीं है. जातिवार जनगणना 2011 के अनुसार, भारत में विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों की आबादी 15 करोड़ है (जबकि वर्तमान समय में इनकी वास्तविक आबादी 20 करोड़ से अधिक है). यह विशाल समुदाय भारत की आज़ादी के बाद भी आज तक सामाजिक न्याय से पूरी तरह वंचित एवं विकास की धारा से कोसों दूर है.

विमुक्त जनजातियों के साथ जो उपेक्षा सरकारों यहां तक कि सामाजिक न्याय के ध्वजवाहकों ने की है, वह वास्तव में चिंता और चिंतन का विषय है.

आख़िर कौन है विमुक्त जनजातियां इसका संक्षिप्त उत्तर यह है कि ब्रिटिश हुकूमत ने जिन कट्टर सशस्त्र विद्रोही समुदायों को क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट 1871 के तहत जन्मजात अपराधी घोषित कर दिया था और भारत सरकार ने आज़ादी के 5 वर्ष बाद 31 अगस्त 1952 को ब्रिटिश हुकूमत के काले कानून क्रिमिनल ट्राईब्स एक्ट से मुक्त कर दिया था, अब वे विमुक्त जनजातियां (Denotified Tribes) कहलाती हैं.

अंग्रेजों की प्रसारवादी नीतियों के विरुद्ध स्थानीय कृषक जातियों/जनजातियों ने अपने-अपने स्तर और क्षमता के अनुसार सशस्त्र विद्रोह किए थे. किन्तु इतिहास की पुस्तकों में उन्हें वह स्थान नहीं मिला जो उन्हें मिलना चाहिए था.

भारत सरकार ने कुछ आयोग एवं कमेटियों का गठन किया था. उन्होंने भी यह माना था कि विमुक्त समुदाय एक विशिष्ट वर्ग है, जिन्हें ब्रिटिश विद्रोह के कारण जन्मजात अपराधी के रूप में कलंकित होना पड़ा.

उन्होंने यह भी माना कि इनके उत्थान के लिए अलग से उपाय किए जाने चाहिए. विभिन्न शोधकर्ता, इतिहासकार एवं विद्वान स्पष्टत: यह स्वीकार करते हैं कि विमुक्त जातियां ब्रिटिश हुकूमत की सशस्त्र विद्रोही थीं, ये वास्तविक स्वातंत्र्य योद्धा थे.

इनके ऊपर जन्मजात अपराधी होने का कलंक लगाना अमानवीय है. ये समुदाय ब्रिटिश सरकार की नज़र में अपराधी हो सकते हैं, किंतु भारत के लिए वास्तविक स्वतंत्रता संग्राम सेनानी ही थे.

जबकि घुमंतू जनजातियां भारतीय (हिंदू) संस्कृति की रक्षक थीं और आज भी हैं. घुमंतू समुदाय गाड़िया लोहारों के त्याग, बलिदान और दृढ प्रतिज्ञ हिंदू संस्कृति के महान रक्षकों को कौन नहीं जानता? आज उनकी स्थिति बद से बदतर है किन्तु अधिकांश प्रांतीय सरकारें उन्हें अपने प्रांत का नागरिक भी नहीं मानतीं.

ISSN : 2581-8848

विश्व के लगभग 53 देशों में अंग्रेज़ों का शासन था, लेकिन क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट केवल भारत में लागू किया गया था. इसकी पृष्ठभूमि में अंग्रेज़ों की धारणा यह थी कि जिस तरह से भारत में जातिगत व्यवसाय होते हैं जैसे लोहार का लड़का लोहार होता है, बढ़ई का लड़का बढ़ई, चिकित्सक का लड़का चिकित्सक, इसी तरह अपराधी की संतानें अपराधी ही होती हैं. क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट इन्क्वायरी कमेटी (अयंगर कमेटी- 1949-50) ने अपना अभिमत व्यक्त किया है कि क्रिमिनल ट्राइब्स को दो भागों में बांटा जा सकता है. एक वह है जो एक ही स्थान पर निवास करते थे और आवश्यकता पड़ने पर ये लोग युद्ध किया करते थे, इनमें से कुछ को आक्रमणों के कारण अपने मूल स्थान से विस्थापित भी होना पड़ा था.

दूसरे जिप्सियों की भांति घुमंतू थे जैसे सांसी, कंजर, नट आदि. साथ ही अन्य जनजातियां जो काम की तलाश में या भिक्षाटन के लिए भटकती रहती थीं, जैसे बेलदार, बंजारा आदि.

भारतीय साहित्य में विमुक्त घुमंतू समुदाय जीवन

डॉ.संतोष बबनराव माने
शिवराज महाविद्यालय,
गडहिंग्लज ४१६५०२
जिल्हा – कोल्हापूर (महाराष्ट्र)
मो . ९५५२०९३९७२

सारांश

विभुक्त घुमंतु समुदाय भारतीय समाज का ही अंग है फिर भी अन्य समाज की तरह इन्हे न्याय कम मिला है I यह समुदाय कभी अस्पृश्य के रूप में सामने आता है तो कभी पराक्रमी है I इस समुदाय में देशभक्ति भी सहज दिखाई देती है I हिंदू जाती से जुडे इस समाज को उपेक्षित रहना पडा है I इस उपेक्षित समाज के जीवन चरित्र को देखकर पाठक के मन में इनके प्रती दया, सहानुभूती प्रतीत होती है I

बीज शब्द- भारतीय, समाज, विमुक्त, घुमंतु।

प्रस्तवना

भारतीय समाज विविध जाती-धर्म से जुडा रहा है I भारत में विविध जाती धर्म होने पर भी सामाजिक एकता कायम है I बहु धर्म , बहु समाज और बहु समाज इस देश में है I परिणाम विविध भाषाओं का यह देश रहा है I भारतीय संविधान में अठारह से अधिक भाषा को महत्व दिया है I भारत में भाषा और बोलीओं की संख्या अधिक है I विविध भाषाएँ भी विविध समाज को दर्शाती है I जैसे हिंदी, मराठी, राजस्थानी, कन्नड, गुजराती आदी है I इन सभी भाषाओं के विविध साहित्य को भारतीय साहित्य के रूप में रखा जाता है भारतीय समाज में ब्राम्हण, क्षत्रिय , वैश्य समाज सामने रखकर बीसवी सदी तक अधिक साहित्य लिखा गया I सन १९४७ की आजादी के बाद भारतीय साहित्य में ब्राम्हण, क्षत्रिय , वैश्य के साथ अन्य समाज पर भी साहित्य लिखना शुरू हुआ I आदिवासी , घुंमतू समुदाय जो अब तक साहित्य के क्षेत्र में कम रहा वह भी अन्य समाज की तरह साहित्य के क्षेत्र में आगे बढ चुका है Iभारतीय साहित्य में हिंदी तथा मराठी साहित्य में आदिवासी तथा घुंमतू समाज का चित्रण अधिक मात्र में हुआ है I

भारतीय हिंदी साहित्य में जो संत धारा रही है उसीप्रकार मराठी साहित्य में भी संत धारा रही है I इस देश के महाराष्ट्रीय इतिहास में समाज की संस्कृती सभ्यता अलग रही है I रामायण से लेकर अब तक मुगलों एवं अंग्रेजो के कालखंड में इस महाराष्ट्रीय समुदायो का कार्य इतिहास में उल्लेखनीय है I वैसे भारतीय समाज के विविध समाजों का अध्ययन करना कठीण काम है I फिर भी अधिक मात्र में समाज या समुदायों का जीवन साहित्य में चित्रित है I लेखक हो या पाठक समाज की सभ्यता और संस्कृती को समझना दोनों के लिए आकर्षण है I वैसे समाज में दो स्तर हम देख सकते है I एक वह जो प्रस्थापित है और दुसरा वह जो घुंमतू अर्थात भटकंती करके जीवन जीनेवाला I प्रस्थापित समाज का अपना घर गॉव होता है परंतु घुंमतू समाज का गावं या घर नही रहा है I उसमे कैकाडी, लमाण, बंजारा, नंदीवाले, गोसावी, कुडमुडे जोशी, फासेपारधी , गोपाल, रामोशी, ढोर, कोल्हारी नंदीवाले, धिसाडी , पारधी आदी अनेक है I यह घुंमतू समाज अधिक मात्रा में महाराष्ट्र में है I वैसे भारत के अन्य राज्यों में भी यह समाज अलग-अलग नाम से रहा है I

प्रस्थापित जातियों का अपना जीवन सरल एवं उच्च श्रेणी में रहा है I “शासक से लेकर सामान्य व्यक्ती तक का पुरोहित ब्राम्हण होता था I ब्राह्मणो के कुछ परिवार राजकुलो तथा सामन्तों के पारिवारिक में पुरोहित बने हुए थे I धार्मिक कार्मकांडो तथा अनुष्ठानों के अवसर पर संबंधित शासक अथवा सामन्त का प्रतिनिधित्व करते थे I”१. इसतऱह ब्राम्हण, क्षत्रिय , वैश्य समाज के लोग अपने कार्य के बल पर प्रस्थापित रहे I परंतु कुछ समाज ऐसा भी रहा जो गांव गांव भटकता रहा I जहॉ पर उसका पालन-

पोषण होता वही वह कार्यरत रहते I मेहतर समुदाय जो पहले काल में मलमूत्र साफ करनेवाला समाज था I महाराष्ट्र में यह समाज उत्तरीय राज्यों से आया है I मलमूत्र साफ करनेवाला यह समाज अपने ही समाज में उपेक्षित रहा है I " हा समाज पूर्वीच्या काळी अत्यंत शूर, धाडसी आणि योद्धा म्हणून प्रसिद्ध होता परंतु मोगलांच्या काळात त्यांना पराभव पत्करावा लागला. लढाईत या लोकांना मोगलांनी पराजित केले आणि गुलाम बनवले. २."गुलामी में अपमानित, उपेक्षित होनेपर यह समाज भी घुमंतू समुदायों में आया I घुमंतू समुदाय को देखा जाए तो वह उपेक्षित, वंचित या निम्न के रूप में रहा है I उस समाज में क्रांतिकारक या उच्चता भी कुछ समुदाय में उल्लेखनीय है I यह बंजारा (गोर) समाज को घुमंतू समाज के रूप में देखा जाता है I यह समाज अधिक राज्यों में है I बंजारा के लोग अपना भगवान संत सेवालाल को मानते है I संत सेवालाल को सेवभाया भी कहा जाता है I बंजारा समाज प्राचीन काल के इतिहास में उल्लेखनीय है I हर राज्य के राजा के दरबार में इस समाज का कोई महासेनानी रहा है I इस समाज का मुख्य व्यवसाय अनाज का लेन देन करना था I जिसके पास गाय-बैल जादा होते वह अधिक श्रीमंत होता इस समाज की संस्कृती सभ्यता महत्वपूर्ण रही है I

बिहार में मुण्डा आदिवासी परिवार का जीवन अलग रहा है I पहले तो यह बिहार में था परंतु आज वह अनेक बसा है I मुण्डा आदिवासी शिकार करके अपनी उपजीविका करते थे I समाज के परिवर्तन के साथ इस समाज में भी परिवर्तन हुआ I गांव गांव जाकर कम्बल बेचना इसका व्यवसाय रहा I प्रकृती को पूजा करना इस परिवार का उत्सव रहा है I उत्सव के समय घर-घर जाकर फुल बॉटना और कोई वस्तू प्राप्त करना यह भी उनकी साधना रही है I यह आदिवासी उत्सव अलग पर्व रहा है I सरना उनका देवस्थान है I 'गाव का पाहान इन फुलों को लेकर सरना में गाव के देवी –देवताओं की पूजा कर उन्हें प्रसंन्न करता है I इस दिन मिट्टी के बर्तन में सामुहिक भोजन तैयार किया जाता है I " ३. इस परिवार में विवाह तो पहले लडका-लडकी के पसंद से होते थे I लेकीन आज बाप के पसंद से इनके विवाह होते है I जंगलों में रहनेवाला यह समाज बडा साहसी था I

मराठी साहित्य मे घुमंतू समुदाय पर लिखने वाले लेखक लक्ष्मण माने है जिन्होने उपरा इस कादंबरी में कैकाडी, लमाण, बंजारा समाज जीवन का चित्रण किया है I इस समुदाय के लोग घुमंतू रहे है I किसी भी गाव में जाकर पाल या डेरा डालकर रहना और अपने परिवार के उदरनिर्वाह के लिए जोखीम भरे काम करना या कला करके लोगो का मनोरंजन करना उनका व्यवसाय था I उपरा इस कादंबरी में घुमंतू समुदाय का जीवन और उनका संघर्ष चित्रित है I "त्या खोकडयात बिऱ्हाड होत हुत. दिवसभर गाव मागितला , लई नाचली, दोरीवर उडया मारल्या, केसान दगड उचलला." ४. कभी कभी गावं में चोरी हो जाती तो शक के आधार पर इन्हे ही चोर समझकर पुलिस पकडती I पुरे परिवार को इस पीडा से त्रासदि में रहना पडता I उपरा इस कादंबरी का हिंदी भाषा में अनुवाद हुआ है I सुर्यनारायण रणसुभे का उटायगीर यह उपन्यास यही है I दादासाहेब गायकवाड का उचल्या यह उपन्यास घुमंतू समुदाय पर चित्रित है I महाराष्ट्र के उचल्या समुदाय के जीवन चरित्र को प्रस्तुत करनेवाला यह उपन्यास रहा है I बालासाहेब मोरे का नंदीवाले यह उपन्यास भी विमुक्त नंदी घुमंतू समुदाय के जीवन पर आधारित है I बैल लेकर गावं –गावं , घर-घर जाकर आस्था दिखाना या उनका भविष्य बताना, वंश परिवार का कथन करना उनका व्यवसाय होता I दादासाहेब मोरे का गबाळ यह उपन्यास कुंडमुडे जोशी घुमंतू समुदाय पर आधारित है I पहले तो यह समाज भविष्य बताकर अपनी उपजीविका चलाता I बाद में बर्तन बेचने का व्यवसाय करता रहा I इन उपन्यासों में अस्थायी घुमंतू समुदाय का जीवन, परिवार और संस्कृति झलकती है I गावं के लोगों या पुलिस के कारन भी इन्हे कभी-कभी संकटो से सामना करना पडा है, सहना भी पडा है I नंदीवाले, गोसावी, बंजारा कुडमुडे जोशी, कैकाडी, लमानी, फासे पारधी , बुरुड, कोल्हारी आदि अनेक घुमंतु समुदाय में आते है I इस विभुक्त घुमंतु समुदाय पर भारतीय साहित्य में चित्रण कम हो रहा है I

इसतरह विभुक्त घुमंतु समुदाय भारतीय समाज का ही अंग है फिर भी अन्य समाज की तरह इन्हे न्याय कम मिला है I यह समुदाय कभी अस्पृश्य के रूप में सामने आता है तो कभी पराक्रमी है I इस समुदाय में देशभक्ति भी सहज दिखाई देती है I हिंदू जाती से जुडे इस समाज को उपेक्षित रहना पडा है I इस उपेक्षित समाज के जीवन चरित्र को देखकर पाठक के मन में इनके प्रती

दया, सहानुभूती प्रतीत होती है I लक्ष्मन माने, दादासाहेब मोरे, सुर्यनारायण रणसुभे जैसे लेखकों ने इस समाज पर साहित्य लिखकर समाज में परिवर्तन या एकता स्थापित करने का सफल प्रयास किया है I आज अनेक सामाजिक विकास की संस्थाएँ है जो इस समाज में सुधार के लिए कार्यरत रहे यह अपेक्षित है I

संदर्भ ग्रंथ –

१. भारतीय सामाजिक संस्थाएँ – डॉ. काळूराम शर्मा पृष्ठ ३३
२. जाती आणि जमाती – रामनाथ चव्हाण पृष्ठ ०९
३. मुंण्डा आदिवासियों कि भाषाएँ और उनकी संस्कृती – डॉ . रुपांशुभाला पृष्ठ ६५
४. उपरा – लक्ष्मण माने पृष्ठ २१

नंदीवाला समाज की बोली का अध्ययन

डॉ. सविता कृष्णात पाटील
सहयोगी प्राध्यापक
स.ब. खाड़े महाविद्यालय, कोपार्डे
मोबाइल 9403552007
ई मेल savitapatil1965@gmail.com

सारांश

महाराष्ट्र में विमुक्त घुमंतू समुदाय की अनेक जमातियाँ हैं। इनमें नंदीवाला समाज की बोली को समाविष्ट किया गया है। ये लोग आँध्रप्रदेश के मूल निवासी हैं। हर गाँव, प्रदेश की अपनी एक भाषा होती है उसका एक अलग अस्तित्व होता है लेकिन आज इनमें आमूलाग्र परिवर्तन होने लगा है छोटी – छोटी जाति – जमातियों की बोलियाँ अपना रूप बदल रही हैं। शिक्षा, व्यवसाय, मीडिया, आर्थिक विकास, रोजगारों के कारण बढ़ता हुआ संपर्क के कारण कुछ ही सालों में ये बोलियाँ अपना अस्तित्व खो देने की आशंका में हैं। नंदीवाला समाज की बोली को सुरक्षित रखना तथा उसका संवर्धन करना महत्त्वपूर्ण बनता जा रहा है। नंदीवाला समाज के लोग सेंकडों वर्ष पहले आए हुए और तेलुगु भाषा बोलनेवाले हैं।

बीज शब्द – बोली, नंदीवाला, दंतकथा, विधि, संज्ञाएँ, क्रियाएँ, विशेषण, लिपि प्रदेयता, संवर्धन

प्रस्तावना

नंदीवाला समाज के लोग जीविकानिर्वाह के लिए भटकंती करते हुए जी रहे हैं। इस समाज के लोग पहले झोपड़ियों में रहते थे, अब वे छोटे-छोटे कच्चे मकान बनवाकर रहने लगे हैं। सजे हुए बैल, जिसे नंदीबैल कहा जाता है, उसे लेकर गाँव-गाँव घूमते थे। 'गुबु-गुबु' की आवाज के साथ 'गुबी' नामक वाद्य बजाकर नंदीबैल का खेल दिखाते थे।' इस साल बरसात होगी क्या', 'फसलें अच्छी आयगी क्या', 'सभी का स्वास्थ अच्छा रहेगा क्या' ? जैसे प्रश्न नंदीबैल से पूछे जाते थे और नंदीबैल अपनी गर्दन हिलाकर 'हाँ' या 'ना' कहते हुए प्रश्नों का उत्तर देते थे। नंदीबैल द्वारा कहा भविष्य सच होता है, ऐसी लोगों की धारणा रहती थी। स्त्रियाँ श्रद्धा से नंदीबैल के चरणों पर पानी डालकर उसका औक्षण करती थीं। साथ ही अनाज, पुराने कपड़ें, पैसे, रोटियां, बैल के लिए घास दिया जाता था।

बैल से नंदीबैल बनाने की भी विधि होती है। घर के गाय से उत्पन्न सुंदर बछड़े को नंदी बनाया जाता है। बछडा चार दाँतोंवाला बनने के बाद यह विधि होता है। उसे विशिष्ट हाव-भाव सिखाएं जाते हैं। पांच दिन नंदी की पूजा की जाती है और देवता के रूप में एक पीतल की प्रतिमा बैल के गले में बाँध दी जाती है। नंदीबैल के मालिक को कोड़ा, झूल, गुबी याने एक वाद्य और झोला दिया जाता है। विधिपूर्वक यह झूल बैल के पीठ पर चढाई जाती है। इस समाज के लोग काशी से गंगा नदी का जल बोतल से दक्षिण की ओर बेचते थे, इसीकारण इन लोगों को 'काशी कापड़ी' भी कहा जाता है। नंदीवाला समाज के लिए 'तिरमाली' और 'दासरा' नामों से भी पहचाना जाता है।

नंदीवाला समाज के प्रति एक किवदंती कही जाती है। इस समाज की कुलदेवता बालाजी है। ये लोग भीख मांगकर अपनी जीविका चलते थे। रात में मंदिर आकर सो जाते थे। उसी मंदिर में एक नाग हर रोज प्रात:काल में अपने मुँह एक दिव्य, तेजस्वी मणि लेकर आ जाता था। उसे देवता से सामने रखकर उसे प्रदक्षिणा करते हुए उस मणि को लेकर फिर चला जाता था। यह क्रम एक बहुत दिनों से चल रहा था। एक दिन इस समाज के लोगों के मन में आया कि अगर इस मणि को चुराकर सुनार को बेच दिया तो बहुत पैसे प्राप्त हो जाएँगे और अपनी गरीबी दूर हो जाएगी। उन्होंने मणि चुरा लिया और एक नाव में बैठकर सुनार के पास जाने लगे। इतने में नाव में 'फुस्स फुस्स' की ध्वनि सब बहुत घबरा गए और रक्षा के लिए बालाजी की प्रार्थना की। बालाजी ने केंचुएँ का रूप धारण कर नाग से इन लोगों की रक्षा की। इन लोगों ने यह मणि बालाजी के चरणों पर अर्पित कर दी। इनकी सच्चाई देखकर बालाजी प्रसन्न हुए और वरदान माँगने के लिए कहा। इस समाज के लोगों ने जीविका के लिए कुछ साधन देने के लिए कहा। इस पर बालाजी ने उन्हें एक (नंदी) बैल दिया। लोग नंदी की सहायता से लोकरंजन करते हुए अपनी जीविका चलाने लगे, एसिकार्न इन भिक्षुकों को नंदीवाला कहा जाता है। तेलुगु की बोली में इस जाति को 'गंगेइट' कहा जाता है।

नंदीवाला समाज की बोली भाषा -

प्रस्तुत शोधनिबंध में नंदीवाला समाज की बोली भाषा का अध्ययन किया गया है। मराठी भाषा की कुछ बोलियों का अनुसंधान और अध्ययन हुआ है। भाषा संबंधी सर्वेक्षण जॉर्ज ग्रीयरसन ने किया था। इसके बाद श्री. गणेश देवी जी का बोलियों के सर्वेक्षण, अध्ययन और संकलन में बहुत बड़ा योगदान है। बोलियों के अध्ययन में यह निश्चित ही मददगार बनेगा। नंदीवाला विमुक्त घुमन्तु जाति है। विमुक्त घुमन्तु, घुमक्कड़ जाति अंग्रेजी के Tribe' शब्द का पर्यायवाची है। Oxford Dictionary' में इस शब्द का अर्थ "a social group in a traditional society consisting of linked families or communities with a common culture and dialect."[1] मतलब यह कि समान संस्कृति और समान बोली होनेवाली परिवार संस्था जो एक पारंपरिक समाज या समुदाय से संबंधित रहती है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी कहते हैं, " एक भाषा के अंतर्गत जब कई अलग – अलग रूप विकसित हो जाते हैं तो उन्हें बोली कहते है।"[2] मराठी भाषा के अंतर्गत ऐसे अनेक रूप विकसित हो गए, उनमें एक रूप नंदीवाला समाज की बोली है। यह समाज महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, कर्नाटक राज्यों में बिखरा हुआ है। शिक्षा तथा स्थानिक लोगों के संपर्क की वजह से ये लोग स्थानिक भाषा बोलते हुए दिखाई देते हैं परंतु घर परिवार,जात – पंचायत तथा गोपनीय व्यवहारों में बोली भाषा का ही उपयोग किया जाता है। "नंदीवाला समाज मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और कर्नाटक आदि राज्यों में फैला दिखाई देता है। परिवार, जात पंचायत और गोपनीय बाहर के व्यवाहारों में उनकी बोली भाषा का उपयोग किया जाता है।"[3] महाजात पंचायत के मौखिक नियम, धार्मिक विधि, त्योहारों में गाए जानेवाले गीत, कथाएँ, कहावतें, मुहावरें आदि के लिए तेलुगु बोली भाषा का प्रयोग किया जाता है। सभी नाते – रिश्तों के लिए इस बोली भाषा में स्वतंत्र शब्द दिखाई देते हैं। माँ, दादी, दादा, परदादा, पिता से लेकर मौसी, ससुर, सास तक ये शब्द प्रयुक्त हैं।–

माँ, नानी, परनानी – अम्म, अम्मम, मुदिअम्मम

पिता, दादी, परदादा – तंडी, तंडीम, मुत्तातता

बड़े चाचा के लिए पेदनान्ना और चाची के लिए सिन्नमा छोटे चाचा के लिए चिन्नान्ना और छोटी चाची के लिए पिन्नमा कहा जाता है। वधु के लिए पोर्लिल कुतुरू और नियोजित पति के लिए पोलिलकोडूकु कहा जाता है। सास के लिए अत्तागारू और ससुर के लिए माम्मगारू कहा जाता है। पति के लिए मुगोडु और पत्नी के लिए पेंडलल्लामु जैसे शब्द प्रयुक्त हैं।

सप्ताह के दिवसों के लिए आदिवारमु, सोमवारमु, मंगलवारमु, बुधवारमु, गुरुवारमु, शुक्रवारमु और शनिवारमु आदि,

रत्नों के लिए वज्रमु , (हिरा) गोमेधिकमु (गोमेध), पुष्यरागमु (पुष्यराज) पच्च (पाचु), माणिक्यमु (माणिक), नीलममु (नीलम), मुत्युमु (मोती)जैसे नाम प्रयुक्त हैं।

धातुओं के रूप में बंगारमु (सोना), उककु (इस्पात), वेंडि (चाँदी), रागि (तांबा), इत्ताडे (पीतल), सत्तू (जस्ता) इतुमु (लोहा) जैसे शब्द प्रयुक्त हैं।

संख्या की दृष्टि से देखा जाए तो ओकटि, रुंडू, मुडू, नालगु जैसे शब्द आ गए है।

महीनों के रूप में चैत्रमु, वैशाखमु, जेष्ठमु, आषाढ़मु

ऋतुओं के रूप में ऐडाकालमु, वर्षाकालमु, शीतकालमु, वसंतऋतुमु, ग्रीष्म कालमु, वर्षाकालमु

गहनों के रूप में कमल्लु (बाली) लोककुलु (छोटा झुमका) गाजुलु (चूडियाँ) मट्टेलु (बिछिया) गोलुसु (जंजीर) आदि

दिशाओं के रूप में तूर्प, उत्तरमु, दक्षिणमु, वायव्यमु

अवयवों रूप में गोडळलु (नख), कळलु (आखें), चेवुलु (कान)

फूलों के रूप में गुलाबिपुव्वु, कनकाम्बरपुव्वु (अबोली), मोगलिपुव्वु (मोगरा)

फलों के रूप में कमलापंडु (संतरा), मामिडिपंडु (आम), निम्मपंडु (नीम), के रूप में प्रयुक्त हैं।

इन शब्दों को देखने के बाद समझ में आता है कि लगभग ये सभी संज्ञाएँ उकारांत याने स्वरांत हैं। नंदीवाला समाज की बोली में महाप्राण व्यंजन नहीं दिखाई देते ज्यादातर अल्पप्राण व्यंजन प्रयुक्त हैं, जिन्हें बहुत कम वायु प्रवाह से बोला जाता है। शब्द के अंत में लगाया जानेवाला अंतिम वर्ण 'मु' पर तेलुगु का प्रभाव लक्षित होता है। तेलुगु की तरह उकारांत शब्द ज्यादा है। महाप्राण व्यंजन कम याने न के बराबर होने के कारण इस समाज की बोली में कोमलता आ गई है। तेलुगु में 'लु' प्रत्यय लगाकर संज्ञा का बहुवचन किया जाता है। नंदीवाला समाज की बोली में ज्यादातर 'ल' प्रत्यय लगाकर बहुवचन बनाया जाता है। उदा. शम्बु (लोटा) – शम्बुल, पोय (चूल्हा) – पोयल

नंदीवाला समाज की क्रियाओं के संबंध में देखेंगे तो इस बोली की क्रियाएं हिंदी की तरह वियोगात्मक नहीं हैं। ये क्रियाएँ संस्कृत की तरह संयोगात्मक दिखाई देती है। क्रियाओं की दृष्टि से देखा जाए तो मराठी तथा हिंदी भाषा की तरह इस बोली में पदक्रम है, लेकिन उद्देश्य तथा कर्म के लिंग वचन के अनुसार क्रिया के लिंग वचन में अंतर नहीं आ जाता। क्रिया संबंधी कुछ बातें अंग्रेजी भाषा की तरह दिखाई देती है। उदा.

1 पिलगाड पदाम पाडता हुंदद – लड़का गाना गाता है।

2 पिल्ला पदाम पाडता हुंदद – लड़की गाना गाती है ।

उद्देश्य के लिंग में परिवर्तन करने पर क्रिया में कोई अंतर नहीं आया।

उसीप्रकार उद्देश्य के वचन में परिवर्तन करने पर भी क्रिया में कोई अंतर नहीं आता। उदा.

1 पिलगाड उर्रकता हुंदद – लड़का दौड़ता है।

2 आंदर पिलगाड उर्रकता हुंदद – लडके दौड़ते हैं।

विशेषणों के संबंध में कहा जाय तो नंदीवाला समाज की बोली में ज्यादातर मूलावस्था के विशेषण दिखाई देते हैं। समृद्ध भाषा की तरह उत्तरावस्था तथा उत्तमावस्था के विशेषण नहीं दिखाई देते। गुणवाचक, संख्यावाचक, परिमाणवाचक, व्यक्तिवाचक, प्रश्नार्थक आदि सभी प्रकार के विशेषण इस बोली में दिखाई देते हैं।

निष्कर्ष –

भारत जैसे बहुभाषी देश में अनेक बोलियाँ बोली जाती हैं। इन बोलियों में लोककथा, लोकगीत विपुल मात्रा में हैं। हमारी संस्कृति, संस्कार, आचार- विचार, व्यवहारों के दर्शन इनके द्वारा होते हैं। भाषा संस्कृतियों का अध्ययन टालकर मानवी संस्कृति का अध्ययन कठिन है। प्रागैतिहासिक संस्कृति के अध्ययन के लिए बोली के अध्ययन की नितांत आवश्यकता है। बोलियाँ अगर जीवित रहेगी तो प्रमाण भाषाएँ जीवित रहेगी। बोलियाँ इतिहास, परम्पराएँ और सामाजिक विकास का महत्त्वपूर्ण अंग हैं।

बोलियों के लिए न तो व्याकरण है, न तो लिपि। बोलियों के लिए लिपि प्रदेयता का कार्य होना आवश्यक है। लिपि प्रदेयता के साथ – साथ इन बोलियों का व्याकरण बनाना होगा। हमारे संस्कृति की धरोहर – लोकगीत, लोककथाएं सुरक्षित रखनी होगी। नंदीवाला समाज की बोली के अध्ययन के लिए अनुसंधान की विविध दिशाएँ हैं। उसे देवनागरी लिपि प्रदान करते हुए उसका व्याकरण बनाना होगा। प्रौद्योगिकी की सहायता से इनकी बोली तथा साहित्य को सुरक्षित रखना होगा। नंदीवाला समाज की बोली का कार्पस निर्माण का कार्य शुरू करना होगा। इन बोलियों के लोगों को शिक्षा, व्यवसाय के लिए प्रांतीय भाषाओं में व्यवहार करना पड़ता है। परिणामस्वरूप इन बोलियों में प्रांतीय भाषाओं के शब्द आ गए हैं। इनका मूल रूप दब रहा है। कई बोलियाँ नष्ट हो रही हैं। नंदीवाला समाज की बोली के संबंध में भी यही हो रहा है। इस समाज के लडके प्रांतीय भाषा की पाठशालाओं में पढ़ते हैं। अपनी भाषा का आपस में प्रयोग करते समय शर्म महसूस करते हैं। अगर दूसरा कोई इनकी बोली का अध्ययन करने लगा है तो उसे मदद करने में झिझकते हैं। अपने घर में ज्यादातर प्रांतीय बोली का प्रयोग करते हैं। जब तक इस समाज के लोग इस समाज की बोली के अध्ययन के लिए सामने नहीं आएँगे, तब तक इस अध्ययन के लिए सही दिशा नहीं मिल पाएगी और बोली के अध्ययन में विश्वासहार्यता नहीं आएगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 Oxford Corpus Oxford English Dictionary, संस्करण 2000 पृ.1106

2 तिवारी भोलानाथ, भाषाविज्ञान, किताब महल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रस्तुत संस्करण 1991, पृ.78

3 चव्हाण बालासाहेब संतू – महाराष्ट्रातील नंदीवाले समाजाचे अंतरंग, ज्योतिचंद्र पब्लिकेशन, लातूर सं. 2012, पृ.48

'उपेक्षित विमुक्त -घुमंतू समुदाय की दास्तान हिंदी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में'

डॉ.सूर्यकांत शिंदे
हिंदी विभागाध्यक्ष
लोकमान्य महाविद्यालय,सोनखेड,नांदेड
ईमेल-suryakantshinde03@gmail.com
Mob-8208691286

सारांश

यह समाज भी अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा है। बहिस्कृत विमुक्त घुमंतू समाज आज भी आजादी के अमृत से वंचित है। स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी इन जनजातियों के उत्थान हेतु प्रयास उतनी मात्रा में नहीं हुये जितनी मात्रा में होने चाहिए थे। इन घुमंतू जनजातियों की अपनी एक अलग संस्कृति है,अपने रिवाज है,अपनी परंपरायें है।उसका जतन करते हुये उन्हे विकास की मुख्य धारा में लाने का प्रामाणिक प्रयत्न होना चाहिए। हिंदी कथा साहित्य में विशेषकर आधुनिक रचनाकारों ने इन समाज के कुछ अनछूये पहलुओं पर सुक्ष्मता से रोशनी डालने का प्रयत्न किया है।

बीज शब्द- विमुक्त, घुमंतू, समुदाय, साहित्य।

प्रस्तावना:-

आज हम देश के आजादी का अमृत महोत्सव बडी धुम-धाम के साथ मना रहे हैं।लेकिन आजादी के 75 वर्ष पूरे हो जाने के बाद भी हमारे देश की कई ऐसी जनजातियाँ हैं। जो आज भी विकास से कोसो दूर है। जिसमें प्रमुख है समाज से बहिस्कृत माने जानेवाला विमुक्त घुमंतू,अर्ध घुमंतू समाज जो आजादी के विकास रूपी अमृत से आज भी वंचित है। विशेष रूप से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में इन जनजातियों का विशेष योगदान रहा है।उनके संघर्ष और बलिदान के बिना स्वतंत्रता की संकल्पना पूरी नहीं हो सकती।लेकिन आजादी के बाद उनके संघर्ष और बलिदान को पूरी तरह से भूला दिया गया। योध्दा और लडाकू प्रवृत्ति के कारण अंग्रेजों ने उन्हे अपराधी घोषित किया लेकिन आजादी मिलने के बाद भी उनकी तरफ देखने की दृष्टि नहीं बदली यही इस जनजातियों की सबसे बडी विडंबना है। इसका प्रमुख कारण है उनका संघटित न होना।

" घुमंतू शब्द का शाब्दिक अर्थ है। 'घुमक्कड' जिनका कोई स्थायी निवास नहीं होता और अजिविका की तलाश में वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर घुमा करते हैं और घूमना उनका शौक नहीं बल्कि विवशता है।आज भी शिक्षा के अभाव में ये जातियाँ जानवरों से भी बदतर जीवन व्यतीत करने को विवश है। एक पक्षी भी घोंसला बनाकर रहता है,गली का जानवर भी एक स्थान खोज लेता है और जीवन भर वहाँ रह लेता है,लेकिन विमुक्त घुमंतू जनजातियों की यह विडंबना है की घर की चाह रखकर भी वे घर से वंचित है। मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ती के अभाव के साथ-साथ अपराधिक कलंक इन्हे ढोना पडता है"।एक तरफ मराठी,हिंदी,अंग्रेजी या अन्य भाषाओं में आत्मकथा,उपन्यास,कहानी आदि विविध विधाओं में विपूल मात्रा में लेखन हो रहा है।लेकिन विमुक्त घुमंतू समुदाय पर किसी भी भाषा के साहित्य में सृजन बहुत कम मात्रा में नजर आता है। वैसे देखा जाए तो अंग्रेजी साहित्य ने सबसे पहले विमुक्त जनजातियों की संवेदना को स्वर प्रदान किया है। मराठी साहित्य पर नजर डाली जाए तो सन 1980 में लिखित लक्ष्मण माने जी की आत्मकथा 'पराया' से घुमंतू समाज के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। इस आत्मकथा में घोरदरिद्रता,अछूतेपन और अज्ञानता के अंधकार में डूबा हुआ कैकाडी समाज का यथार्थ हमारे सामने आता है।इसके साथ साथ लक्ष्मण गायकवाड द्वारा लिखित 'उचल्या'(उठाईगीर) आत्मकथा में 'पारधी' जो अपनी उपजीविका के लिए छेटे –मोटे चोरी के अपराध करता है।।अंग्रेज सरकार ने तो उन्हे गुनहगार का ठप्पा लगा दिया था और आज भी उस समाज की ओर उसी रूप में देखा जाता है, यही सबसे बडी विडंबना है। एक अर्थ में देखा जाए तो विमुक्त जनजातियों की पहली पीढी जब शिक्षित हुयी तब उन्होने अपने समाज की दशा और दिशा को अत्यंत सजीवता के साथ शब्दबद्ध किया है।

हिंदी कथा साहित्य में जनजातीय विमर्श-

आधुनिक हिंदी साहित्य के अनेक रचनाकारों ने समाज में उपेक्षित जनजातियों की संवेदना को लेकर लिखा है। जिनमें डॉ.रांगेय राघव एक महत्वपूर्ण रचनाकार है।डॉ.रांगेय राघव स्वातंत्र्योतर काल के एक बहुमुखी प्रतिभा संपन्न समाजवादी उपन्यासकार है। जिन्होने ऐतिहासिक ,आंचलिक,जीवन चरित्रात्मक एवं सामाजिक उपन्यासों का विपुल भंडार अल्पकाल में सृजन किया है। "रांगेय राघव का उपन्यास 'कब तक पुकारूँ' 'कमीन' नामक खानाबदोश समाज को आधार बनाकर रचा गया है,जिनके नाम के आधार पर 'कमीना'नामक गाली का ईजाद हुआ है,जिसका प्रयोग खुल्लम-खुल्ला 'नीचता'घटियापन आदि के अर्थ में किया जाता है।इस निरक्षर सामाजिक समूहों ने यह धारना भी बना ली हो कि इन्हे धार्मिक एवं परंपरागत रूप से अपराध भी करना है। वस्तुतः यह हमारे आधुनिक समाज की विडंबना ही है,जो इन समुदायों को वस्तुस्थिति से अवगत न करा सका, उन्हे उनकी पारंपरिक अँधेरी दुनिया से बाहर न ला सका, वहाँ तक शिक्षा की पर्याप्त रोशनी न ले जा सका"। आज समय के साथ-साथ बढती गरीबी की मार ने इनके स्वाभिमान को कुचलकर अनेक समुदायों को भीख माँगकर गुजारा करने को बाध्य किया है,हमारे तथाकथित सभ्य समाज के अपमानजनक रवैए एवं दुत्कारपूर्ण व्यवहारोंने इस समाज के स्वाभिमान को गहरी चोट पहुंचायी है। प्रस्तुत उपन्यास राजस्थान के बैर ग्राम तथा उसके निकटवर्ती प्रदेश में रहने वाले नटों की उपजाति करनट के जीवन व्यापार की कथा है,इसमें जमींदारों द्वारा शोषित जाति की विवशताओं का विस्तृत वर्णन मिलता है।

इसी प्रकार डॉ.रांगेय राघव द्वारा लिखित दुसरा उपन्यास '**धरती मेरा घर**'में गडिये लुहारों के जीवन के कुछ अनछूए और अनदेखे पहलुओं पर प्रकाश डाल गया है।अपने ही सिध्दातों,आदर्शों और जीवन मूल्यों पर जीनेवाले ,कभी घर बनाकर न रहनेवाले,खानाबदोशों की तरह जीवन यापन करनेवाले इस समाज का सजीव वर्णन इस उपन्यास में है।

इसी प्रकार उदयशंकर भट्ट द्वारा लिखित '**सागर लहरें और मनुष्य**'उपन्यास में महानगरी मुंबई के पश्चिम तट पर स्थित बर्सोवा गाँव के मछुआरों और माहिम के कोलियों का जीवन चित्रित हुआ है।इन दोनों जनजातियों का रहन-सहन,स्वभाव,रीति-रिवाज,त्यौहार जैसे नारियल-पूर्णिमा,यौन सम्बध,आर्थिक स्थिति-गरीबी,सिनेमा का प्रभाव आदि को सजीवता के साथ चित्रित किया गया है।उनके गीत और नृत्य उनके सांस्कृतिक जीवन की झाँकी प्रस्तुत करते है।,तो शराब,गांजा आदि मादक द्रव्यों का प्रयोग ,उनके सेवन के बाद लडाई-झगडे,मार-पीट,गाली-गलौज उनकी हीन दशा का संकेत करते है।

इसी के साथ ही वृंदावनलाल वर्मा द्वारा लिखित '**कचनार**' उपन्यास की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है। उपन्यास का घटना काल 1792 से 1803 के मध्य का है।प्रस्तुत उपन्यास में गौड जनजाति को केंद्र में रखकर उनकी विडंबना को दर्शाया गया है। वैसे प्रेमचंदोत्तर काल के उपन्यासकारों में वृंदावनलाल वर्मा सर्वाधिक ख्याति प्राप्त उपन्यासकार है।

अन्य उपन्यासकारों में मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास **'अल्मा कबूतरी'** में बुंदेलखंड क्षेत्र की जनजाति महिलाओं की दास्तानों को उजागर किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में कबूतरा जाति की आपराधिक प्रवृति के कारण महिलाओं को होनेवाली परेशानियों का यथार्थ चित्रण मिलता है।आजादी के पश्चात भी कुछ जनजातियों की स्थिति में सुधार नहीं आया और आज भी उनकी हालत दयनीय है। इस उपन्यास का प्रमुख पात्र रायसिंह कहता है-'आजादी के बाद का सडा हुआ दुर्गंध मारता इतिहास.....कॉपी के पन्ने चिंदी-चिंदी कर डाले।झूठा मूँह-झूठी इबारत। बोलने के लिए बोले गए चमत्कारी जुमलो,ढोंग,गंदा खेल"।

सदियों से अपनी अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्षरत बुंदेलखंड की कबूतरा जनजाति कथावस्तु की आधारभूमि है।इसके माध्यम से कबूतरा जनजाति के जीवन संघर्ष की वास्तविकता को दर्शाने का प्रयास किया गया है।कबूतरा जनजाति के लोग सभ्य समाज का हिस्सा बनना चाहते है।परंतु सभ्य समाज इन्हे जंगलों में छिपने के लिए मजबूर करता है। जनजाति की स्त्रियाँ या तो शराब की भट्टियों पर या किसी के बिस्तरों पर मिलती है। उपन्यास में आल्मा नामक युवती के माध्यम से आदिवासी समाज की स्त्रियों की दयनीय व्यथा को मैत्रेयी पुष्पा ने रेखांकित किया है।

आधुनिक हिंदी साहित्य के एक महत्वपूर्ण रचनाकार के रूप में भगवीनदास मोरवाल को पहचाना जाता है। '**रेत**'उनका चर्चित उपन्यास है।प्रस्तुत उपन्यास में मोरवाल जी ने 'कंजर' समाज के अंतर्बाह्य पक्षों को उजागर करने के साथ-साथ उनके शोषण एवं

संघर्ष की अभिव्यक्ति की है।इस उपन्यास की कथा के केंद्र में है-हरियाणा राज्य का एक गाँव-'गाजूकी'गाजूकी गाँव के 'कमला सदन'के माध्यम से लेखक ने कंजर जनजाति का रहन-सहन और संघर्षपूर्ण जीवन –यापन उपन्यास में प्रस्तुत किया है। कंजर याने काननचर अर्थात जंगल में घूमनेवाला।कंजर एक ऐसी जनजाति है,जो ब्रिटिश शासनकाल में 'अपराधी जनजाति'करार दी गई थी। इस उपेक्षित जनजाति के लोग वेश्यावृति अपनाकर तथा शराब बनाने का व्यवसाय कर अपना जीवन निर्वाह करते है।इस जनजाति की अधिकांश स्त्रियाँ वेश्यावृति अपनाकर अपना जीवन निर्वाह करती है। वेश्यावृति का यह व्यवसाय कोई चाहकर भी छोड नहीं सकती ,क्योंकि तथाकथित इज्जतदार समाज इन्हे अपनाने के लिए तैयार नहीं होता । कंजर जनजातियों की स्त्रियों का शोषण इज्जतदारों द्वारा ही नहीं बल्कि प्रशासन व्यवस्था के द्वारा भी किया जाता है। प्रस्तुत उपन्यास में भारतीय समाज के एक ऐसे उपेक्षित वर्ग की नितांत यथार्थपरक दास्तान प्रस्तुत करता है। तथाकथित व्यवस्था ने सदियों से समाज को गहरे अंधकार के गर्त में डाल दिया है और दैहिक शोषण को उनकी नियति बना दिया है।उपन्यास में आर्थिक,राजनीतिक,सामाजिक व धार्मिक सभी दृष्टि से कंजर जनजाति को केंद्र में रखकर गहन चिंतन प्रस्तुत किया है।

हिंदी साहित्य में और एक चर्चित उपन्यासकार है मणि मधुकर,जिन्होने 1981 में **'पिंजरे में पन्ना'** उपन्यास लिखकर उपेक्षित जनजाति की दास्तान को हमारे सम्मुख रखा है। प्रस्तुत उपन्यास के केंद्र में रेगिस्तान का गाडिया लुहार जनजाति है।इस उपन्यास में गाडिया लुहार समाज का विस्थापित जीवन यथार्थ की अनुभूति कराता है। 'सुरध्याणी ख्याल' मंडली की कलाकार पन्ना का जटिल जीवन और प्रेम की एक बारीक-सी लहर कथानक को जीवंत बनाती है। पन्ना स्त्री अस्तित्व के लिए एक तरफ अपने प्रेम को त्यागती है,तो दूसरी तरफ सामंती अहंकार से टक्कर लेती है। आखिर सामंती साजिशों के बीच उसका जीवन दम तोड देता है।लेकिन उपन्यास की दूसरी स्त्री पात्र रम्या उन्ही चुनौतियों का सामना करने को तैयार है। उपन्यास का यह कथन बहुत कुछ कह जाता है-"पन्ना तो बार-बार जन्म लेती है-----।" 'लेकिन हर बार उसके लिए एक पिंजरा तैयार होता है। मैं उस पिंजरे को तोडूँगी'। इस प्रकार गाडिया लुहार जनजाति की यथार्थ और सजीव अभिव्यक्ति इस उपन्यास में देखने को मिलती है।

इसके साथ ही साथ हिंदी की चर्चित लेखिका शरद सिंह द्वारा लिखित **'पिछले पन्ने की औरतें'** उपन्यास भी उपेक्षित जनजातियों की समस्याओं को मुखर स्वर प्रदान करता है। यह उपन्यास मध्य-प्रदेश के बुंदेलखंड इलाके के बेडिया समुदाय की स्त्रियों के जीवन पर आधारित है।लेखिका ने बेडिया समुदाय के इतिहास,संस्मरणों,लोककलाओं एवं किवदंतियों के माध्यम से बेडनियों के जीवन के नंगे यथार्थ को उपन्यास में चित्रित किया है। भारत की अन्य खानाबदोश जनजातियों की तरह बेडिया जनजाति भी घुमंतू जाति है। वर्तमान समय में बेडिया समुदाय मध्य-प्रदेश के सागर जिले और उसके आसपास विशेषकर 'पथरिया बेडनी'नामक गाँव में बसा हुआ है।इस समाज की स्त्रियाँ 'राई'नृत्य करती है।बुंदेलखंड के इलाके में यह नाच काफी प्रसिद्ध है और इसके लिए बेडनियों को विशेष तौर पर बुलाया जाता है।द्वार पर बेडनी का नाच यहाँ सामजिक प्रतिष्ठा का प्रतिक माना जाता है। लेकिन दूसरी तरफ राई नृत्य के बहाने बेडनियाँ देह व्यापार में संलग्न है। एक अर्थ में वह देह व्यापार जैसे अवैध्य कृत्य करने के लिए मजबूर है।

" देह व्यापार की लगातार आवश्यकता ने बेडियाँ औरतों के जीवन में कभी स्थायित्व नहीं आने दिया। समाज में इन औरतों की उपस्थिति का अनुभव तो किया जाता है।,किंतु इनके प्रति संवेदना दिखाई नहीं जाती। अधिकांश लोगों के लिए ये औरतें बेडनी मात्र है,जिन्हे नचाया और भोगा जा सकता है।,जिन्हे परंपरा की जंजिरों में जकड कर बंधुआ बनाए रखा जा सकता है। लेकिन उन्हे विकास की मुख्य धारा में जोडने का प्रयास नहीं होता।

स्त्री विमर्श पर आधारित इस उपन्यास में सदियों से पीडित,शोषित और उपेक्षित स्त्रियों की जीवन दशाओं को यथार्थ अनुभूति के साथ रेखाकित किया गया है।'

निष्कर्ष: उपरोक्त विवेचन के आधारपर कहा जा सकता है कि,नारी विमर्श,दलित विमर्श,आदिवासी विमर्श की तरह ही विमुक्त घुमंतू जनसमुदाय की भी अपनी समस्याएँ है,अपनी संवेदनाएँ है। यह समाज भी अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा है।

बहिस्कृत विमुक्त घुमंतू समाज आज भी आजादी के अमृत से वंचित है। स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी इन जनजातियों के उत्थान हेतु प्रयास उतनी मात्रा में नहीं हुये जितनी मात्रा में होने चाहिए थे। इन घुमंतू जनजातियों की अपनी एक अलग संस्कृति है,अपने रिवाज है,अपनी परंपरायें है।उसका जतन करते हुये उन्हे विकास की मुख्य धारा में लाने का प्रामाणिक प्रयत्न होना चाहिए। हिंदी कथा साहित्य में विशेषकर आधुनिक रचनाकारों ने इन समाज के कुछ अनछूये पहलुओं पर सुक्ष्मता से रोशनी डालने का प्रयत्न किया है। यदि इन्हे स्थायी निवास,शिक्षा,रोजगार,सम्मान दिया जाए, उनके उपर का अपराधिक कलंक मिट जायेगा और वे भी सभ्य समाज की मुख्य धारा में आ जाएंगे, आवश्यकता है उनकी तरफ मानवीय दृष्टिकोन से देखने की.....।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1)डॉ.सूर्यनारायण रणसुभे-उठाईगीर।
2)संगीता कोठियाल-बाते कही-अनकही(14दिसंबर,2020)
3)डॉ.प.ज.हरिदास-हिंदी-मराठी उपन्यास कोष(1860-1960)
4)मैत्रेयी पुष्पा-आल्मा कबूतरी पृ.सं.104
5)भगवानदास मोरवाल-रेत।
6)डॉ.रामानंद कुलदीप-रेत-उपेक्षित वर्ग की यथार्थपरक दास्तान।
7)मणि मधुकर-पिंजरे में पन्ना पृ.सं.147
8)डॉ.कृष्णा जाखड-मणि मधुकरःभाषाई अस्तित्व का लेखक।
9)स्तुति राय-समीक्षा-पिछले पन्ने की औरतें।

विमुक्त और घुमंतू जन समुदाय: दशा और दिशा
('उचक्का' आत्मकथा के संदर्भ में)

सुभाष विष्णु बामणेकर,
शोधछात्र, हिंदी विभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
दूरभाष- 7875586916, 8408823041
ई-मेल : bamnekarsv@gmail.com

सारांश

घुमंतू समुदाय भी हमारी तरह मानवीय संवेदनाओं से युक्त है। इन्हें भी पीड़ा होती है। घुमंतू समुदाय को पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक हो या फिर राजनैतिक हो हर क्षेत्र में इनके साथ अपनी सोच को बदलने की जरूरत है ताकि मिलजुलकर समाज की मुख्यधारा से जुड़े रहे और एक सामान्य जीवन जी सके। सरकार अब इनकी तरफ ध्यान दे रही है। उन्हें अनेक प्रकार की सुविधाएँ दे रही है। समाज में उनका आर्थिक और सामाजिक शोषण होता आ रहा है। इसके लिए समाज उनकी तरफ ध्यान देना और उनके जीवन में परिवर्तन लाना आवश्यक है।

बीज शब्द- घुमंतू, समुदाय, उचक्का, जाति।

प्रस्तावना

21 वीं सदी विमर्शों की सदी है। चाहे वह दलित विमर्श, नारी विमर्श, आदिवासी विमर्श, विकलांग विमर्श, कृषक विमर्श, मीडिया विमर्श, पर्यावरण विमर्श, वृद्धावस्था विमर्श, किन्नर विमर्श या घुमंतू, विमुक्त जन समुदाय विमर्श आदि। विमुक्त घुमंतू जन समुदाय को समाज-वर्ण व्यवस्था और वर्ग व्यवस्था ने नकारा है। उन्हें हजारों वर्षों से मनुष्य के रूप में इस व्यवस्था द्वारा नकारा गया है। समाज में रहकर भी इनको अपने जीवन को व्यतीत करने के लिए अनेक सवाल इनके सामने आज भी खड़े हैं। रोजी-रोटी के सभी साधन और सभी मार्ग इनके लिए बंद कर दिए गए और इस कारण अनेक गुनहगार गतिविधियों को यह विमुक्त और घुमंतू समुदाय अपनाता है।

'घुमंतू' शब्द का अर्थ है, 'घुमक्कड़' जो बिना कारण इधर-उधर घूमे अथवा जब कोई शौक से अनुभव लेने को, ज्ञान-प्राप्ति हेतु यात्राएँ करता है, जिसके लिए खूब पैसा और समय चाहिए। इनको एक शब्द 'जनजाति' विशेष है।

घुमंतू जनजातियाँ यानी वे विशेष जातियाँ जिनका कोई स्थायी निवास नहीं होता और आजीविका की तलाश में भटकना। एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमना इनका शौक नहीं इनकी विवशता है। घुमंतू विमुक्त जनजातियों में लगभग 840 जातियाँ हैं।

15 अगस्त 1947 को भारत को आजादी मिली किंतु घुमंतू, अर्ध घुमंतू जनजातियों को 31 अगस्त, 1952 को स्वतंत्रता मिली। तब उन्हें विमुक्त घोषित किया गया। घुमंतू जनजातियाँ निरंतर भौगोलिक गतिशीलता बनाए रखती हैं।

रोजी-रोटी और छत पाने के लिए सभी कानूनी रास्ते बंद हो जाने के कारण चोरी कर जीनेवाला समाज एक ओर है तो कानून के अंतर्गत कानूनी ढंग से करोड़ो की चोरी करनेवाला तथाकथित प्रतिष्ठित और सुशिक्षित समाज दूसरी ओर है। बदलते समय के साथ घुमंतू जन समुदाय की इस व्यवस्था में स्थित कथाकथित, प्रतिष्ठितों, बुद्धिजीवियों और मध्यमवर्गीयों को समाज के दुःखों की कल्पना हो इसलिए लेखक लक्ष्मण गायकवाड़ जी ने 'उचक्का' आत्मकथा लिखकर समाज के सामने विमुक्त और घुमंतू जन समुदाय की दशा और दिशा प्रकट करने का प्रयास किया है।

'घुमंतू' जनसमुदाय की दशा और दिशा लेखक ने 'उचक्का' इस आत्मकथा के सहारे के समाज के सामने लाने का प्रयास किया है। जिनके पास न कोई अपना गाँव है, न खेत, न कोई जाति और न ही रोजी-रोटी के लिए साधन। प्रस्तुत आत्मकथा में लेखक ने लातुर तहसील के धनेगाँव नामक गाँव की उठाईगीर जाति का वर्णन किया है जिसमें उनका जन्म हुआ। यह जाति अपना घर-परिवार चलाने के लिए दूर-दराज के फैले गाँवों में वह जेब काँटना, उठाईगिरी करना यह धंदा करती है। इस संदर्भ में लेखक कहते हैं-"इस धनेगाँव को ही मैं अपना 'वतन का गाँव' कहता हूँ। जब मैं छोटा था तब मेरे घर पर घास-फूस का छप्पर था। यह छप्पर मुझे गौरैया के घोंसले की तरह लगता। जमीन पर बैठकर रेंगते हुए ही हम सबको इस घर के भीतर जाना पड़ता था। दादी

नरसाबाई घर का खर्चा चलाती थी। दादा बेकार हो चुका थ। उसे दिन में दो बार पुलिस स्टेशन में हाजिरी लगवानी पड़ती थी। इस कारण वह कोई काम नहीं कर सकता था। वैसे बहुत पहले से हमारा पूरा घर दादा लिंगप्पा ही चलाता था।"[1]

रोटी की जिम्मेदारी निभाने के लिए कभी-कभी जान भी गँवाने का धोखा था। घर में बुजुर्ग ही घर का सारा खर्चा उठाता है। लेकिन पुलिस का डर मन में समय-समय पर था। एक दिन दादाजी से जेब काँटते समय समय बाजार में शराब के नशे में चोरी करने गया और धोती में बड़ी हिपाजत से रखे पैसों को चुराना उसके लिए शिकार के पास गया और नशे की हालत में उस आदमी को ब्लेड गलत जगह पर मारकर चोरी करके भागने में असफल होते हैं। पुलिसवाले पकड़ते है और बहुत पिटाई करते है। पुलिस का अन्याय भी सहन करना पड़ता है।

पुलिसवालों ने जाँच करने के लिए उसे पकड़ा और मारा भी। पुलिस उसे कहते हैं, "बोल कहाँ रखा है पैसा, सोना-बोल, नहीं तो बहुत पिटाई होगी।" दादा कह रहा था "देखो साब, घर में कहाँ कुछ है।" पुलिसवालों ने कहा, "तेरी राँड को मालूम होगा।" और दादी के बालों को खींच वे उसे भी पीटने लगे। मेरी माँ, धोंडाबाई पुलिस आई है यह सुनकर ही जंगल की ओर भाग गई थी।"[2]

आर्थिक संकट के कारण घर चलाना कठिन होता है और पेट का सवाल चूप बैठने नहीं देता लेकिन घर के सदस्यों को भी इसकी त्रासदी भुगतनी पड़ती है। घुमंतू समुदाय के सामने सबसे बड़ा सवाल है पेट का। कहाँ जाए? और क्या खाएँगे? इसी तरह वे दर-दर भटककर अपना पेट भरते हैं। लेकिन इसके लिए उनकी बहुत पिटाई होती है। एक-एक महीनों तक जेल में रखा करते हैं। इसी कारण इस समुदाय की बहुत दयनीय स्थिति है।

इस समूह के सामने आर्थिक संकट के साथ जाति-व्यवस्था तथा बेरोजगारी का भी संकट है। इसके बारे में लेखक करते हैं-"मेरे पिताजी मारतंड बाबा को 'यह उठाईगीरों की हाति का है' कहकर लोग मजदूरी का कोई काम न देते। माँ धोंडाबाई को भी खेतों पर काम न दिया जाता।"[3]

उठाईगीरों जाति के लोगों को गाँव तथा आसपास के गाँव रोजगार या खेती का काम करने कोई भी बुलाता नहीं। और इसी कारण उन्होंने अपराधिक गतिविधियों में चोरी करना यही मार्ग अपनाया। इसी के आधार पर वे अपना परिवार चलाते। गाँव के बाहर जाना हो तो पुलिस पाटील का प्रमाणपत्र लेना पड़ता था। और वो भी यह देने के लिए बड़ी घूस लेता। प्रमाणपत्र के बगैर यह समुदाय कहीं भी घूम नहीं सकता। ठीक जानवर की तरह इस बिरादरी का हाल दिखाई देता है।

उठाईगीरों के घर में भी परंपरा नजर आती है। इस संदर्भ में लेखक कहते हैं- "अब हमारे घर में चोरियाँ करनेवाले तीन सदस्य हो गए। अण्णा या भाऊ के साथ बहन के पीछे रहकर सामान सँभालने के लिए मैं कभी लातूर, अंबाजोगाई या रेणापुर के साप्ताहिक बाजार जाता। चोरी का सामान लाकर वे मुझे सौंपते, मैं सँभालने बैठता।"[4]

बेरोजगारी के कारण घर में आनेवाली पीढ़ी को भी यह करना पड़ता। चोरी करके अपनी जिंदगी गुजारनी पड़ती। कथा में चोरी करने के लिए धोबी के दो बच्चों की नीलामी होती है। इससे स्पष्ट है कि आगे चलकर वे बच्चे बड़े होकर सफल चोर बनेंगे। यही इस समुदाय की मानसिकता भी दिखाई देती है।

समुदाय के लोग बच्चों को स्कूल नहीं भेजते। वे उन्हें चोरी करना ही सिखाते हैं। जंगल में रहने के कारण उनको अलग नजर से देखा जाता है। कभी-कभार समाज से उन्हें बहिष्कृत किया जाता है। कथा में जात-पंचायत बुलाकर निर्णय लिया के मारतंड गाँव छोड़े अथवा लक्ष्या को स्कूल भेजना बंद करें। "अरे मारतंड, अपनी जाति में आज तक कोई पढ़-लिख सका है क्या? अपने बच्चे अगर स्कूल जाने लगे, तो हम सभी का वंश डूब जाएगा। यल्लामा देवी का प्रकोप हो जाएगा। देख मारतंड, हम फिर कहते हैं कि लक्ष्या को स्कूल से निकाल ले। अगर वह फिर स्कूल गया तो हम जात-पंचायत बिठाएँगे और तुझे बहिष्कृत करेंगे।"[5]

घुमंतू समुदाय में शिक्षा के बारे में भी निरसता दिखाई देती है। समुदाय पर धर्मांधता का प्रभाव दिखाई देता है। उन्हें बच्चों के भविष्य के बारे में भी कोई चिंता नहीं दिखाई देती।। शिक्षा के अभाव में ये जातियाँ जानवरों से बदतर जीवन व्यतित करने को विवश है। संसार में सभी जीव अपना घर बनाकर जीवन बिताते हैं। एक पक्षी भी घोंसला बनाता है, गली का जानवर भी एक स्थान खोज लेता है, जीवनभर उसी में वह रहता है लेकिन घुंमंतू लोगों को जिंदगी अपना खुद का घर नहीं मिलता।

शिक्षा के अभाव के कारण इस समाज में अंधश्रद्धा भी दिखती है। इधर-उधर घूमने के कारण ईश्वर, भगवान, अल्लाह को अलग-अलग प्रकारों से प्रसंन्न कराने का प्रयास करते हैं। करीम चाचा ने 'देवी माँ' के सामने बकरे बली चढ़ाते समय कहा-"या अल्लाह।"[6] और बकरे का सिर धड़ से अलग कर दिया। मंदिर के सामने वह गड्ढा खून से भर गया था। करीम चाचा ने बकरे क चारों पैरों को तोड़ दिया। कटा हुआ सिर और चारों पैर माँ की मूर्ति के सामने रख दिए।

घुमंतू समाज में परंपरा को ज्यादा महत्त्व दिया है। जन्म से ही शिशु अपराधी श्रेणी में मान लिया जाता है। इसी कारण वह अपना घर नहीं बनाते। जात-पंचायत को महत्त्व दिया जाता है। रूढ़ियों से समाज में विवाह की परंपरा रूढ़ है। कहते हैं-"हमारे यहाँ पति अपनी पत्नी को कभी भी छोड़ सकता है। दूसरी शादी कर सकता है। इसके लिए उसे जात-पंचायत में जाना पड़ता है। शादी का खर्च लौटाकर पति-पत्नी एक-दूसरे से अलग हो सकते हैं। अगर स्त्री अलग होना चाहती है, तो पति जितना कहेगा, उतना विवाह का खर्च लौटाकर वह उससे अलग हो सकती है। अगर पुरुष पत्नी को छोड़ना चाहता है, तो पत्नी का बाप विवाह का जितना खर्च माँगता है, उतना उसे देकर वह अलग हो सकता है।"[7]

घुमंतू समाज के सामने पेट का सवाल खड़ा है। उन्हें एक दिन का खाना पेट भरकर नहीं मिलता। हमेशा पेट का बड़ा सवाल इस समुदाय के सामने होता है। समाज में रहकर भी उन्हें पेट भरने के लिए चोरी जैसे अपराध करने पड़ते हैं। उन्हें पेट भरने के लिए कई जगहों पर घूमना पड़ता है। पेट के लिए भटकते समय ठीक से खाना-पीना तो दूर की बात नहाना-धोना, पानी, शौचालय जेसे मुलभूत सुविधाएँ भी नहीं मिलती। कुछ सामाजिक दबाव और कुछ व्यक्तिगत विवशताओं के चलते वे जाने-अनजाने में असामाजिक कार्यों से जुड़ते चले जाते हैं। उनके पास अेनक गुण, कला, नृत्य संगीत आदि का ज्ञान होता है लेकिन समाज और सरकार इन्हें संरक्षित करके उनका विकास कैसे हो इसकी तरफ ध्यान देना आवश्यक नहीं समझता। घुमंतू समाज के विकास के लिए इसकी ओर ध्यान देना आवश्यक है।

'उचक्का' में घुमंतू समुदाय की दयनीय स्थिति दिखाई देती है। उनकी मजबूरी, भूख के कारण होनेवाली छटपटाहट, उनकी दरिद्रता, जीवन जीते समय अनेक कठिन प्रसंगों का सामना करना पड़ता है। जीवन में पेट का सवाल बड़ा है। पेट के लिए कुछ भी करने के लिए आदमी तैयार होता है। इस संदर्भ में लेखक लिखते हैं-"पंढरपुर की यात्रा के दरमियान एक स्त्री चूल्हे पर पतीली में चावल पका रही थी। तभी उठाईगीरों में शर्त लगी की वह चावल की पतीली को गायक करने पर चर्चा होती है। तभी जावली के संतराम जीजा ने कहा कि "मैं उठाईगीर की सच्ची औलाद हूँ। और जीजा और भाड़गाँव के सघाराम में शर्त लगी।"

घुमंतू समुदाय को खाने के लिए चोरी भी करनी पड़ती है, और समाज में सुख-सुविधाओं से वंचित भी रहना पड़ता है। सभ्य समाज भी एकतरफ और न्याय दिलानेवाले पुलिस भी किस प्रकार से शोषण करते हैं इसका वास्तव चित्रण लेखक लक्ष्मण गायकवाड़ ने किया है। इसी समाज के प्रति समाज को थोड़ी-सी भी दया नहीं है। उनके सामने खाने की समस्या है। इस संदर्भ में लेखक कहते-'पेटभर खाना नहीं मिलता, शिक्षा अभाव के कारण कहीं भी नौकरी नहीं मिलती थी।' घुमंतू समाज को पेट के लिए इधर-उधर घूमना पड़ता है। स्थान बदलकर जीवन व्यतीत करना और उसी कारण पाठशाला में प्रवेश नहीं लिया जाता। अतः शिक्षा के अभाव के कारण समाज में अंधविश्वास भी देखने को मिलता है। "बेर और रुचिक के पेड़ के बीच ही शौच को बैठना चाहिए। ठीक एक माह बाद इन दोनों पेडों के बीच रुपए का एक सिक्का किसी का मुँह न देखते हुए जमीन में गाड़ देना चाहिए। इससे यह होगा कि आदमी के पास कितने भी रुपए आए, खर्च हो जाएँ, एक रुपए हमेशा जेब में बचा रहेगा।"[8]

ऐसा अंधविश्वास भी घुमंतू समाज की संस्कृति में दिखाई देता है। एक अंधविश्वास के कारण लेखक कहते है कि इतनी भयावह स्थितियों का सामना करना पड़ता था। वे पुरानी यादों के कारण आज भी बेचैन हो जाते हैं।

कथा में इसी समाज के अंतर्गत वर्णव्यवस्था का भी भेद दिखाई देता है। अमीर-गरीब के बारे में लेखक शोभा को कहते हैं-"शोभा, मैं बहुत गरीब हूँ। तुम तो अमीर लड़की हो। हम दोनों को कोई देख लें; तो लोग क्या समझेंगे?"[9] मित्र, प्रेम, अपनेपन में भी गरीब, अमीर ऐसा भेद समाज में कई सालों से क्यों चलता आया है? इस प्रकार का सवाल लेखक के मन में उठता है। लेकिन घुमंतू के साथ अन्याय होता ही आ रहा है। उच्च-नीच का भेदभाव आज भी समाज में है। शोभा और लेखक एकदम करीब थे। लेखक उसके बारे में कहते हैं-"शोभा तुममें और मुझमें जमीन-आसमान का अंतर है। मैं बहुत गरीब हूँ। तुमसे प्रेम करने की योग्यता मुझमें नहीं है। हम दोनों प्रेम के कारण करीब आए और हम दोनों पाक हैं। अब आगे मेरे-तुम्हारे संबंध रहेंगे पर भाई-बहन की तरह।" शोभा को इसका बुरा लगा लेकिन समाज के बंधन, मजबूरी इसके कारण समाज में भेद स्पष्ट है। लेखक कहते अमीर होते हुए भी एक गरीब पर प्रेम करनेवाली शोभा को मैं कैसे भूल सकता हूँ।

इस कथा के हर पहलू को लेखक ने वास्तव पर चित्रित किया है। आर्थिक विवंचना भी इसमें दिखाई देती है। इसके बारे में कहा है-"मेरा बाबा मर गया है। लकड़ियाँ लाने के लिए मेरे पास पैसे नहीं है।" इससे स्पष्ट है कि घुमंतू समुदाय की कितनी दयनीय अवस्था है। लकड़ियाँ लाने के लिए भी इन लोगों के पास पैसे नहीं होते। उनकी अवस्था अत्यंत दयनीय होती है।

- **निष्कर्ष :**

अतः इसी आत्मकथा से लेखक ने घुमंतू विमुक्त जनजातियों का संगठन करने के लिए प्रयास किया है। यह समुदाय भी हमारी तरह मानवीय संवेदनाओं से युक्त है। इन्हें भी पीड़ा होती है। घुमंतू समुदाय को पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक हो या फिर राजनैतिक हो हर क्षेत्र में इनके साथ अपनी सोच को बदलने की जरूरत है ताकि मिलजुलकर समाज की मुख्यधारा से जुड़े रहे और एक सामान्य जीवन जी सके। सरकार अब इनकी तरफ ध्यान दे रही है। उन्हें अनेक प्रकार की सुविधाएँ दे रही है। समाज में उनका आर्थिक और सामाजिक शोषण होता आ रहा है। इसके लिए समाज उनकी तरफ ध्यान देना और उनके जीवन में परिवर्तन लाना आवश्यक है।

- **संदर्भ सूची :**

1. लेखक लक्ष्मण गायकवाड, अनुवाद- सूर्यनारायण रणसूभे, उचक्का, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2019, पृष्ठ 9
2. वही, पृष्ठ 10
3. वही, पृष्ठ 10
4. वही, पृष्ठ 17
5. वही, पृष्ठ 19
6. वही, पृष्ठ 25
7. वही, पृष्ठ 43
8. वही, पृष्ठ 64
9. वही, पृष्ठ 80
10. http://www.vskgujarat.com
11. http://www.patrika.com.jodhpur

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और घुमंतू समुदाय

अनिल विठ्ठल मकर,
शोधछात्र, हिंदी विभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर।
मो.नं. 9673417920
ई-मेल: anilmakar70@gmail.com

सारांश **(Abtract) :**

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में विभिन्न जनजातियों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। स्वतंत्रतापूर्व काल में अंग्रेजों के खिलाफ आवाज उठाने का जो साहस राजा-महाराजा नहीं दिखा पाए, वही काम इन घुमंतू समुदाय और विविध जनजातियों ने दिखाया है। इनमें रामोशी, भील, कोली, गौड़ आदि कई जनजातियों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने ही सबसे पहले अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह कर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की नींव डाली। अपने देश तथा समाज के लिए अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह करनेवालों में रामोशी समाज के नरवीर उमाजी नाईक का नाम सबसे अग्रणी है। उन्हें अंग्रेजों की गुलामी बिल्कुल मंजूर नहीं थे। इसलिए तो अंग्रेजों के राज में भी वे भोर संस्थान के 13 गाँवों का राजस्व वसूलते थे। उन्होंने छापामार पद्धति अंग्रेजों पर आक्रमण कर उन्हें परेशान कर दिया था। वे अपने आदमियों को अलग-अलग इलाके में बिखरकर एक साथ एक ही समय वे अंग्रेजों पर हमला करते। इसलिए अंग्रेज भी उन्हें बहुत डरते थे। इसी प्रकार घुमंतू जातियों ने पहले अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह करने का दिखाने के कारण ही अंग्रेजों के खिलाफ राजा-महाराजाओं का मनोबल बढ़ गया और सन 1857 का पहला स्वतंत्रता समर हो गया। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में अंग्रेजों के खिलाफ लडनेवाली अनेक घुमंतू जातियाँ ही थीं। उनेह इसी विद्रोही वृत्ति के चलते अंग्रेजों ने उन्हें अपराधी जातियों के श्रेणी डालकर उनपर बडे पैमाने पर अत्याचार किए। देश की आजादी में इन घुमंतू समुदाय का महत्त्वपूर्ण योगदान है लेकिन आजादी के बाद भी ये समुदाय उपेक्षित ही है। न उन्हें विकास की धारा में अपेक्षित स्थान मिला है न भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में।

बीज शब्द (Key Word) : घुमंतू समुदाय और स्वतंत्रता आंदोलन, नरवीर उमाजी नाईक, रामोशी समाज और स्वतंत्रता आंदोलन, घुमंतू समुदाय की उपेक्षा।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में विभिन्न जनजातियों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। स्वतंत्रतापूर्व काल में अंग्रेजों के खिलाफ आवाज उठाने का जो साहस राजा-महाराजा नहीं दिखा पाए, वही काम इन घुमंतू और विविध जनजातियों ने किया। इसमें रामोशी, भील, कोली, गौड़ आदि कई जनजातियाँ शामिल हैं। उन्होंने ही अंग्रेजों के खिलाफ पहले विद्रोह कर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की नींव डाली। इसी से राजा-महाराजाओं का मनोबल बढ़ गया और सन 1857 का पहला स्वतंत्रता समर हो गया। इसमें घुमंतू और अन्य जनजातियों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। फिर भी भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में इन घुमंतू जातियों को अपेक्षित स्थान नहीं मिला है।

विमुक्त घुमंत समुदाय में रामोशी समाज के योगदान के संदर्भ में विचार करें तो सन् 1857 के पहले स्वतंत्रता आंदोलन के पहले उन्होंने अंग्रेजों की जुल्मी और विस्तारवादी राजसत्ता के खिलाफ आवाज उठाया था। यह जाति प्रमुखता से महाराष्ट्र में मिलती है। शरीर से तगड़ी, शूर और साहसी यह जाति राजा-महाराजाओं के काल में किलों का बंदोबस्त और पहरेदारी का काम करती थी। वे खुद को निजाम के प्रदेश में होने वाले शोरपुर के राजा को प्रमुख मानते थे। गाँव का राजस्व इकट्ठा करने का काम भी वे करते थे। अंग्रेजों के आगमन के बाद उन्होंने विविध प्रदेशों पर वर्चस्व स्थापित किया। इसी के चलते इस रामोशी समाज को विविध कामों से उन्हें निष्कासित किया। इससे उनके रोजी-रोटी का सवाल निर्माण हो गया। इसी के चलते उनके मन में अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह की आग भड़क गई। उन्हें अंग्रेजों के निर्बंध उन्हें बिल्कुल मंजूर नहीं थे। इसी के चलते अंग्रेजों के विरोध में रामोशी

समाज एक हो गया। इसी समाज के साहसी, शूर योद्धा नरवीर उमाजी नाईक को अंग्रेजों की गुलामी बिल्कुल मंजूर नहीं थे। इसी के चलते वे अंग्रेजी राज का समय-समय पर विरोध करते रहे। वे अंग्रेजों के राज में भी भोर संस्थान के 13 गाँवों का राजस्व वसूलते थे। छापामार पद्धति से उमाजी नाईक के आदमी कब आकर आक्रमण करेंगे इसका भरोसा नहीं था। इसलिए अंग्रेज उन्हें बहुत डरते थे। उमाजी नाईक अपने आदमियों को अलग-अलग इलाके में बिखरकर रखते थे और एक साथ एक ही समय वे अंग्रेजों पर हमला करते। इस प्रकार उमाजी के नेतृत्व ने रामोजी समाज ने अंग्रेजों का परेशान कर दिया।

उमाजी नाईक ने 1824-25 में अंग्रेजों का भांबुर्डे का खजाना लूट लिया। उमाजी अमीरों का खजाना लूटते लेकिन गरिबों बिल्कुल परेशान नहीं करते। उन्होंने जेजूरी, सासवड, भिवरी, किकवी आदि कई जगहों पर लूटपाट अंग्रेजों को परेशान किया। इससे अंग्रेजों की कानून-व्यवस्था चरमरा गई। उन्हें जगह-जगह पर पुलिस चौकियाँ शुरू करनी पड़ी। उमाजी नाईक को पकड़ने के लिए अंग्रेजों ने बड़ा-बड़ा इनाम लगाया लेकिन जनता का विश्वास संपादन करने के कारण उमाजी अंग्रेजों के हाथ नहीं लगे। स्वतंत्रतापूर्व काल में अंग्रेजों के खिलाफ इस प्रकार लड़ना इतना आसान नहीं था लेकिन उन्होंने अपने साहस और शूरता के बल पर यह सब करके दिखाया। आखिर अंग्रेजों ने उमाजी को पकड़ने के लिए कूटनीति का अवलंब कर उसकी पत्नी और बच्चों को कैद किया। इससे वे खुद अंग्रेजों के स्वाधीन हो गए। इस दौरान अंग्रेजों ने उन्हें कैद करने के बजाय सातारा इलाके में कानून-व्यवस्था बनाए रखने की जिम्मेदारी सौंपी लेकिन नातेपुते, खटाव परिसर में उमाजी ने फिर विद्रोह की तैयारी शुरू करने खबर अंग्रेजों को मिलते ही उन्हें कैद किया। इससे वे छूट गए और उन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ का आंदोलन और तेज किया। उन्होंने अंग्रेज जहाँ दिखे, वहाँ उनका खात्मा करने का तथा अंग्रेजों को राजस्व न देने के आदेश दिए। साथ ही अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने के लिए अपने सरकार को समर्थन देने की अपील की। उन्होंने पुणे, सोलापुर, सांगली, सातारा, अहमदनगर, मराठवाडा आदि जगहों पर दंगे कर अंग्रेजों को परेशान किया। अंग्रेज व्यवस्था के खिलाफ कई दिनों तक उनका विद्रोह जारी था। इससे अंग्रेजों का खून खौल गया। पैसे लालच में उमाजी के ही साथियों ने गद्दारी करने के कारण वे पकड़े गए। आखिर अंग्रेजों ने 3 फरवरी, 1834 को अंग्रेजों ने उन्हें फाँसी दी। इस प्रकार उमाजी नाईक के नेतृत्व रामोशी समाज ने स्वतंत्रता के आंदोलन में योगदान दिया। उमाजी नाईक के बाद भी यह रामोशी समाज अलग-अलग राजाओं की सेनाओं में शामिल था। यह हुआ घुमंतू जातियों में से रामोशी समाज का योगदान। ऐसी कई घुमंतू जातियाँ हैं जिन्होंने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इनमें राजस्थान के मेवाड प्रांत का गाड़िया लोहार समाज भी हैं। जिन्होंने महाराणा प्रताप के काल में आजादी के जंग में भी उन्होंने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

यह शूर, साहसी घुमंतू जातियाँ ही अंग्रेजों की सबसे बड़ी सिरदर्द थी। सन 1857 के पहले भी इन घुमंतू जातियों ने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया और 1857 के स्वतंत्रता आंदोलन में भी उन्होंने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। "1857 के विद्रोह में इन सभी जातियों ने भाग लिया था। जिससे घबराकर यह कानून बनाया गया था। ये ऐसी जातियाँ थीं जो लगातार घूमती ही रहती थीं परंतु अंग्रेजों के अलावा भी कई जातियाँ थीं जो अंग्रेजों की सूची में नहीं थी।"[1] सन् 1857 के आंदोलन के बाद अंग्रेज शूर, साहसी घुमंतू जनजातियाँ की ताकत जान गई। अगर इन घुमंतू जातियों का बंदोबस्त नहीं किया तो भारत में राज करना मुश्किल होगा; यह अंग्रेज सरकार जान गई थी। अंग्रेज शासन-काल में लगाए गए विविध निर्बंधों के चलते घुमंतू जनजातियों को भी अपनी जीविका चलना मुश्किल हो गया। इससे विविध कारणों के चलते इन घुमंतू जातियों ने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह करना शुरू किया। यह शूर, साहसी और लढवैय्या जनजातियाँ राजा-महाराजाओं की सेना में भी थी। इसलिए इन घुमंतू जातियों का अंग्रेजों को डर लगने लगा। उन पर लगाम कसने के लिए अंग्रेज अधिकारी स्टीफन ने एक कानून बनाया। यह 'क्रिमिनल ट्राइब एक्ट' नामक कानून अंग्रेजों ने 1871 में लागू किया। इसके तहत इन घुमंतू जातियों को जन्मजात अपराधी घोषित किया। इसी प्रकार भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान देने के कारण लढवैय्या, शूर, साहसी घुमंतू जातियाँ अपराधी घोषित की गई। उनपर चोर, उठाईगीर का सिक्का पड़ गया। अंग्रेजों की करीब 53 देशों में सत्ता थी लेकिन यह कानून सिर्फ भारत में ही लागू किया था। इन

घुमंतू जातियों के स्वतंत्रतापूर्व काल में खुले जेल बनाए गए थें। अंग्रेजों को ज्यादा परेशान करनेवाली जातियों को इस जेल में रखा जाता था। उसमें इन लोगों से वहाँ के कारखानों पशुओं की तरह 18-18 घंटे तक काम करवा लिया जाता था। न ठीक से खाने के लिए दिया था न कोई सुविधा। काम न करने पर कोडे बरसाए जाते थे। महाराष्ट्र में भी चिंचवड, सोलापुर, पुणे, बारामती, जेजुरी, औरंगाबाद आदि जगहों पर ऐसे खुले जेल याने सेटलमेंट थे। उस दौरान देश में करीब 193 घुमक्कड़ जन-जातियों को अपराधी जातियों के रूप में घोषित किया था। जो खुले जेल में नहीं थे, उनपर पुलिस की कड़ी नजर रहती थी। जिन्हें नियमित रूप में पड़ोस के पुलिस थाने में हाजिरी देनी पड़ती थी। इसके पीछे यह जनजातियाँ अंग्रेजों के खिलाफ कोई योजनाएँ न बनाए, यही उद्देश्य था।

विडंबना की बात यह है कि स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान देने वाली इन घुमंतू जातियों के संदर्भ में लागू किया अपराधी जाति का कानून हटाने के लिए भी देश आजाद होने के बाद करीब पाँच साल लगाए गए। 31 अगस्त, 1952 को घुमंतू जातियों को अंग्रेजों के काल के अपराधी कानून से मुक्त किया गया। 11 अप्रैल, 1960 तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित नेहरू ने महाराष्ट्र के सोलापूर में इस अपराधिक कानून से मुक्त लोगों के लिए 'विमुक्त' याने 'विशेष रूप में मुक्त' शब्द का प्रयोग किया। तब से घुमंतू जातियों के साथ विमुक्त शब्द स्थायी रूप में जुड़ गया। आज देश में करीब इस समुदाय की 20 करोड़ आबादी है लेकिन उनके विकास की ओर ध्यान न देने के कारण आज भी वह रूढ़ी-परंपरा, अज्ञान, अंधविश्वासों में फँसा हुआ है। उनके विकास की ओर किसी भी सरकार ने विशेष ध्यान नहीं दिया है। स्वतंत्रता आंदोलन बाद भी इन जातियों की ओर शक की दृष्टि से देखा जाता है। उनके विकास की दृष्टि से गठित किए बालकृष्ण रेणके आयोग ने 2008 में तथा दादा इदाते आयोग ने 2018 में रिपोर्ट पेश करने के बावजूद उनकी सिफारिशों को लागू नहीं किया है। इस प्रकार घुमंतू जातियों को स्वतंत्रतापूर्व काल में और स्वतंत्रता के बाद भी उपेक्षा का ही सामना करना पडा है।

- **निष्कर्ष:**

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में विमुक्त घुमंतू समुदाय का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। जब राजा-महाराजाओं ने अंग्रेजों के खिलाफ आवाज उठाने का साहस नहीं दिखाय, वही साहस घुमंतू जनजातियों ने दिखाया दिखाई देता है। घुमंतू तथा अन्य विविध जनजातियों के विद्रोह के चलते ही सन् 1857 के पहले स्वतंत्रता समर की नींव डाली गई। भील, रामोशी आदि कई जातियों ने अंग्रेजों पर हमले कर हैरान कर दिया। नरवीर उमाजी नाईक ने रामोशी समाज को इकट्ठा का अंग्रेज सत्ता का कड़ा विरोध किया। इसी घुमंतू जातियों पर लगाम कसने के लिए अंग्रेजों ने उनके खिलाफ 1871 में क्रिमिनल ट्राइब्स कानून लागू किया और इन जातियों को जन्मजात अपराधी घोषित किया। उनपर अमानवीय अत्याचार किए गए। इस प्रकार घुमंतू समाज का स्वतंतत्रा आंदोलन में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

- **संदर्भ :**

1. hindi.webdunia.com/current-affairs
2. डॉ. नागनाथ कदम, महाराष्ट्रातील भटका समाज : संस्कृति व साहित्य (महाराष्ट्र का घुमंतू समाज : संस्कृति और साहित्य), प्रतिमा प्रकाशन, पुणे, प्र.सं. 1995
3. https://navbharattimes.indiatimes.com/life-of-tribes.

" 'उचक्का' आत्मकथा में चित्रित जनजातीय समस्याएँ "

शोधछात्रा - प्राजक्ता अंकुश रेणुसे
शिवाजी विश्वविद्यालय , कोल्हापुर
E mail - prajurenuse30@gmail.com
Mob no. - 8551829188

सारांश –

डॉ.सूर्यणानायण रणसूबे कृत अनूदित लक्ष्मण गायकवाड की ' उचक्का ' इस आत्मकथा में लोग आर्थिक विवंचना से ग्रस्त हैं यह लोग अपनी रोजी-रोटी के लिए और 'उठाईगीर' यह उन पर ठप्पा लगने के कारण यह लोग मजबूरी में आकार चोरी के मार्ग का अवलंब करते हैं। यह लोग एक जगह से दूसरे जगह स्थलांतरण करते हैं। इसतरह कही पर नौकरी न मिलने के कारण यह लोग चोरी कर रहे हैं और विमुक्त घुमंतू का बढ़ता प्रमाण हमारे सामने आ रहा।

बीज शब्द - उठाईगीर, घुमंतू, जनजातियाँ, विमुक्त

विश्व में अनेकानेक लोग किसी न किसी कारणवश घुमते रहते हैं। वैसे ही भारत में भी लोग घुमते रहते हैं कई लोग घुमने के लिए तो कई लोग अपनी रोजी-रोटी की तलाश में एक जगह से दूसरी जगह अपना स्थलांतरण करते हैं। इसतरह विमुक्त और घुमंतू समुदाय ऐसे ही लोगों को कहा जाता है जो लोग अपनी रोजी-रोटी के लिए एक जगह से दूसरी जगह या फिर एक स्थान से दूसरे स्थान अपना स्थलांतरण करते है उन्हें विमुक्त समुदाय कहा जाता है। पिछले कई सालों से यहाँ तक कि अंग्रेजों के काल से यह समुदाय अस्तित्व में हमें दिखाई देता हैं। महाराष्ट्र में विमुक्त एवं घुमंतु समुदाय के अंतर्गत अनुसूचित जाती, अनुसूचित जमाती, भटक्या जमाती तथा नागरिकता के सामाजिक और शिक्षिक रूप से पिछड़ा वर्ग आदि का समावेश होता हैं।

डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे कृत अनूदित लक्ष्मण गायकवाड़ की 'उचक्का' इस आत्मकथा के अंतर्गत भी इस विमुक्त घुमंतू समुदाय का चित्रण दिखाई देता है। लोग अपनी रोजी-रोटी चलाने के लिए पेट भरने के लिए चोरियाँ करते हैं, इसके लिए वो एक जगह से दूसरी जगह स्थलांतर करते है इसी कारण यह लोग घुमंतू समुदाय के अंतर्गत आते हैं। उन्होंने अपना एक समुदाय बनाया है उसे 'उचक्का' आत्मकथा में 'उठाईगीर' नाम से पहचाना जाता हैं। समाज में यही उठाईगीर नाम पड़ने के कारण उनके सामने कई समस्याएँ आती हैं। उन्हें कोई भी नौकरी पर नहीं रखता इसके कारण बेरोजगारी का प्रमाण बढ़ गया है और उनके घर में भी आर्थिक विवंचना आ जाती है। इसीकारण यह लोग अपना पेट भरने के लिए चोरी के मार्ग का अवलंब करते हुए हमें इस आत्मकथा में दिखाई देता है। घुमंतू समुदाय को 'घुमक्कड' भी कहा जाता है। लोग अपने शौक से भी घुमते हैं लेकिन 'उचक्का' आत्मकथा में यह अपनी विवशता के कारण घुमते हैं। इसलिए उन्हें घुमंतू जनजातियाँ भी कहा गया हैं। वैसे देखा जाए तो आज-कल हमें इन समुदायों पर साहित्य भी प्रचलित मिलता हैं।

'उचक्का' यह लक्ष्मण गायकवाड की आत्मकथा है।उसमें भी ऐसा एक समूदाय है जो अपना पेट भरने के लिए एक जगह से दूसरी जगह चोरियाँ करने के लिए स्थलांतरण करता है। इन समुदायों को अनेक समस्याओं से गुजरना पड़ता हैं उन समस्याओं का विवेचन हम यहाँ पर करते हैं -

'उचक्का' आत्मकथा में 'लक्ष्या' नाम से पहचाननेवाले लक्ष्मण गायकवाड है, वे पहली बार जब पाठशाला गए थे उस वक्त उन्हें कुछ अजीब सा महसूस हुआ था जैसे मानो सियारों के झुंड में मानो अकेली बकरी पहुँच गई। कक्षा के बाकी छात्र उन्हें 'उठाईगीरी' होने के कारण चिढाते थे और कहते कि इसके कारण हम बिमार पढ़ सकते है। "तूने अपने लड़के लक्ष्या को स्कूल में भरती कर दिया है, इसीकारण हमारे बच्चे को उलटियाँ और टट्टी हो रही हैं। इसके पहले आज तक अभी इस बस्ती में हैज की बीमारी नहीं आई थी। आज तक कभी कोई बीमारी नहीं हुई थी। बस! तेरा यह लड़का लक्ष्या जैसे ही स्कूल में जाने लगा, इधर बीमारी शुरू।" 1 इसतरह लोगों की मानसिकता बन गई थी कि लक्ष्या पाठशाला आने के कारण हमारे बच्चे बीमार पड रहे है। यह उठाईगीर होने की एक समस्या उनके सामने आती है मतलब शिक्षा भी उन्हें सही ढंग से ग्रहण करना मुश्किल है। इसी कारण उनपर बहिष्कार भी डाला जाता है। "हमारी जाति के लोग अब और चिढ़ गए। जात-पंचायत बुलाई गई और यह निर्णय लिया गया कि या तो मारतंड गॉव छोड़े अथवा लक्ष्या को स्कूल भेजना बन्द करे।"2 चोरी करने के कारण मतलब उठाईगीर यह ठप्पा उनके समाज

पर लगने के कारण उनके बच्चों को शिक्षा हासिल करना भी मुश्किल हो गया हैं। इस समाज कि यह एक बड़ी समस्या हमारे सामने आती हैं।

'उचक्का' आत्मकथा में एक जाती का उल्लेख दिखाई देता है 'संतामुच्चर' इसे देशभर में पहचाना जाता है 'संता' का मतलब बाजार और 'मुच्चर' का अर्थ चोरी करनेवाला या फिर उठाईगीर। इस समुदाय में चोरी कैसी की जाए इसका प्रशिक्षण दिया जाता हैं। इस दल के अंतर्गत लेखक के परिवार के कई सदस्य हैं। वह लोग रोज चोरी करते है और अपना घर चलाते है लेकिन एखाद दिन अगर वह पुलिस के हाथों लग जाने के बाद वह तय करते है यहाँ से आगे चोरी नहीं करेंगे। "चोरी छोड़कर मेहनत-मजदूरी की इच्छा सबकी है, पर उठाईगीर कहकर कोई काम तो नहीं देता।" 3 वह लोग चोरी नहीं करेंगे इमानदारी से रोटी कमाकर खाएँगे ऐसा तय भी करते है लेकिन पूरा समाज उन्हें 'उठाईगीर' नाम से पहचानने के कारण उन्हें कोई काम पर भी नहीं रखता हैं। इसीलिए बेरोजगारी की समस्या उनके सामने उभरकर आती है।

बेरोजगारी की एक बड़ी समस्या से तो उनके सामने खड़ी ही है लेकिन घर चलाना है तो रोजी-रोटी तो कमानी ही है तो उन्हें कोई भी काम करना ही है अब चाहे वह छोटा हो या बड़ा लेकिन समाज ने उनपर 'उठाईगीर' होने का ठप्पा लगाने के कारण उन्हें कोई भी नौकरी पर नहीं रखता क्योंकि उन लोगों की ऐसी समझ रहती है कि यह लोग दिनभर सबकुछ देखते है और हमारे यहाँ ही चोरी करने के लिए आते हैं इसलिए उन लोगों को कोई भी नौकरी देने के लिए कोई तैयार नहीं रहता है। लेकिन इन लोगों के सामने अब दो वक्त के निवाले का सवाल फिर से सामने उभरकर आता है तो वह लोग पुनः मजबूरी में चोरी के मार्ग का ही अवलंब करते हैं। 'उचक्का' आत्मकथा में एक बार दादी चोरी करती हुई पुलिस के हाथ लग जाती है। उसके कारण घर में चोरी का माल नहीं आता हैं घर की आर्थिक परिस्थिती बहुत ही बिकट हो जाती है और आर्थिक विवंचना महसूस होने लगती है। "मेरी दादी चोरी करती। कभी वह पकड़ी जाती तो पुलिस दो-तीन महिने उसे जेल में डाल देती। फिर घर में फाके पड़ते। घर में जब कुछ न होता तो बाबा (मैं अपने पिताजी को बाबा कहता हूँ मारतंड उनका नाम हैं।, माँ धोंडीबाई, बड़ा भाई माणिकदादा रात को दूर खेतों की ओर निकल जाते, जवार के भुट्टे, मिर्च, बाजरा और फलियाँ चोरी कर ले जाते।" 4 बेरोजगारी की समस्या होने के कारण और काम न मिलने के कारण दादी चोरी करती है और पकड़े जाने के बाद घर में आर्थिक विवंचना महसूस होती हैं। घर में सभी भाई-बहन भूखे है इसलिए माँ, धोंडाबाई और बड़ा भाई माणिकदादा रात को खेतों में जवार के भुट्टे और मिर्च, बाजरा की चोरी करते हैं। इसप्रकार रोजी-रोटी की एक समस्या भी उनके सामने है इसे ही पूरी करने के लिए वे लोग चोरी करते हैं।

खाना, कपडे, और मकान यह तीन लोगों की बुनियादी जरुरतें होती हैं। इन जरुरतों को पूरा करने के लिए उन्हें कही पर तो नौकरी करना जरूरी है लेकिन उनके सामने कई समस्याएँ उभरकर सामने आती हैं जैसे - बेरोजगारी, रोजी-रोटी, अशिक्षा और यह लोग आर्थिक विवंचना से ग्रस्त भी हैं। इसलिए आर्थिक विवंचना को दूर करने के लिए वह चोरियाँ करते हैं। "हर अमावस - पूनम को मैं किसी के जूते या चप्पल लिए हरचंदा के पीछे-पीछे चलता। ओढ़ने के लिए हम दोनों के लिए एक ही चादर थी। मुझे ही क्यों, घर में किसी के लिए भी नए कपड़े कभी आए ही नहीं। आते भी कहाँ से? सभी चोर के ही होते, औरतों के लिए साडियाँ ले जाते तो उनसे सस्ते में खरीद लेते। ये कपड़े फट जाने के बाद इनसे गुदडियाँ बना ली जातीं।"5 इसप्रकार अपनी आर्थिक परिस्थिती कमकुवत होने के कारण और अपनी आर्थिक परिस्थिती में सुधार लाने के लिए अपनी जरुरतों को पूरा करने के लिए मतलब रोजी-रोटी मिलने के लिए वह लोग चोरी करते हैं।

'उचक्का' आत्मकथा में हमें ओर एक घटना का चित्रण दिखाई देता है कि लोगों का एक दल रहता है उसमें से सभी सदस्य चोरी करते हैं और इकट्ठा किए हुए पूरी सामग्री का बँटवारा करके लिया जाता हैं अगर उस दल के साथ किसी ने बेईमानी कि तो उसे बहिष्कृत किया जाता हैं। "जिस दल के साथ जो कोई बेईमानी करता और अगर यह सिद्ध हो जाता, तो उस व्यक्ति को उस दल के लिए छः महीने या दो महीने चोरी करके पूरे का पूरा माल उस दल को देना पड़ता था। उसने बेईमानी की इसलिए उसे उसका हिस्सा नहीं मिलता था। चोरी करने के बावजूद उस वस्तु पर उसका कोई अधिकार नहीं होता था। अगर कोई उस फैसले को नकारता है, तो उसे जाति से बहिष्कृत किया जाता।"6 इसतरह उनके सामने रोजी-रोटी के लिए पेट भरने के लिए काम करने का तय भी किया तो काम भी नहीं मिलता और इन चोरियाँ करने के दल ने अगर बहिष्कृत किया तो चोरी भी करनी है लेकिन उनके हिस्से के लिए वह कुछ भी नहीं देते पूरे परिवार को ही बहिष्कृत किया जाता है। इसतरह अनेकानेक समस्याएँ इन लोगों के सामने खड़ी रहती हैं इसका चित्रण हमें दिखाई देता हैं।

डॉ. सूर्यनारायण रणसूभे कृत अनूदित लक्ष्मण गायकवाड़ की 'उचक्का' इस आत्मकथा के अंतर्गत लोग अपना घर चलाने के लिए रोजी-रोटी खाने के लिए चोरी करने पर मजबूर हो गए हैं। कई बार तो वह लोग अपनी जरुरतों को पूरा करने के लिए अपने बच्चों को भी बेचते हैं। ऐसी भयानक परिस्थिती से वह गुजरते हैं। लेखक इसतरह की परिस्थिती को देखकर उन बच्चों के विकास के लिए वह 'पाथरूट समाज संगठन' की स्थापना करने की कोशिश करते है। "अनेक दिशाओं से प्रयत्न करने के बाद 1979 में कवठा में विमुक्त जनजातियों की शिक्षा संस्था को रजिस्टेशन मिल गया।"7 इसतरह उन उन जनजातियों का धीरे-धीरे विकास हो रहा हैं।

इस आत्मकथा के जरिए हमें यह बात समझ में आती हैं कि यह उठाईगीर समाज आर्थिक विवंचना से पीड़ित होने के कारण इस समाज के लोग चोरी करने के मार्ग का अवलंब करते हैं। इन लोगों पर समाज ने पहले से ही उठाईगीर का ठप्पा लगाने के कारण उन लोगों को कोई काम भी नहीं देता हैं, इसके कारण बेरोजगारी का प्रमाण भी बढ़ गया हैं। इसतरह बेरोजगारी के कारण विमुक्त घुमंतू समुदाय का बढ़ता प्रमाण हमारे सामने आता हैं।

संदर्भग्रंथ -

(1) लक्ष्मण गायकवाड़, उचक्का, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं 2019, पृष्ठ क्र. 19
(2) वही पृष्ठ क्र. 19
(3) वही पृष्ठ क्र. 11
(4) वही पृष्ठ क्र. 12
(5) वही पृष्ठ क्र. 15
(6) वही पृष्ठ क्र. 42
(7) वही पृष्ठ क्र. 129

वंचितों ,घुमन्तु आदिवासी जनजाति का साहित्य : एक विवेचन

प्रा . अमलपुरे सूर्यकांत विश्वनाथ
[अध्यक्ष हिंदी विभाग]
डॉ . श्री . नानासाहेब धर्माधिकारी कॉलेज गोवे - कोलाड ,
मोबाईल न - ९४२१४५१७०३ /९७६६७३१४७०
ईमेल - sureshamalpure@gamil com

सारांश :-

वंचितों ,घुमन्त ,आदिवासी जनजातियाँ यह एक महत्वपूर्ण जातियाँ प्राचीन कल से भारतवर्ष में दिखाई देती है। इनके प्रश्न अलग -अलग है ,संस्कृति ,खान -पैन ,रीती रिवाज भी साबास अलग दिखाई देती है। इनको मूल निवासी भी कहा जाता है। इन साई जनजातियों को अनुसूचित जनजाति के रूप में संविधान की पांचवी सूचि इ मान्यता प्रदान की है। आज इन जनजातियों के बारे में साहित्य बहुत लिखा गया है ,और ऐ भी लिखा जायेगा। उनकी समस्या को केंद्र बनाकर यह लेखन कार्य चल रहा रहा है। इन के विमर्श में हम उनके द्वारा खुद के हित के लिए उठाई गई आवाज,उनका विरोध ,उनकी योजना,चेतना,अस्मिता ,स्वाभिमान,अस्तित्व अदि पक्षों को लेते हैं।

कुंजी शब्द :- वंचित, घुमन्तु, आदिवासी, जनजातियाँ, संविधान, मूल निवासी , अस्मिता ,अस्तित्व, शोषण ,दस्तावेज आदि।

शोध पद्धति :- विश्लेषणात्मक संशोधन पद्धति।

शोध के उद्देश्य :-

१] वंचितों ,घुमन्तु, आदिवासी जनजाति के प्रश्नों को समझना।

२] वंचितों ,घुमन्तु, आदिवासी जनजाति के समस्याओं पर प्रकाश डालना।

३] वंचितों ,घुमन्तु, आदिवासी जनजाति को लक्ष्य बनाकर साहित्य लिखना।

४] वंचितों ,घुमन्तु, आदिवासी जनजाति का साहित्य बढ़ाना और विकास करना।

प्रस्तावना :-

आज का २१ वी सदी का साहित्य वंचितों ,घुमन्तु , आदिवासी जनजाति पर केंद्रित रहा है। आज की सदी में जहाँ इंसान चाँद पर कदम रख चूका है ,मंगल गृह पर बसने की कोशिश कर रहा है ,मगर अफसोस की बात है कि वंचितों ,घुमन्तु , आदिवासी जनजाति अब भी आदिम व्यवस्था को जीते हुए अपनी पहचान के लिए लड़ रही है। आदिवासी शब्द का अर्थ मूल निवासी कहा जाता है। घुमन्तु भी अब धीरे -धीरे नष्ट होते जा रहे है। उनकी कला ,संस्कृति एवं त्यौहार भी आज प्रकट रूप से सामने नहीं आ रहे है। घुमन्तु के विमर्श में हम उनके द्वारा खुद के हिट के लिए थाई गयी आवाज उनका विरोध ,उनकी चेतना ,अस्मिता ,स्वाभिमान ,एटीएम निर्णय क्षमता अदि पक्षों पर विचार करना जरुरी है। हिंदी के तमाम साहित्यकारों ने इस विषय को लेकर उपन्यास ,कहानी एवं का भीअधिक मात्रा में लिखे है,वंचितों ,घुमन्तु , आदिवासी जनजातिके बारे में **अनिल चमड़िया** लिखते है - " बिहार के छोटा नागपुर ,संथाल ,परगना ,पलामू आदि क्षेट्रेन में जंगलों के कटाने से आदिवासी पलायन करने को मजबूर हुआ है ,जिससे आदिवासियों की संख्या निरंतर काम हो रही है। सन १९६१ में राज्य की कुल जनसँख्या ९.४१ थी। जो सन १९८१ में ८. ३१ प्रायिशत रही है। आजादी के समय जहाँ कुछ क्षेत्रफल का २३ प्रतिशत जंगल थे। वह घटकर अब करीब १२ प्रतिशत हो गया है। " -१

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'अल्मा कबूतरी ' के सन्दर्भ में

अल्मा कबूतरी यह उपन्यास बुंदेलखंड की विलुप्त होती जनजाति का समाज -वैज्ञानिक अध्ययन ही नहीं है बल्कि कबूतरी इस घुमन्तु जनजाति का सम्पूर्ण तना -बना इस में मौजूद है। कभी -कभी सडकों ,गलियों में घूमते या अखबारों की अपराध सुर्ख़ियों में दिखाई देने वाले कंजर ,सौसी ,नट ,मदारी। सपेरे। पारधी ,हाशुदे। बंजारे। बावरिया ,और कबूतर ऐसे न जाने कितनी जनजातियां है जो सभ्य समाज के हाशियों पर डेरा लगाए सदियाँ गुजर देती है। हमारा उनसे चौकन्ना सम्बंद सिर्फ काम चलौ ही बना रहता है। उनके अपराधों से डरते हुए मगर इन्हे अपराधी बनाए रखने के आग्रही है।

कबूतरी यह समुदाय के पुरुष या तो जंगल में रहते है या तो जेल में ,स्त्रियाँ शराब की भट्टियों पर या तो सवर्णों के बिस्तरों पर। अंग्रेजों के गजेटियरों में अनेक नाम है अपराधी काबिल या सरकश जनजातीय। स्वतंत्र प्राप्ति के बाद कबूतरा जाती के लोग गाओं से बहार जंगलों में ,खेती में बसने लगे थे। उपन्यास में मंसाराम के खेत में कबूतरी लोगोने अपना डेरा डाला था। मगर खेत का मुखिया मंसाराम उसे निकलने का काम करता है। उनके साथ छुआछूत का व्यव्हार भी करता है। इसकी भयंकर यातनाओं से पिछड़ी जातियों को गुजरना पड़ता है। स्कुल का मास्टर राणा को नल को हाथ लगाने नहीं देता। उसे तालाब का गन्दा पानी पीना पड़ता है।

कबूतरी जाती घुमन्तु है ,जंगलों में घूमती है। जहाँ भी पेट भरता है वहां डेरा लगाकर रहते है। राणा की माँ उसको स्कुल के बजाय चोरी ,शराब बनाने को सिखाती है। अंत में राणा भी कबूतरा बन जाता है। इनको पुलिस पकड़कर भी ले जाती है तो भी दिलख़ुलास रहते है उनके लिए शर्म की कोई बात नहीं होती। नारियां कई बार किसी बड़े अफसर के सह, बड़े जमींदार के साथ या सेठ साहूकारों के साथ देह व्यापर भी कराती है। पुलिस उनको हमेशा पकड़ ने की कोशिश में रहते है। उपन्यास में बस्ती पर हमला कर गर्भवती जमुनी की जांघ में डंडा घुसता है। वह बिचारि मर जाती है ,उसका अंत्यसंस्कार करते है। भूरी ,कदमबाई और एल्मा इन तीनों स्त्रियों पर भी बहुत बार पुलिस ने अत्याचार किया है। इस प्रकार एल्मा के माध्यम से लेखिका ने कबूतरी जनजाति का तना - बना यथार्थ रूप से चित्रित किया है।

वीरेंद्र जैन के ' पार ' उपन्यास के सन्दर्भ में

पार इस उपन्यास का प्रकाशन १९९४ में हुआ। लेखक वीरेंद्र जैन ने प्रस्तुत उपन्यास में अपने रहदय को छूते मर्मस्पर्शी अमूर्त पीड़ा के मूर्त रूप को चित्रित किया है। इस में बुंदेलखंड के घुमन्तु जनजाति का यथार्थ जीवन को प्रस्तुत किया है। वर्तमान तकनिकी अनभज्ञता और धार्मिक अन्धविश्वास के कारन उपजी शोषित समाज की कहानी को इस उपन्यास में चित्रण किया है। चल ,प्रपंच और चालबाजी ने औरतो को बिकाऊ मॉल बना दिया है। उपन्यास में आधुनिक विकास के नाम पर बांध बनाकर बेतवा के किनारे बेस गांव ,समाज और जंगल की बलि मानवता को भूल कर सिमित लोगों के हिट से जुड़कर किआ गया है। वन उजड़ने के कारन आई विपत्ति का जनजातियों को आर्थिक कमी के कारन विशिष्ट छोटे -मोठे रोजगार पर ही जीवन निर्वाह करना पड़ता है। जैसे -गुडान गोदना , नक् छेड़ना , कण छेड़ना , महुए एकठा करना , तेंदुए के पत्ते जमा करना ,जलाऊ लकड़ी बीनना ,बांस की चीजे बनाना आदि यह समुदाय काम करता था। इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में आदि वासी जनजाति के विभिन्न कार्य पर प्रकाश डालने की कोशिश वीरेंद्र जैन ने किया है।

संजीव का उपन्यास ' जंगल जहाँ शुरू होता है ' के सन्दर्भ में

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक संजिव जी ने 'थारू' इस घुमन्तु जनजाति का चित्रण किया है। थारू के साथ -साथ धांगड़ ,दुसाध जाती का भी उल्लेख इसमें अत है। लेखक निजी अनुभव कहते है जहाँ अपराध पहाड़ की तरह नंगा खड़ा है ,जंगल की तरह फैला हुआ है ,नदियों में दूर -दूर तक बह रहा है इतिहास के रंध्रों से हवा में घुल रहा है ,भूगोल की भूल -भुलैया में दोल रहा है। उपन्यास का मुख्या पात्र काली है जो शिक्षा की असुविधौं से काम शिक्षित होते हुए भी जागरूक विचारों का है। वह कभी भी अन्याय बर्दाश्त पता है। भाई बिससम और काली दोनों ने खेत गिरवी होने पर मिल बंद हो जाने पर बेरोजगारी के कारन ठेकेदार के घर मजदूरी करते है। मगर समय पर मजदूरी नहीं मिल पाने के कारन ग़ुस्सा करते है। ठेकेदार डाकू को पैसा देता है मगर

मजदूरों को समय पर पैसा नहीं देता। यह बात काली के दिमाग में बाथ जाती है। ईमानदारी और मेहनत का कोई मोल इस में नहीं है तह विचार मन में पैदा हो जाता है। उपन्यास में पुरुष की तरह स्त्रियों पर भी अनेका नेक अन्याय हो गए है। छोटी जाती के नाम पर उन्हें दुत्कारा भी जाता है।

भगवान दास मोरवाल के ' रेत ' उपन्यास के सन्दर्भ में

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने बंजारा जनजाति के कंजर समाज को केंद्र में रखकर लिखा है। कंजर का अर्थ होता है काननवरा अर्थात जंगलों में घूमने वाला समुदाय। इस जाती का पेशा ही चोरी करना या डाकू बनकर लोगों को फ़साना ,लुमार करना आदि था। इस जाती की स्त्रियां भी चोरी और वेश्यावृत्ति कराती है। इस उपन्यास की पूरी कहानी ही गजकी गांव के विशाल भवन कमला सदन के आस -पास ही केंद्रित है। जो इस समाज के भीतर पहलुओं से हमें अवगत कराती है। स्पस्ट है की भगवन दास मोरवाल जी ने कंजर स्त्री रुक्मिणी द्वारा स्त्री के अनेक समस्याओं को उजागर करने का प्रयास किया है।

शिवकुमार यादव की ' काले ' कहानी के सन्दर्भ में

प्रस्तुत कहानी में फूल का प्रेम जनजातीय जीवन को आधार बनाकर लिखी कहानी बन गई है। इस में कोयलरी काम करने वाले घुमन्तु जाती के मजदूरों की त्रासदी का यथार्थ चित्रण किया है। इस काले कहानी कामुख्य पात्र गोमती एवं विश्वास है जो मजदूरों के हक्क के लिए हमेशा के लिए संघर्ष करते रहते है। गोमती की माँ बचपन में ही बसी थी और पिता भी कोयलरी खदान में दबकर मर जाते है। इधर विश्वास के पिता कोयलारी में बाबू है और दिन -रत शिफ्टों में काम करते रहते है। गोमती और विश्वास इस मजदूरों के लिए संघर्ष करने के लिए आगे बढ़ाते है। दोनों शादी भी करना चाहते है और अपने जाती को सुधरने की इच्छा भी रखते है। ऐसे काम करने वाले मसीहा पर ही काले इल्जाम लगाकर उनको गांव से भागने का काम सर्कार की तरह हो जाता है। यही समस्या इस कहानी में दिखाई देती है।

निष्कर्ष :-

उपर्युक्त विवेचन के अनुरूप हम निष्कर्ष रूप से कह सकते है कि आज के २१ वि सदी में घुमन्तु जनजाति का एक अलग विमर्श तैयार हुआ है। इस घुमन्तु जनजाति का वकास करना हमारा लक्ष्य है। साहित्य के माध्यम से साहित्यकारों ने उनके दुःख एवं दर्द को आपके सामने रखा है। उन समुदाय की अलग संस्कृति भी है उसे बचाना हमारा धर्म है। उनको आज शिक्षा देने की जरुरत भी है ,उनका विकास ही हमारा विकास माना जाना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

१] अनिल चमड़िया -अरावली उद्घोष - अंक -९३ पृ २८१
२] मैत्रेयी पुष्पा - अल्मा कबूतरी [उपन्यास]
३] वीरेंद्र जैन - पार [उपन्यास]
४] संजीव -जंगल जहाँ शुरू होता है [उपन्यास]
५] भगवन दास मोरवाल -रेत [उपन्यास]
६] शिवकुमार यादव - काले [उपन्यास]

विमुक्त एवं घुमंतू समुदाय : अवधारणा एवं स्वरूप

डॉ. निशाराणी महादेव देसाई
सहा. प्राध्यापक
राजे रामराव महाविद्यालय, जत
जि. सांगली.
मो. 8600615451
nisharanidesai@gmail.com

सारांश :
विमुक्त एवं घुमंतू जनजाति भी मनुष्य ही है, अगर पूरे समाज द्वारा उनको इन्सानियत से बर्ताव किया जाएगा तो वे भी अपना सीर उठाकर जी सकेंगे| सरकार द्वारा शिक्षा और मुलभूत सुविधा उनको भी मिलनी जरुरी है तभी वे अपनी जिंदगी बेहतरी से जी सकेंगे| विमुक्त एवं घुमंतू जनजाति की कुछ कमिया होती है, ऐसी आचार-व्यवहार होते है, जिसे उसी समाज का दूसरा व्यक्ति स्वीकार नहीं करता, लेकिन इस बात को अगर सभ्य, पढ़ा लिखा समाज नहीं समझेगा उनके प्रति संवेदनाओं को जागृत नहीं करेगा तो यह समाज का हिस्सा हमेशा कमजोर ही रहेगा| जरुरी है इनको शिक्षा और मुलभूत सुविधाएँ मुहैय्या करायी जाए, तभी इनका विकास संभव है| हर कोशिश प्रयास करना जरुरी है ताकि वे भी सम्मान से जी से|

बीज शब्द- विमुक्त, घुमंतू, जनजाति, साहित्य, समाज।

प्रस्तावना

साहित्य समाज का दर्पण होता है| समाज में जो घटित होता है उसका सजीव एवं वास्तव चित्रण साहित्यकार साहित्य के माध्यम से करता है| ऐसा कोई भी विषय अछूता नहीं है जिस पर साहित्य लेखन न हुआ है| चाहे स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, पुरुष विमर्श, आदिवासी, किन्नर और वृद्ध विमर्श के साथ-साथ घुमंतू एवं विमुक्त जन-जाति भी साहित्य लिखा जा रहे है| सदियों से उपेक्षित रही विमुक्त एवं घुमंतू जनजाति इक्कीसवीं सदी में भी उपेक्षित जीवन जीने के लिए मजबूर है| सभ्य समाजद्वारा उनकी ओर देखने का नजरिया आज भी वैसा ही है जैसा पहले हुआ करता था| ब्रिटिश सरकारने उन्हें अपराधी घोषित कर दिया उसके पश्चात् विमुक्त एवं घुमंतू जन-जाति एक-स्थान से दूसरे स्थान घुम्मकड़ी कर रही है| वास्तव में आज जरुरत है विमुक्त एवं घुमंतू जनजाति को समझने की|

इतिहास इस बात का गवाह है कि भारतीय साहित्य आंदोलन के बुद्ध काल, भक्तिकाल, स्वतंत्रता आंदोलन के सारथी वंचित और हाशिए के समाज से संबंधित थे, जिनके संघर्ष और सहयोग के बिना यह स्वतंत्र भारत की आशातीत प्रगति असंभव थी, किंतु उन्हें भूला दिया गया है इस प्रकार का जो वंचित समाज है वह है विमुक्त एवं घुमंतू समुदाय|

विमुक्त या घुमंतू जाति का अर्थ है विशेष जाति, जिनका कोई स्थायी निवास नहीं होता| और आजीविका की तलाश में एक-स्थान से दूसरे स्थान घूमा करते है, घूमना इनका शौक नहीं बल्कि विवशता है| विमुक्त जनजातियाँ वे हैं, जिन्हें ब्रिटिश शासन के दौरान लागू किये गए अपराधिक अधिनियम के तहत अधिसूचित किया गया था, जिसके तहत परी आबादी को जन्म से अपराधी घोषित कर दिया गया था| वर्ष 1952 में इस अधिनियम को निरस्त कर दिया गया और समुदायों को विमुक्त कर दिया गया|

घुमंतू जनजातियाँ निरंतर भौगोलिक गतिशीता बनाए रखती हैं, जब कि अदर्ध् घुमंतू जनजातियाँ वे हैं, जो एक स्थान से दूसरे स्थान आवाजाही तो करती हैं, किंतु वर्ष में एक बार मुख्यत: व्यावसायिक कारणों से अपने निश्चित निवास स्थान पर जरुर लौटती है| घुमंतू या अदर्ध् घुमंतू जनजातियों के बीच अंतर करने हेतु विशिष्ट जाति या सामाजिक-आर्थिक मानकों को शामिल नहीं किया जाता है, बल्कि यह उनकी गतिशीलता से प्रदर्शित होती है| जातिवार जणगनणा 2011 के अनुसार भारत में विमुक्त एवं

घुमंतू जन-जातियों की आबादी 15 करोड है (जब कि वर्तमान समय में इनकी वास्तविक आबादी 20 करोड से अधिक है|) यह विशाल समुदाय भारत की आजादी के बाद भी आज तक सामाजिक न्याय से पूरी तरह वंचित एवं विकास की धारा से कोसों दूर है|

वास्तव में घुमंतू समुदाय वह समुदाय हैं, जो सदैव एक स्थान से दूसरे स्थान भ्रमण करता रहता है| अपना भोजन-पानी, पशु-पक्षी, कुत्ते, बच्चे आदि के साथ एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहा करते हैं| उनका कोई निश्चित स्थान नहीं हुआ करता| हाँ वर्ष के निश्चित कुछ दिनों में वे निश्चित समय पर एक जगह निवास करे थे| बाकी महिनों घूमते-फिरते रहते हैं| इतिहास गवाह है कि ऐतिहासिक समय से लेकर आधुनिक समय तक भारत की एक बड़ी जनसंख्या घुमंतू रही है| अपनी जीविकोपार्जन के लिए ये लोग आयुर्वेदिक औषधियाँ, पशु, उत्पाद, ऊन और अर्थ, मूल्यवान रत्न आदि बेचते रहते है| इसके अलावा नाचना, गाना, अन्य करतब दिखाना जैसा काम करते रहते है|

ब्रिटिश शासन काल में घुमंतू एवं विमुक्तो का जीवनबेहद संपन्न और सम्मानजनक हुआ करता था, इतना ही नहीं बल्कि हमारा पूरा सामाजक ताना-बाना इन समुदायों पर निर्भर था| यातायात हो, मनोरंजन हो, चिकित्सा आदि के लिए इन जन-जातियों का सहारा लेना पड़ता था| बंजारे, गाड़िया लोहार बावरिया, नट, कालबेलिया, भोपा, सीकलीगार, सिंगीवाल, कुचबंदा, कलंदर आदि जन-जातियाँ समाज का अभिन्न हिस्सा थे| यह जनजातियाँ इनके पारंपारिक व्यवसाय से अपना उदर-निर्वाह चलाते थे| हमारे देश में आज घुमंतू, अर्ध घुमंतू, विमुक्त जन जातियों में लगभग 840 जातियाँ है, जिनमें भारत का सर्वाधिक पीछड़ा और उपेक्षित वर्ग है| जिसमें सैंकड़ों जातियों शिक्षा और मुलभूत सुविधाओं के अभाव में ये जातियाँ जानवरों से बदतर जीवन व्यतीत करने को विवश है|

यह जन जातियाँ इनके पारंपारिक व्यवसाय से अपना उदर निर्वाह चलाते थे| जैसे 'बंजारे' पशुओं पर माल देना, 'गाडिया लोहार' जगह-जगह जाकर औजार बनाना और बेचना, 'बावरिये' जानवरों का शिकार और उनके अंगों का व्यापार, 'नट' नृत्य करना, 'कालबेलिया (सपेरा), सांपों का खेल दिखाना, 'भोपा' स्थानिय देवताओं का आख्यान गाने का काम, 'सिकलगीर' हथियारों में धार लागने का काम, 'सिंगीवाल' हिरन के टूटे हुए सींग से लोगों का इलाज करते थे और इन्हें नैसर्गिक औषधियों का ज्ञाता समझ जाता था| 'कुचबंदा' मिट्टी के खिलौने बनाना, 'कलंदर', भालुओं और बंदरों क करतब दिखाना, 'ओढ' नहर बनाने और जमीन को समतल करने का काम करते थे, 'बहुरुपिये' हाथ की सफाई दिखाकर लोगों का मनोरंजन करते थे| एक पक्षी भी अपने लिए घोंसला बनाता है, गली का कुत्ता भी अपने लिए एक स्थान खोज लेता है लेकिन विमुक्त एवं घुमंतू जन-जाति के लिए अपना घर नसीब नहीं है| जैसे-जैसे देश में विकास होता गया इनका पारंपरिक व्यवसाय कमजोर होने लगा| शिक्षा का अभाव और मुलभूत सुविधाओं का अभाव के कारण सभ्य द्वारा उनको तिरस्कृत किया जाता है|

भगवानदास मोरवाल का 'रेत' उपन्यास कंजर यानी कानन, जंगल में घूमने वाली जनजाति को केंद्र में रखकर लिखा गया है| इनका दर्द, घुटन इन संवादों से स्पष्ट झलकती है, "बिना इजाजत या इत्तिला दिए कोई कंजर गांव छोड़कर जा नहीं सकता....और जाता है तो मुखिया को इसकी जानकारी होनी चाहिए, जिसकी इत्तिला मुखिया थाने में देनी होती है|" ....इनकी महिलाओं को भी थाने में जाकर हाजिरी देनी पड़ती है|"

मणि मधुकर द्वारा लिखित 'पिंजरे में पन्ना' राजस्थान की गाडिया लोहार जनजाति पर आधारित उपन्यास है| यह जनजाति खानाबदोश जीवन व्यतीत करती है, के संदर्भ मैत्रयी पुष्पा का 'अल्मा कबुतरी' उपन्यास बुंदेलखंड की यायावर कबूतरा जनजाति को उजागर करने वाला उपन्यास है|

रांगेय राघव कृत 'धरती मेरा घर' जिसमें अपने ही सिद्धांतो, आदर्शो और जीवन मूल्यों पर जीने वाले, कभी घर बनाकर न रहनेवाले, खानाब दोशों की तरह जीवन यापन करने वाले और समाज में अलग रहनेवाले इन गाडिये लोहार के जीवन के अनछुए एवं अनदेखे पहलुओं का सजीव चित्रण हुआ है|

लेखिका शरद सिंह का उपन्यास 'पिछले पन्ने की औरतें' स्त्री विमर्श केंद्रित विमुक्त एवं घुमंतू बेड़िया जन जाति की ही मार्मिक अभिव्यंजना है|

संदर्भ :

1. विमुक्त जातियाँ : समाज, भाषा और संस्कृति, डॉ. श्रीकृष्ण काकडे, नॅशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया|
2. रेत, भगवानदास मोरवाल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली|
3. पिंजरे में पन्ना, मणि मधुकर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली|
4. अल्मा कबुतरी, मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली|
5. धरती मेरा घर, रांगेय राघव, राजपाल ॲन्ड सन्स, दिल्ली|
6. पिछले पन्ने की औरतें, शरदसिंह, सामायिक प्रकाशन, दिल्ली|

मराठी घुमंतू समुदाय के गीतों द्वारा प्रबोधन

पूनम शर्मा[1]
पीएच.डी. शोधार्थी (हिंदी),
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान,
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा मद्रास
त्यागराय नगर, चेन्नै- ६०० ०१७
संतोष वसंत कांबले[2]
पीएच.डी. शोधार्थी (हिंदी)
कवयित्री बहिणाबाई चौधरी उत्तर महाराष्ट्र
विश्वविद्यालय, जलगाँव
मोबाईल क्रमांक- ८१२५९ ८११९४
ई-मेल : shreyashju@yahoo.co.in

सारांश

घुमंतू जातियों के द्वारा समय-समय पर स्थान-स्थान पर भ्रमण करते हुए न केवल अपनी लोक-संस्कृति का विस्तार करने का कार्य पूर्ण किया गया अपितु इनके द्वारा समाज को अन्य विभिन्न जन संस्कृतियों को जानने व समझने का भी अवसर प्रदान किया | इन जातियों के द्वारा न केवल मनोरंजन जैसा कार्य किया जाता है अपितु विचारों व लोक-संस्कृति के प्रचार-प्रसार जैसा महत्वपूर्ण कार्य भी संपन्न हो जाता है |

बीज शब्द- घुमंतू, समुदाय, संस्कृति, समाज।

प्रस्तावना

वे लोग जिनका कोई निवास स्थान स्थायी रूप से नहीं होता और जिसके कारण ऐसे लोग सदैव एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते हैं तथा अस्थायी निवास बनाकर कुछ समय व्यतीत कर अन्य स्थान हेतु निकल पड़ते हैं उन्हें घुमंतू की संज्ञा प्रदान की जाती है | इन्हें खानाबदोश, घुमंतू, बंजारा, बनजारा, लँबाड़ा, वंजारा तथा वनजारा आदि नामों द्वारा जाना जाता है |

घुमंतू शब्द का अर्थ है- घुमक्कड़ | ऐसे लोग जो बिना किसी कारण के यहाँ-वहाँ घूमते हैं अर्थात वे विशेष जाति जिनका कोई स्थायी निवास निर्धारित नहीं होता और अजीविका की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमा करते हैं ऐसा घूमना इनका शौक नहीं अपितु विवशता के कारण होता है | घुमंतू भारतीय समाज का अत्यंत उपेक्षित और पिछड़ा वर्ग है |

कालबेलिये, नट, भांड, पारधी, बहुरूपिये, सपेरे, मदारी, कलंदर, बहेलिये, भवैया, सांसी, कंजर, रेबारी, कुचबंदा, सिकलीगर, गाड़िया लुहार, गुज्जर तथा वणजारे आदि जैसी सैकड़ों घुमंतू जाति के अंतर्गत आने वाली जातियाँ हैं |

शायर अरराल-उल-हक़ मजाज़इन विमुक्त घुमंतू जनजातियों का दर्द बयां करते हुए लिखते हैं कि-

"बस्ती से थोडी दूर, चट्टानों के दरमियां
ठहरा हुआ है, खानाबदोशों का कारवां
उनकी नहीं जमीन, न उनका कहीं मकां
फिरते हैं यू ही शामों, सहर ज़ेरे आसमां |"[i]

हमारा महान भारतवर्ष विभिन्न लोक-संस्कृतियों से संपन्न है जो इसकी गरिमा को और अधिक महत्ता प्रदान करती है, यहाँ अनेक संस्कृतियों की अपनी एक अनुपम पहँचान है जिसमें से एक है मराठी संस्कृति | मराठी संस्कृति अपने अनुपम वैशिष्ट्य के कारण महत्त्वपूर्ण मानी जाती है जिसकी लोक-संस्कृति ने इसे और अधिक महत्ता प्रदान की है | मराठी लोक-संस्कृति के अंतर्गत आनेवाले कुछ प्रमुख घुमंतू जातियों के गीतों द्वारा समाज में समय-समय पर प्रबोधन कार्य किया गया | वर्तमान समय में गाँवों में

और कहीं-कहीं शहरों में ऐसे उपासक दिखाई देते हैं जिनके गीत लोकजीवन में आज भी प्रचलित हैं | ये उपासक अपने गीत वैशिष्ट्यपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करते हैं | लोगों के ऊपर संस्कार करना और उनका मनोरंजन करना इन उपासकों के गीतों का मुख्य उद्देश्य होता है | कुछ प्रमुख मराठी घुमंतू जातियाँ अग्रलिखित हैं-

वासुदेव-

मराठी घुमंतू समुदाय के अंतर्गत वासुदेव आज भी गाँवों में और शहरों में दिखाई देते हैं | यह समुदाय सुबह के मंगलमय वातावरण में पारंपरिक गीत गाते हुए, दान माँगते हुए घूमते नज़र आते हैं | इनके सिर पर मोर के पंखों की आकर्षक टोपी, पैरों में घूँगरू, हाथ में टाल लेकर बाँसुरी बजाने वाला वासुदेव प्राचीन लोक-संस्था है जिसके कई अस्पष्ट उल्लेख मिलते हैं | संत एकनाथ, संत नामदेव, संत तुकाराम आदि ने वासुदेव समुदाय के ऊपर अनेक गीत रचे हैं | इन संतों ने वासुदेव का उपयोग सर्व सामान्य लोगों तक अपना उपदेश पहुँचाने के कार्यार्थ किया | भगवान के नाम से दान माँगने वाला वासुदेव दान मिलने पर अपने शरीर का एक चक्कर काटता है और दान मिलने का गाना गाता है | जैसे-

"दान मिल गया…. दान मिल गया
पंढरपुर में…. इठोबा राया को
कोल्हापुर के …. अंबाबाई को"[ii]

संतों के द्वारा गाये गये ये गीत समाज को वासुदेव समुदाय के द्वारा लोगों को अहंकार त्याग कर भक्ति मार्ग पर चलने का मार्ग प्रशस्त करते हैं तथा ब्रह्मानंद की प्राप्ति का सहज मार्ग दर्शाते हैं |

यह मराठी घुमंतू वासुदेव समुदाय लोगों के घर-द्वार पर जाकर धर्मोपासना और लोकशिक्षा का कार्य अपने नृत्य, नाट्य तथा संगीत के माध्यम से करते हैं जो इतना आकर्षक होता है कि सभी जन उनको मंत्रमुग्ध होकर सुनते हैं | श्रीकृष्ण भक्ति की महिमा का वर्णन वे अपने गीतों के माध्यम से करते हैं तथा हमारे पौराणिक आदर्श पात्रों के गुणों को गाकर उनकी महानता का व्याख्यान प्रस्तुत करते हैं | वासुदेव समुदाय के गीतों का प्रमुख विषय श्रीकृष्ण की लीलाएँ तथा तुलसी पर आधारित गाये जाने वाले गीत माने जाते हैं | वासुदेव द्वारा गीत गाते समय का पदान्यास और मुद्राभिनय अत्यंत वैशिष्ट्यपूर्ण होता है जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे एक पात्री प्रयोग चल रहा है | यह लोकाख्यान गायक समुदाय घुमक्कड़ भजन गायक समुदाय माना जाता है जिनके द्वारा न केवल स्थानीय वाचिक परंपरा के भंडार, संरक्षक व प्रसारक की भूमिका अदा की जाती है अपितु वे अपनी भावी पीढ़ियों को भी अपनी यह कला हस्तगत कर एक कला संवाहक की भूमिका का निर्वाह अपने गीतों के माध्यम से करते हैं | इन मराठी घुमंतू वासुदेव समुदाय के गायकों ने लिखित-अलिखित कथानकों को स्थानीय बोलियों में सहज ग्राही बनाकर जिस प्रकार से प्रस्तुत किया है वह सराहनीय कार्य है | कथानक की मूल कथा को अक्षुण्य रखकर स्थानीय बोलियों में उसका अनुवाद कर उसे और अधिक सरस बनाने हेतु उसमें भजन अथवा गीतों के अंशों का समावेश करने जैसा जो महत्त्वपूर्ण कार्य इन समुदायों ने किया वह प्रशंसनीय है | इनके द्वारा स्वनिर्मित तम्बूरा और सारंगी जैसे सामान्य वाद्य यंत्रों को संगीत लहरीं पर पारंपरिक संयोजित गायकी द्वारा अत्यंत भक्ति भाव द्वारा अपनी प्रस्तुति को दर्शाया गया |

पांगुल-

मराठी लोक-संस्कृति के अंतर्गत घुमंतू समुदायों में से एक प्रमुख पांगुल समुदाय माना जाता है जो अत्यंत प्राचीन है तथा दक्षिण महाराष्ट्र क्षेत्र में दिखाई देता है | यह समुदाय अधिकांशतः महाराष्ट्र की उपजाऊ भूमि वाले प्रदेश अथवा गाँव-गाँव में भीख माँगकर अपना जीवन यापन करता है | प्राचीन मराठी वाड़मय में प्रमुखता से संत ज्ञानेश्वर, संत नामदेव, संत तुकाराम एवं संत एकनाथ की रचनाओं में हमें पांगुल का उल्लेख प्राप्त होता है | जैसे-

"अरे कोई अपने पूर्वजों के नाम पर राम प्रहर में धर्म कीजिए |
कोई अपने देवी-देवताओं के नाम पर वस्त्र दान कीजिए |

कोई पुण्य कमाने के लिए पांगुल को रूपये दान कीजिए |"[vi]

यह पांगुल घुमंतू समुदाय स्वयं को सूर्यदेव का उपासक एवं सेवक मानता है | पांगुल समुदाय को 'प्रभात का दूत' भी कहा जाता है क्योंकि यह समुदाय अपने स्वामी अर्थात सूर्यदेव के आगमन की सूचना देने जैसा महत्त्वपूर्ण कार्य करता है | महाराष्ट्र में महिलाएँ सूर्य के रथ का चित्र रेखांकित करते समय उसका एक ही चक्र निकालती हैं | अरूणोदय की सूचना प्रदान करते हुए पांगुल द्वारा लोगों को जगाया जाता है तथा इन पांगुल घुमंतू लोगों के द्वारा सत्प्रवृत्ति का आह्वान किया जाता है | पांगुलों की पारंपरिक वेशभूषा के अंतर्गत कमर पर लंगोट, कंधे पर कंबल, सिर पर अलग-अलग रंग के कपडों से सिले हुए त्रिशंकु के आकार वाली टोपी, एक झोली तथा एक हाथ में घूँगरू वाली लाठी होती है | ये लोग अपना पेट भरने के लिए स्थान-स्थान पर जाकर याचना करते हैं तथा दान प्राप्त होने पर हर्ष व्यक्त करते हैं |

नाथ जोगी-

मध्ययुग में उत्पन्न नाथ जोगी समुदाय को प्रमुख मराठी घुमंतू जाति के रूप में जाना जाता है | इस समुदाय के अंदर शैव, बौद्ध तथा योग की परंपराओं का समन्वय दिखायी देता है | यह हठ योग की साधना पद्धति पर आधारित है | इस संप्रदाय के स्थान-स्थान पर प्रचारित-प्रसारित करने का श्रेय गुरू गोरखनाथ जी को जाता है | इन्होंने ही योग विद्याओं का एकत्रीकरण किया जिसके कारण इनके योगदान के महत्व को देखते हुए गुरू गोरखनाथ को इस पंथ का संस्थापक माना जाता है |

प्रमुख घुमंतू समुदाय के अंतर्गत भैरवनाथ के उपासकों को समाहित किया गया है जिन्हें नाथ जोगी, गोसावी अथवा डवरे गोसावी आदि नामों से जाना जाता है | इस जाति के लोग भैरव के गीत डँमरू की ताल पर गाकर, भिक्षा माँगकर अपनी अजीविका चलाते थे | तथा भिक्षा में प्राप्त सामग्री द्वारा अपना जीवन यापन करते थे | किसी परिवार में कोई मंगलकार्य होने पर भैरव की उपासना करने वाली इस घुमंतू जाति के लोगों को अमंत्रित किया जाता है तथा इस समुदाय के लोगों द्वारा 'भराड' अर्थात एक प्रकार नाट्य प्रदर्शन किया जाता हैं | 'भराड' नाट्य प्रदर्शन करने के कारण इन्हें 'भराडी' भी कहा जाता है | भराड करने हेतु दीक्षा लेनी पड़ती है | माना जाता है कि गुरु गोरखनाथ जी ने राजा भर्तरी को नाथ दीक्षा प्रदान की थी तभी से दीक्षा देने की परंपरा का प्रारंभ माना गया है |

इस घुमंतू जाति के लोग अपनी विशिष्ट वेशभूषा के कारण अपनी एक अलग पहचान रखते हैं ये कान की पाली के मध्य से कान को विधिवत छिदवाते हैं और उसमें बड़े आकार के कुंडल पहनते हैं | कुंडल को मुद्रा कहा जाता है | गले में शिंगी पहनते हैं जो ताँबे या पीतल धातु द्वारा निर्मित होती है | भगवान की उपासना करने से पहले भराडी शिंगा बजाते हैं तत्पश्चात गुरू के द्वारा भराडी के हाथ में विधिवत रूप से भिक्षापात्र प्रदान किया जाता है इस भिक्षापात्र को 'दाबर' कहा जाता है | ऐसा माना गया है कि दाबर की प्राप्ति होने पर भराडी को जीवन पर्यंत भिक्षा माँगकर ही अपनी अजीविका चलानी होती है |

भराड में भैरव के संदर्भ में गीत गाये जाते हैं | भराड रूपी कथागीत गद्यपद्यात्मक होते हैं | इन गीतों को गाते समय डँमरू, तुणतुणे आदि वाद्य यंत्रों का प्रयोग किया जाता है | अंत में आरती की जाती है तथा भार उतारने की क्रिया विधि-विधान द्वारा संपन्न होती है | भराड में यह जाति विभूति का प्रयोग भी करती है | 'भैरोबा के नाम से चांगभलं' ऐसा जयघोष करते हैं | पद और व्याख्यान प्रस्तुत करते समय नृत्य नहीं किया जाता उसके अंतर्गत सुर एवं ताल सामान्य होते हैं परंतु वातावरण संगीतमय बन जाता है | कथा गायन एवं गद्य गायन पर जोर रहता है बीच-बीच में स्वरचित संवाद भी आते हैं | उत्तर रंग नाट्यपूर्ण रहता है | भराड़ी दीक्षा के बारे में जानकारी देते हुए प्रभाकर मांडे कहते हैं, ***"शादी के पहले एक दिन दीक्षा विधि का कार्यक्रम होता है |"***[vii]

पोतराज-

मराठी लोक संस्कृति के अंतर्गत दो प्रकार के देवी-देवता माने गए हैं- १) सौम्य प्रकृति वाले २) उग्र प्रकृति वाले |

मरिआई के उपासक पोतराज का बाह्य रूप रौद्र एवं भयानक होता है | पोतराज मराठी घुमंतू समुदाय में एक प्रसिद्ध लोक कलाकार होते हैं | इन्हें महाराष्ट्र राज्य के अंतर्गत 'मरीआई' अथवा 'कड़क लक्ष्मी' के नाम से भी जाना जाता है |

पोतराज पुरूष होता है फिर भी वह महिला का वेश धारण करता है | उसके बाल बंधे होते हैं | माथे पर हल्दी और कुमकुम लगा होता है | कमर पर बहुत सी साडियाँ जोड़कर सिलाया हुआ घागरा पहनता है | जिसे 'आभारन' भी कहा जाता है | कमर पर ही घंटावाली और घूँगरू बंधी माला भी लगाई होती है | ऐसी मान्यता है कि पोतराज अपने हंटर के प्रहार से लोगों की विपत्तियों को दूर करता है और देवी-देवता की कृपा को भक्तजनों तक पहुँचाता है |

पोतराज देवी के नाम से घर-घर घूमकर पारंपरिक गीतों को गाकर भिक्षा माँगता है | इसके द्वारा प्रमुखतः हरे रंग की चोली तथा विविध रंग के परिधान धारण किए जाते हैं | मान्यता है कि मातृदेवी के उपासना क्षेत्र में पुरूषों के जाने पर प्रतिबंध होने के कारण वह स्त्री वेश धारण कर वहाँ प्रवेश प्राप्त करता है | पोतराज की पारंपरिक वेशभूषा हाथ में असूड होता है जिसके कारण वह भयावह दिखाई पड़ता है तथा बच्चे उससे डरते हैं | महिलाएँ देवी का भक्त मानकर उसकी पूजा करती हैं तथा उसे धान प्रदान करती हैं | लोगों की धारणा है कि मरिआई के ये उपासक गाँव पर आने वाले संकट से गाँव तथा गाँव वालों की रक्षा करते हैं |

आभारन, गेनमाल, कोरडा, हलगी, भंडारा, वाकी, अंबाबाई की माला, लंगन, घागरमाल व घूँगरू पोतराज की पवित्र वस्तुएँ मानी जाती हैं | कर्पूर खाना, मुँह से अंगार निकालना, बदन पर सुई चुभवाना, भूत उतारना तथा जीभ के आर-पार सुआ निकालना जैसे चमत्कार पोतराज द्वारा किए जाते हैं |

"आ गई मरीबाई..... उसका समझ न आए अनुभव
बडे-बडों की लेती है जान..... आ गई मरीबाई ||"[ii]

ऐसा कहने वाला पोतराज कुछ गीत गाता है इन गीतों को 'वह्या' कहा जाता है | पोतराज द्वारा प्रमुख रूप से चार पंक्तियों के गीत रचे जाते हैं | मरीमाता के साथ-साथ विठ्ठल-रूक्मिणि, शंकर-पार्वती, दत्त-अनुसूया, राम-सीता आदि देवी देवताओं के भी गीत गाये जाते हैं | इसके साथ ही तीर्थ क्षेत्रों का महात्म्य वर्णन करने वाले गीत भी गाये जाते हैं |

निष्कर्ष-

मराठी घुमंतू जातियों के द्वारा समय-समय पर स्थान-स्थान पर भ्रमण करते हुए न केवल अपनी लोक-संस्कृति का विस्तार करने का कार्य पूर्ण किया गया अपितु इनके द्वारा समाज को अन्य विभिन्न जन संस्कृतियों को जानने व समझने का भी अवसर प्रदान किया | इन जातियों के द्वारा न केवल मनोरंजन जैसा कार्य किया जाता है अपितु विचारों व लोक-संस्कृति के प्रचार-प्रसार जैसा महत्वपूर्ण कार्य भी संपन्न हो जाता है |

इन विभिन्न लोक-संस्कृतियों के उपासकों के गीतों द्वारा समाज हेतु प्रबोधन कार्य संपन्न होता है | इनके द्वारा अपनाये जाने वाले गीत एवं उनके प्रस्तुतिकरण की शैली भिन्न है, गीत गाने की शैली भिन्न है, अभिनय तथा वाद्य यंत्र भिन्न है तथा वेश-भूषा व वाणी भिन्न है परंतु इन घुमंतू जातियों के द्वारा किया जाने वाला लोक-संस्कृति के विस्तार का उद्देश्य सबका एक है |

संदर्भ ग्रंथ सूची

कांबले संतोष, मराठी लोक-संस्कृति के उपासकों के गीत, स्रवंति, वर्ष-६४, अंक-३, जून- २०१९,

https://sablog.in/denotified-nomadic-semi-nomadic-tribes-and-literature/14536/ accessed on 29th December 2021, 02:09

भटक्या - विमुक्तांची आत्मकथने

डॉ. आर. के. शानेदिवाण
प्राचार्य,
श्री. शहाजी छत्रपती महाविद्यालय, कोल्हापूर
r.k.shanediwan@gmail.com
Mob.: 9960995853

सारांश

भटक्या विमुक्तांच्या आत्मकथनांनी या समाजाचे वास्तव जगासमोर आणले आहे. स्वत:च आखलेल्या वेदनादायी चौकटीत राहणारा हा समाज मोठ्या समूदायाच्या दृष्टीने सर्वार्थाने अनभिज्ञ होता. या आत्मकथनांनी किमान स्वरूपात या समाजाचे दु:ख, वेदना जगासमोर आली. या पुढील काळात या समाजातील तरूण पिढीने शिक्षणाचा वसा खांद्यावर घेऊन आपल्या समाजबांधवांच्या उन्नती व उत्कर्षासाठी प्रयत्न करावयास हवा. पण त्याचबरोबर प्रस्थापित समाज, सरकार, बुद्धिवादी, विचारवंत यांनीही केवळ सहानुभूती व अनुकंपेने भटक्या विमुक्तांकडे न पाहता त्यांचा सर्वांगिण विकास कसा होईल याकडे जाणीवपूर्वक लक्ष द्यावयास हवे.

बीज शब्द- भटके, विमुक्त, आत्मकथने.

प्रस्तावना :

स्वातंत्र्योत्तर काळात साहित्याची प्रक्रिया अधिकाधिक समाजाभिमुख झाली. विविध समाजघटक साहित्याच्या परिघावर येऊ लागले. विशेषतः दलित व ग्रामीण साहित्याच्या माध्यमातून अनेकांगी अनुभवविश्व मराठी साहित्यात प्रतिबिंबित झाले. आशय, विषय, मांडणी, भाषा, निवेदनशैली अशा सर्वच स्तरांवर हा अनुभव नवा ठरला. कथा, कादंबरी, नाटक, कविता यांबरोबर आत्मकथनांमधून याची प्रचिती येते. प्रस्तुत संशोधन लेखामध्ये भटक्या विमुक्तांच्या आत्मकथनांच्या अनुषंगाने मांडणी केली आहे.म

उद्दिष्टे :

"भटक्या-विमुक्तांची आत्मकथने" या संशोधनात्मक मांडणीचे पुढील उद्देश आहेत.

1. आत्मकथन ही संकल्पना समजून घेणे.
2. भटक्या-विमुक्तांच्या लेखन प्रेरणांचा अभ्यास करणे
3. भटक्या-विमुक्तांच्या आत्मकथनांची वैशिष्ट्ये समजून घेणे.

स्वातंत्र्योत्तर मराठी साहित्याचा परिघ अनेकांगानी वधारला आहे. प्रस्थापितांच्या लेखन संकेतांना आव्हान देत नवी मांडणी होण्याच्या या काळात समाजातील वेगवेगळे घटक बोलते झाले. भारतीय घटनेचा आधार घेत दुर्लक्षित असणाऱ्या व्यक्ती आणि समूह आपल्या व्यथा वेदना मांडू लागले. मराठी साहित्यामध्ये होत असणारा हा बदल माणुसकीचा आग्रह धरणारा आणि त्यासंदर्भातील आपली भूमिका ठासून मांडणारा असा ठरला. अशा बदलाची चाहूल डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरांच्या प्रेरणेने पुष्ट झाली. यातून दलित लेखक बोलू लिहू लागले. याचाच पुढचा टप्पा म्हणून भटक्या विमुक्त जाती जमातींच्या आत्मकथनांकडे पाहावयास हवे.

मराठी साहित्यात आत्मचरित्र हा शब्द परिचित आहे. आयुष्याच्या संधिकालात स्वजीवनाचे तटस्थपणे केलेले सिंहावलोकन असा सर्वसाधारण अर्थ यामध्ये अपेक्षित आहे. असे लेखन करण्यामागे गतस्मृतींना उजाळा देणे, कृतज्ञता व्यक्त करणे, आपल्या अनुभवांचा इतरांना फायदा व्हावा, मार्गदर्शन व्हावे असे विविधांगी हेतू असतात. पण मागील पन्नास वर्षांच्या काळात जीवनाच्या विशिष्ट कालावधीला अधोरेखित करून किंवा एखाद्या प्रसंगाला नजरेसमोर ठेवून अगदी तरुणपणीही लेखन झाले. सामान्यपणे अशा लेखनाला ' आत्मकथन' असे म्हणण्याचा प्रघातआहे. असे लेखन करणाऱ्या लेखकांचा वयोगट एकवीस वर्षांपासून चाळीस-पंचेचाळीस वर्षांपर्यंतचा आहे. या लेखनामध्ये पारंपरिक लेखनप्रणाली विचारात न घेता जी गोष्ट सांगण्यायोग्य वाटते तेथून सुरुवात होते आणि लेखकाला जिथे संपवावेसे वाटतात तिथे संपते. त्यामुळे वाचकाला काहीतरी अपुरे असल्याचा भास होतो. पण संबंधित लेखकाला तसे वाटत नाही कारण त्यांना तेवढेच सांगायचे असते. ज्यांना ' आत्मचरित्र' म्हटले जाते त्यामध्ये जीवनाचा समग्र तपशील दीर्घ मांडणीतून सामोरा येतो पण आत्मकथनातील चरित्र अल्प असते.

बऱ्याचवेळेला त्रोटकही असते. असे होण्यामागे संबंधित लेखकाचे अंतस्थ हेतूही असतात. या लेखनातून संबंधित लेखकाच्या व्यक्तिगत जीवनासह समाजजीवन, संबंधित समाजातील माणसे, त्यांचे वर्तन, भाषा, रूढी, परंपरा आदी बाबी समजून येतात. त्यामुळे असे म्हणता येते की आत्मकथन हा साहित्यप्रकार आत्मचरित्राला समांतर असणारा पण आपले वेगळेपण जपणारा साहित्यप्रकार आहे.

भटक्या जातीजमातींच्या अनेकांनी आपल्या जीवनाची कैफियत मांडली आहे. या मांडणीला आत्मचरित्र असे न म्हणता 'आत्मकथन' म्हणण्याचा प्रघात आहे. कारण संपूर्ण जीवनाचा परामर्श घेण्यापेक्षा आयुष्याच्या काही भागाची मांडणी लेखकाने केली आहे. हा अनुभव वाचण्याचा किंवा जाणवण्याचा प्रसंग मराठी साहित्य जगतात स्वातंत्र्योत्तर काळात साठ-सत्तर-ऐंशीच्या दशकात आला. तत्पूर्वी असे अंगावर येणारे, अस्वस्थ करणारे जीवनानुभव फारसे वाचनात आले नव्हते. कारण गावकुसाबाहेरील जगाशी तसा गावठाणाचा संबंध अगदी मर्यादित स्वरूपात यायचा. या गावकुसाबाहेरील जगाला समजून घ्यावे, त्यांच्याकडे मानवतेच्या भूमिकेतून पाहावे असे फारसे कोणाला वाटतही नव्हते. त्यामुळे दलित, भटक्या विमुक्तांच्या लेखनाने, त्यांच्या वाचनाने मराठी मन अस्वस्थ झाले, बेचैन झाले. आपल्या आजूबाजूला असाही समाज राहतो याचे भान मोठ्या समुहाला येऊ लागले. एकाअर्थी या लेखनाने मोठ्या समूहाला अंतर्मुख बनविले. एका बाजूला स्वातंत्र्याच्या प्राप्तीनंतर हळूहळू का असेना सुधारणा, विकास यांची फळे चाखायला मिळणारा समाज आणि दुसऱ्या बाजूला असा समाज ज्यांना राहायला घर नाही, सांगायला पत्ता नाही. गावाचा ठिकाणा नाही. एवढेच नाही तर या देशाचे आपण नागरिक आहोत हे पटवून देण्यासाठीची कोणतीही ओळख या समाजाला सांगता येत नव्हती. संविधानाने प्रत्येक भारतीयाला समता, बंधुतेची, स्वातंत्र्याची हमी दिली पण भटक्या-विमुक्तांच्या बाबतीत या शब्दांना तसा फारसा अर्थ नव्हता. त्यांना मतदानाचा अधिकार नव्हता. परंपरेच्या वरवंट्याखाली या समाजाचे जिणे अक्षरशः दबले होते. एकाअर्थी माणूस म्हणून त्यांचे अस्तित्व नाकारल्यासारखी परिस्थिती होती. त्यामुळे ही आत्मचरित्रे किंवा कथने वाचताना आपल्या आजूबाजूला असणाऱ्या माणसांचे अपरिचित जगणे समजून येते. या लेखनाने समाजातील विविध अधःस्तर मुखर झाले असे सतत वाटत राहते.

महाराष्ट्रामध्ये 42 भटक्या-विमुक्त जमाती असल्याची नोंद असून यापैकी 28 भटक्या तर 14 विमुक्त जमाती आहेत. भटक्या जमातीमध्ये गोसावी, बेलदार, भराडी, भुते, चित्रकथी, गारूडी, घिसाडी, गोल्ला, गोंधळी, गोपाळ, हेळवी, जोशी, काशीकापडी, कोल्हाटी, मैराळ, मसणजोगी, नंदीवाले, पांगुळ, रावळ, सिक्कलगर, ठाकर, वासूदेव, भोई, बहुरूपी, ढेलारी आणि ओतारी यांचा समावेश हेतो. विमुक्तामध्ये बेरड, बेस्तर, भामटा, कैकाडी, कंजारभाट, कटाब, वंजारा, राजपारधी, राजपूतभामटा, रामोशी, वडार, वाघरी, छप्परबंद यांचा समावेश असून या जमातींच्या पोटजातीची संख्या 200 इतकी आहे. भारतीय संविधान आणि कायद्याने या जाती जमातींना संरक्षण देण्याची भूमिका घेतली असली तरी आजही प्रथा, परंपरांच्या वरवंट्याखाली यातील बहुतांश जमाती भरडल्या जात आहेत. जात जमातीच्या बंदिस्त चौकटीतून बाहेर पडून कांहीनी शिक्षण घेतले आणि नवी वाट मळायला सुरूवात केली. अशातील कांहीनी आपली जीवनकहाणी मांडली असून यामध्ये लक्ष्मण माने, लक्ष्मण गायकवाड, दादासाहेब मोरे, विमल मोरे यांचा विशेषत्वाने उल्लेख होतो. यामध्ये लक्ष्मण माने यांचे 'उपरा', लक्ष्मण गायकवाड यांचे 'उचल्या', दादासाहेब मोरे यांचे गबाळ, विमल मोरे यांचे 'तीन दगडांची चूल', किशोर शांताबाई काळे यांचे 'कोल्हाट्याचं पोर', नानासाहेब झोडगे यांचे 'फांजर', भीमराव गस्ती यांचे 'बेरड', आत्माराम राठोड यांचे 'वाडा', जनाबाई गिऱ्हे यांचे 'मरणकळा', मुक्ता सर्वागौड यांचे 'मिटलेली कवाडं', नमुबाई गावीत यांचे 'आदोर' आदींचा विशेषत्वाने उल्लेख होतो.

भटके विमुक्त असा शब्दप्रयोग केल्याबरोबर ज्यांचा नेमका ठावठिकाणा नाही, जे कुठेही हिंडतात असा समूह हा अर्थ प्रथमदर्शनी नजरेसमोर येतो. भटका म्हणजे भटकणारा, ज्यांना अजूनही समाजव्यवस्थेच्या मुख्य प्रवाहात स्थान नाही आणि जे आपले अस्तित्व सिद्ध करण्यासाठी संघर्ष करीत आहेत, झगडत आहेत असा समाज होय. आपण स्वातंत्र्याची सदुसष्ट वर्षे पूर्ण केली आहेत पण अजूनही कांही विशिष्ट जाती जमातीवर असणारा गुन्हेगार हा शिक्का पुसू शकलो नाही. पारतंत्र्यात असताना ब्रिटीश सरकारने भटक्या जातीजमातींना गुन्हेगार ठरवून त्यांच्यावर अनेक बंधने घातली. सर्वसामान्य नागरिकाला मिळणाऱ्या कोणत्याही सोयी सुविधा या समूहाला मिळू नयेत अशी व्यवस्था करण्यात धन्यता मानण्यात आली. याचा परिणाम सर्वांगाने झाला. जगण्यासाठी कोणतेही साधन नाही, जमीन नाही, व्यवसाय नाही आणि मुख्य म्हणजे समाजात उभं राहायचे असेल तर शिक्षण हवे तेही नाही.[2] अशा परिस्थितीने हा समाजसमूह पूर्णपणे समाजजीवनाच्या मुख्य प्रवाहापासून बाजूला राहिला. या समाजाला एका ठिकाणी राहून मालकी व नागरी जीवन जगता न आल्याने या जाती मागास व अतिमागास राहिल्या. याचा दुर्देवी

परिणाम म्हणजे हा समाज अंधश्रद्धा, रूढी, परंपरा, दारिद्र्य, अज्ञान आणि निरक्षरतेच्या खाईत बुडालेला आहे. आज एकविसाव्या शतकाच्या उंबरठ्यावरून आत आपण प्रवेश करीत असतानाही भटक्या-विमुक्तांना आधुनिकतेचा स्पर्श झालेला नाही. दु:ख, दारिद्र्य, निरक्षरता, भटकणे, भिक मागणे या चक्रात या समाजाचे जीवन संपत आहे. नव्या जाणिवांचा स्वीकार केला तर देवाचा कोप होईल अशी भावना बाळगणाऱ्या या समाजाला अंध:काराच्या खाईतून बाहेर पडण्यासाठी तीव्र संघर्ष करावा लागत आहे. हा संघर्ष कांही प्रमाणात भटक्यांच्या आत्मकथनातून जगासमोर येत असून यामध्ये ' उचल्या' कार लक्ष्मण गायकवाड यांचे योगदान खूप मोठे आहे.

लक्ष्मण गायकवाड यांनी आपल्या आत्मकथनातून आपल्या समाजाचे वास्तव जग मांडले ज्याचा मागमूस प्रस्थापित व्यवस्थेला नव्हता. दलित साहित्याने गांवकुसाबाहेरचे जीवन मराठी साहित्यात आणले आणि साहित्यविश्व हादरले. अशावेळी भटक्या लक्ष्मण गायकवाडांच्या अनुभवाने प्रस्थापित समाज अचंबित झाला. माणसं अशीही जगतात याची जाणीव मोठ्या समूहाला करून देण्याचे महत्त्वपूर्ण कार्य गायकवाडांच्या भाषिक कृतीमुळे साध्य झाले. भटकी जमात अक्षरश: गाव, समाज यापासून कितीतरी दूर आहे. अजूनही कांही ठिकाणी त्यांच्यावर निर्बंध असून गावात प्रवेश करताना गावाच्या पाटलाची परवानगी घ्यावी लागते. घटनेने समता, स्वातंत्र्य, समानता याची कितीही ग्वाही दिली तरी वस्तुस्थिती मात्र विपरित आहे. म्हणून लक्ष्मण गायकवाडांनी आपले जीवन लोकांसमोर मांडले. त्यांचा हेतू प्रामाणिक आहे. काळ बदलला आहे याची प्रखर जाणीव त्यांना असून आपल्या समाजाने नव्या युगाची पाऊले ओळखून वाटचाल करायला हवी अशी त्यांची धारणा आहे. म्हणूनच माणूस म्हणून जगण्याचा आपणांस हक्क आहे व या उचलेगिरीपासून दूर राहून स्वकर्तृत्वावर आपण जगायला पाहिजे, शिक्षण घेतले पाहिजे" असे त्यांना वाटते. स्वातंत्र्याच्या इतक्या वर्षात भटक्यांची दु:खे मांडण्याचा प्रयत्न कांहीनी केला पण लक्ष्मण गायकवाड यांना बुद्धिवंत, प्रतिष्ठित तसेच मध्यमवर्गीय यांच्यावर अजिबात विश्वास नाही. त्यांच्या मतानुसार या लोकांना भटक्यांचे दु:ख, वेदना समजल्या नाहीत. जे लोक सोसताहेत, भोगताहेत त्यांनीच आपल्या वेदना, मांडायला हव्यात याची प्रखर जाणीव होऊन 'उचल्या'चा जन्म झाला आहे.

एका गोष्टीचा उल्लेख करावयास हवा की, मराठी साहित्यामधील समाजजीवन बरेचसे एकांगी व पूर्वग्रहदूषित आहे. विशेषत: अल्पसंख्याक आणि दलित भटक्यांसंदर्भातील वर्णन तर कल्पनेच्या पातळीवर स्थिरावल्यासारखे वाटते. अशावेळी प्रस्थापित समाजधुरिनांना आपल्या शेजारी असणारा आणि या समाजव्यवस्थेचा घटक असणारा मोठा समूह कसा जगतो आहे हे कळण्यासाठी का असेना असे लेखन होणे गरजेचे होते. लक्ष्मण गायकवाड यांचे 'उचल्या', विमल गोरे यांची 'तीन दगडांची चूल', दादासाहेब मोरे यांचे 'गबाळ' या व अशांच्या लेखनामुळे हा हेतू कांही प्रमाणात का असेना साध्य होत आहे असे वाटते. लक्ष्मण गायकवाड यांनी आणखी एका गोष्टीचा निर्देश केला आहे ते म्हणतात, "या जातीजमातीमधून नवीन पद्धतीचे शिक्षण घेऊन जगणाऱ्यांनी या समाजाबद्दलची आपली बांधिलकी सांगावी"[4] मला वाटते ही परिस्थिती सर्वच समूहांमध्ये कमीअधिक प्रमाणात जाणवत आहे. शिक्षणाने स्वविकास व्हावाच पण आपण ज्या समाजाचे प्रतिनिधित्व करतो त्या समाजाचे आपण कांहीतरी देणं लागतो ही भावनाही जागृत ठेवावयास हवी. भटक्या विमुक्तांची आत्मकथने वाचल्यानंतर अशी बांधिलकीची भावना सर्वांकडे असल्याचे प्रकर्षाने जाणवते.

भटक्या विमुक्तांच्या जीवनाचा परामर्श घेताना एक बाब विशेषत्वाने जाणवते की या समूहामध्ये स्त्रियांसंदर्भातील भावना तीव्र नकाराच्या आहेत. आजही मुलगी जन्माला येणे म्हणजे अशुभ घडले अशी मानसिकता असणाऱ्या या समाजात यासाठी मुलीच्या आईला जबाबदार धरण्यात येते. घरचा सर्व गाडा जरी स्त्रियांच्या खांद्यावरून वाहण्यात येत असला तरी या सर्व स्त्रिया म्हणजे मुलगी, आई, सून, पत्नी एका अपराधी मनोवृत्तीने जगत असतात. त्यांना अन्याय, अत्याचार सहन करावे लागतात. मुळात या स्त्रिया कधी फारशा सार्वजनिक ठिकाणी दिसत नाहीत. आणि दिसल्याच तर त्यांची कपडे, शरीराच्या प्रत्येक भागावर असणारी जाडजुड आभूषणे यांमुळे त्यांच्याकडे विचित्र नजरेने पाहिले जाते. पण एक गोष्ट लक्षात घ्यावयास हवा की ही आभूषणे, दागिने म्हणजे त्या स्त्रीवर लादलेली बंधने आहेत. माणूसकीला काळीमा म्हणून ज्याचा उल्लेख करता येईल अशा प्रथा आजही येथे पाळल्या जातात. उदा. वडार स्त्रीने चोळी न घालणे, वयात आलेल्या मुलीचे लग्न होत नसेल तर तीचा चेहरा काळा करणे, अशा अमानवीय प्रथा आजही या समाजात आहेत. याचा अर्थ जग कितीही पुढारलेले असले तरी भटक्या विमुक्तांच्या स्त्रियांना अजूनही 'स्वातंत्र्य' मिळालेले नाही. स्त्रीला उपभोगाची वस्तू समजणाऱ्या या समाजातील पुरूष जास्तीत जास्त स्त्रियांशी लग्न

करतो. जास्तीत जास्त मुले होणारी स्त्री भाग्यवान समजली जाते. बऱ्याचवेळेला सासू आणि सून एकाचवेळी बाळंत होताना दिसतात. याचा अर्थ स्त्रिच्या अस्तित्वाला फारसे महत्त्व नसणाऱ्या या समाजातील रूढी, परंपरामुळे भटक्या विमुक्त स्त्रियांचा मात्र बळी जातो.[6] ही वस्तुस्थिती नाकारता येत नाही. असे असले तरी कांही भटक्या जमातींमध्ये स्त्रीला महत्त्वाचे स्थान आहे. कुटुंबातील प्रत्येक कार्यात या महिला सहभागी होतात. कांही जातीमध्ये मुलींना हुंडा देण्याची प्रथा आहे. कर्नाटकातील कांही भागात सासू सासरे भावी जावयाची परीक्षा घेतात. ज्यांच्या घरी मुली जास्त त्याला नशीबवान माणण्याचीही प्रथा काही जमातीमध्ये आढळते.[7] हा सर्व तपशील रामनाथ चव्हाण, उत्तम कांबळे यांनी आपल्या भटकंतीमधून मांडला आहे. भटक्या जमातीमध्ये तीव्र जातीभेद पाळला जातो. कांही जमाती महार, मांग, चांभार, ढोर यांच्या घरातील अन्न खात नाहीत याचाही तपशील संशोधनाअंती समोर आला आहे. ही सर्व परिस्थिती जाणून घेतली तर लक्षात येते की भटका समाज आजही जून्या वाटेवरून प्रवास करीत आहे. भूतकाळाच्या बेड्या घट्टपणे या समाजाच्या पायांमध्ये अडकलेल्या असून त्यासंदर्भातील गांभीर्य कांही भटक्यांनी लिहिलेल्या जीवनव्यथांतून समजून येते.

निष्कर्ष :

प्रस्तुत मांडणीतील आत्मकथनांच्या आधारे काही निष्कर्ष नोंदविणे शक्य आहे.

1. भटक्या विमुक्त जातीजमातीतील अनेकांनी आपले जीवनानुभव मांडले आहेत. हा जीवनानुभव जातीगणिक विविधांगी आहे.
2. बहुतांशी सर्व आत्मकथनांमध्ये जीवनातील संघर्ष, नात्याला आलेल्या वेदनांचे चित्रण आहे.
3. आपल्याला गावठाणाच्या बाहेर राहायला भाग पाडले गेले याची खंत या लेखनातून जाणवते.
4. बहुतांश सर्व समाजघटकांवर श्रद्धा, अंधश्रद्धांचा प्रचंड पगडा आहे.
5. महाराष्ट्राच्या विविध भागातील लेखकांनी प्रदेशासह भाषेचा वैशिष्ट्यपूर्ण वापर करून, बोलीच्या समर्पक वापर करीत जीवनानुभव मांडला आहे.
6. विविध जातीसमूहांच्या सांस्कृतिक वैशिष्ट्यांचा परिचय होण्यास प्रस्तुत लेखनाची मदत होते.

भटक्या विमुक्तांच्या आत्मकथनांनी या समाजाचे वास्तव जगासमोर आणले आहे. स्वत:च आखलेल्या वेदनादायी चौकटीत राहणारा हा समाज मोठ्या समूदायाच्या दृष्टीने सर्वार्थाने अनभिज्ञ होता. या आत्मकथनांनी किमान स्वरूपात या समाजाचे दु:ख, वेदना जगासमोर आली. या पुढील काळात या समाजातील तरूण पिढीने शिक्षणाचा वसा खांद्यावर घेऊन आपल्या समाजबांधवांच्या उन्नती व उत्कर्षासाठी प्रयत्न करावयास हवा. पण त्याचबरोबर प्रस्थापित समाज, सरकार, बुद्धिवादी, विचारवंत यांनीही केवळ सहानुभूती व अनुकंपेने भटक्या विमुक्तांकडे न पाहता त्यांचा सर्वांगिण विकास कसा होईल याकडे जाणीवपूर्वक लक्ष द्यावयास हवे.

साधन ग्रंथ सूची :

1. चव्हाण रामनाथ, भटक्या विमुक्तांचे अंतरंग, सुगावा प्रकाशन, पुणे, 1989, पृ. 109.
2. राडोड मोतीराम, भटक्या विमुक्तांचा जाहिरनामा, वंजारा कॉलनी, औरंगाबाद.
3. गायकवाड लक्ष्मण, उचल्या, विद्या प्रकाशन, पुणे, 1987.
4. तत्रैव.
5. प्रा. गोरे सरला, अल्पसंख्यांकाचे विचारविश्व, न्यू वाईसेस पब्लिकेशन, औरंगाबाद, पृ. 153.
6. खरात शंकरराव, भटक्या व विमुक्त जातीजमाती व त्यांचे प्रश्न, (संदर्भ - अल्पसंख्यांकाचे विचारविश्व, पृ. 193.)
7. कांबळे उत्तम, भटक्यांचे लग्न, मेहता पब्लिशिंग हाऊस, पुणे, 1988, पृ. 93.

घुमंतू की वर्तमान दशा और दिशा

प्रा.डॉ. अशोक तुकाराम जाधव
सहयोगी प्राध्यापक एंव अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
कै. बाबासाहेब देशमुख गोरठेकर
महाविद्यालय,उमरी
चलभाष:9421839604
Shrikrushan12@gmail.com

सारांश:-

घुमंतू समाज के लोग "भारतीय (हिंदू) संस्कृति की रक्षक थे। आज़ादी के बाद से लगातार यही हो रहा है कुल आठ-नौ कमेटियों और दो राष्ट्रीय आयोगों की सिफारिशों के बाद फिर विमुक्त और घुमंतू जनजातियों के विकास के लिए कुछ उल्लेखनीय नहीं किया गया। कोई भी योजनाएं आती है, मगर खत्म कब होती है, पता नहीं होता है। उसके फायदे किन-किन लोगों को मिलते हैं वह भी पता नहीं है। इसी योजनाओं के कारण घुमंतू समाज की शिक्षा में अधिक सुधार नहीं हो पाया है। घुमंतू समाज के लिए दलित, आदिवासियों जैसे अधिकाधिक स्कूल भी नहीं है।

बीज शब्द- घुमंतू, समाज, विकास, दशा और दिशा।

प्रस्तावना,

आज हम आजादी का अमृत महोत्सव मना रहे हैं, किंतु वर्तमान स्थिति में विमुक्त और घुमंतू समाज की आबादी 20 करोड़ के आसपास है। क्योंकि 2011 की जनगणना के अनुसार 15 करोड़ थी, वर्तमान में 20 करोड़ के आस पास ही होगी। यह सभी लोग उनके राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक स्थिति को देखेंगे तो परेशानियों को चरम पर पहुंचा दिया है। सरकार में अपराधिक जनजाति अधिनियम बनाया था। जिसके तहत घुमंतु समुदायों को जन्मजात अपराधी घोषित कर दिया गया था। पुरखों से चले आ रहे उनके कामों पर रोक लगा दी थी। इतना ही नहीं तो उनको पुलिस थाने में हाजिरी लगाने के लिए कहा जाता था। भारत आजाद होने के बाद 1952 को कानून से उनको आधा ही मुक्त कर दिया था। अर्थात् उस कानून में बदलाव किया था। भारत सरकार ने उनके पारंपरिक कामों पर जैसे सांपों का खेल, बंदर नचाना, जड़ी-बूटी बेचना आदि पर रोक लगा दी थी। 2005 में आयोग का गठन किया गया उसके अध्यक्ष बालकृष्ण रहे थे। इस आयोग ने 2008 को अपने सुझाव एवं बदलाव का परामर्श देकर अपनी रिपोर्ट केंद्र सरकार को सौंप दी इसके बावजूद घुमंतू समाज की दशा और दिशा क्या है, जानते हैं।

'घुमंतू' वे लोग जिनका कोई स्थाई निवास नहीं रहत है। वह किसी एक स्थान पर नहीं रहते, हमेशा ही घूमते रहते हैं। जिनके रहने अथवा ठहरने का कोई निश्चित स्थान न हो। अंग्रेजी में इसे **Mobile** कहते हैं। उसे हिंदी में 'घुमंतु' कहा जाता है।

घुमंतू जनजातियाँ:-

"बलदिया, भाट, बाछोवालियाँ, देशर, लोहार, पिट्ट, काशी, कपड़ आदि। विमुक्त, कंजर, सांसी, बांछड़ा, मोघिया,नट, पारधी, बेडिया, कुचबंदिया, पासी,बैरागी आदि।"1 "बाल बैरागी, बेलदार भराडी, भूते चलवादी, चित्रकथी, घिसड़ी, गोपाल, हेलवे, जोशी, काशीकापडी, कोल्हाटी, नंदीवाले, रावल, सिकलवार, ठकार, वासुदेव, फासेपारधी।"2

'घुमंतू' की व्याख्या:-

1) "यह किसी एक जगह स्थाई रूप से निवास न करते हुए, महज जीने के लिए इस जगह से उस जगह पर जाना आना करने वाले लोगों को घुमंतू कहा जाता है।"3

2) "रॉयल अथ्रापॉलाजीकल इस्टिटयूट ऑफ ग्रेट ब्रिटन- कोई भी निश्चित घर न होने वाले ,शिकार या अन्नाज जमा करना ही इनका जीवन होता हैं उन्हें घुमंतू कहॉ जाता हैं।"4

अर्थात् समय के साथ- साथ सब कुछ जमाति अन्य समाज की तुलना में गांव गांव, शहर दर शहर,घूमतें रहे उनको 'घुमंतू' जमात कहां गया। यह जमात दूसरे समाज के लिए काम करती है। कुछ खेतों में काम करने लगे इसमें दिनचर्या चलाने के लिए आय का समाधान ना होना परिणाम स्वरूप घुमंतू हो गए।

'घुमंतू' लोगों का व्यवसाय:-

1) खेतों में अन्नाज जमा करने के लिए घूमना।
2) भेड़ बकरियां संभालने वाली जमात।
3) छोटे छोटे व्यापार करना।
4) भिक्षा मांगना।
5) गांव में छोटे-छोटे काम करना।
6) दूसरों के आशीर्वाद पर जीवित रहने वाले लोग।
7) गांव के लोगों का मनोरंजन करना।
8) आदि।

इस प्रकार के जो अस्थाई काम, व्यापार आदि करते थे। जो निश्चित आय नहीं देता है। इसी कारण इन लोगों की आर्थिक परेशानियां कभी खत्म ही नहीं हुयी है।

'घुमंतू' की वर्तमान दिशा :-

वर्तमान में 'घुमंतु' की सामाजिक स्थिति को देखेंगे तो बहुत ही सोचनीय है। 2022 में उनकी अवस्था आतीत से कुछ अधिक ठीक नहीं है। व्यक्ति जब मर जाता है, तो उसे दफनाने के लिए उनके हक्क की शमशान भूमि भी उपलब्ध नहीं है। उन्हें जिस गांव में रुके वहीं पर उस गांव के शमशान भूमि में मरनेवाले को दफनाना पड़ता है। जैसे:-

"घुमंतू के पास शमशान भूमि नहीं होती इसलिए यह लोग जहां होते हैं, वहां की शमशान भूमि में अपने मृतकों को दफनाते हैं, लेकिन गांव वाले अक्सर उन्हें अंतिम संस्कार करने नहीं देते जिसके चलते यह लोग मृत देह को लेकर इधर से उधर घूमते रहते हैं।"5

सन 1960 में महाराष्ट्र राज्य के सोलापुर जिले में घुमंतू समाज का राष्ट्रीय सम्मेलन हो गया था। इस समय इन सभी घुमंतू समाज के लोगों की स्थायी जीवन जीने की इच्छा जागृत हो गई थी। उनको कहीं ना कहीं लग रहा था कि, हमारा भी स्थाई गाँव होना चाहिए। हक्क का निवास होना चाहिए। इस सम्मेलन का उद्घाटन भारत के पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू थे। सभी घुमंतू लोगों के मन में एक विश्वास निर्माण हो गया। परिणाम स्वरूप 4% आरक्षण प्राप्त हो गया था। किंतु वर्तमान में उसकी स्थितियां क्या है इस पर भी सवाल है।

"2019 के बजट में केंद्र सरकार ने एक नया आयोग और राज्यों में घुमंतू बोर्ड बनाए जाने की घोषणा की और नीति आयोग के अंतर्गत घुमंतू समुदायों के उत्थान हेतु एक पद सृजित कर उसका अध्यक्ष भीखूराम इदाते को बना दिया.। किंतु आज तक ना नीति आयोग ने कुछ किया और ना इदाते ने. लॉकडाउन के दौरान मैंने इदाते को फोन किया, तो इदाते ने सरकार को जिम्मेदारी से मुक्त करते हुए दावा किया, "घुमंतुओं के उत्थान का काम समाज को करना चाहिए, इसमें सरकार क्या कर सकती है? मैंने उनसे पूछा कि उन्होंने आज तक नीति आयोग, केंद्र सरकार को क्या सुझाव दिए हैं, तो उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया."6 इसलिए जब तक कोई सक्षम एवं प्रभावशाली राजनीतिक नेतृत्व विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों के उत्थान के लिए पूरी संवेदनशीलता से ज़िम्मेदारी नहीं निभाएगा तब तक इन सर्वाधिक वंचित समुदायों को सामाजिक न्याय नहीं मिल सकेगा।

घुमंतू समाज के लोग "भारतीय (हिंदू) संस्कृति की रक्षक थी और आज भी है घुमंतु समुदाय गाड़ियां लोहारों के त्याग, बलिदान और दृढ़ प्रतिज्ञा हिंदू संस्कृति के महान रक्षकों को कौन नहीं जानता? आज उनकी स्थिति बद से बदतर है, किंतु अधिकांश प्रांतीय सरकारें उन्हें अपने प्रांत का नागरिक भी नहीं मानती है।"7 वर्तमान में सामाजिक एवं राजनीतिक परिदृश्य पूरी

तरह बदल गया है। 'घुमंतू' के उत्थान के लिए पूरी संवेदना से जिम्मेदारी नहीं निभाएगा तब तक इन सर्वाधिक वंचित समुदाय को सामाजिक न्याय नहीं मिल सकेगा। यह समाज जब तक शिक्षा प्राप्त नहीं करेगा तब तक इन घुमंतू में परिवर्तन नहीं होगा।

'घुमंतू' की वर्तमान दशा :-

निवास की समस्या :-

'घुमंतू' समाज की रहने की समस्या बड़ी ही गंभीर है। यह समाज एक जगह न रुकने के कारण इनके स्थायी घर बनाने में बड़ी मुश्किल निर्माण होती है। एक गांव से दूसरे गांव, वहां उस गांव में जहां गांव के बाहर तंबू- पाल की घरे बनाकर रहते हैं। गोबर मिट्टी के भी घर उनको नसीब में नहीं होते है। इंदिरा निवास योजना, राजीव गांधी निवास योजना आदि जैसे शासकीय योजनाओं में से घर मिलना बडी मुश्किल हैं, क्यो कि, इनके पास किसी गाँव का निवास प्रमाण पत्र भी उपलब्ध नहीं रहता हैं। इसलिए शासकीय योजनाओं में से कोई पक्का घर नहीं दे सकते हैं। ऐसी कई समस्याओं में से समस्या का निर्माण घुमंतू' समाज के रहने की समस्या के लिए होता है।

भोजन की समस्या :-

'घुमंतू' समाज की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण उनके भरपेट खाना भी नहीं मिलता, क्यों कि इनकी दिनचर्या चलाने के लिए निश्चित स्थायी रूप से रोजगार नहीं है। लड़कियों की चीजें बेचना, जंगल के फल फूल बेचना, आदि से यह लोग पैसा कमाते हैं, जो महल खाने के लिए भी बस्स नहीं होता हैं। इससे इनका कुपोषण होता है। अकाल के कारण कम उम्र में वृद्ध दिखने लगते हैं। बीमार गीरने पर अस्पताल में सही इलाज नहीं कर पाते हैं। इसी कारण कभी-कभी इन का देहावसान भी हो जाता है। रूढी- परंपरा के कारण इनका सामाजिक दर्जा की अवहेलना का सामना भी करना पड़ता है। इसमें किसी सार्वजनिक जगह पर भोजन के लिए मान सम्मान नहीं मिल पाता हैं।

शिक्षा की समस्या :-

'घुमंतू' समाज में शिक्षा का प्रमाण बहुत ही कम है। पेट भरने के लिए उनको हमेशा ही गांव गांव भटकना पड़ता है। इस कारण इनको मूलभूत आवश्यकताएं भोजन वस्त्र एवं आश्रय इसमें ही परेशान रहना पड़ता है। इसमें शिक्षा जैसा क्षेत्र इनके ध्यान में कैसे आ जाएगा। अशिक्षा में अंधश्रद्धा, गुन्हगारी, चोरिया करना आदि क्षेत्रों में उनका ध्यान लगता है। अगर इन्होंने शिक्षा पर ध्यान दिया तो, निश्चित ही उनके जीवन में परिवर्तन होगा। 'घुमंतू' समाज का जीवन ऐसा बन गया है, जिसमें जीते जी भी और मरने के बाद भी सुकून नहीं है। हमारे देश में शिक्षा मुफ्त में देने का वायदा तो करते हैं, मगर शिक्षा देने वाले शिक्षक अधिक मात्रा में नियुक्त नहीं करते हैं। महज नाम मात्र शिक्षा मुफ्त हैं। कोई भी योजनाएं आती है, मगर खत्म कब होती है, पता नहीं होता है। उसके फायदे किन-किन लोगों को मिलते हैं वह भी पता नहीं है। इसी योजनाओं के कारण घुमंतू समाज की शिक्षा में अधिक सुधार नहीं हो पाया है। घुमंतू समाज के लिए दलित, आदिवासियों जैसे अधिकाधिक स्कूल भी नहीं है। जिससे शिक्षा प्राप्त करें "स्वामी विवेकानंद जी ने कहा था "गरीबों को भरपेट खाना और शिक्षा मिलनी चाहिए। जिससे देश का विकास होगा। इस तरह से समाज की शिक्षा की स्थिति वर्तमान में सोचनीय है।

घुमंतू में सामाजिक परिवर्तन के लिए यह बदलाव होने चाहिए:-

1) 'घुमंतू' के लोगों की जनगणना करना।
2) प्रादेशिक (जाति) सूची में से निकालकर केंद्र के एक ही सूची में लाना चाहिए।
3) जमीन दान देनी चाहिए।
4) पाश्चत्य के देशों की तरह अध्ययन कर उनमें परिवर्तन करना चाहिए।
5) घुमंतू लोगों का निर्वासन गांव में होना चाहिए।
6) निश्चित स्थायी आवास प्रदान करने चाहिए।
7) संविधान के तहत इनका रक्षण करना चाहिए।

8 आदि।

उपरोक्त बदलाव से 'घुमंतू' समाज में परिवर्तन आ सकता है।

संदर्भ:-

1) www.google.com
2) भारतीय समाज समकालिन समस्या प्रा. दीपक धरवाडकर और प्रा. साहेबराव भालेराव रुद्राणी पब्लिकेशन हाउस भोकर महाराष्ट्र प्रकाशन वर्ष 2017 पृ. संख्या 92
3) वही. पृष्ठ सं. 91
4) वही. पृष्ठ सं. 91
5) www.google.com हिंदी कारवां मैगजीन डॉट इन घुमंतू समाज से सरकारी विश्वासघात के 70 साल अश्विनी शर्मा जून 22 जुलाई 2020
6) www.google.com हिंदी कारवां मैगजीन डॉट इन घुमंतू समाज से सरकारी विश्वासघात के 70 साल अश्विनी शर्मा जून 22 जुलाई 2020
7) www.thewirehindi.com/ आजादी के इतने साल बाद भी घुमंतू जनजातीय विकास से कोसों दूर क्यों है?

संदर्भ ग्रंथ :-

1) भारतातील सामाजिक समस्या डॉक्टर सुधाकर दाते पिंपलापुरे प्रकाशन नागपुर एक 1970
2) भारतीय समाज व्यवस्था प्राध्यापक - मंगेश प्रकाशन कानपुर 2002
3) भारतीय समाज रचना डॉक्टर लोखंडे पी मंगेश प्रकाशन नागपुर 2001
4) भटक्या विमुक्त जाति पंचायत, चव्हान रामनाथ, देशमुख आणि कंपनी प्राइवेट लिमिटेड पुणे 2002।
5) भारतीय समाज-आव्हाने आणि समस्या,रा.ज. लोटे, मनोहर पिंपलापुरे एंड कंपनी पब्लिशर, नागपुर,

'चानी' चित्रपटातून साकारलेली वारली जमातीचे जीवनदर्शन

1. डॉ. कविता अ. गगराणी
सहयोगी प्राध्यपिका,
द न्यु कॉलेज,कोल्हापूर.
2. कु. नम्रता देविदास ढाळे
सहाय्यक प्राध्यपिका
विवेकानंद कॉलेज,कोल्हापूर.

सारंश

महाराष्ट्रातील भटक्या विमुक्त जातींच्या विवेचनात समाजाच्या ऐतिहासिक पार्श्वभूमी त्यांच्या समाजाचे स्वरूप राहणीमान त्यांच्या धार्मिक विधी विवाह पद्धती चालीरीती या त्यांच्या परंपरेने त्यांच्याशी निगडित झालेले आहेत. तसेच हा समाज मागासलेला म्हणता येणार नाही. परंतु समाजाच्या संघटितपणा साठी प्रयत्न झालेले दिसत नाही. वारली समाज हा महाराष्ट्रभर विकुरलेला असला तरी या समाजावर व त्यांच्या संस्कृतीवर थोड्याफार प्रमाणात प्रादेशिक प्रभाव पडलेला आहे. या समाजाच्या ऐतिहासिक पार्श्वभूमी यावरून शेवटी एवढेच म्हणावे लागेल की, समाज कोणताही असो माणूस हा एकच असतो. त्याला जगण्याचा अधिकार प्राप्त झाले पाहिजे. तरच त्याचा विकास होऊ शकतो.

बीज शब्द- भटक्या, जाती, जमाती, वारली, समाज.

प्रस्तावना:-

भारतीय समाज व्यवस्थेमध्ये भटक्या जाती जमाती हा शब्दप्रयोग स्वातंत्र्यानंतर अस्तित्वात आला. या जमातींना 1952 मध्ये ब्रिटिश शासनाच्या 1871 च्या गुन्हेगारी कायद्यापासून मुक्त करण्यात आले भारतात 1871 त्यावेळी 198 भटक्या विमुक्त जाती जमाती होत्या तर महाराष्ट्रामध्ये चाळीस जमाती होत्या पुढे वाढ होत गेली. महाराष्ट्र भटक्या विमुक्त जाती जमाती आहेत भामटा कैकाडी गोंधळी नंदीवाले इत्यादी खेडोपाडी भटकणाऱ्या जमातीपैकी वारली ही भटक्या जमाती पैकी एक जात असून वारली चित्रकला प्रामुख्याने प्रसिद्ध आहे. वारली ही वन्य जमात असून मुख्यत्वे ठाणे जिल्ह्यात व बृहन्म मुंबईत आहे. काही थोड्या स्वरूपात नाशिक, खानदेशात, धुळे, जळगाव, पुणे, रायगड, अहमदनगर मध्ये वारली जमात आढळते. वारली हा शब्द वरल म्हणजे शेती केलेल्या भूमीच्या लहानसा भाग असा असून त्यापासून हा शब्द आला. पुरातन कल्पनेतील सप्तक कोकणातला हा सहावा भाग मानतात. इतिहास संशोधक राजवाडे यांनी वारुड यातून 'वारूली' व वारली असा शब्द असल्याचे म्हटले आहे. 'एथनोव्हेन' यांनी वारलीना भिल्लांचा उपविभाग म्हटले आहे. तर विल्यमने त्यांना व ठाकर यांना कोळ्यांच्या पोटजाती म्हटले आहेत. परंतु तसा संबंध आज दिसत नाही. याउलट ते स्वतःला त्यांच्या पेक्षा श्रेष्ठ समजतात. ठाणे जिल्ह्यात त्यांची सुमारे 88% लोकसंख्या असून ते डहाणू तलासरी जव्हार व पालघर या भागात राहतात.

भटक्या विमुक्त जाती-जमाती:-

भारत हा अनेक जाती भाषा व पंथ असलेल्या विविधतेतून एकता असलेला देश आहे. भारतात प्रत्येक जातीची वेगळी ओळख आहे. रूढी,परंपरा,धर्म समाजाला आवरण आहे येथे जन्मावरून माणसाच्या जातीची विभागणी केली जाते. भारतामध्ये आर्यांचे आगमन होण्यापूर्वी द्रविड वंशाचे लोक राहतात होते. आगमनामुळे आर्य द्रविड संघर्ष सुरू झाला. आर्यांनी द्रविडाना हरवले. तेव्हा द्रविड आपला जीव वाचवण्यासाठी रानावनात डोंगरदऱ्यात जाऊन राहू लागले. अशा 13 व्या शतकामध्ये राजाश्रय मिळाला. पुढे ब्रिटिश आगमनानंतर या लोकांवर ब्रिटिशांनी अन्याय सुरू केला. त्यामुळे या लोकांच्यात गुन्हेगारी प्रवृत्ती वाढू लागली. याचा परिणाम म्हणजे 1871 मध्ये ब्रिटिशांनी देशात गुन्हेगारी प्रवृत्ती वाढू लागली. परिणाम म्हणजे 1871 मध्ये ब्रिटिशांनी देशात गुन्हेगारी कायदा निर्माण केला. व भारतातील 198 जाती जमातींना गुन्हेगार म्हणून जाहीर केले. पुढे हा कायदा 81 वर्षे भारतीय व्यवस्थेत अस्तित्वात होता. स्वातंत्र्यानंतर पंडित जवाहरलाल नेहरूनी 1952 साली 1871 चा देशातील गुन्हेगारी

कायदा रद्द करून 198 जाती-जमातींना मुक्त केले. त्यामुळे त्यांना विमुक्त म्हटले जाऊ लागले. पुढे समाजव्यवस्थेत स्थिर होण्यास ते भटकंती करू लागले. त्यातून त्यांना भटक्या हाच शब्दप्रयोग लागू झाला. अशाप्रकारे विमुक्त भटके असे शब्दप्रयोग या जाती-जमातींना वापरण्यात येऊ लागले.

महाराष्ट्रातील भटक्या विमुक्त जाती जमाती:-

महाराष्ट्र राज्य हे 1 मे 1960 ला अस्तित्वात आले राज्याच्या उत्तर व ईशान्य कडील मध्य प्रदेश दक्षिण कर्नाटक पूर्वेस छत्तीसगड महाराष्ट्र मध्ये एकूण 47 भटक्या विमुक्त जाती जमाती आहेत. या भटक्या जमाती मध्ये कडकलक्ष्मी, गिहरा व भारतीय अहिराणी अशा तीन जाती तर त्यांच्या नात जोगी मुस्लिम, मधारी, गारुडी, सापवाले, जादूगार, सरोदी, शिकलगार, बहुरूपी, भोरवी, वतनकर, डांगे, धनगर, मरीआईवाले इत्यादी तत्सम पोट जातीतील चा समावेश यात होतो. महाराष्ट्रामध्ये अस्तित्वात असलेल्या भटक्या विमुक्त जाती-जमातीचे धर्म-जात, रुढी-परंपरांचा, जात-पंचायत त्याच बरोबर यांची विवाह पद्धत धार्मिक विधी अशी सर्व व्यवस्था वेगवेगळे आहे. महाराष्ट्रात गोसावी, वडार, कैकाडी, फासेपारधी, बेलदार, गोंधळी, वासुदेव, नंदीवाले इत्यादी भटक्या विमुक्त जाती जमाती आपल्या उदरनिर्वाहासाठी भटकत असतात. त्यांची उपजीविकेसाठी पिढ्यानपिढ्या भटकंती चालू असते. त्यांचे एका ठिकाणी वास्तव्य नसते. हे लोक विविध प्रकारची कामे करतात. जसे वडार समाज दगड काढणे. बांध घालने. कैकाडी समाज करंजी वेळू इत्यादी पासून वाहपा विणणे. घिसाडी समाज शेतीसाठी लागणारी अवजारे बनवतात. वासुदेव समाज मोरपिसाचा टोपी घालून गाणी गातात मिळतात. समाज कसरतीचे खेळ करतात.

वारली समाज:-

भटक्या विमुक्त जाती जमाती या आजही अस्थिर अवस्थेत आपले जीवन जगतात. काही भीक मागून आपली उपजीविका करतात. मात्र वारली समाज अपवाद आहे. वारली मध्ये अंतर्विवाह पोटविभाग आढळतात. याच डोंगर वारली, शुद्ध वारली, घाट वारली व पठार वारली असे निवासाच्या भौगोलिक स्थिती नुरूप प्रकार आढळतात. तसेच कोकणी वारली, निहीर वारली, मल्हार वारली मुद्रे आणि दावर वारली असेही पोटविभाग आढळतात. शुद्ध वारली स्वतःला श्रेष्ठ समजतात. तर निहीर वारली स्वतःला शुद्धया पेक्षाही श्रेष्ठ समजतात. यातील फक्त मुद्रे आणि दावर यांच्यात विवाह होतात. परंतु इतरांमध्ये विवाह होत नाहीत. मुद्रे व दावर निहीर वाल्यांनी खान-पानाचे व विवाहाचे संबंध ठेवत नाहीत. वरील पोट विभागाच्या अतिरिक्त त्यांच्यात 41 बहिर्विवाही असून ते सर्व दुसऱ्या कुळाशी विवाह करू शकतात. काठीया हे कुळ सर्वात जास्त संख्येत असून त्यानंतर गहाला, मेरा, दळवी, हीलिम, हादळ आणि रावते हि कुळे संख्येने जास्त आहेत. कुळांची नावे गुजराती नावा सारखीच वाटतात. वारली स्वतःला दादरा नगर हवेली कडून आलेले मानतात. ते गुजरात कडूनच आले असे असे मानण्यात येते.

वारली बोलीभाषा :-

वारली बोलीभाषा वारली ही असुन ग्रिअर्सन यांच्या मते, 'मराठीच्या कोकणी गटापैकी ती असावी. फक्त उत्तरेकडील भागात ते गुजराथी प्रभाव असलेली भाषा बोलतात. अन्य विभागात ती मराठीच वाटते. केवळ मराठी व गुजराती प्रभाव नसुन वारलीचे स्वतःचे एक स्वरूप आहे. ठाणे गँझेटिअर मध्ये ते कुणब्याच्या भाषेजवळ येणारी भाषा बोलतात असे म्हटले आहे.' इ.स. 1961 च्या शिरगणीत 99% वारल्यांनी आपली मातृभाषा मराठी नोंदविली. तर केवळ 1071 व्यक्तीनी गुजराथी व अत्यल्प व्यक्तीनी वारली नोंदवली हे लक्षणीय आहे. यावरून मराठीचा प्रभाव लक्षात येतो. मितना, ढोरी, दुबला या जातीशी ते रोटी व्यवहार करीत असले तरी त्याच्यापेक्षा वारली स्वतःला श्रेष्ठ समजतात. त्या जातीही त्याचे श्रेष्ठत्व मान्य करतात.

विवाह संस्था :-

वारली जमातीच्या स्तराला आणि पोट विभागाच्या स्तराला आंतर्विवाह आणि कुलाच्या स्तराला बर्हिर्विवाह असतात. विवाह हा बोलणी करुन ठरवितात. पहिल्या विवाहाला 'लगन' म्हणतात. दुसऱ्या व त्यानंतर च्या विवाहांना 'नोवली' म्हणतात. लगन रात्रीच्या वेळी होते. नोवली दिवसा होते.

देव-देवता:-

वारली हिंदूधर्मीय आहेत. त्यांच्यात कुटुंब किंवा कुळाचे दैवत नाही. ग्रामदैवत हरूआ किंवा हिरवा देव असून ते गावच्या दूरही असू शकते. एका बाजूला मोरपीस बांधलेले असते. व हीच त्यांची देवता असते. वाद निर्माण झाल्यास ते हारुआ ला कौल मागतात. मुंबई-अहमदाबाद महामार्गावर मुंबईपासून 16 किमी अंतरावर चे महालक्ष्मी मंदिर हे त्यांचे धार्मिक स्थान असून त्या मंदिराचा पुजारी हा वारली असून तो वंशपरंपरेने पदावर येतो. त्याचा एक भगत ही असतो. पण त्याला फारसे महत्त्व दिसत नाही. ते दिवाळी आणि होळी हे सण मोठ्या उत्साहाने साजरे करतात.

वारली जमातीचे कलात्मक जीवन:-

संगीत नृत्य लोकगीते हे सर्व त्यांच्या लोकसंस्कृतीचा अविभाज्य अंग होय. गौरी-गणपती, दिवाळी विविध सण धार्मिक सामाजिक समारंभ यावेळी विविध लोकगीते लग्नाच्या वेळी विविध गाणी म्हणतात. लग्न लावणाऱ्या ज्या सुवासनी असतात त्यांना धवळेरी म्हणतात. व त्याच लग्नाची गाणी म्हणतात. तेव्हा पुरुष गाणी म्हणत नाहीत. ढोल, तारपा, घांगळी आणि तूर ही वाद्य-नृत्य व गायनाच्या वेळी वाजवतात. कनसरीदेवी ही त्यांची अन्न देवता असून तिच्या पुजेच्या वेळी वारली कांबड गाणी म्हणतात. काठा हे वाद्य वाजवतात. काठावरचा नाचही करतात. घांगळी आणि डाक ही वैशिष्ट्यपूर्ण वाद्य होत. हिरवा देव पुजिताना किंवा श्राद्ध च्या वेळी अंगात येत. त्यावेळी डाक हे आठव्या च्या आकाराचे डमरू सारखे वाद्य वाजवतात. वारली चित्रकलेसाठी प्रख्यात आहेत. तांदळाच्या पिठापासून दोन काड्यांच्या टोकांनी उत्तम रांगोळ्या किंवा चित्रे ते काढतात. घरच्या भिंतीवर सहजगत्या मोठा कल्पक चित्रे रंगवितात.

वारली व्यवसाय:-

आधबटाई शेती करतात. काही तर मजुरी व मोलमजुरी करतात. जंगल वेचने, जंगलात मजुरी करणे, हा व्यवसायही अनेक वारली करतात.

शिक्षण:-

वारली ग्राम मध्ये वृद्ध व वयस्क वारली यांची पंचायत असते. ती गावातले व समाजातले वाद सोडवत. पोलीस पाटलाला बोलून त्यांच्याही सल्ला किंवा मध्यस्थीने वाद सोडवतात. साक्षरता फार कमी असून 8% च्या जवळपास आहे. फार थोडे शिकलेले असून त्या डॉक्टर, इंजिनियर आणि वकीलही आहेत. काही लोक सरकारी नोकरीतही आढळतात. पण प्रमाण अल्प आहे.

अंत्यविधी:-

वारली मृतांना अग्नी देतात, परंतु ज्यांचे अजून दात आले नाहीत. अशी मुले मृत झाल्यास त्यांना जमिनीत पुरतात मृतांचा काका किंवा मामा अग्नी देतात. मृतांचे अशौच पाच दिवस असते. पाचव्या दिवशी सुपा वर भात वरण भाजी व दारू वाढून घराच्या छपरावर वृद्धांसाठी ठेवतात. अशौच काळात खाण्यावर काहीही बंधने नसतात. मृत्यू विद्यार्थ मुंडन करण्याची प्रथा यांच्यात नाही.

चित्रपट माध्यमाचे महत्व:-

चित्रपट हे प्रभावी माध्यम असून चित्रपट समाजाचा आरसा असतो. तेव्हा मूळ कोणत्या पद्धतीचे आहे. गावगाडा कशा पद्धतीने किंवा ग्रामीणपट बद्दल किंवा आदिवासीपटा बद्दल किंवा लोकांच्या राहणीमानात बद्दल सहजरित्या समजून येते. चित्रपट समाजाचा आरसा असला तरी चित्रपटामध्ये समाजातील वेगवेगळ्या जातीचे राहणीमान, जनजीवन यांचा आढावा घेतला आहे. चित्रपटाची मुहूर्तमेढ खऱ्या अर्थाने दादासाहेब फाळके यांनी रोवली. समाजामधील ज्वलंत प्रश्न समाजामधील स्थिती भालजी पेंढारकर, व्ही शांताराम या मंडळी दाखवण्याचा प्रयत्न केला.

चित्रपटातून साकारलेली वारली:-

जमात चित्रपटातून साकारलेली वारली जमात हे त्यांच्या राहणीमान व घरातील शैली आणि चित्रकला या गोष्टी चित्रीत करताना दिसून आल्या. चित्रपटाच्या माध्यमातून जमातींचा अभ्यास सहजरित्या जाणवतो व या जमातीची चित्रकला आणि घरातील ठेवण व घरातील वस्तू या वारली जमातींचा मुख्य करून सहजरित्या चित्रपटांमधून दिसून येतो. पेंटिंग जेव्हा पडद्यावर दिसून येतो त्यावेळी खाद्य संस्कृती, वेशभूषा आणि केशभूषा त्याच पद्धतीने बोली भटक्या जमाती सारखी आहे. त्या जमाती मधील सर्व ठरलेली कामे राहणीमान व वेशभूषा आधुनिकतेकडे झुकलेली आहे. मात्र कपडे जरी आधुनिक असले तरी आदिवासी जमाती कडे झुकते माप दिले आहे. चित्रपटांमधून जेव्हा एखाद्या जमातीचे चित्र दिसते ते समाज व्यवस्था बदलण्याची भूमिका किंवा समाज बदलण्याचा प्रयत्न करत असतो. चित्रपट समाजाचा आरसा असतो. चानी चित्रपटातून मुख्यत्वे सर्व वारली जमात न दाखविता काही ठराविक बाबी चित्रपटाच्या दाखवण्यात आलेल्या आहेत. चानी चित्रपट ग्रामीणपटा मध्येही मोडतो. आदिवासी चित्रपटांमध्येही मोडतो. मात्र आदिवासीपटा मधील वारली जमात नकळत आपल्याला दिसून येते. काव च्या साह्याने सारवलेली भिंत व पांढरा रंगाने रंगवलेली चित्र रेखाटले आहेत. वारली जमाती मधील स्त्री ही गुडघ्यापर्यंत साडी गुंडाळलेली असते. मात्र चित्रपटामध्ये बाहेरील परपुरुषाचा संबंध आल्यामुळे आणि चानी चा जन्म होतो आणि त्यामुळे तिला आधुनिक दाखवण्याचा प्रयत्न केला गेलेला आहे. आणि यातूनच मुख्यत्वे पूर्ण वारली न दाखवता अल्प प्रमाणामध्ये वारली जमातीचे दर्शन चित्रपटांमधून दिसून येते. त्यामध्ये गोळा केलेली फळ, टोपल्यावर रंगवलेली चित्र मात्र तिच्या वेशभूषा मध्ये खूपच आधुनिक दाखवली गेलेली आहे. ग्रामीण चित्रपट, आदिवासी चित्रपट या दोन्हीचा मिलाफ या चित्रपटातून संगम झालेला आहे. वारली जमातीची रीतिरिवाज, जीवनाचे वैशिष्ट्य, सांस्कृतिक वैशिष्ट्ये समजण्यास मदत होते. चित्रपटाच्या माध्यमातून पूर्णता न दाखवता काही दृश्यच्या साह्याने पाहायला मिळते. काही प्रमाणात भिंतीवरची चित्रकला, टोपल्या वरची रंगविलेली चित्र व गावांमधील लोकांचे राहणीमान यावरून चित्रपटात वारली जमातीचे चित्र दिसून येते.

निष्कर्ष:-

1) वारली समाज हा भटकंतीसाठी उदरनिर्वाह करत नसून तो महाराष्ट्रभर विखुरलेला आहे.
2) समाजामध्ये जात व्यवस्था किंवा महा जात पंचायतीचा प्रभाव असलेल्या निदर्शनास येतो.
3) वारली समाज धार्मिक विधी मानत असल्याचे दिसून येते.
4) समाजामध्ये विधवा व घटस्फोटीत स्त्रिया पुनर्विवाह करीत असत.
5) वारली समाजात लोकांची आपापसातली बोलीभाषा ही वारली असल्याचे दिसून येते.
6) वारली समाजातील चित्रकला ही जगप्रसिद्ध असून, जगभरात वारली चित्रकलेला मोठ्या प्रमाणात मागणी आहे

भारतातील या अनुषंगाने महाराष्ट्रातील भटक्या विमुक्त जातींच्या विवेचनात समाजाच्या ऐतिहासिक पार्श्वभूमी त्यांच्या समाजाचे स्वरूप राहणीमान त्यांच्या धार्मिक विधी विवाह पद्धती चालीरीती या त्यांच्या परंपरेने त्यांच्याशी निगडित झालेले आहेत. तसेच हा समाज मागासलेला म्हणता येणार नाही. परंतु समाजाच्या संघटितपणा साठी प्रयत्न झालेले दिसत नाही. वारली समाज हा महाराष्ट्रभर विकुरलेला असला तरी या समाजावर व त्यांच्या संस्कृतीवर थोड्याफार प्रमाणात प्रादेशिक प्रभाव पडलेला आहे. या समाजाच्या ऐतिहासिक पार्श्वभूमी यावरून शेवटी एवढेच म्हणावे लागेल की, समाज कोणताही असो माणूस हा एकच असतो. त्याला जगण्याचा अधिकार प्राप्त झाले पाहिजे. तरच त्याचा विकास होऊ शकतो.

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1) माने, लक्ष्मण ,1990, पालावरच जग, श्री विद्या प्रकाशन ,पुणे ,पृष्ठ क्र. 90
2) डॉ. देवगावकर, एस. जी. 2009, महाराष्ट्रातील निवडक जाती जमाती, श्री साईनाथ प्रकाशन, नागपूर, पृष्ठ क्र. 413
3) कांबळे, उत्तम, 1998, भटक्यांचे लग्न, मेहता पब्लिकेशन हाऊस,पुणे, पृष्ठ क्र. 72
4) चव्हाण, रामनाथ, 1989, भटक्या विमुक्तांचे अंतरंग, मेहता पब्लिकेशन हाऊस, पुणे.

5) अत्रे, त्रिंबक नारायण, 14 सप्टेंबर 2011 गाव गाडा, संपादक- निसर्गंध प्रभाकर रा. नाग- नालंदा प्रकाशन, इस्लामपूर, प्रथम आवृत्ती 1915.
6) डॉ. तांबे, समाज प्रबोधन पत्रिका, जानेवारी/ मार्च 2007 भटक्या-विमुक्तांच्या आकांक्षाचे प्रतिबिंब एक वृत्तांत पान नं. 28 ते 3
7) भोसले, नारायण, 'वाटसरू' सप्टेंबर 2017 चा व्यवहा चळवळी तत्त्व आणि बदलता व्यवहार
8) इंटरनेट दिनांक 19/3/2022.

मराठी साहित्यातील भटक्या विमुक्तांची पृथगात्मकता : शंकरराव खरातांच्या संदर्भात

डॉ. चंद्रशेखर मधुकर भारती
किसन वीर महाविद्यालय, वाई
चलभाष :- ७०२८९६१३८३
ईमेल :- cbharti999@gmail.com

सारंश

शंकरराव खरातांनी लिहिलेल्या कथासंग्रहातील कथा वास्तवादी आहेत आणि या कथांतून भटके, दलित, पीडित, गोरगरीब जनतेच्या जीवनातील संघर्ष मांडला आहे. शंकरराव खरातांनी वास्तवात घडणाऱ्या घटना आपल्या कथांमधून मांडताना त्यांनी प्रस्थापित समाजव्यवस्थेला अनेक प्रश्न केले आहेत. समाजातील भटके विमुक्त त्यांच्या व्यथा आपल्या कथेतून मांडल्या आहेत. या भटक्या समाजाला समाजव्यवस्थेमध्ये स्थानच नाही ते गुन्हेगारच या प्रस्थापित समाजात ठरवले जातात. हे सामाजिक वास्तव शंकरराव खरातांनी आपल्या कथालेखनातून समाजासमोर आणून मांडले आहे. त्यातील दाहकता वाचकांना सुन्न करून ठाकते.

बीज शब्द- पारधी, कुडमुडेजोशी, गोंधळी, भामटा, वैदू, बेलदार.

प्रस्तावना

शंकरराव खरातांच्या अनेक कथांमधून मागासलेल्या समाजाचे, शोषित, गोरगरीब समाजाचे चित्रण येते. शंकरराव खरातांच्या कथा या बहुतांश भटक्या विमुक्तांविषयीच्याच आहेत. त्यांच्या कथांचा मूलाधार हा मागासलेला समाजाचं आहे. अस्पृश्य समजात जन्माला आलेल्या शंकरराव खरातांनी उपेक्षित, मागासलेला समाज, बारा बलुतेदार, भटके विमुक्त आपल्या कथेमधून मांडलेला आहे. समाजाचे ज्याच्याकडे लक्षदेखील नाही, परंतु समाजव्यवस्थेचे जे घटक आहेत आशा मागासलेल्या भटक्या विमुक्त समाजाची कथा शंकरराव खरातांनी मांडलेली आहे.

पारधी, कुडमुडेजोशी, गोंधळी, भामटा, वैदू, बेलदार, कैकाडी, डोंबारी, फासेपारधी, वडार, कोल्हाटी, मांगगारुडी या समाजांच्या व्यथा वेदना शंकरराव खरातांनी आपल्या कथांमधून मांडलेली आहे. पारधी, फासेपारधी या मागास समाजातील जातींकडे पोलिसांचा व समाजाचा पाहण्याचा दृष्टिकोन हा गुन्हेगार म्हणूनच होता. समाजात चांगले जीवन जगता यावे यासाठी प्रयत्न करणाऱ्या या जातींना समाज नीटपणे जगू देत नाही. त्यांच्या मुलांना भुकेने व्याकुळ करणारी व्यवस्था पुन्हा गुन्हेगारीकडे वळायला लावते, ही वास्तव सत्यता त्यांनी साहित्यातून मांडली आहे.

'सांगावा' कथासंग्रहातील माया या कथेतील वैदू आपल्या कुत्र्याच्या पिलाला खायचे अन्न ज्वारी मिळवण्यासाठी विकतो. आईची व लेकराची ताटातूट होते. परंतु वैदूच्या कुटुंबाचा पोटाचा प्रश्न असतो. मागासलेल्या समाजाचे विदारक चित्रण यात येते. 'तडीपार' कथासंग्रहातील 'उचल्या', 'वैदू', 'बेलदार', 'कैकाडी', 'डोंबारी', 'फासेपारधी', 'वडार', 'भामटा', 'कोल्हाटी', 'नंदीबैलवाला', 'मांगगारुडी' या कथा आपणास अंतर्मुख करतात व ही विदारक समाजव्यवस्था बदलण्यास प्रेरित करतात.

'फासेपारधी' :- कथेतील लाव्हा, मौज्या हे पक्षांना मारतात आणि आपला उदरनिर्वाह करतात. परंतु पोलीस त्यांना कायद्याचा धाक दाखवून त्रास देतात. त्यांना तुरुंगात टाकण्याची धमकी देतात. बायका मुले उघड्यावर पडतात. पारध्यांकडून लेखी घेतले जाते. ते जंगल सोडतात आणि गावाजवळ येतात. गावातील लोक त्यांना चोर समजून काम देत नाहीत. बायका मुले भीक मागू लागतात. शंकरराव खरातांनी 'फासेपारधी' कथेतून त्या समाजाला व्यवस्थेने किती दूर ठेवले आहे हे मांडले आहे. जंगलाशी आपली नाळ जोडलेला समाज जंगलातून बाहेर पडल्यावर कसा बेचैन होतो हे मांडलेले आहे. पाण्यावाचून मासा राहू शकत नाही तसाच फासेपारधी हा समाज जंगलाशिवाय राहू शकत नाही.

'कैकाडी' कथेतील दामा कैकाड्याचा मुलगा मला मल्या आपल्या लग्नाची स्वप्ने रंगवतो आणि लग्नाची आमंत्रणे गावोगावी देतो. पोलीस त्याच्यावर दरोड्याचा आरोप करतात आणि अटक करतात. पोलिसांनी खरेतर हा अन्याय केलेला असतो. मल्याचा कुठल्याही दरोड्याशी संबंध नसतो, परंतु तो कैकाडी समाजाचा असल्याने पोलिसांचा आणि समाजव्यवस्थेचा त्याच्याकडे पाहण्याचा दृष्टीकोन हा गुन्हेगारी स्वरूपाचा असल्याने त्यांना अन्याय सहन करावा लागतो.

'डोंबारी' कथेतला चिमा डोंबारी आपल्या मुलाबाळांच्या पोटासाठी, उदरनिर्वाहासाठी लहान मुलीला, मुलाला व बायकोला खेळ करायला लावतो. हे खेळ जीवावर बेतणारे असतात. परंतु चिमाला आपल्या पिढीजात खेळातून मिळणाऱ्या पैशात उदरनिर्वाह करावा लागतो. तो एकदा लांब वेळूच्या काठीच्या टोकावर घडी करून उताणा ठेवत ती काटी चिमा तळहातावर उभा करताना मुलगा खाली पडला त्याच्या डोक्यावर खोच पडली. चिमा म्हणतो, मुलाला मूठ मारली. मुलावर खेळ थांबवून औषधोपचार करणे त्याला शक्य न झाल्याने त्याचा मुलगा मरतो आणि डोंबारी ते गाव सोडतात. हा जीवावर बेतणार खेळ आपल्या अशिक्षित निरक्षरतेमुळे आहे, हे शंकरराव खरातांनी कथेतल्या मागासलेल्या समाजाच्या वर्णनावरून स्पष्ट केले आहे.

'वडार' कथेत लेखक शंकरराव खरातांनी इतरांच्या घरांची सोय करणारा वडार स्वतःच घरापासून वंचित राहतो याचे विदारक चित्र रेखाटले आहे. कथेतला हणम्या वडार खाणीत काम करतो. स्फोट घडवून आणतो. स्फोटातच त्याचा मृत्यू होतो. परंतु अंधश्रद्धा, अज्ञानाचा बळी ठरलेला हा मागासलेला समाज देवीचा कोप झाला म्हणून हणम्या मेला असे समजतो. अज्ञान व अशिक्षितपणा यामुळे भटका समाज मागासलेला राहतो यावर लेखक या कथेत प्रकाश टाकतो.

व्यवस्थेपासून वंचित असलेला हा भटका आणि मागासलेला समाज आपल्या कथेतून शंकरराव खरातानी मांडला. त्यांचे वेशीवर टांगलेले दुःख मांडले, आणि त्यांच्या दुःखाला वाचा फोडण्याचे धाडस खरातांनी त्या काळात केलेले दिसून येते.

कोल्हाटी, बहुरूपी, डोंबारी, फासेपारधी, वैदू, माकडवाला इत्यादी कथांमधून भटक्या विमुक्त मागासलेल्या जमातीतील या लोकांच्या उदरनिर्वाहाची साधने काय होती, हे लक्षात येईल. प्रस्थापित समाजव्यवस्थेने शोषण करीत या समाजावर अन्यायच केला. या अन्यायाला प्रतिकारदेखील त्यांना करता आला नाही. व्यवस्थेने नाकारल्यामुळे या लोकांना असुरक्षितता जाणवायची. ही असुरक्षितता शंकरराव खरातांनी आपल्या कथेतून मंडली आहे.

वैदू :- वैदू समाजातील लोक आपल जीवन जगत असताना कशाप्रकारे त्यांना आपल्या आयुष्यातल्या प्रसंगांना तोंड द्यावे लागते, हे लेखक शंकरराव खरात यांनी वैदू या कथेत मांडले आहे. पोटासाठी चालणारी वैदूंची धडपड कशी जीवघेणी ठरते, हे प्रस्तुत कथेतून लेखकाने स्पष्ट केले आहे. या कथेतील संगाप्पा साप पकडताना दंश झाल्याने मृत्युमुखी पडतो. त्याचे सर्व कुटुंब उघड्यावर येते. याचे कारुण्यपूर्ण चित्रण या कथेत येते.

माकडवाला:- या कथेमध्ये बालवडीच्या माळावर उतरलेले माकडवाले माकडाचा खेळ करून पैसे कमावतात. तो पैसा अपुरा असल्याने भीक मागून उदरनिर्वाह करतात. प्रसंगी त्यांच्यावर चोरीचा अळही होतो, कुठेतरी हे थांबले पाहिजे अशी तगमग असणारा गंगाराम हा म्हतारा व्यक्ती आपल्या नव्या पिढीचा विचार करणारा आणि नवी पिढी आमच्यासारखी भरकटलेली नसावी असा विचार मांडतो. या कथेमध्ये शंकरराव खरातांनी उपेक्षित समाजातल्या लोकांवर आरोप करून त्यांना वेठीस धरणाऱ्या पोलिसांना आपल्यावरील जबाबदारी लवकरात लवकर दूर करण्याकरता अशा भटक्या, उपेक्षितांना अडकवून त्यांच्या जीवनाशी खेळ करण्याचा जो प्रयत्न केला आहे तो त्यांनी प्रस्तुत कथेतून मांडला आहे.

बेलदार :- या कथेमध्ये खंडा बेलदार याची चित्तर कहाणी मांडली आहे. बेलदार खंडा ज्या गावात काम मिळेल तिथे आपली गाढवे घेऊन दगड घडून घरमालकांना पुरविण्याचे काम करतो. पण एके दिवशी त्याचे गाढव माळ्याच्या शेतात शिरते माळी त्या गाढवाला काठीने मारतो. खंडा मध्ये पडतो व मी आपली काही कामे करून देईन असे सांगतो तेव्हा माळी गाढवाला मारायचे थांबवतो. पण मार जबरी लागल्यामुळे गाढव मरते. खंडाचा उदरनिर्वाह गाढवावरती अवलंबून असल्याकारणाने खंडा

हताश होतो. परिस्थितीने नागवल्यामुळे अनेक भटक्या जमाती यांना उपासमार, अवहेलना, अपमान, शोषण याला सामोरे जावे लागते.

वासुदेव :- या कथेत शंकरराव खरातांनी गावोगावी फिरून देवाची गाणी म्हणून डोक्यावर वासुदेवाची मोरपीस असणारी टोपी घालून मिळणाऱ्या भिक्षेवर दान धर्मावर जगत असतो. पण दुष्काळ पडल्याने लोक त्याला भिक्षा देत नाहीत. त्याची उपासमार होते. व तो शेतामध्ये मजुरी करू लागतो, शेंगदाणे टोकत असताना तो भुकेपोटी औषध लावलेले शेंगदाणे खातो व मरून पडतो. भुकेपोटी वासुदेवाचा जीव जातो हे भयावह वास्तव फिरस्ते समाजाचे शंकरराव खरातांनी मांडले आहे.

समारोप :- शंकरराव खरातांनी लिहिलेल्या कथासंग्रहातील कथा वास्तवादी आहेत आणि या कथांतून भटके, दलित, पीडित, गोरगरीब जनतेच्या जीवनातील संघर्ष मांडला आहे. शंकरराव खरातांनी वास्तवात घडणाऱ्या घटना आपल्या कथांमधून मांडताना त्यांनी प्रस्थापित समाजव्यवस्थेला अनेक प्रश्न केले आहेत. समाजातील भटके विमुक्त त्यांच्या व्यथा आपल्या कथेतून मांडल्या आहेत. या भटक्या समाजाला समाजव्यवस्थेमध्ये स्थानच नाही ते गुन्हेगारच या प्रस्थापित समाजात ठरवले जातात. हे सामाजिक वास्तव शंकरराव खरातांनी आपल्या कथालेखनातून समाजासमोर आणून मांडले आहे. त्यातील दाहकता वाचकांना सुन्न करून ठाकते. माणसाला माणूस म्हणून ही समाजव्यवस्था का पाहू शकत नाही असा खडा सवालही शंकरराव खरातांनी अनेक कथांमधून विचारलेला आहे. भटक्या विमुक्तांचे दुःख शंकरराव खरातांनी एकूणच आपल्या कथांमधून मांडलेले दिसते. गुणात्मक दृष्टीने शंकरराव खरातांची कथा मराठी साहित्यामध्ये मोलाची भर टाकताना दिसते.

संदर्भग्रंथ सूची :-

१) खरात शंकराव, दलित वाङ्मय : प्रेरणा व प्रवृत्ती.

२) डॉ. बागुल मिलिंद, शंकरराव खरात : कथात्मक वाङ्मय.

३) भगत दत्ता, दलित साहित्य : दिशा व दिशांतर.

शौक से नहीं, विवशता से घूमती है घुमंतू जनजातियाँ

डॉ. दीपक रामा तुपे,
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
विवेकानंद कॉलेज, कोल्हापुर (स्वायत्त)
चलभाष: 8805282610
ई-मेल: dipaktupe1980@gmail

सारांश:

वस्तुत: आज समग्र भारत आजादी के अमृत महोत्सव का जश्न मना रहा है, मगर विमुक्त घुमंतू जनजातियाँ बुनियादी समस्याओं से जूझ रही है। वर्तमान स्थिति में विमुक्त घुमंतू जनजातियों की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक स्थितियों की चुनौतियाँ चरमसीमा पर पहुँची है। अपराधिक जनजाति अधिनियम के तहत ये जनजातियाँ जन्मजात अपराधी हुआ करती थी, वर्ष 1952 तक उनका यही हाल रहा। बाद में वे आजाद यानी विमुक्त हो गए। सरकार द्वारा उनके पारंपरिक कामों पर रोक लगा दी गई। दरअसल 'घुमंतू' वह समाज है जो हमेशा साधन-सुविधाओं से वंचित रहा है, जिनकी प्रवृत्ति लड़ाकू है। यही वजह है कि अंग्रेजों ने उन्हें अपराधी घोषित किया था। यहाँ तक कि सरकार ने भी 'हैबिचुअल ऑफेंडर यानी आदतन अपराधी' घोषित किया। समाज से बहिष्कृत घुमंतू जनजातियां आज भी स्वतंत्रता से वंचित ही नहीं विवंचित है। उनको न सम्मान मिला और न अस्मिता की पहचान। विमुक्त घुमंतू जनजातियों के साहित्य में उनके सम्मान का चिंतन नहीं दिखाई देता जबकि उनके विकृत रूपों का ही चित्रण नजर आता है। इनका आय का साधन नहीं होता इसलिए वे गाँव-गाँव या शहर-शहर में मजबूरीवश जीविकोपार्जन के लिए दर-दर की ठोकरें खाते हैं। अपनी आजीविका के लिए ये लोग भेड़-बकरियां पालन करना, व्यापार करना, भिक्षा मांगना, मनोरंजन करना, श्मशान भूमि में लाश का अंतिम संस्कार करना, लाश का दफन करना, सांपों का खेल करना, बंदर नचाना, जड़ी-बूटी बेचना जैसे काम करते हैं।

बीज शब्द: घुमंतू, घुमक्कड़, अपराधी, लड़ाकू, विवशता, कानून, अंधविश्वास, व्यसनाधीनता, धर्मांधता।

प्रस्तावना:

'घुमंतू' का शाब्दिक अर्थ है- घुमक्कड़। जो हमेशा घूमते रहते हैं, जिनका कोई स्थाई निवास नहीं रहता। यह घूमना बिना वजह, अनुभव प्राप्ति, जीविकोपार्जन और ज्ञान प्राप्ति हेतु होता है। जनजाति यह विशेषण इसलिए जुड़ा हुआ है कि वह विशेष जातियां जिनका निवास एक स्थान पर नहीं होता। जीविकोपार्जन हेतु आज एक स्थान पर कल दूसरे स्थान पर उनका घूमना तय होता है, अनिवार्य होता है। घुमक्कड़ और घुमंतू में भेद करना है तो घुमक्कड़ शौक से घूमते हैं, मगर घुमंतू मजबूरीवश घूमते हैं। हिंदी विश्वकोश के अनुसार 'घुमक्कड़', भटकना आदि शब्द पाये जाते हैं। हिंदी विश्वकोश में 'भटकना' का अर्थ दिया है-"एक व्यर्थ इधर-उधर घुमना फिरना। दो रास्ता भूल जाने के कारण इधर-उधर घुमना और तीन भ्रम में पड़ना। भटकाना का अर्थ है गलत रास्ता बताना, ऐसा रास्ता बताना जिसमें आदमी भटके। धोखा देना, भ्रम में डालना।"[1] स्पष्ट है कि जीवनयापन के लिए जो इधर-उधर यानी दिशाहीन घूमता है वही घुमंतू है, वही घुमंतू जनजातियां हैं।

- **घुमंतू जनजाति कानून :**

दरअसल अंग्रेजों के शासन काल में सन 1871 में लड़ाकू जनजातियों को क्रिमिनल ट्राइब्स यानी अपराधिक जनजाति के रूप में घोषित किया गया था। भारत में लड़ाकू जनजातियों को अनिवार्य रूप से जन्मजात अपराधी घोषित किया जाता था। 15 अगस्त, 1947 में देश को आजदी मिली मगर सही मायने में घुमंतू जनजातियों को आजादी 31 अगस्त, 1952 को मिली तब उन्हें जो मुक्ति मिली जिसकी वजह से उन्हें 'विमुक्त' कहा गया अर्थात है बिचुअल ऑफेंडर एक्ट लागू करने पर 1952 तक घुमंतू

जनजाति जन्मजात अपराधी कही जाती थी। अब वे आदतन अपराधी माने जाने लगे, मगर 1952 के बाद उनके आगे विमुक्त शब्द जोड़ दिया और उन्हें आजाद कर दिया गया। इसी कारण घुमंतू जनजातियों को विमुक्त घुमंतू जनजातियां कहा जाने लगा। घुमंतू जनजातियों की विडंबना है कि घुमक्कड़ प्रवृत्ति के कारण उन्हें समाज में सम्मान कभी नहीं मिला बल्कि अपराधिक घोषित किया गया। देश के लिए लड़ने वाले स्वतंत्रता सेनानियों को हमेशा सम्मान मिलता रहा, मगर घुमंतू जनजातियाँ भी देश के लिए लड़ती रही, मगर उन्हें सम्मान कभी नहीं मिला। "स्वातंत्र्यपूर्व काळात म्हणजे शिवशाहीत या समाजाने हेरगिरीच्या माध्यमातून छत्रपती शिवरायांना स्वराज्यनिर्मितीसाठी मोठे मोलाचे योगदान दिले आहे. शिवशाहीत कुणाला गावांची जहागिरी मिळाली तर कुणाला वतनाच्या जमिनी मिळाल्या. परंतू गोंधळी समाजाला वतनात मिळाली ती भीक मागून खाण्यासाठी गावे. त्यामुळे एकेकाळी मान-सन्मानाने जगणारा व देवीची उपासना करणारा गोंधळी समाज आज भिक्षूक झाला आहे व स्वत:चे अस्तित्व हरवून बसला आहे. सततच्या भटकंतीमुळे समाजात अशिक्षीतपणा वाढला, अंधश्रद्धा, व्यसनाधिनता वाढली आणि समाजाचा विकास खुंटला. या समाजात मागासलेपण वाढले. त्यामुळे गावात मानसन्मानाने राहणारा गोंधळी गावकुसाबाहेर फेकला गेला आहे."[2] (स्वाधीनतापूर्व काल यानी शिवशाही में इस समाज ने हेरगिरी के माध्यम से छत्रपति शिवराय को स्वराज्य निर्मिति के लिए बड़ा मौलिक योगदान किया है। शिवशाही में किसी को गांव की जहागिरी मिली तो किसी को वतन की जमीन मिली, किंतु गोंदलग्यार समाज को वतन में भीख मांगकर खाने के लिए मिले गांव। इसलिए एक समय मान-सम्मान से जीने वाला और देवी की उपासना करने वाला गोंदलग्यार समाज आज भिक्षुक बना हुआ है और खुद का अस्तित्व खो बैठा है। निरंतर भटकन की वजह से समाज में अशिक्षा बढ़ गई है। अंधविश्वास, व्यसनाधीनता बढ़ गई और समाज का विकास रुक गया है। इस समाज में पिछड़ापन बढ़ गया है। इसी कारण गांव के बाहर रहने वाला गोंदलग्यार समाज गांव की सीमा के बाहर हो गया है।) कहना आवश्यक नहीं कि गोंदलग्यार समाज को आजादी के पहले जो मान-सम्मान मिलता था वह आज नहीं मिल रहा है। निरंतर भटकन की वजह से वह अंधविश्वास और व्यसनाधीनता जैसी समस्याओं का शिकार बन गया है।

घुमंतू जनजातियां :

वस्तुत: घुमंतू सबसे पिछड़ा, वंचित, विवंचित एवं उपेक्षित वर्ग है। इसमें तकरीबन एक हजार जातियां हैं जिनमें गोसावी, फकीर, घिसादी, खेलकरी, जोगी नाथ, सालवीं, फासाचारी, खंजरभाट, बेहरूपी, वैरागी, गड़ेरिया, कालबेलिये, कुंचेकरी, काशी, जोशी, कपड़, बेडिया-बेरड, देशर, नायक, कंजर, सांसी, कुचबंदा, गुज्जर, गाड़िया लुहार, भूते चलवादी, नंदीवाले, कोल्हाटी, वासुदेव, ठकार बेड़िया, बैरागी, हेलवे, गोपाल, बाछोवालियाँ, सिकलीगर, मदारी, कलंदर, बहेलिये, भवैया, चित्रकथी, सपेरे, बहुरूपिये, बाल बैरागी, बेलदार भराड़ी, गोंदलग्यार, काशी कापड़ी, रावल, पासी, लमान, मोघिया, उर कैकाडी, कैजी, बांछड़ा, भांड, कामठी, नट, बोरीवाले, बाल बैरागी, बदलिया, भाट जैसी 1800 जनजातियां शामिल हैं। वर्ष 2011 के मुताबिक घुमंतू जनजातियों की आबादी 20 करोड़ से अधिक है। आरक्षण की राजनीति के चलते कुछ राज्यों ने अनुसूचित जातियों को स्थान नहीं दिया है। घुमंतू जनजातियां "भारतीय (हिंदू) संस्कृति की रक्षक थी और आज भी है घुमंतू समुदाय गाड़ियां लोहारों के त्याग, बलिदान और दृढ़ प्रतिज्ञा हिंदू संस्कृति के महान रक्षकों को कौन नहीं जानता? आज उनकी स्थिति बद से बदतर है, किंतु अधिकांश प्रांतीय सरकारें उन्हें अपने प्रांत का नागरिक भी नहीं मानती है।"[3] स्पष्ट है कि हिंदू संस्कृति के महान रक्षकों की स्थिति बद से बदतर होती जा रही है। सन 1857 के पहले स्वतंत्रता आंदोलन में ब्रिटिशों का आक्रमण रोकने के लिए राजा-संस्थानिकों को मदद करने वाले बेरड समाज को ब्रिटिशों ने अपराधी घोषित किया। बेरड कभी न डरने वाले और हर संकट का मुकाबला साहस के साथ करने वाले और जिनका मूल संस्थान कर्नाटक के सुरपुर का है वही समाज बेरड कहलता है। श्रमिकों के राजा के रूप में जिनकी पहचान है वह बेलदार समाज। अपने मेहनत और श्रम पर भरोसा करने वाले समाज की मूल जाति ओड क्षत्रिय रजपूत है। पुराने कपड़ों का व्यापार करने वाला काशीकापड़ी समाज आज पुराने कपड़ों के बदले बर्तन बेच रहा है। यहाँ तक कि तेलगंना राज्य का मूल होने वाली यह जनजाति अंधविश्वासू और भिक्षक के रूप में दिखाई देती है।

·साहित्य में विमुक्त घुमंतू जनजाति

फिलिप मेडोज ट्रेलर लिखित 'एट्रोसिटी लिटरेचर' में विमुक्त घुमंतू जनजाति की नकारात्मक एवं बुरी प्रवृत्तियों, उनकी क्रूरता और अत्याचार वर्णन किया हुआ दिखाई देता है। हिंदी साहित्य में घुमंतू जनजाति के शोषण की दर्दनाक दासतां रेखांकित हुई है। रांघेय राघव कृत 'कब तक पुकारू',' 'धरती मेरा घर', उदय शंकर भट्ट कृत 'सागर लहरें और मनुष्य' (1955), वृंदावनलाल वर्मा लिखित 'कचनार', मणि मधुकर कृत 'पिंजरे में पन्ना', शिवप्रसाद सिंह लिखित 'शैलूष', मैत्रेयी पुष्पा कृत 'अल्मा कबूतरी', भगवानदास मोरवाल कृत 'रेत', वीरेंद्र जैन कृत 'पार', संजीव कृत 'जंगल जहाँ शुरू होता है', शरद सिंह कृत 'पिछले पन्ने की औरत', कृष्णा अग्निहोत्री कृत 'निलोफर', मोहनदास नैमिशराय कृत ''वीरांगना झलकारीबाई' आदि उपन्यासों में घुमंतू जनजातियों की दशा और दिशा रेखांकित की है। मैत्रेयी पुष्पा की 'आल्मा कबुतरी' उपन्यास में बुंदेलखंड की कबूतरी घुमंतू जनजाति का समग्र किया है। इसके अलावा 'पहाड़ी जीव', 'जंगल के दावेदार', 'भूख', 'सांप और सीढ़ी', 'बनवासी', 'बनतरी' आदि उपन्यासों में घुमंतू जनजातियों के जीवन संघर्ष का लेखाजोखा प्रस्तुत किया है।

·मराठी साहित्य में घुमंतू जनजाति :

वस्तुत: मराठी से अनूदित रचनाओं में लक्ष्मण माने लिखित 'पराया'(1981), लक्ष्मण गायकवाड़ कृत 'उचक्का', भीमराव गश्ती कृत 'बेरड', आत्माराम राठौर कृत 'तांडा', भीमराव गति कृत 'आक्रोश', शिवाजी राठौर कृत 'टाबरो', किशोर शांताबाई काले का 'छोरा कोल्हाटी का', दादासाहब मोरे का 'डेराडंगर', मच्छिंद्र भोसले का 'जीवन सरिता बह रही है', पार्थ पोलके का 'पोतराज' आदि आत्मकथाकारों ने अपनी आत्मकथाओं में अपने-अपने समाज के जीवन की संघर्ष गाथा चित्रित की है। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, साहित्यिक आदि स्तरों पर घुमंतू जनजातियों को उपेक्षित स्थान मिला है, जो इन रचनाओं में चित्रित हो गया है। परिणामी आज घुमंतू जनजाति विमर्श बल पकड़ने लगा है। लक्ष्मण माने लिखित 'पराया' आत्मकथा में कैकाड़ी जनजाति की भटकन की मजबूरी, पीड़ा, वंचना, स्त्री जीवन, बच्चों एवं वृद्धों की दयनीय दासतां, जातपंचायत, अंधविश्वास, जातिभेद, छुआछूत, उत्सव, पर्व, त्योहार, वेशभूषा, शादी-ब्याह, रहनसहन, खानपान, वेशभूषा का यथार्थ चित्रण किया है। भूख से बेहाल बच्चों के संदर्भ में 'पराया' आत्मकथा में स्वयं लेखक लिखता है-"मैंने बासी रोटी मली के पानी में भिगों रखी थी। पेट में आग धधक रही थी। आँखों से आँसुओं की धारा बह निकली थी। घर में कुछ भी नहीं था।"[4] स्पष्ट है कि आज भी घुमंतू जनजातियां भूख से परेशान है। लक्ष्मण गायकवाड़ लिखित 'उचक्का' आत्मकथा में घुमंतू जनजाति की शिक्षा का अभाव दृष्टिगोचर होता है। यहाँ तक कि उस समाज का कोई लड़का पढ़ने लगता है तो उसे जातपंचायत बहिष्कृत भी किया करती थी। बच्चों को स्कूल में भेजने के बजाय चोरी करना सिखाया जाता है। लक्ष्मण गायकवाड़ अपनी 'उचक्का' आत्मकथा में यह बात स्वयं रेखांकित करते हैं-"अरे मारतंड, अपनी जाति में आज तक कोई पढ़-लिख सका है क्या? अपने बच्चे अगर स्कूल जाने लगे तो हम सभी का वंश डूब जाएगा। यल्लामा देवी का प्रकोप हो जाएगा। देख मारतंड, हम फिर कहते हैं कि लक्ष्या को स्कूल से निकाल ले। अगर वह फिर स्कूल गया तो हम जात-पंचायत बिठाएँगे और तुझे बहिष्कृत करेंगे।"[5] स्पष्ट है कि घुमंतू जनजातियों में शिक्षा का अभाव और धर्मांधता का प्रभाव साफ नजर आता है।

निष्कर्ष: संक्षेप में कहा जा सकता है कि घुमंतू जनजातियों को अपराधी घोषित करना एक मानसिक विकृति कहा जा सकता है। जिस प्रकार हर समाज की कमियाँ और खामियाँ होती है उसी प्रकार घुमंतू समाज में भी है, मगर पढ़ा-लिखा और सभ्य कहा जाने वाला समाज न तो उसे समझ रहा है और न उसकी संवेदना को समझ रहा है। नतीजतन यह समाज दिन-ब-दिन कमजोर होता जा रहा है। इसलिए उनको शिक्षा, रोजगार और साधन-सुविधा मिलनी चाहिए, ताकि वह अपराधिक कृत्य छोड़ सकें। नृत्यशास्त्र, औषधीशास्त्र, लोहाशास्त्र, पाषाणशास्त्र जैसे शास्त्रों की जानकार घुमंतू जनजातियां अंधविश्वास, रूढ़ी-परंपरा, व्यसनाधीनता, धर्मांधता, अशिक्षा और आवास जैसी समस्याओं से आज भी जूझ रही है। घुमंतू जनजातियों के व्यवसाय में विविधता होने के बावजूद उनकी घूमने की प्रवृत्तियों में समानता पाई जाती है। इन जनजातियों की सामाजिक, सांस्कृतिक,

राजनीतिक, धार्मिक, शैक्षिक और साहित्यिक हालत एक समान नजर आती है। ये जनजातियाँ घूमती तो है मगर यह घूमना शौक नहीं बल्कि मजबूरी है।

· **संदर्भ ग्रंथ सूची :**

1. संपा. वसु नगेंद्रनाथ, हिंदी विश्वकोश, भाग 7, बी. आर. पब्लिशिंग कापोरेशन, दिल्ली, पुर्नसंस्करण: 1986, पृ. 22

2. सूर्यकांत भिसे-भटक्यांची भटकंती, आनंदमूर्ति प्रिंटर्स एंड पब्लिकेशन, वेळापुर-माळशिरस-सोलापुर, पहला संस्करण: 2016, पृष्ठ -15

3. www.thewirehindi.com

4. लक्ष्मण माने, पराया, अनुवादक दामोदर खड़से, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, संस्करण: 1993, पृष्ठ-इस पाड़ाव से उद्धृत।

5. लक्ष्मण गायकवाड़, अनुवादक डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे, उचक्का, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2019, पृष्ठ 19

भटक्या विमुक्त जमातीच्या समस्या:- एक समाजशास्त्रीय अभ्यास

प्रा.हरिश्चंद्र व्यंकटराव चामे
सहाय्यक प्राध्यापक
विवेकानंद महाविद्यालय (स्वायत्त).कोल्हापूर
मो.नं-9021201936
Email-chameyh155@gmail.com

सारांश -:

कोणताही समाज असो प्रगत अप्रगत प्रत्येक समाजामध्ये काही ना काही समस्या असतात भटक्या विमुक्त जमातीच्या समस्या या अनेक वर्षापासून आहेत मानव. म्हणून जगण्यासाठी ज्या मूलभूत गोष्टीची गरज असते अशा मूलभूत गोष्टी पण मिळवण्यासाठी सातत्याने त्यांना संघर्ष करावा लागतो जगात अनेक परिवर्तन. झाले जगाचा विकास झपाट्याने झालापण . भटक्या विमुक्त जमातीच्या भटकंतीला मात्र पूर्णविराम मिळू शकला नाही कष्ट करून कधी लोकांचे मनोरंजन करून. आपल्या उदरनिर्वाहासाठी सातत्याने धडपडणारा या जाती कधीच स्थिर जीवन जगतील आपली प्रगती करतील यासाठी किती वर्ष वाट पहावी लागेल हे आज हि सांगता येत नाही त्यांच्यामध्ये अज्ञान खूप मोठ्या प्रमाणात आहे अज्ञानामुळे अंधश्रद्धेला बळी पडतात आरोग्याची समस्या पिळवणूक प्रगत समाजाकडून मिळणारी दुय्यम वागणूक ब्रिटिशांनी त्यांच्यावर ठेवलेला कलंक आज पण पुसला गेला नाहीजातपंचायतीच्या वर्चस्वाखाली पारंपरिकतेला चिटकून राहण्याची सवय आज . ही आहे . पुरुषांपेक्षा महिलांची अवस्था या पेक्षाही खूप वाईट आहे . जमातीत शिक्षणाचा अभाव असल्याकारणाने आर्थिक व्यवहाराच्या बाबतीत त्यांची फसवणूक केली जाते.त्यांच्या कामाचा योग्य मोबदला त्यांना मिळत नाही . त्यांच्यावर, रूढी, प्रथा, परंपरा याचा प्रभाव खूप मोठ्या प्रमाणामध्ये आहे .गुन्हेगार समजून त्यांच्या होणारा मानसिक छळ हे त्यांचे मनोधैर्य खेचणारा आहेआज ही फासे पारधी . त्यांना गावकुसाबाहेर राहावे लागते .समाजाला गुन्हेगारी जमात म्हणून अनेक गुन्हे त्यांच्यावर दाखल केले जातात.

बीज शब्द- गावकुसाबाहेर, गुन्हेगार, भटक्या ,विमुक्त, जमाती, बहिष्कृत.

प्रस्तावना : -

भारतीय समाज विविधतेने नटलेला समाज आहे.भारतात विविध जाती-जमाती धर्म-पंथ वर्ण खूप मोठ्या प्रमाणात आहेत. भारतीय समाजामध्ये वाढती लोकसंख्या दारिद्र्य बेकारी अज्ञान अंधश्रद्धा यासारख्या समस्या आजही ठाण मांडून बसलेल्या आहेत. भटक्या विमुक्त जातीचा जर विचार केला तर या समस्यांनी या जमातींना खूप ग्रासल आहे. भारतातील भटक्या जमातीना अनेक समस्यांना सामोरे जावे लागले. त्यांच्यात गरीबी ,दारिद्र्य उपासमार,कुपोषण. समाजाणे बहिष्कृत करणे,राजकीय अज्ञान,अंधश्रद्धा. बेकारी,भारतीय समाजामध्ये अनेक भटक्या जाती जमाती आहेत एका ठिकाणाहून दुसऱ्या ठिकाणी भटकत असतात. एखादा छोटा-मोठा व्यवसाय करून आपला उदरनिर्वाह करणे. माणूस म्हणून जगता येईल यासाठी सतत अन्नाच्या शोधात कबाड कष्ट करून मेहनतीच्या जोरावर आपल अस्तित्व टिकवण्याचा प्रयत्न या जाती करत असतात.

यांच्या व्यवसायाचे उद्दिष्ट् हे नफा मिळविणे नसून आपल्या उदरनिर्वाह साठी कष्ट करत असतात.अनेक भटक्या जमातीतील लोकांकडे राशनकार्ड पण नाही. अनेक जमाती गुन्हेगार जाती मानल्या जातात. त्याच्या कडे पाहण्याचा दृष्टिकोन लोकांचा मानवतावादी नाही. अनेक ठिकाणी भटक्या जमातीवर बहिष्कार टाकला जातो.त्यांना मारहाण केली जाते. ब्रिटिश काळात अनेक जमातींना गुन्हेगारी जमाती म्हणून मान्यता देण्यात आली. त्यांना राहण्याची एक वेगळी व्यवस्था केली जायची आणि ते ज्या ठिकाणी राहतात त्या ठिकाणी त्यांच्या आजूबाजूने एक कुंपण तयार केलं जायचं त्यांना कोणत्याही प्रकारचे स्वातंत्र्य दिले जात नसे. त्यांना त्या कुंपनाच्या आतच राहावं लागायचं परवानगी शिवाय बाहेर जाता येत नव्हतं .आज ही महाराष्ट्रासारख्या प्रगत राज्यांमध्ये अनेक भटक्या विमुक्त जातीना गुन्हेगार या मानसिकतेतून पाहिल जात.आजूबाजूला दरोडा चोरी झाली तर त्या जातीतील काही लोकांना पोलीसा कडून विनाकारण नाहक त्रास दिला जातो. त्यांच्या काही गुन्हा नसताना

त्यांच्यावर वेगवेगळे कलम लावून त्यांना मानसिक त्रास दिला जातो. भटक्या विमुक्त जमातीचे त्यांच्या सामाजिक जगण्या वरून वर्गवारी तयार करण्यात आली आहे. पशुपालक जमाती ,कलावंत जमाती, देवाच्या नावाने भीक मागणाऱ्या जमाती, कष्टाची कामे करणाऱ्या ,भविष्य सांगणाऱ्या, शिकार करणाऱ्या जमाती.अशा पद्धतीने त्यांचे वर्गीकरण करण्यात आले आहे. जसे त्यांची उपजीविका भागवणारी साधने वेगवेगळी आहेत तसेच त्यांनी आपल्या जमातीमध्ये वेगवेगळे विभाग वाटून घेऊन आपला व्यवसाय करत असतात .विभागांमध्ये आपला व्यवसाय करतात, त्याच विभागांमध्ये ते वास्तव्यासाठी राहतात. महाराष्ट्रात अस्तित्वात असलेल्या 42 जमाती पैकी 14 जमाती या विमुक्त जाती म्हणून ओळखल्या जातातबेरड ., बेस्तर ,भामटा,कांजरभाट,कटाबु,बंजारा,राजपारधी, राजपूत भामटा , कैकाडी ,रामोशी ,वडार वाघरी छप्परबंद आणि फासे पारधी इत्यादी होत या विमुक्त जमाती शिवाय गावोगाव भटकून पोट भरणाऱ्या.28 जमाती आहेत.

उद्दिष्टे:-

- भटक्या विमुक्त जमातीचे समाजातील स्थान जाणून घेणे.
- भटक्या विमुक्त जमातीच्या आर्थिक समस्या जाणून घेणे.
- भटक्या विमुक्त जमातीच्या सामाजिक समस्यांचा अभ्यास.

गृहीतके:-

- भटक्या विमुक्त जमाती ची आर्थिक परिस्थिती खुप मागास आहे .
- भटक्या विमुक्त जमातीच्या समस्या आजही तसाच आहेत.

संशोधन पद्धती :-

प्रस्तुत संशोधनासाठी द्वितीय तथ्य संकलनाचा वापर करण्यात आला आहे.

भारतीय समाजामध्ये ज्या पद्धतीने परिवर्तन होत आहे.त्या परिवर्तनाचा फायदा समाजातील सुशिक्षित आणि उच्च जातींना होत असताना दिसत आहे .आज ही भटक्या विमुक्त जमातीच्या समस्या कमी झालेल्या नाहीत.

भटक्या विमुक्त जमातीच्या समस्या

शिक्षणाची समस्या :-

भटक्या विमुक्त समाज हा मोठ्या प्रमाणात असुशिक्षित आहे त्यांच्यात शिक्षणाचे प्रमाण खूपच कमी आहे. त्यांच्या जमातीने व वंश परंपरेने जे काही ज्ञान संपादन स्वरूपात त्यांना दिले आहे. त्या ज्ञानाचा संचय त्यांच्याकडे असतो. हे ज्ञान ठीक स्वरूपात ते जतन करून जीवन जगत असतात . उदरनिर्वाहासाठी भटकंती करणारे या जमातीचा जेव्हा बाहेरील जगाशी आर्थिक देवाणघेवाण करण्याची वेळ आली तेव्हा त्यांना शिक्षणाचे महत्त्व लक्षात आले .त्यांच्या अज्ञानाचा फायदा समाजातील उच्चशिक्षित श्रीमंत लोकांनी खूप मोठ्या प्रमाणातघेतला. पोटाची खळगी भरण्यासाठी सातत्याने भटकंती करणाऱ्या समाजाला एका जागेवर स्थिर नसल्यामुळे त्यांना शिक्षण घेता आले नाही. अनेक पिढ्या शिक्षणापासून दूर राहिलेल्या त्यामुळे वडिलांना शिक्षणाचे महत्त्व समजले नसल्याने आपल्या पाल्याच्या शिक्षणाकडे दुर्लक्ष झाले. दिवसभर भटकंती केल्याशिवाय दोन वेळच्या जेवणाची सोय होत नसल्यामुळे मुलांनी पण आपल्या कामात हातभार लावावा म्हणून मुलांना शाळेत पाठविले जात नसे.मुलांच्या शिक्षणापेक्षा मुलींच्या शिक्षणाची अवस्था या भटक्या-विमुक्त जमाती मध्ये अतिशय वाईट असल्याचे दिसून येते.

सामाजिक समस्या:-

भटक्या विमुक्त जातीचे जीवन अतिशय वेदनादायक आहे ब्रिटिशांनी 1871 साली गुन्हेगारीत कायदा तयार केला यात त्यांनी या भटक्या विमुक्त जमातींना गुन्हेगारी जमाती म्हणून जाहीर केले. या जमातींना वेगवेगळ्या भागात राहण्यासाठी 52 वसाहती निर्माण करण्यात आल्या होत्या .या वसाहतीत या जमाती गुन्हेगारी जमाती म्हणून बंदी जीवन जगत असत. या वसाहतीला तारांचे कुंपण

करण्यात आले होते .या जमातीच्या लोकांना रोज दिवसातून तीन वेळा हजेरी द्यावी लागत असे भारताला स्वातंत्र्य मिळाले पण या भटक्या जमातीला स्वातंत्र्य देण्यात आलेले नव्हते . 1952 सालापर्यंत यांना गुन्हेगारी जमात म्हणून स्वातंत्र्य देण्यात आलेले नव्हते पंतप्रधान पंडित नहेरू यांनी 31 ऑगस्ट 1952ला संसदेत एक ठराव संमत केला व या जमातींना मुक्त करण्यात आले व त्यांना स्वातंत्र्य अनुभवण्याची संधी मिळाली. ज्या बँकेत जमातीला मुक्त करण्यात आले त्यांना विमुक्त असे म्हटले जाऊ लागले .भटक्या विमुक्त जमातीचे तांडे असायचे त्या तांड्यातील लोक आजूबाजूच्या गावात जाऊन आपला व्यवसाय करत असाल तर काही जमातींची उपजीविका गावातील लोकांच्या आशीर्वादा वरच होती त्यामुळे त्यांना गुलामी जीवन जगावे लागत असे या जमातींकडे गावातील लोकांनी मानव म्हणून पाहिले या जमातीकडे गावातील लोकांनी मानव म्हणून कधी पाहिलेच नाही. भटकंतीमुळे ते प्रगत समाजापासून व शिक्षणापासून दूर राहिले त्यांना गुन्हेगारी जमाती म्हणून सातत्याने बहिष्कृत केले जात असे त्या भटक्या जमातीचा पोशाख वेगळा असल्याने त्या गावातील लोकांना परकीय व परदेशी लोक आहेत .ही भावना त्यांच्या मनात होती.त्यामुळे त्यांना आपले कधी समजलेच गेले नाही.

जातपंचायतीचे वर्चस्व :-

भटक्या-विमुक्त समाजात जात म्हणजे अतिशय महत्त्वाचे स्थान आहे .जगाचा देशाचा कायदा वेगळा आणि जातपंचायतीचा कायदा वेगळा आणि जात पंचायत ही त्या जमातीतील लोकांसाठी श्रेष्ठ होती. भटक्या जमातीच्या कोणत्याही समस्या सोडवण्यात जातपंचायतीची भूमिका महत्त्वाची असायची पण पारंपरिक विचारावर आधारित न्यायदान होत असल्यामुळे अनेक लोकांवर आजच्या आधुनिक युगात अन्याय या जात पंचायत होत असे अनेक वेळा केलेल्या गुन्ह्याची शिक्षा म्हणून कुटुंबाला वाळीत टाकने व पंचायतीच्या आदेशानुसार एखाद्या कुटुंबाला बहिष्कृत करणे. अनेक भटक्या जाती मध्ये जातपंचायतीला जसे महत्त्वाचे स्थान आहे .अनेक जाती आपल्या कलेच्या माध्यमातून लोकांकडून मिळणाऱ्या मोबदल्यावर आपली उपजीविका भागवत भागवावी लागत असत.

गरीबी दारिद्र्य :-भटक्या विमुक्त जमातीचे जीवन खूपच कष्टाचे असते त्यांना दोन वेळेच्या जेवणासाठी लोकांची गुलामी करावी लागत असे भटक्या जातीच्या लोकांना अज्ञानामुळे त्याचे मोठ्या प्रमाणात शोषण होते हा समाज स्थिर नसल्याने व उदरनिर्वाह करणे व आपली उपजीविका भागविणे या मर्यादित विचारावर कष्ट करणारे लोक असल्याने हे प्रगत झाले नाहीत. स्त्रियांमध्ये बेकारी खूप मोठ्या प्रमाणात आहे .लोकांना कला दाखविणे ते जे मोबदला देतील तेवढ्यातच आपल्या गरजा भागविणे इतरांवर अवलंबून जीवन जगत असल्याने त्यांना सातत्याने गरिबीत जीवन व्यतीत करावे लागत असे अज्ञान, अंधश्रद्धा, यामुळे आपला विकास करू शकले नाहीत .त्यामुळे सातत्याने त्यांच्या जीवनामध्ये दारिद्र्य असायचे.

अनेक जाती आपल्या कलेच्या माध्यमातून लोकांकडून मिळणाऱ्या मोबदल्यावर आपली उपजीविका भागवत भागवावी लागत असत.

आर्थिक समस्या:-

प्राचीन काळापासून या जाती समाविष्ट शासन व्यवस्थेने धोरण स्वीकारले आहे त्याचा परिणाम या जातींना उपजीविकेसाठी भटकंती करावी लागते. भटक्या विमुक्त जाती मध्ये मोठ्या प्रमाणात शिक्षणाचा अभाव अज्ञान अंधश्रद्धा अस्थिरता यामुळे यांच्या जीवनात दारिद्र्य मोठ्या प्रमाणात आहे या जातीच्या लोकांनी आधुनिक व्यवसाय कडे न वळतात आपल्या आपला पारंपारिक व्यवसाय करण्या मध्ये धन्यता समझतात. त्यामुळे त्यांच्या आर्थिक परिस्थितीत सुधारणा होत असताना दिसत नाही त्यांच्यात व्यसनाधीनता ही एक मोठी समस्या आहे.आपले साहसी खेळ सादर केल्यानंतर येणारा थकवा किंवा भटकंतीमुळे जो थकवा येतो. तो कमी करण्यासाठी लोक दारूचे सेवन करतात. तंबाखू बिडी यासारख्या व्यसनामुळे त्यांच्यात आरोग्याच्या अनेक समस्या निर्माण होतात .त्यामुळे त्यांना आर्थिक समस्यांना सामोरे जावे लागते.

अंधश्रद्धा :-

अज्ञानामुळे भटक्या जातीतील लोकांच्या मध्ये अंधश्रद्धा मोठ्या प्रमाणात आहे .या समाजातील लोक अनेक देवदेवतांची पूजा करत असतात. अनिष्ठ शक्तीच्या अस्तित्व ते मानतात देवदेवतांना प्रसन्न करणे. अनिष्ट शक्तीचा नाश करणे. त्यासाठी वेगळा विधी करणे .जत्रा भरविणे ,नवस बोलणे, समाजात अनेक प्रथा परंपरा केवळ अंधश्रद्धेमुळे स्वीकारल्या जातात .त्यामुळे एकतर आर्थिक परिस्थिती बेताची आणि अंधश्रद्धेचे डोक्यात भूत यामुळे त्याचे जीवन आर्थिक विवेचनेत सापडले आहे. भटक्या विमुक्त जमातीची परिस्थिती खूप हलाखीची झाली आहे .

निष्कर्ष :-

शिक्षण हे कोणत्याही समाजाच्या विकासासाठी आवश्यक आहे .ज्या समाजात शिक्षणाचा अभाव दिसतो अशा समाजाची प्रगती किंवा विकासाची गती खूपच मंद असते .या भटक्या विमुक्त जाती जमातीत शिक्षणाचे प्रमाण अत्यल्प असल्याने त्यांच्या विकासात गतिशीलता दिसत नाही.शासकीय धोरणात असणारी उदासीनता प्रशासनात असणारा भ्रष्टाचार यामुळे समाजाच्या विकासासाठी अनेक योजना असतानाही .त्यांचा सकारात्मक प्रभाव दिसत नाही. भटक्या विमुक्त जातीतील लोकांना शिक्षणाचे महत्त्व समजू लागले आहे . आधुनिक काळात भटक्या विमुक्त जमातीतील तरुण मुलांना शिक्षणाचे महत्त्व कळू लागले आहे. आपला पारंपारिक व्यवसाय बाजूला सोडून इतर व्यवसाय मूल करत आहेत. अनेक भटक्या जाती गुन्हेगारी जाती म्हणूनच ओळखल्या जातात त्यांच्या वरील कलंक आजही आहे तसाच आहे राजकीय लोक पैशाचे आमिष दाखवून मतदारांना आपल्याकडे ओढत असतात देश स्वातंत्र झाल्यानंतरही या भटक्या जातीना स्वातंत्र्य उपभोगता आले नाही .त्या पारतंत्र्यातच होत्या. त्यांना अनुसूचित जाती-जमाती प्रमाणे भटक्या समाजाला राजकीय आरक्षण मिळाले नाही. त्यामुळे या जातीचे राजकीय सक्षमीकरण झाले झाले नाही.पारंपारिक व्यवसाय जपणाऱ्या जाती विकासापासून दूरच राहिल्या, भारतात 15 ते 20 टक्के भटक्यांची लोकसंख्या असूनही अपवाद सोडला तर या भटक्या जातीना आपले राजकीय वर्चस्व निर्माण करता आले नाही. भटक्या विमुक्त जाती या सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, यासारख्या समस्यांनी ग्रासलेले आहेत .आपल्या पारंपारिक व्यवसाय करणे हे प्रतिष्ठेचे मानले जात असल्याने ते इतर व्यवसाय करत नसल्याने त्यांची आर्थिक परिस्थिती सुधारली नाही ते आज या आर्थिक परावलंबी जीवन जगत असताना दिसतात .स्त्रियांना समाजात मानसन्मान नाहीत त्यांचे मोठ्या प्रमाणात लैंगिक शोषण होत असते .भटक्या लोकांच्या मुलांसाठी अनेक आश्रम शाळा काढण्यात आल्या पण त्याचा फायदा हा संस्थाचालकांना मोठ्या प्रमाणात झाला आहे. आजची तरुण पिढी शिक्षणावर भर देत असल्याने भटक्या जमातीत प्रगती व विकास होत असताना दिसत आहे .

संदर्भ सूची -

* महाराष्ट्रातील भटका समाज - कदम नागनाथ- प्रतिमा प्रकाशन 1995
*-भटक्या जाती आणि जमाती - रामनाथ चव्हाण -मेहता पब्लिशिंग हाऊस पुणे 2000
*बिना चेहरे के लोग- डॉ.वी. एन भालेराव -शैलजा प्रकाशन कानपुर 2014
*समाजशास्त्र के सिद्धांत -गुप्ता भावना- इसिका प्रकाशन 2010
*भारत के गावं- एम एस श्रीनिवास- राजकमल प्रकाशन 2004
*भटक्या-विमुक्तांच्या आकांक्षाचे प्रतिबिंब- डॉ- तांबे श्रुती - समाज प्रबोधन पत्रिका -जानेवारी- मार्च 2007
*इंटरनेट

"भटक्या विमुक्तांची चळवळ"

बाळकृष्ण रेणके
C/o आर. के. पवार
६८, उत्तर कसबा, सोलापूर - ४१३००२

सारंश

राजकीय पुढाऱ्यांत आणि सामाजिक चळवळ करणाऱ्या संघटनांच्या नेत्यांत फार मोठा फरक आहे. राजकीय पुढान्यांना लोकांचा पाठिंबा पाच वर्षाला निवडणूक प्रसंगी हवा असतो. चळवळीतल्या कार्यकर्त्यांना लोकांचा पाठिंबा रोजच हवा असतो. धर्म जातीच्या भावनात्मक प्रश्नाला हात घालून गट्टा मते मिळविण्याचा प्रयत्न राजकीय पुढारी करू शकतो. तसे ते करतातही. जाती व्यवस्थेला विरोध करीत असताना जातच विरोधात जाऊन आपलेच मूळ उपटले जाणार नाही याची काळजी सामाजिक चळवळीतल्या कार्यकर्त्यांना घ्यावी लागते. कारण स्वतःच्या जातीने टाकून दिले तर दुसऱ्या जातीची माणसे काय करतील याचा विश्वास नसतो.

बीज शब्द- चळवळ, भटके, जमात.

प्रस्तावना

ब्रिटिश सरकारने १८७१ साली गुन्हेगार जमाती कायदा केला. या कायद्याप्रमाणे कांही जमातींची माणसे जन्मतःच गुन्हेगार असतात असे ठरविण्यात आले. जाती व्यवस्था मुळाधार असलेल्या समाजव्यवस्थेस या कायद्यामुळे चांगलेच सतपाणी मिळाले आणि ठराविक जमातींची माणसे जन्मतःच गुन्हेगार असतात हा विचार समाजात सर्वदूर पक्का झाला. म्हैस, बैल, कुत्रा वगैरे पाळीव प्राण्यांबद्दल जिव्हाळासुद्धा या माणसाच्या वाटचाला आला नाही. त्यामुळे त्यांच्यावर होणान्या अत्याचारास सीमाच राहिली नाही. कधी पोलिसांच्या ताब्यात, कधी तुरुंगात, तर कधी रानावनात लपून छपून कोल्ह्या लांडग्याचे जीवन जगणे, या पलीकडे त्यांना दुसरा पर्याय उरला नाही. घर, गाव, शेती, उद्योग, सणवार वगैरे बाबींना त्यांच्या जीवनात स्थानच उरले नाही.
पुढे १९२४ साली ब्रिटीश सरकारने केलेल्या गुन्हेगार जमाती वसाहतीकारण कायदा यामुळे तर त्यांच्यावर कडक निर्बंध लादून तारेचे कुंपण व पोलिसांचा पहारा असलेल्या त्यांच्या स्वतंत्र वसाहती (Settlement Colonies) स्थापन करण्यात आल्या. कोणत्याही जाती जमातीचा माणूस जन्मतः गुन्हेगार असू शकत नाही हे तत्त्व आपल्या राज्य घटनेने मान्य केल्यामुळे स्वराज्यात १८७१ व १९२४ सालचे.

दलित चळवळ

वरील दोन्ही कायदे १९५१ साली रद्द करण्यात आले. त्यामुळे या जमाना १९५१ पासून पुढे ‘‘पूर्वाश्रमीच्या गुन्हेगार जमाती (Ex-criminal Tribes or Denotifiedtribes) जसे कागदोपत्री संबोधण्यात येऊ लागले. १९५९ साली सोलापूर येथे झालेल्या या जमातीच्या राज्यमेळाव्याचे उद्घाटन करताना पंतप्रधान पंडित जवाहरलाल नेहरू म्हणाले, "सान्या देशाबरोबर आपणही ब्रिटिशांच्या गुलामगिरीतून मुक्त झालात. परंतु १८७१ सालच्या गुन्हेगार जमाती कायद्यातून व त्यामुळे निर्माण झालेल्या सारांच्या तुरुंगातूनही तुम्ही मुक्त झाला आहात म्हणून तुम्हाला मी विशेष मुक्त म्हणजेच " विमुक्त जन "म्हणू इच्छितो. जन्मतः तुमच्या माथा मारलेल्या तारांचा तुरुंग नष्ट झाला परंतु तुम्हाला माणूस म्हणून सन्मानाने जगण्याची संधी प्राप्त करून देऊन तुमचा सर्वांगीण विकास साधण्याच्या जबाबदारीच्या बंधनाच्या तुरुंगात मात्र मी अडकलो आहे." या जमातीना उद्देशून नेहरूंनी विमुक्त जन ' हा शब्दप्रयोग केला म्हणून महाराष्ट्र शासनाने Ex-criminal tribe किया Denotified tribe या शब्दाचे मराठी भाषांतर विमुक्त जाती असे केले ट्राईव या शब्दाचे मराठी भाषांतर जमाती ऐवजी जाती असे कुणी केले व शासनकर्त्या विद्वान मंडळीनी मान्य कसे केले हे एक कोडे आहे.

ब्रिटिशांनी निर्माण केलेले तारांचे सुरंग नष्ट झाले. हे लोक मुक्त झाले. परंतु त्याचबरोबर या लोकांसाठी विटिशांना त्या तुरुंगात केलेली शिक्षण प्रशिक्षणाची व त्यांच्या उपजीविकेसाठी त्यांना मिळणारा वैनंदिन भत्ता व गोष्टीही नष्ट झाल्या. पंतप्रधान पंडित जवाहरलाल नेहरूंना आपल्या भाषणात या जमाती विषयी आस्या दालविली. परंतु त्यांच्या पुनर्वसनाच्या आणि सर्वांगीण विकासाच्या योजना राबविल्या जाण्यासाठी कायद्याची तरतूद करण्यास भारत सरकार विसरले. दिनांक ९ ऑक्टोबर ८४ रोजी पुण्यात 'भटक्या विमुक्तांचे प्रश्न या विषयावर आयोजित केलेल्या चर्चा सत्राच्या अध्यक्षपदावरून बोलताना महाराष्ट्राचे थोर नेते कै. यशवंतरावजी चव्हाण म्हणाले " १९५९ साली सोलापूर येथे पंडित जवाहरलाल नेहरूंनी उद्घाटन केलेल्या विमुक्त जमातीच्या राज्य मेळाव्याचा अध्यक्ष होतो त्यावेळी मी महाराष्ट्राचा मुख्यमंत्री होतो. सेटलमेंट तुरुंगाच्या तारा तोडून या जमातींना विशेष मुक्त केलेल्या घटनेचा मी साक्षीदार आहे. त्यांना विमुक्त केले गेले यात जरूर आनंद होता व आहेही. परंतु तारा तोडून मुक्त केले गेलेले हे लोक जाणार कोठे हा प्रश्नच त्यावेळी डोक्यात घुसला नाही. या जमातीची कटी पतंगसारखी आवस्था झाली आहे हे लक्षातच आले नाही. एवढेच नव्हे तर ४० वर्षे सत्तेत असताना या समाज घटकाचे प्रश्न समजू शकली नाही याबद्दल मी स्वतः अपराधी आहे असे आज मला वाटत आहे.

सामाजिक, आर्थिक व शैक्षणिक अवस्था

गावगाडयातील उत्पादन प्रक्रिया किंवा सेवाकार्य यामध्ये स्याना कोठेच स्थान नाही. गावकुसाच्या बाहेर ओसाड माळावर किया गावाच्या आश्रयाने हागंदारीत किया मसनवाट्यात चार-दोन दिवस राहून त्या गावात भिक्षा मागून झाली की पुढच्या गावाला निघणे हा त्यांचा जीवनक्रम आजही चालूच आहे. घिसाडी, सिकलगार, कैकाडी, वडार वगैरे काही थोडया जमाती गावकर्याच्या गरजा भागविणारे छोटे-छोटे व्यवसाय किंवा माती वाहणे, दगड फोडणे वगैरे सारखी हलकी समजली जाणारी कष्टाची कामे करतात. परंतु या व्यवसायाचे स्वरूप सुद्धा भटके असून हे व्यवसाय हलके व प्रतिष्ठाहीन समजले जातात.

मंत्र-तंत्र, जादूटोणा, भूतबाधा, देवदेवस्की वगैरे बाबतीत या जमाती अत्यंत अंधश्रद्धाळू आहेत. घातूक व्यसनांचे प्राबल्य परोकोटीचे अज्ञान व दारिद्रय बाळगणारा हा समाज गावात घर नाही, रानात शेत नाही; प्रतिष्ठित व्यवसाय नाही, अशा अवस्थेत पिढयानुपिढया चालत आलेल्या भटकेपणाला कवटाळून जीवन जगत आहे. पूरग्रस्त, दुष्काळग्रस्त, धरणग्रस्त जनतेच्या पुनर्वसनासाठी आपण सारे युद्धपातळीवर प्रयत्न करताना दिसतो. परंतु वरील आपत्तीग्रस्त लोकांचे जीवन शेकडो वर्षांपासून पिढयानपिढया ज्यांच्या माथी मारण्यात आले आहे अशा भटक्या जमातींच्या पुनर्वसनाचे प्रयत्न (यांच्या पुनर्वसनाचा प्रश्नच येत नाही, कारण मुळात वसनच झालेले नाही) युद्धपातळीवर होतात असे दिसत नाही. जे काही कल्याणाचे प्रयत्न होतात त्यात माया, आपुलकी असल्याचे जाणवत नाही.

या जमातीचे लोक जन्मत: गुन्हेगार किंवा भिकारी असतात अशी सामान्य जनांची मनोधारणा असल्यामुळे त्यांना कष्टाची मजुरीची कामे वेळेकर मिळत तर नाहीतच परंतु पदोपदी त्यांना मानवी उपेक्षा व अन्याय-अत्याचारास तोंड द्यावे लागते.

काही प्रांतात मात्र अशा जमातींची वेगळी यादी तयार करून राज्य शासन अंतर्गत शिक्षण व नोकरीच्या थोड्याबहुत सवलती जाहीर केल्या आहेत. परंतु मुळातली भटकी प्रवृत्ती, सामान्य लोकांपासून अलिप्त राहण्याची वृत्ती, सुधारणेच्या विरोधातले त्यांचे परंपरागत मन, निरक्षरता, बहुजन समाजाकडून त्यांना मिळणारी तुच्छता दर्शक वागणूक यामुळे त्यांना राज्य शासनाच्या या सोयीसवलतींचा लाभ होताना दिसत नाही.

भटक्या जमातीचे लोक आजही राज्यसंस्थेपासून तुटलेल्या अवस्थेत पूर्वापार पद्धतीने भिक्षा मागून व आपला चरितार्थ चालवत असल्याचे दिसते. **सापगारुडी, डोंबारी, माकडवाले, नंदीवाले, मरगम्मा, पारधी, वैद, जोशी वगैरे** लोक नेहमीच

डोळघात भरतात. त्यांच्या ब्रिटिश आमदानीतील जीवनात आणि ३८ वर्षांच्या स्वातंत्र्यानंतर आजच्या जीवनात काही फरक पडल्याचे आढळत नाही. रस्त्याने कसरत करीत गावोगाव फिरणारा डोंबारी, नंदीबैल घेऊन फिरणारे नंदीवाले, सापाचा व जादूचा खेळ करीत फिरणारा मदारी यांना दिल्लीत कोण राज्य करतो याचे काय सोयरसुतक असणार ? राज्य कोणाचेही असो, त्यांच्यासाठी काहीच फरक पडत नाही. पंचायत राज्यात पंचायतीतर्फे हिताचा वा निर्णय घेतला आहे व त्याची अंमलबजावणी झाली आहे असे काही उदाहरण द.च...

समारोप

लोकांचा पाठिंबा असल्याशिवाय चळवळ चालविता येत नाही. तसे पाहिले तर राज्यकर्त्यांना सुद्धा लोकांचा पाठिंबा हवा असतो. राजकीय पुढाऱ्यांत आणि सामाजिक चळवळ करणाऱ्या संघटनांच्या नेत्यांत फार मोठा फरक आहे. राजकीय पुढान्यांना लोकांचा पाठिंबा पाच वर्षाला निवडणूक प्रसंगी हवा असतो. चळवळीतल्या कार्यकर्त्यांना लोकांचा पाठिंबा रोजच हवा असतो. धर्म जातीच्या भावनात्मक प्रश्नाला हात घालून गट्ठा मते मिळविण्याचा प्रयत्न राजकीय पुढारी करू शकतो. तसे ते करतातही. जाती व्यवस्थेला विरोध करीत असताना जातच विरोधात जाऊन आपलेच मूळ उपटले जाणार नाही याची काळजी सामाजिक चळवळीतल्या कार्यकर्त्यांना घ्यावी लागते. कारण स्वतःच्या जातीने टाकून दिले तर दुसऱ्या जातीची माणसे काय करतील याचा विश्वास नसतो.

संदर्भ ग्रंथ सूची

प्रा शरद लिंबाळे = दलीत चळवळ ,राजहंस प्र.कोल्हापूर 19 वा. पृ 420
प्रा दिनेश मोरे. महाराष्ट्र परिपतने इतिहास अनुपम

भटक्या- विमुक्त जमातींची संस्कृती (बेरड, वैदू, बंजारा)

प्रा. प्रियांका अशोक कुंभार
छत्रपती शिवाजी कॉलेज, सातारा

सारांश

'बंजारा' समाज हा दुर्बल जाती जमातीतील एक घटक आहे. ही जमात मुळची आदिवासी आहे. गावाबाहेर राहणारी आणि आधुनिक जगाशी संपर्क नसलेली ही जमात आहे. वनजारा, वणजारी, वंजारी, बंजारी अशी अनेक नावे या जमातीला असलेली दिसतात. या जातीचा प्रमुख व्यवसाय म्हणजे बैलाच्या पाठीवरून मीठ वाहून नेणे . यावरूनच या जातीला लमाणी असे नाव पडले. बंजारा लोक हे मूळचे राजस्थान चे राजपूतांचे वंशज आहेत. पेशवाई काळामध्ये युद्धाच्या वेळी सैन्यांसाठी लागणाऱ्या धान्य, दारूगोळा, शस्त्रे इत्यादीं गोष्टी पुरवण्याची जबाबदारी या समाजाकडे होती. त्याला 'रसद' असे म्हणले जाते.

बीज शब्द- बंजारा, समाज, भटके, विमुक्त, बेरड, वैदू.

प्रस्तावना:

भारतामध्ये भौगोलिकदृष्ट्या फार मोठी विविधता दिसून येते. जात, धर्म, भाषा, वेशभूषा, आहार अशा अनेक गोष्टींमध्ये विविधतेचा प्रत्यय येतो. असे विविध धर्म, पंथ, वंश, जाती, भाषा व परंपरा यामध्ये भिन्नता असली तरीही या विविधतेमध्ये एकता दिसून येते. भारतीय संस्कृती ही एक उदार व व्यापक असलेली अशी संस्कृती आहे. भारतीय संस्कृती ही कालखंडानुसार विकसित होत असताना दिसते. भारतीय समाज हा वर्णाश्रम पद्धतीवर आधारलेला होता. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ही वर्गरचना श्रमविभागणीच्या तत्वावर केली गेली. जन्मावरून वर्ण ठरू लागले. त्यातूनच जातीव्यवस्था निर्माण झाली. जातीप्रमाणे धर्माचेही स्थान मानवी जीवनामध्ये अनन्यसाधारण मानले जाते. वेगवेगळ्या समाजातील धार्मिक श्रद्धा, रूढी परंपरा भिन्न असतात. विवाह, कुटुंब, जातीसंस्था, कायदा, न्याय यावरही धर्माचा प्रभाव असल्याचे दिसते. धर्मातील कायदा, कर्तव्य व बंधने ज्या त्या समाजाने स्वीकारलेले दिसतात. भारतीय संस्कृतीच्या विकासामध्ये धर्माचे सर्वात मोठे कार्य असलेले दिसून येते. वैदिक, बौद्ध, जैन, इस्लाम, हिंदू या विविध धर्मामुळे भारतीय संस्कृती व्यापक होत गेली.

महाराष्ट्रातील ग्रामीण भागामध्ये बलुतेदार ही पद्धती अस्तित्वात आहे. या पद्धतीमध्ये वेगवेगळ्या जातीनुसार यामध्ये बारा गट पडले गेले. जातींनुसार व्यवसायाचे विभाजन केले गेले. या जातीव्यवसायाच्या माध्यमातून या जातीतील लोकांना शेतीच्या उत्पादनाचा वाटा दिला जातो. बलुतेदार प्रमाणे अलुतेदार पद्धतीही ग्रामीण भागामध्ये प्रचलित असलेली दिसते. या पद्धतीमध्ये भटक्या जाती-जमातींचा सामावेश होतो. या भटक्या जाती-जमाती आपल्या कलागुणांच्या आधारे लोकांचे मनोरंजन करताना दिसतात आणि आपला उदरनिर्वाह करतात. आजही या जमातीतील लोक अस्थिर जीवन जगताना दिसतात. या भटक्या जाती-जमातींची ही एक विशिष्ट अशी संस्कृती आहे. भारतीय संस्कृतीमध्ये या भटक्या जाती जमातीतील लोकांच्या संस्कृतीचा समावेश होतो.

भटक्या जाती-जमातींची संस्कृती :

भारतामध्ये विशिष्ट जाती आणि जमातीनुसार त्या लोकांच्या जगण्याच्या पद्धती असलेल्या दिसतात. प्रत्येकाची जात वेगळी आणि त्या जातीमधील संस्कृती भिन्न असते. ज्या जातीमध्ये जन्माला यावे त्याच जातीमध्ये मरावे असे धर्मशास्त्राचे बंधन या जातीव्यवस्थेवर दिसून येते. या जाती-धर्माच्या मर्यादा जपण्याचा प्रयत्न माणूस आयुष्यभर करत असतो. महाराष्ट्रामध्येही अशा अनेक भटक्या-विमुक्त जाती जमाती प्रचलित असलेल्या दिसतात. महाराष्ट्रामध्ये तब्बल भटक्या-विमुक्त जाती-जमातींची एकूण संख्या पंचेचाळीस इतकी आहे. समाज व्यवस्थेने भटक्या-विमुक्त जाती-जमातीला स्थिर जीवन जगू दिले नाही. पिढ्यान-पिढ्या या जमातींच्या वाट्याला जीवन आलेले आहे. गावच्या वेशीच्या आत तसेच बाहेरही त्यांना स्थान मिळालेले दिसत नाही.

गुन्हेगारी जमात म्हणून त्यांना समाजप्रवाहापासून दूर ठेवलेले आहे. या भटक्या-विमुक्त जमातीमध्ये अनेक जमातीचा समावेश होतो. या प्रत्येक जमातीची संस्कृती भिन्न असलेली दिसते. प्रत्येकाचे आचार-विचार, राहाणीमान, पोशाख, आहार, सण-उत्सव यामध्ये असलेला फरक दिसून येतो. महाराष्ट्रामध्ये भंडारी, गारुडी, नाथजोगी, बहुरूपिया, भोरपी, रायंधर, वतकरी, औतकरी, सिकलगार, धनगर, जोशी, वंजारी, कडकलक्ष्मी, पोतराज, बेरड, वैदू, नंदीवाले, वासुदेव, यांसारख्या अनेक जाती-जमातींचा समावेश झालेला दिसतो. यामध्ये बेरड, वैदू आणि बंजारा या जमातींच्या संस्कृतीविषयी थोडक्यात आढावा घेऊ

बेरड :-

'बेरड' ही विविध भटक्या व विमुक्त जमातीतील एक जमात आहे. संपूर्ण भारतभर या लोकांची वस्ती असलेली दिसते. कर्नाटक राज्यामध्ये बहुसंखेने या जमातीतील लोक आढळतात. महाराष्ट्रामध्ये कोल्हापूर व सोलापूर जिल्ह्यात ही जमात जमात पहायला मिळते. 'कन्नया' या हा जमातीचा मुळपुरुष आहे. रामोशी लोकांप्रमाणेच बेरड जमातीचे लोक काळ्या वर्णाचे व रागीट स्वभावाचे असतात. दुर्गीमुखी बेरड, जास किंवा यास बेरड, खास बेरड, नेलमकुल बेरड, रामोशी बेरड असे वर्णभेद या जमातीमध्ये दिसतात. या वर्णभेदातील लोक इतर मागास जातीतील लोकांप्रमाणे रोटीबेटी व्यवहार करीत नाहीत. बेरड लोक हे अचूक नेमबाजी करतात. त्यामुळे पशुपक्ष्यांची शिकार करण्यात ते पटाईत असतात. शेतीमध्ये ते ज्वारी आणि बाजरीचे पीक घेतात. बेरड लोकांचा एक विशिष्ट पेहराव आहे. या जमातीतील पुरुष धोतर किंवा विजार व त्यावर कोट, उपरणे घालतात. त्यांच्या पायात वाहणा व बूट असतात. या जमातीतील काही पुरुष केस वाढवतात. तसेच कमरेत साखळी, हातात सोन्याचे किंवा चांदीचे कडे व कानात सोन्याची कुडी घालतात. या जमातीतील स्त्रिया विकच्छ साडी नेसतात. व डोक्यावर पदर घेण्याची पद्धत रूढ असलेली दिसते. वाकी, टीका, कमरपट्टा, नथ, कर्णफुले व बांगड्या असे दागिने घालतात. या जमातीतील बहुतांश लोक शाकाहारी आहेत. काही लोक मांसाहार ही खातात, त्यामध्ये ते गोमांस देखील खातात. मुसलमान जातीतील लोक बेरड लोकांकडे जेवण करीत नाहीत. जे बेरड लोक शाकाहारी आहेत ते मुसलमनांकडे जेवत नाहीत.

बेरड जातीमध्ये परस्पर लग्नसंबंध होतात. परंतु त्यांच्यामध्ये एकाच कुळात लग्न होत नाहीत. या समाजामध्ये बालविवाहाची पद्धत रूढ असलेली दिसते. साखरपुडा करून एक ते दोन वर्षानी लग्न केले जाते. लग्न सोहळ्याचे विधी नवऱ्या मुलाच्या घरी केले जातात. लग्नाच्या दोन दिवस अगोदर वधूकडचे लोक वराच्या घरी येतात. लग्नाचे सर्व विधी करतात. कुंभाराकडून मडकी आणून मडक्यामध्ये दोन कटक्यांना विड्याची पाने बांधून ठेवली जातात. लग्नामध्ये वर जात्याच्या पेढीवर व वधू धान्याने भरलेल्या टोपलीत उभी राहते. वर आणि वधू यांच्यात अंतरपाट धरला जातो. वराने स्पर्श केलेले मंगळसूत्र लग्न लावणारा पूरोहित वधूच्या गळ्यात बांधतो. या जमातीत लग्नाच्या वेळी स्त्रिया गाणी म्हणतात आणि त्यांच्या गाण्यावर पुरुष मंडळी नाच करतात. या जमातीमध्ये विधवा विवाहास मान्यता आहे. परंतु विधवा विवाहाप्रसंगी सुवासिनी स्त्रियांनी लग्नास उपस्थित राहू नये, अशी प्रथा आहे.

या जमातीमध्ये घटस्फोटालाही मान्यता आहे. घटस्फोटीत स्त्रिया यलम्मा देवीला अर्पण केल्या जातात. त्यानंतर त्या जोगतिणी होतात आणि वेश्यावृत्तीने राहतात. त्या स्त्रियांचा 'बेसवी' या नावाने उल्लेख केला जातो. बेरड लोक निरनिराळ्या देवतांची पुजा करतात. दुर्गा, मल्लिकार्जुन, मारुती, यलम्मा व रेणुका ही त्यांची आराध्य दैवते होय. मारुतीची उपासना केली जाते, तसेच सगळे लोक मारूतीचा उपवास करतात. बेरड लोक सगळे सण उत्साहाने साजरे करतात. अश्विन आणि मार्गशीष महिन्याच्या अमवास्येला 'डांगोरा' नावाचा विधी केला जातो. या जमातीचा मंत्रतंत्र व जादूटोणा अशा गोष्टींवर जास्त विश्वास असल्याचे दिसून येते.

बेरड जमातीमध्ये कट्टीमणी' नावाचा जातीप्रमुख असतो. जमातीमध्ये काही भांडणतंटा झाल्यास हा जातीप्रमुख हे तंटे सोडवितो. या जमातीमध्ये मेलेल्या व्यक्तीची उत्तरक्रिया हिंदू धर्मपद्धतीनुसार होते. प्रेते पुरण्याची किंवा जळण्याची पद्धत रूढ आहे. अविवाहित व्यक्तीचा मृत्यू झाल्यास त्याला आडवे ठेवून पुरले जाते, तर विवाहित व्यक्तीचा मृत्यू झाल्यास त्याला

बसलेल्या स्थितीमध्ये पुरले जाते. मेलेल्या व्यक्तीच्या नावाने तीन दिवस सुतक पाळले जाते. मेल्यानंतर त्या व्यक्तीची चांदीच्या धातूची प्रतिमा तयार केली जाते आणि तिचे रोज पूजन केले जाते.

अशाप्रकारे कालांतराने अलिकडच्या काळामध्ये या जमातीमध्ये शिक्षणाचा प्रसार झालेला दिसतो. अनेक वेगवेगळ्या क्षेत्रात या जमातीतील लोक नोकरी करताना दिसत आहेत. नोकरी सोबतच व्यवसायामध्ये यशस्वी होताना दिसतात. त्यामुळेच या जमातीतील लोक प्रगती करताना दिसत आहेत.

वैदू :

महाराष्ट्रामध्ये औषधी वनस्पती व निरनिराळी भस्मे विकणारी जमात म्हणजे आहे, त्या जमातीला 'वैदू' या नावाने ओळखले जाते. वैदू समाजातील स्त्रिया एका गाठोड्यातून सुया, पोत, पीन, बिबवा अशा वस्तु विकताना दिसतात. हा वैदू झाड पाल्यांची, निरनिराळ्या प्राण्यांच्या मासांची, चरबीची औषधे, भस्मे घेऊन ती गावोगावी विकतो. वैदू लोकांचे मूळ स्थान हे हैदराबाद व कर्नाटक होय. महाराष्ट्रामध्ये पुणे, नाशिक, अहमदनगर जिल्ह्यांमध्ये ही जमात आढळते. पुण्यातील हडपसर येथे या लोकांची संख्या जास्त असलेली दिसते. नंदीबैलवाले वैदू, मघेड वैदू, दासर वैदू, नंदलोड वैदू अशा या जमातीतील पोटजाती असलेल्या दिसून येतात. गुराखी ही देखील वैदू जमातीची पोटजात आहे. या जमातीतील पोटजातीचे व्यवसाय हे निरनिराळे असल्याचे दिसते. पोटजातीमध्ये रोटीबेटीचे व्यवहार होत नाहीत.

वैदू समाजातील पुरुष मजबूत बांध्याचे रागीट, स्वभावाचे असतात. त्यांच्या कानामध्ये सोन्याची किंवा चांदीची पाळी असते. त्यांचे राहणीमान हे अतिशय गालिच्छ असते. या जमातीतील लोक हे स्वभावाने जुन्या वळणाचे असलेले दिसतात. त्यांच्याकडे अनेक चुकीच्या आणि अनिष्ट रूढी, परंपरा पाळल्या जातात. या जमातीमध्ये एखाद्या मुलीच्या डोक्यावर भोवरा दिसला तर तिची हत्या केली जाते. धर्माच्या नावाखाली अशा अघोरी प्रथा पाळल्या जातात. या जमातीतील मुख्य व्यवसाय झाडपाल्यापासून औषधे बनवणे आणि विकणे, तसेच शिकार करणे. औषधी भस्मे गोळा करणे. ज्या प्राण्यांच्या शरीरातील भाग औषधी असतो मुख्यत: त्या प्राण्यांची शिकार केली जाते. चटया तयार करणे असे व्यवसाय केले जातात. या समाजातील स्त्रिया ही असे छोटे छोटे व्यवसाय करताना दिसतात. जंगलातील पांढरे दगड शोधून ते बारीक करून रांगोळी तयार करणे, मणी, पोत, चाळण्या तयार करणे, दाभण, वाळे, मनगटी अशा वस्तु तयार करून त्या घरोघरी जाऊन विकतात. या वस्तूंच्या बदल्यात खाण्याचे पदार्थ, कपडे अशा वस्तु घेतात आणि यावर त्यांची आणि त्यांच्या कुटुंबाची उपजीविका चालते. वैदू ही भटकी जमात असल्याने कुत्रे, मांजर,शेळ्या, कोंबडी इ. प्राणी पाळतात. शिकार करत असताना त्यांना कुत्र्याचा फार उपयोग होतो. या जमातीतील लोक छोट्या छोट्या शस्त्रक्रियाही करतात. हे लोक डॉक्टरकडे जाणे पाप मानतात. म्हणूनच त्यांच्या स्वत:च्या कुटुंबातील लोक आजारी पडल्यास ते देवऋषाकडे जातात.

वैदू जमातीत पोटजातीमध्ये परस्पर लग्नसंबंध होताना दिसतात. एकाच आडनाव असेल तर परस्पर लग्नसंबंध जुळत नाहीत. या जमातीमध्ये बालविवाहाची पद्धत रूढ होती. गर्भातही विवाह ठरविला जातो. तसेच या जमातीमध्ये हुंडा पद्धत नाही. परंतु बहुपत्नीत्वाला परवानगी असते. या जमातीमध्ये गावातला न्हावी किंवा जमातीतील वृद्ध व्यक्ती लग्नविधी करतात. यांच्या लग्नामध्ये 'कंकण बांधणे' हा महत्वाचा विधी असतो. लग्नामध्ये या जमातीतील स्त्रिया तेलगू भाषेत गाणी म्हणतात. लग्नसोहळ्यात मद्यपानही केले जाते. लग्न सोहळ्याचा खर्च वराचे वडील करतात. त्यांच्या जमातीमध्ये पुनर्विवाहाला मान्यता असलेली दिसते. पुनर्विवाहाला 'पाट लावणे' किंवा 'मोतूर लावणे' असे म्हणतात. पुनर्विवाहाला मान्यता असली तरीही पुनर्विवाह करणाऱ्या स्त्रीला मानाचे स्थान दिले जात नाही. वैदू समाज मागासलेला आणि अशिक्षित असल्याने त्यांच्यामध्ये अंधश्रद्धेचे जास्त प्रमाण आढळते. दसरा आणि शिमगा हे सण मोठ्या उत्साहाने साजरे केले जातात. दसऱ्याला बकरीचा बळी दिला जातो. या जमातीमध्ये विटाळ-चांडाळ पाळला जातो. विटाळाच्या चारही दिवशी कुटुंबातील बायका व मुले डोक्यावरुन अंघोळ करतात. आषाढ महिन्यामध्ये जेजूरीला त्यांची चार दिवस जत्रा भरते. जत्रेमध्ये नवस करणे. केलेला नवस फेडणे, लग्न

जमवणे अशा स्वरूपाची कामे केली जातात. मढी येथे सर्व भटक्या जमातीची पंधरा दिवस यात्रा भरते. येथे सर्व भटक्या जमातीतील लोक जमतात आणि न्याय-निवाड्याचे काम करतात.

वैदू जमातीमध्ये मेलेल्या लोकांचे प्रेत पुरतात किंवा जळतात. मृत व्यक्ती विवाहित असल्यास मोठा खड्डा खाणून त्याचे प्रेत बसलेल्या स्थितीत पुरतात. प्रेत दहन केल्यानंतर त्याची राख नदी किंवा नाल्यात विसर्जित केली जाते. कुटुंबातील मृत व्यक्तीचे नाव घरातील लहान बाळाला दिले जाते. या जमातीतील लोक देवावर विश्वास ठेवतात. तसेच रोज त्यांच्या घरी रोज देवाची पुजा केली जाते. देव्हाऱ्यात पितळेचे व चांदीचे टाक पूजले जातात. भवानी, महादेव, मरिअम्मा, या देवतांची उपासना केली जाते. अलिकडच्या काळात या जमातीचा पारंपरिक व्यवसाय आता बदलत चाललेला दिसतो. ही जमात आता एका ठिकाणी स्थिर झालेली आहे. सामाजिक परिवर्तनाचा परिणाम या जमातीवर झालेला दिसतो.

बंजारा :-

'बंजारा' समाज हा दुर्बल जाती जमातीतील एक घटक आहे. ही जमात मुळची आदिवासी आहे. गावाबाहेर राहणारी आणि आधुनिक जगाशी संपर्क नसलेली ही जमात आहे. वनजारा, वणजारी, वंजारी, बंजारी अशी अनेक नावे या जमातीला असलेली दिसतात. या जातीचा प्रमुख व्यवसाय म्हणजे बैलाच्या पाठीवरून मीठ वाहून नेणे . यावरूनच या जातीला लमाणी असे नाव पडले. बंजारा लोक हे मूळचे राजस्थान चे राजपूतांचे वंशज आहेत. पेशवाई काळामध्ये युद्धाच्या वेळी सैन्यांसाठी लागणाऱ्या धान्य, दारूगोळा, शस्त्रे इत्यादीं गोष्टी पुरवण्याची जबाबदारी या समाजाकडे होती. त्याला 'रसद' असे म्हणले जाते. बंजारा समाजामध्ये मथुरिया, चारण, लमाण आणि घाडी या चार प्रमुख जाती आहेत. बंजारा समाजामध्ये हिंदू, शीख, जैन, मुसलमान या धर्माचे लोक आहेत. हिंदू धर्मासारखे या जमातीमध्ये चातुवर्ण्य व्यवस्था आहे. ब्राम्हण लोकांना मथुरिया, क्षत्रियांना गोरबंजारा, वैश्य लोकांना लमाणी आणि भाटांना घाडी अशी नावे आहेत. महाराष्ट्रामध्ये विदर्भ, मराठवाडा, सोलापूर, जळगाव, धुळे, पालघर आणि ठाणे या भागात ही जमात आढळते. बंजारा लोकांची वेशभूषा, पोशाख रंगीबेरंगी व आकर्षक असतो. पुरुष लोक धोतर, चोळणा वर अंगरखा, डोक्यावर रंगीत किंवा सफेद पागोटे याचा वापर करतात. स्त्रिया घागरा, भिंगे, मणी किंवा शिंपले बसवलेले ओढणी कशिदा व कावड्या भिंगे बसवलेली चोळी वापरतात. त्यांच्याकडे भडक रंगाची कपडे घालण्याची पद्धत आहे. या जमातीतील स्त्रिया गोंदण कोरतात. स्त्रियांना दागिन्यांची फार हौस असून हातामध्ये हस्तिदंती किंवा पितळेच्या बांगड्या घालतात. दंडात आणि हातामध्ये वाळे घालतात. पायात जोडवी घालतात. डोक्यावर शिंग किंवा काठी खोवून त्यावरून ओढणी घेतात त्याला 'घुंगटो' असे म्हणतात. 'गोरबोली' ही या समाजाची भाषा आहे. राजस्थानी, हिंदी, सिंधी आणि गुजराती अशा भाषांची सरमिसळ केली गेलेली आहे. बंजारा लोकांच्या घराला 'कुडी' किंवा 'छावणी' असे संबोधले जाते. बंजाऱ्या लोकांची वस्ती ही तात्पुरत्या स्वरूपाची असते तिला 'तांडा' असे म्हणतात. 'नायक' हा या तांड्याचा प्रमुख असतो. तांड्यातील लोकांचे वाद मिटवणे, योग्य मार्गदर्शन करणे हे त्याचे मुख्य काम आहे.

बंजारा जमातीतील प्रत्येक पोटजातीत भिन्न विवाह पद्धती असलेली दिसते. या जमातीत लग्न ठरविताना 'गोळ खायर' हा विधी केला जातो. लग्न निश्चित झाल्यावर एकमेकांना गूळ खायला दिला जातो. लग्न ठरविताना परंपरेनुसार मुलीच्या वडिलांना देज द्यावा लागतो. साठ रुपये ते दोनशे रुपये पर्यंत हा देज द्यावा लागतो. देज देणे शक्य नसल्यास मुलाला भावी सासऱ्यांच्या घरी घरकाम करावे लागते. पूर्वीच्याकाळी हा विवाहसोहळा पंधरा दिवसापर्यंत चालायचा. परंतु बदलत्या कालखंडांनुसार त्यामध्ये बदल होत गेले. आता हा लग्न विधीचा कार्यक्रम पाच दिवस चालतो. लग्नामध्ये सुहासिनी बायका वधू-वरांना ओवाळतात. त्यांच्या बोलीभाषेतील गाणी गायली जातात. प्रत्येकजण रूढीप्रमाणे चांदीचा रुपया भेट देतात. लग्न सोहळ्यामध्ये मटण आणि दारूचे सेवन केले जाते. भात, भाकरी, मटण, मासे हे त्यांचे प्रमुख अन्न आहे. अन्न शिजवण्यासाठी ती मातीच्या भांड्यांचा वापर करतात.

बंजारादेवी, राम. मारुती, श्रीकृष्ण अशा देवतांची ते पुजा करतात. चारण बंजारा ही गुरुनानकाची भक्ती करताना दिसतात. काही बंजारा लोक मुस्लिम वंशाचे असले तरीही सरस्वतीची पुजा करताना दिसतात. हिंदू धर्माप्रमाणे काही बंजारा लोक सण साजरे करताना दिसतात. होळी हा सण मोठ्या प्रमाणात साजरा केला जातो. होली खेळणाऱ्या मुलाला 'गेरीया' आणि मुलीला 'गेरणी' असे म्हणतात. दिवाळी या सणालाही या समाजात अनन्यसाधारण महत्व आहे. दिवाळी श्राद्ध केले जाते आणि त्या दिवशी बोकडाचा बळी दिला जातो. दिवाळी हा सण दोन दिवस साजरा केला जातो. दिवाळी दारू आणि मटण यांचे मोठ्या प्रमाणावर सेवन केले जाते. दिवाळी दिवशी बकऱ्याला नरकासुर राक्षस समजून त्याचा बळी दिला जातो. दिवाळी च्या दुसऱ्या दिवशी 'गोदन पुजा' केली जाते. तूप, गूळ आणि गव्हाचे पीठ घालून एक पदार्थ बनविला जातो. तांड्यातील तरुणी नायकाच्या घरी एकत्र जमून ही पुजा करतात. त्याप्रसंगी गाणी गातात.

केवढ्या मेवढ्या
बांडया बच्चा
लंबी हार, धोली हार, पिली हार
घोडेरी कटार, लावा लष्कर
धनधन देस, दवाली मावली
नायकेरी टांग रुची बेजायेस
टोकणीस मातेर डाकडास कानेर
आन, धन, दूध, तूप
लावा लष्कर घण घण देस
दवाळी मावली
नायकेरी टांग रुची बेजायेस

नायकाची गुरं, ढोर, धन, धान्य, दूध, तूप त्यांच्याकडे भरपूर वाढो असा आशीर्वाद मागतात.

या समाजातील व्यक्ती मेल्यानंतर विधी केले जातात. व्यक्ती विवाहित असल्यास तिला जाळले जाते. आणि अविवाहित किंवा लहान असल्यास त्या व्यक्तिला पुरले जाते. मृत व्यक्तिला नवीन कपडे परिधान करून त्याच्या तोंडात तूप व गूळ घालतात. प्रेतावर पैसेही टाकले जातात. बंजारा व्यक्तीचे निधन झाल्यास त्या समाजातील स्त्रिया रडताना विलाप गातात. त्या व्यक्तीच्या आठवणीत गाणी गायली जातात. या समाजातील लोक नृत्यप्रेमी आणि संगीतप्रेमी असलेली दिसतात. आजच्या काळात शिक्षणाचा प्रसार वाढत चाललेला आहे आणि त्याचा परिणाम या जमातीवर झालेला दिसतो. बंजारा लोक शैक्षणिक तसेच राजकीय क्षेत्रात उत्तम कामगिरी करताना दिसत आहेत.

अशाप्रकारे या भटक्या-विमुक्त समाजामध्ये शैक्षणिक जनजागृती करणे आवश्यक आहे, तरच हा समाज स्थिर आयुष्य जगू शकेल. या समाजामध्ये आजही रूढी, परंपरा, जातपंचायत, विवाहपद्धत, व्यवसाय, संस्कृती, अंत्यविधी त्यांचे आचार-विचार प्रचलित आणि वैशिष्टपूर्ण आहेत.

संदर्भ ग्रंथ :

१. ढेरे रा. चि, 'लोकसंस्कृतीचे उपासक' पद्मगंधा प्रकाशन पुणे, १२ मार्च, २००२
२. पाटील पंढरीनाथ, 'भटके भाईबंद', सुरेश एजन्सी, पुणे, १ डिसेंबर, १९९०

महाराष्ट्र के विमुक्त घुमंतू की पहचान

सूर्यकांत भगवान भिसे
वेलापूर जि . सोलापूर
9822023564

सारांश

भारत में घुमंतु जनजातियाँ मुख्य रूप से पितृसत्तात्मक हैं और एक एकेश्वरवादी प्रथा है। लेकिन अगर पहली पत्नी लंबे समय से बीमार है, उसके पास बांझपन है या कोई अन्य महत्वपूर्ण कारण है, तो उन्हें दूसरी पत्नी रखने की अनुमति है। घुमंतु मुसलमानों की एक से अधिक पत्नियाँ होती हैं; लेकिन लगभग सभी घुमंतु की एक ही पत्नी होती है l कुछ घुमंतु जनजातियों में विधवा विवाह, तलाक और अलग-अलग पारिवारिक प्रथाओं को भी अनुमति नहीं है। सभी घुमंतु समुदायमें जातपंचायत होती है l उसके कायदे कानून अलग अलग होते है l रितीरिवाज अलग अलग होते l सभी घुमंतु समुदाय में अंधश्रद्धा होती है और यही उनके विकास की जड है l

बीज शब्द- महाराष्ट्र, घुमंतू, समुदाय, इतिहास।

प्रस्तावना

महाराष्ट्र में घुमंतू समुदाय का गौरवशाली इतिहास रहा है। वही लोग जो हिंदवी स्वराज्य के संस्थापक छत्रपति शिवाजी महाराज के समय में जासूसी का काम करते थे l आज महाराष्ट्र में ये लोग घुमंतू समाज के रूप में जाने जाते हैं। छत्रपति शिवाजी महाराज के शासनकाल के दौरान, कई सरदारों को पुरस्कार के रूप में गाँव, परगना और ज़मीन दी गई थी। लेकिन घुमंतू समाज जिसने अपनी जान जोखिम में डालकर स्वराज्य के लिए जासूसी की, स्वराज्य बनाया, यह समाज आज भी उपेक्षित बना हुआ है। यदि हम इस समाज की उत्पत्ति को देखें, तो यह बहुत पुराना इतिहास है l भारतीय संस्कृति और परंपराओं का संरक्षण इन्होनेही किया है।

महाराष्ट्र में घुमंतू समुदाय के अंतिम नाम भोसले, मोरे, जाधव, भिसे, गायकवाड़, चव्हाण, सालुंके, काले, शिंदे, माने, मोहिते, कदम, सरोदे , नाईक ऐसे हैं। ये सभी उपनाम मराठा समुदाय में भी हैं। इसलिए, महाराष्ट्र के इतिहास में कई सबूत ऐसे हैं कि घुमंतु समुदाय मराठा समुदाय से जुडा हुआ है।

महाराष्ट्र पर उस समय आदिलशाही और निज़ामशाही का शासन था। इतिहास यह है कि छत्रपति शिवाजी महाराज ने गुरिल्ला युद्ध के माध्यम से इन दो राज्यों के खिलाफ लड़ाई लड़ी और स्वराज्य का निर्माण किया। इस अवधि के दौरान, घुमंतू समुदाय के कुछ लोगों ने जैसे की , गोंधली, कुडमुडा जोशी, वासुदेव, डवरी, गोसावी इन्होने विभिन्न पहरे में जासूसी की। उन्होने शत्रु की जानकारी इकठ्ठा करके उसे महाराजा तक पहुँचाया l महाराजा ने शत्रु पर हमला किया और उन राज्यों पर छापामार युद्ध के द्वारा कब्जा कर लिया। यह महाराष्ट्र के विमुक्त घुमंतु का इतिहास है।

छत्रपति शिवाजी महाराज के बाद, देश ब्रिटिश शासन के अधीन आ गया और घुमंतू समुदाय, जो स्वराज्य के लिए एक जासूस के रूप में काम कर रहा था, एक जीविका के लिए वह भटक गया।

इस समाज की जाति निर्वाह के लिए इस समाज द्वारा चुने गए व्यवसाय उनकी जात बन गयी। घुमंतु शब्द ग्रीक शब्द 'नोमी' या 'नेमो' से लिया गया है।

इनका कोई स्थायी घर या खेत नहीं, कोई प्रतिष्ठित व्यवसाय नहीं। लेकिन घोड़े, बैलों, गायों के पीठपर अपने संसार का बोझ लादकर रोजी-रोटी के लिए भटकते रहे। घुमंतु शब्द इन लोगों को संदर्भित करने के लिए इस्तेमाल किया गया। इस शब्द या अवधारण का उपयोग न केवल जंगल में घूमने वाले लोगों के लिए किया गया , बल्कि उन लोगों के लिए भी किया गया जो स्थायी रूप से एक स्थान पर नहीं रहते थे। ऐसे लोग उन जगहों की तलाश में लगातार पलायन करते रहे l जहाँ वे खच्चरों,

गधों, टट्टुओं, घोड़ों, ऊँटों आदि पर अपनी संपत्ति लादकर अपनी मर्जी से या स्थिति के उत्पीड़न के कारण अपना अच्छा जीवन यापन कर सकते थे।

मनोरंजन, जिम्नास्टिक, जादू, अटकल, खुदरा, शिल्प, चिकित्सा , व्यापार , शिकार आदी व्यवसाय ये लोग करते रहे। घुमंतु के विभिन्न विकासवादी चरणों को ध्यान में रखते हुए, यह पाया गया है कि ' एक समय का भोजन चाहने वाले घुमंतु ' मानव का सबसे पहला चरण रहा है। वे प्राकृतिक संसाधनों जैसे की कंद, फल और मछली पर भरोसा करते थे 1

पाषाण युग में मानव पत्थर के औजार बनाने, आत्म-रक्षा और प्रतिकार के लिए उपयोग करने में सक्षम थे, और धातु और लकड़ी की लोच की खोज के बाद, वे कुछ बनाने में सक्षम थे l जैसे धनुष और तीर। इन हथियारों की मदद से वे शिकार करने में सक्षम थे। वे अपने आहार में शिकार किए गए जानवरों का मांस शामिल करते थे। उनको 'शिकारी भटके' के नाम से जानने लगे।

धीरे-धीरे उन्हें गायों और भैंसों के दूध के उपयोग, भेड़ और बकरियों से ऊन, घोड़े, ऊंट आदि का पता चला और दूरदराज के इलाकों की यात्रा शुरु की। उन्होंने अपनी सेवा में जानवरों को शामिल करना शुरू कर दिया। उन्हें पशुपालन से लाभ होने लगा। घुमंतू चरवाहों को 'चरण भटके' के नाम से जाना जाने लगा। जानवरों के झुंड के साथ 'चरण भटके' धरती पर उपजाऊ चरागाहों की तलाश में भटक रहे थे। उनके पास के जानवर पशुधन में तब्दील हो गए थे। जानवरों को खरीदा और बेचा जाना शुरू हुआ। जानवरों को खरीदने और बेचने वाले घुमंतु को 'व्यापारी घुमंतु ' कहा जाने लगा।

खेत की खोज के बाद, उन्होंने खेती के लिए बैल और नरकट जैसे जानवरों का इस्तेमाल किया। कृषि ने उनके जीवन में कुछ स्थिरता लाई। उन्होंने ऊन, हड्डियां, खाल और पशुओं और भेड़ बकरी के दूध से भी जीवनयापन किया। ऐसे घुमंतु को 'उत्पादक या पशुपालक घुमंतु ' कहा जाने लगा।

लोगों को अपने व्यवसाय के माध्यम से सेवाएं प्रदान करने और उनका मनोरंजन करने वाले घुमंतु को " सेवा या मनोरंजन करनेवाले घुमंतु " के नाम से जाना जाने लगा l उत्पादक, श्रमिक, सेवा और मनोरंजन करनेवाले, व्यापारी, चरण और शिकारी ऐसे छह वर्गो मे वर्गीकृत किया जा सकता है।

उत्पादक घुमंतु भेड बकरीयों और पशु उत्पादों (ऊन, हड्डियों और खाल) से अपना जीवन यापन करते रहे , साथ ही भेड बकरीयों की बिक्री या विनिमय से भी उनका भटकना पशु की जरूरतों से संबंधित है। वे पशुओंको चराने के लिए जरूरी चारागाहों की तलाश में भटकते रहे। जब एक चरागाह में घास खत्म हो जाती है, तो वे दूसरे चरागाह में चले जाते थे। भेड बकरीयां और पशुओं के झुंड से पूरक आय शिकार, मछली पकड़ने, औषधीय पौधों और कंद की कटाई से होती थी।

घुमक्कड़ अनाज, नमक और अन्य वस्तुओं को उन स्थानों से खरीदते थे , जहाँ वे सस्ते होते थे और उन्हें एक छोटे लाभ पर बेचते थे l जहाँ वे दुर्लभ थे। रस्सियों, मैट बनाने और बेचने, दवाइयां बेचने, लोहा के वस्तुए बनाने, भाड़े पर देने के साथ-साथ; धारदार चाकू, कैंची आदि वे भी काम करते थे। इस तरह के घुमंतु भारत में बंजारा, लमन , गादुला, घिसाड़ी-लोहार, शिकलगर के नाम से जाने जाते थे।

महाराष्ट्र , तेलंगाना, आंध्रप्रदेश , कर्नाटक , मध्यप्रदेश के बुडुबुडिकी, गोंधली और जोशी घर-घर में धार्मिक कार्यक्रम करते रहे l कालबेलियां , मदारी साँप का खेल करते थे l नट याने की डोंबारी समाज के लोग कसरत के खेल करते रहे l नंदीवाला समाज बैलोंसे खेल करते रहे l अतीत में, ऐसे लोगों को बदले में खाद्यान्न, पुराने कपड़े आदि मिलते थे।

महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, तमिलनाडु और अन्य राज्यों में घुमंतु समुदाय दिखाई जाता हैं।

विमुक्त घुमंतु समाज को 1) भिक्षुकी , 2) कलाकार या मनोरंजन करनेवाले 3) व्यापारी , 4) श्रमिक 5) उत्पादक या पशुपालक और 6) शिकारी ऐसे छह प्रकारो में वर्गीकृत किया जा सकता है l

1) अन्नशोधक या भिक्षुकी घुमंतु समुदाय में गोसावी, भराडी, भूते (भोपे), मसनजोगी, वासुदेव, मरेइवाले, कुडमुडे जोशी , हेलवे और गोल्ल शामिल हैं।

2) कलाकार या मनोरंजन करनेवाले घुमंतु समुदाय में गोंधली, चित्रकथी, मदारी , नट (डोंबारी) , कोल्हाटी, बहुरुपीया, नंदीवाले, कटाबू, मैराल और दरवेशी शामिल हैं।

3) व्यापारि घुमंतु समुदाय में बंजारा (लमन), घीसाडी , काशिकापडी, शिक्कलगर, भोई, थेलारी, ओटारी, भारतीय ईरानी, जोशी, लोहार और गाड़ी लोहार शामिल हैं।

4) श्रमिक घुमंतु समुदायमें बेरड, बेस्तर, कैकाडी, कंजरभाट, वडार, तकारी (पत्थरवट), रामोशी, राजपूत भामाटा, छप्परबंद, बेलदार, रावल और वंजारी शामिल हैं।

5) उत्पादक या पशुपालक घुमंतु समुदायमें गोपाल, गवली, मुस्लीम गवली , धनगर , धनगड समाज के लोग शामील हैं।

6) शिकार करने वाले घुमंतु समुदाय में पारधी, राजपारधी, गाय पारधी , हरण शिकारी , फासे पारधी और वाघरी समाज के लोग शामिल हैं।

भारत में घुमंतु जनजातियाँ मुख्य रूप से पितृसत्तात्मक हैं और एक एकेश्वरवादी प्रथा है। लेकिन अगर पहली पत्नी लंबे समय से बीमार है, उसके पास बांझपन है या कोई अन्य महत्वपूर्ण कारण है, तो उन्हें दूसरी पत्नी रखने की अनुमति है। घुमंतु मुसलमानों की एक से अधिक पत्नियाँ होती हैं; लेकिन लगभग सभी घुमंतु की एक ही पत्नी होती है l कुछ घुमंतु जनजातियों में विधवा विवाह, तलाक और अलग-अलग पारिवारिक प्रथाओं को भी अनुमति नहीं है। सभी घुमंतु समुदायमें जातपंचायत होती है l उसके कायदे कानून अलग अलग होते है l रितीरिवाज अलग अलग होते l सभी घुमंतु समुदाय में अंधश्रद्धा होती है और यही उनके विकास की जड है l

घुमंतू जातियां अपने व्यवसाय के कारण ही ग्रामीणों के संपर्क में आई। यह संपर्क स्थायी नहीं था। इसलिए, घुमंतु जनजातियों का गाँव के आर्थिक मामलों में बहुत महत्वपूर्ण स्थान नहीं रहा है।

आधुनिकीकरण के कारण गाँव की पारंपरिक अर्थव्यवस्था ढहने लगी । वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य मुख्य रूप से धन के रूप में निर्धारित किया जाने लगा। जिस तरह आधुनिकीकरण ने गाँव को प्रभावित किया l उसका असर घुमंतु जनजातियों पर पड गया । आधुनिकीकरण के कारण अपने कार्य में कुशल रह कर रोजी रोटी कमानेवाले घुमंतु अकुशल हो गये l नतीजा ए हुआ की घुमंतु समुदाय बेरोजगार हो गया l औद्योगीकरण के लिए वनों की कटाई हो गई । घास के मैदानों को नष्ट किया गया । वनों की कटाईसे घने जंगल बंजर हो गए। इसका घुमंतु समुदाय के व्यवसाय पर एक बड़ा प्रभाव पड गया । पशुओं को चराने के लिए जरूरी चारागाह अपर्याप्त हो गए। नतीजन, भेड बकरीयों के झुंडों को रखना मुश्किल हो गया और इसलिए भेड बकरीयों से प्राप्त उत्पादन ठंडे पड गये । जंगल में खेती के तहत भूमि पर प्रतिबंध थे l इसलिए घुमंतुओं के लिए जमीन पर खेती करना भी मुश्किल हो गया। नतीजा ए हुआ घुमंतू लोग अनप्रोफेशनल हो गए और भाड़े या बेकार उद्योगों में लगे रहे l जबकि कुछ भीख मांगने लगे।

आधुनिकीकरण ने अभी तक घुमंतु के व्यवहार को प्रभावित नहीं किया है। उनकी तटस्थता उनके पिछड़ेपन को दिखाती है। इसलिए, उनके सामने आने वाली समस्याओं और उनके समाधान पर विचार करना महत्वपूर्ण है। भारत हजारों गाँवों का देश है। इस देश की संस्कृति और परंपराएँ निश्चित रूप से अन्य देशों से भिन्न हैं। क्योंकि इस देशकी मिट्टीकी खुशबू ग्रामीण मिट्टी की है। "अनेकता में एकता" यह हमारे देश की पहचान है। गाँव का विकास गाँव में रहने वाले लोगों द्वारा लोक जीवन, लोक संस्कृति, उनकी आजीविका के साधनों, गाँव के साथ उनके संबंधों, गाँव की अर्थव्यवस्था, कृषि विकास, जल आपूर्ति आदि से हुआ है। इस विकास में विमुक्त घुमंतू का योगदान अमूल्य रहा है।

कबूतरा आदिवासी जाति की यथार्थ दासता : अल्मा कबूतरी (उपन्यास)

श्री नीलेश जाधव
संत गाडगे महाराज महाविद्यालय, कापशी

सारांश-

प्रस्तुत उपन्यास मैत्रयी पुष्पा द्वारा लिखित है। जिसमें झाँशी के आस-पास बुंदेलखंड पहाड़ियों में निवास करती भटकती कबूतरा नामक आदिवासी जनजाति के यातनाओं को मुखरित किया है। साथ ही उनकी जीवन पद्धति, संस्कृति एवं रोज़मर्रा की जीवनगत गतिविधियों का भी सटीकता से वर्णन किया है। दर्दर भटकती इस जनजाति की जीविकोपार्जन का एकमात्र साधन चोरी करना है। इस उपन्यास में दो समाजों का चित्रण हुआ हैं। एक कबूतरा आदिवासी समाज है तो दूसरा सभ्य समाज है, कबूतरा समाज पर सभ्य समाज हमेशा अपना अधिपत्य बानए खान छटा है। सभ्य और शिक्षित समाज का यह अमानवीय रूप को कबूतरा जनजाति को अपने शिकंजे में दबाए खान चाहता है, इसका हूबहू चित्र अंकित किया है।

बीज शब्द- समुदाय, संस्कृति, आदिवासी।

प्रस्तावना

भारत वर्ष में अनेक जातियों के समुदाय एकत्रित निवास करते हैं। अनेकता में एकता का नारा भी लगाया जाता है। भारत की सामाजिक संस्कृति में हरएक समुदाय अपने समाज का अस्तित्व बनाए रखने में प्रयत्नशील दिखाई देता है। वैसे तो प्रत्येक जाति-समुदाय का अपना एक अलग महत्त्व होता है। वैसा ही भारत की सामाजिक एवं संस्कृतिक धरोहर में आदिवासी समाज भी अपन महत्त्व और अस्तित्व रखता है। आदिवासी शब्द से सामान्यत: हम यह तात्पर्य लगा सकते है कि - जंगल के मूल निवासी। ये जातियाँ जंगलो में रहती हैं और इनकी सभ्यता का इतिहास लगभग पाँच हजार वर्ष पुराना है। जिसे आदिवासी जन समुदाय संभाले हुए है। इन क्षेत्रों पर इनकी स्वतंत्र सत्ता हुआ करती थी। भारत में जैसे-जैसे साम्राज्यवादी शक्तियाँ अपने राज्य की सीमा बढ़ाने हेतु प्रयास रत रही। वैसे-वैसे इन आदिवासी समुदायों के संशाधनों पर आक्रमण तथा अतिक्रमण कर इनका शोषण होना शुरू हो गया।

प्रथमत: आदिवासी शब्द को जान लेते हैं- 'आदिवासी' शब्द 'आदि' तथा 'वासी' इन दो शब्दों के योगा से बना है – जिसमें 'आदि' का अर्थ-आरंभ और 'वासी' का अर्थ- वास करने वाला। अर्थात 'आदिवासी' – आरंभ से जंगल में वास या निवास करने वाली प्राचीन प्रजाति है। इन्हें गिरिजन, वनवासी, भूमिपुत्र, वन्यजाति, जंगली, वनपुत्र आदिम नामों से भी संबोधित किया जाता है। आदिवासियों को परिभाषित करते हुए जेक्ब्स तथ स्टर्न लिखते है- "एक ऐसा ग्रामीण समुदाय या ग्रामीण समुदयों का ऐसा समूह जिसकी समान भूमि हो, समान भाषा हो, समान संस्कृतिक विरासत ही और जिस समुदाय के व्यक्तियों का आर्थिक दृष्टि से एक दूसरे साथ ओत प्रोत हो, जनजाति कहलाता है।"[1]

आदिवासी के विषय में रमणिका गुप्ता लिखती है, कि "आदियासी आर्यों से पूर्व का मनुष्य समूह है। वह इस भूमि का मूल मालिक है। सही अर्थ में वह ही क्षेत्राधिपति है।"[2]

आधुनिक हिंदी साहित्य में प्रत्येक समाज का चित्रण प्रतिबिंबित हुआ है। इक्कीसवी सदी के साहित्य में कई नयी विचारधाराओं का प्रस्फुटन हुया है। जिसमें स्त्री, दलित, किन्नर, किसान और आदिवासी आदि विमर्शों की उत्पत्ति का एका मात्र लक्ष्य यही था कि, समाज में स्थित हशिए पर चढ़े समाज को दृष्टिक्षेप में लाकर इन विमर्शों द्वारा मानव जाति का उन्नयन करना। मैत्रेयी पुष्पा द्वारा लिखित 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास सन 2000 में प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास में कथाकार ने एक नए विषय को समाजोंन्मुख रखा है। जिससे समाज के बहुतांश लोग अनभिज्ञ हैं। लेकिन मानव जीवन की वास्तविक अनुभूति याने यथार्थवादी चित्रण जिसमें मानव जीवन में संघर्षित घटनाओं तथा भुगतें भावनाओं का अनुभव होता है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने नयन चक्षुओं द्वारा समाज में घटित सभी प्रकारों के क्रियाकलाप तथा अनुभावों को ज्यों का त्यों यथार्थ रूप में चित्रित किया है।

कथाकार ने समाज में घटित वास्तविक अवस्था को चित्रित करने में सफल हुई हैं। वैसे तो साहित्य लेखन और जीवन का यथार्थ रूप चित्रित करना याने एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। साहित्य में मन का भावनाजन्य रूप सामने रखा जाता है तो यथार्थ याने बुद्धिगत परिकल्पना। जीवन के मूल को समझने हेतु युगीन यथार्थ के स्त्रोतों से एकात्म संबंध प्रस्थापित करना पड़ता है। इनसे उलझना-जूझना पड़ता है। इसके बाहरी रूप को जानकार कोई फायदा नहीं है। यथार्थ समाज से जुड़ा होता है। इन दोनों का नाता एक दूसरे अटूट है और एक के बीना दूसरे का अस्तित्व ही नहीं बनता या होता। इसके बारे में विचारवंत डॉ. त्रिभुवन के अपनी किताब में लेखा है कि, "सामाजिक यथार्थवाद का अर्थ होता है समाज की वास्तविक अवस्थाओं का यथार्थ चित्रण परंतु साहित्य के अंदर किसी भी वस्तु का चित्र उतार कर देना कठिन होता है क्योंकि साहित्यिक चित्र केमेरा द्वारा लिया गया चित्र नहीं होता है, बल्कि वह साहित्यकार के अनुभव एवं कल्पना के सुंदर रंग ढले होते है।"[3] प्रस्तुत उपन्यास के कबूतरा आदिवासी जनजातियों को उस वक्त के ब्रिटीश शासन द्वारा 'जन्मजात अपराधी' घोषित की गई इन सभी जनजातियों का यह दहकता दस्तावेज़ बयान करने मैत्रेयी पुष्पा सफल हुई है। प्रेमचंद द्वारा अपने कथा साहित्य में उपेक्षित या पिछड़े वर्ग को स्थान दिया है। लेकिन उन चरित्रों में और आदिवासियों में बहुत मातरा में अंतर है। मैत्रेयी पुष्पा द्वारा इस कथ्य का चयन करते हुए उनके दिमाग यह आया होगा कि यह विषय आज भी अछूता रह गया है या किसी साहित्यकार का ध्यान आकर्षित करने में ना कामयाब रहा हो। इस में कथाकार ने अल्मा कबूतरी में नायिका को प्रधान स्थान दिया है।

अल्मा कबूतरी उपन्यास नायिका प्रधान उपन्यास है। मैत्रेयी ने इसमें आदिवासी महिलाओं की समस्याओं को केंद्र में रखा है तथा स्त्री शोषण एवं संघर्ष को मुखरता प्रदान की है। इसके साथ–साथ उंच-नीच की समस्या, अनैतिक संबंध, अंधविश्वास, निर्धनता, बेरोगारी और अशिक्षा आदि समस्याओं को चित्रित किया है। कबूतरा जनजाति के प्रधान पात्र है- कदमबाई, अल्मा भूरी, राणा रामसिंह आदि तथा सभ्य समाज के पात्र है- मंसारम जोधा, कहेर धीरज, सुरजाभान, श्रीराम शास्त्री आदि। इस उपन्यास में कथाकार ने इयान सभ्य तथा आदिवासी समाजों का आपसी टकराव कदमबाई और मंसाराम इन पात्रों द्वारा चित्रित किया है। इस टकराव में हमेंशा कबूतरा जाति की हार होती है। कदमबाई एक नीडर औरत के रूप में चित्रित की है जो अपने पति की मृत्यु के बाद मंसाराम द्वारा किए गए आत्याचार का विरोध एवं प्रतिशोध लेने के लिए समाज से लड़ती-जूझती है। इस संघर्ष में बेटा राणा इनका शस्त्र है। लेकिन सभ्य समाज के लोगों जैसे ही सभी लक्षण उसके व्यक्तित्व में विराजमान हैं- वह चोरी करना, लूट करना या शराब पीना आदि बातों का साफ-साफ इन्कार केआर देता है। उसमें अपनी जाति के गुण देखकर कदमबाई अति निराश और दु:खी होती है। कदमबाई इसी सभ्य समाज के अशुद्ध वासना का वह शिकार हुई है और पुलिस द्वारा किए जानेवाले आत्याचार तथा प्रशासन द्वारा किए शोषण आदि के कार्न घृणा और प्रतिशोध की भावना इसके सीने में भड़क उठटी है। इनका समाज में अस्तित्व कैसा है इन चंद संवादों द्वारा समझा जा सकता है-

"हम लोग न खेतों के मालिक न मजदूर सो गोह खाते-खाते होठ चिपचिपा गए हैं। देखें तो धरती मैया कैसी-कैसी चीजें देती हैं ? जमीन में हमारा हिस्सा नहीं है।"[4]

भूरी उसके बेटे रामसिंह और उसकी बेटी अल्मा की भी कहानी है तथा उनके मानापमान, संघर्ष एवं पीड़ा की कहानी है। प्रस्तुत पात्रों के द्वारा कज्जा याने मैत्रेयी इसे सभ्य समाज लिखती है। यह शोषक वर्ग के रूप में चित्रित किया है। बाकी पात्र इसने संघर्ष करते हुए अपना एसबी कुछ दाँव पर लगा देते है। तथा इसमें वह लहूलुहान भी होते हैं। क्योंकि समस्त प्रशासन व्यवस्था ही इनके विरोध में खड़ी है। भूरी कज्जा समाज से टक्कर लेती है। वह अपने शरीर का सौदा कर के भी अपनी संतान को पढ़ा लिखाकर इस योग्य बनाना चाहती है, कि वह समाज में सन्मान भरी ज़िंदगी जी सके।

"पतिवीरता लुगाई अपने आदमी के संग सती होती है। अपने मर्द की ब्याहता खुद तो तब मानूँगी, जब रामसिंह को पढ़ा लिखाकर इसी कचहरी के दरवाजे खड़ा कर दूँगी। भले इस सफर में मुझे दस मर्दों के नीचे से गुजरना पड़े।"[5]

इतना सब कुछ होने के बावजूद भी रामसिंह शिक्षा प्राप्ति के बाद पुलिस का इसे उनका दलाल बनाकर उसी की मजबूरीयों का फाइदा उढ़ाती है। कदमबाई और मांसाराम शराब का ठेका लेता है, खुले आम कदमबाई के साथ रहता है। आल्मा आततायियों को साहस के साथ झेलती है, उसके साथ धोकाधड़ी होती है, दुर्जन उसे बेच देता है तथा सुरजभान उसे चुनाव के समय में नेताओं के आगे इनके सेजा पर सजा ने के लिए खरीदता है, अल्मा की देखभाल करनेवाला धीरज उसे उसकी चुंगुल से बचा लेता है। लेकिन श्रीराम शास्त्री के यहाँ अल्मा दुबारा फंस जाती है, श्रीराम शास्त्री की अकस्मित मृत्यु के कार्न उसकी जगह अल्मा को उमेदवारी दी जाती है। यहाँ इस उपन्यास की कथावस्तु समाप्त होती है।

वस्तुत: अल्मा कबूतरी नायिका अल्मा नहीं भूरी-कदमबाई तथा अल्मा का एकत्रित रूप है। जिसमें अन्य स्त्री पात्र सिमट जातें हैं। इसी कारण एक और एक ही स्त्री मूर्ति प्रतिष्ठित होती है और वह 'अल्मा' है। यह नाम एक प्रतीकात्मक रूप है- अल्मा याने 'एक आत्मा' है। इस उपन्यास के कबूतरा आदिवासी समाज का चित्र अत्यंत विदारक एवं दर्दनाक है, जंगला में निवास कर्ता, भटकता, यह समाज एसएसजे भी आफ्ना विकास एवं सुसंस्कृत से कौसों दूर हैं। जो हमेशा अनपढ़ जंगली तथा वनवासी समजा जाता रहा है। एक तरफ बाजारवाद भूमंडलीकरण तथा इंटरनेट, मीडिया के चलते विश्व का रूप लघुत्म बंता जा रहा रहा है। तो दूसरी तरफ सदियों से इन जंगली अबस्थाओं जीनेवाले इस समाज क्या आज भी विकास से अछूता रखना, क्या इनके जीवन में बदलाव या परिवर्तन को कभी देखा या सोचा भी जा सकता है। इस बदलाव की प्रक्रिया में अगर सभी जनजातियाँ सहयोग दे तो यह जाति भी शिक्षा पाकर अपने आप को बदलने में या बदलाव की मानसिकता में खुद को ढालने या अन्य समाज के साथ मजधार में अपना स्थान पाने की कोशिश करनी होगी तभी आगे जाकर जनसमुदाय का विकास या विकसीत रूप में देख पाना संभाव है।

संदर्भ :

1.डॉ. लक्ष्मणप्रसाद सिन्हा, 'भारतीय आदिवासियों की संस्कृतिक प्रकृति –पूजा और पर्व त्येहार, -पृष्ठ -88
2. रमणिका गुप्ता, आदिवासी कौन है?, पृष्ठ -27
3. प्रो. त्रिभुवन सिंह, हिंदी उपन्यास और यथार्थ, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी , 2018, पृष्ठ सं. 17
4. मैत्रेयी पुष्पा, अल्मा कबूतरी उपन्यास , राजकमल प्रकाशन, -2016 पृ.संख्या-28
5. वहीं – पृष्ठ सं. 74

भटक्या विमुक्त जाती-जमातीचे सामाजिक जीवन चित्रण
(निवडक साहित्यकृतींच्याआणिअनुषंगाने)

डॉ शर्मीला बाळासाहेब घाटगे
सहाय्यक प्राध्यापक
कला वाणिज्य आणि विज्ञान महाविद्यालय गडहिंग्लाज
मो. 95 52 53 36 40
ई-मेल -sharmilagmore@gmail.com

गोषवारा

भारतीय समाज बहुभाषी बहु समाज सामाजिक आणि बहु संस्कृती कसा आहे. या बहुभाषिक समाजामध्ये अनेक लहान-मोठे समाज समूह आहेत. या समाज समूहामध्ये समाज शिक्षणापासून वंचित असल्यामुळे जुन्या रूढी परंपरा यामध्ये अडकलेला आहे. पण 1960 नंतर शिक्षणाचा प्रचार आणि प्रसार मोठ्या प्रमाणात होऊ लागला. आणि त्याचा परिणाम या लहान-मोठ्या समाज समूहांवर ते झालेला दिसतो. त्यामुळे वंचित समाजातील लोक लिहायला वाचायला शिकली. आणि त्यामुळे स्वतःचा हक्क आणि अधिकार याची जाणीव त्यांना झाली. या शिक्षणामुळे त्यांच्यामध्ये एक समाजभान निर्माण आले व त्यांना नव्या जगाची ओळख झाली. हा समाज समूह म्हणजे भटक्या विमुक्त जाती जमाती होय. अजुनही काही प्रमाणामध्ये या जाती समूहातील लोक दरिद्री निराधार आणि कोणतेही मानवी हक्क नसलेली आहेत. मराठी साहित्यामध्येअनेक साहित्यिकांनी वेगवेगळ्या भटक्या जाती जमाती चे चित्रण आपल्या साहित्यामधून केलेले दिसते. काही निवडक साहित्यकृतींच्या आधारे भटक्या जाती जमाती वर दृष्टिक्षेप टाकण्याचा प्रयत्न केलेला आहे.

1960 च्या नंतर मराठी साहित्यात अनेक नवीन प्रवाह उदयास आले. परंतु या प्रवाहाच्या माध्यमातून किंवा चळवळीच्या माध्यमातून मराठी साहित्यात कधीही आले नव्हते ते भटक्या जाती विमुक्त जाती-जमातीचे चित्रण या या साहित्याच्या माध्यमातून वाचकांसमोर आलेले दिसते. 1960 ते 1987 या काळात मराठी साहित्य दलित, ग्रामीण, स्त्रीवादी ,आदिवासी भटक्या विमुक्तांचे साहित्य, जनसाहित्य असे अनेक नवीन साहित्य प्रवाह उदयाला आलेले दिसते. यापैकी भटक्या विमुक्तांचे साहित्य हे वेगळ्या धाटणीचे आणि स्वरूपाचे आहे. याच प्रवाहातील ज्यांनी भटक्या विमुक्तांच्या जीवनाचे चित्रण केले.ते शंकरराव खरात यांनी यांनी विपुल प्रकारचे साहित्य लेखन केले. त्यांच्या कथा साहित्याचा विचार करता सांगावा, आडगावचे पाणी, टिटवीचा फेरा, लिलाव, तडीपार आणि गाव शिव इत्यादी कथासंग्रह लिहिलेले आहेत. त्यांच्या या कथासंग्रहातून दलित ग्रामीण तसेच भटक्या-विमुक्तांच्या जीवनात ही वास्तव चित्रण केलेले आहे. शंकरराव खरात यांच्या कथासंग्रहात कथांच्या अनुषंगाने वैदू माकडवाले बेलदार कैकाडी डोंबारी फासेपारधी वडाळ, भामटे, कोल्हाटी, नंदीवाले, घिसाडी, चित्रकथी, कुडमुडे जोशी, गोसावी, वासुदेव आणि गोंधळी या सर्व विमुक्त व भटक्या जाती जमाती चे तपशीलवार चित्रण शंकरराव खरात यांनी केलेले आहे.

संशोधनाची उद्दिष्टे

1)भटक्या विमुक्तांच्या सद्यस्थितीतील जीवन संघर्षाचा वेध घेणे

2)दोन भटक्या जाती विमुक्तांच्या सामाजिक जीवन सामाजिक वास्तवाचे विश्लेषण करणे

3)भटक्या जाती विमुक्तांच्या सामाजिक सांस्कृतिक संघर्षाचे स्वरूप पाहणे अभ्यासणे

५)भटक्या जाती विमुक्तांच्या दैनंदिन जीवनातील रूढी-परंपरा जातपंचायत न्यायनिवाडा स्त्रियांचा दर्जा आणि स्थान यांचा शोध घेणे

६)भटक्या जाती विमुक्तांचे वर्तमानकालीन स्थितीचा स्वरूप अभ्यासणे

संशोधन पद्धती :प्रस्तुत विषयाचे संशोधन करण्यासाठी संशोधक वर्णनात्मक संशोधन पद्धती वापरली आहे.

व्याख्या

भटक्या विमुक्त जमाती

"नाव सांगायला स्वतःचे गाव नाही, राहायला घर नाही, जमिनी सारखे कायम स्वरूपाची उत्पन्नाचे साधन नाही, उपेक्षित जगणे नशिबी आल्यामुळे पोट भरण्यासाठी कामाच्या निमित्ताने सतत गावोगावी भटकत असलेला आणि भिक्षेवर जगणारा अथवा परंपरेने चालत आलेल्या कलेच्या आधाराने स्वतःची उपजीविका करणारा लोकसमूह अनेक वर्षांपासून महाराष्ट्रात वेगवेगळ्या जाती जमाती च्या नावाने जीवन जगताना आढळतो अशा या लोक समूहाला भटके" असे म्हणतात.१

भटक्यांची **रामनाथ चव्हाण** यांनी केलेली व्याख्या," व्यापाराच्या निमित्ताने गावोगावी भटकत असलेला आणि भिक्षा मागून किंवा काही पारंपरिक कलेच्या आधाराने स्वतःचे उपजीविका करणाऱ्या लोकसमूह अनेक वर्षांपासून महाराष्ट्रात वेगळ्या जाती जमातीच्या नावाने जीवन जगताना आढळतो अशा समूहाला भटके-विमुक्त म्हटले जाते.२ दोन

प्रा.मोतीराज राठोड यांची व्याख्या: भटका म्हणजे एका ठिकाणी न थांबणारा ही व्याख्या ढोबळमानाने केलेली दिसते. भटके जमाती 50 आसपास आहेत पण पोटजमातीची संख्या 200 वर आहे असं म्हटले जाते.

संपूर्ण महाराष्ट्रात भटका विमुक्त समाज वेगवेगळ्या ठिकाणी आढळून येतात. या जमाती हजारो वर्षापासून उपेक्षित आणि दुर्लक्षित राहिलेल्या होत्या. त्यांचं जीवन ही असुरक्षितच होतं समाजाच्या या मुख्य जीवन प्रवाहापासून या भटक्या जाती जमाती कोसो दूर होत्या. शिक्षणाचा आणि त्यांचा तसा काडीचाही संबंध नव्हता. त्यामुळे या समाजात अज्ञान, अंधश्रद्धा श्रद्धा, अगतिकता रूढी परंपरेचे वर्चस्व होते. आजही काही या जमाती भारतभर उदरनिर्वाहासाठी भटकत राहताना दिसत आहे. समाजाच्या पारंपारिक व्यवस्थेमध्ये त्यांना अजूनही फारसं स्थान मिळालेले नाही किंवा आधुनिक औद्योगिक आर्थिक व्यवस्थेमध्ये सुद्धा त्यांचा फारसा समावेश नाही. त्यामुळे या समाजाला आपल्या कुटुंबाचे उदरनिर्वाह करण्यासाठी अनेक गैर मार्गांचा वापर करावा लागत असलेल्या आपल्याला दिसून येते. उदाहरणार्थ. चोऱ्या करणे, समाजाचे मनोरंजन करणे ,त्यांच्या मनोरंजनासाठी प्राण्यांवर भेदणारी शारीरिक कसरत करून, त्यांना दया येईल, काही मदत मिळेल अशा अपेक्षेने आपल्या जीवावर बेतणारया या अनेक गोष्टी त्यांना कराव्या लागतात. अजूनही भटक्या विमुक्त जाती जमाती चा माणूस म्हणून कधीच विचार करण्यात आलेला नाही. वतन दाराला एक गाव, तर भिकाऱ्याला तीस गाव या स्थितीमध्ये हा समूह आजही पोटाच्या खळगीसाठी भटकंती करताना आपल्याला दिसून येतो. अज्ञान ,दारिद्रय, उपासमारी अंधश्रद्धा रूढी परंपरा प्रथम मोठ्या प्रमाणात असलेली व्यसनाधीनता, उदरनिर्वाहाच्या पारंपरिक साधनांचा ऱ्हास या चक्र व्यूह मध्ये हा समूह अजूनही खितपत पडलेला आहे. या भटक्या जाती विमुक्तांचे सांगायला गाव नाही तर राहायला घर नाही. जीवन चरितर्थासाठी कोणतेही साधन नाही. पोटाच्या खळगीसाठी भीक मागणे, शिकार करणे, विकणे लहान-मोठ्या चोऱ्या करणे, पोटासाठी रानोमाळ भटकणारा हा समाज आहे. विभावरी शिरूरकर यांच्या **बळी** या कादंबरीमध्ये मांगारूडी जमातीचे चित्र आलेले आहे. तर रणजित देसाई यांच्या **बारी** मध्ये बेरडी गुन्हेगारी जमातिचे चित्रण आलेले आहे. शंकरराव खरात यांच्या **पारधी** या कादंबरीमध्ये फासेपारधी या विमुक्त जाती जमातीचे चित्रण आले आहे . किशोर काळे यांच्या **कोल्हाट्याचे पोर** या आत्मचरित्रात कोल्हाटी समाजातील जात पंचायतीचे चित्रण आलेले आहे. **उपरा**कार लक्ष्मण माने यांनी कैकाडी समाजाचे चित्रण केले आहे. अन्न, वस्त्र, निवारा या माणसाच्या तीन मूलभूत आणि अत्यावश्यक गरजा आहेत माणूस म्हणून जगण्यासाठी या गोष्टी आवश्यक त्या गोष्टी आहेत. आणि त्या मिळवण्यासाठी सतत भटकंती करत करावी करावी लागते. नंदी कोल्हाटी समाजात जातपंचायत सोनारीच्या जत्रेत भरते. सोनारीच्या जत्रेतील जात पं पंचायतीच्या न्यायनिवाडे चे वर्णन करताना लेखक म्हणतो," सोनारी ची जत्रा पाच दिवस चालत असे. आम्ही सर्व पहिल्या दिवशी घरी आलो.कारण आजोबाला दुसऱ्या दिवशी जत्रेला जायचं होतं. जत्रेच्या दुसऱ्या

दिवशी भाऊ चे सर्व वयस्कर आणि तरुण कोल्हाटी सोनारीला येतात. कोणी गुन्हा केला असेल त्याला पंचाकडून शिक्षा देतात. प्रत्येक जण आपापली मतं मांडतात. कोणी खून केलेला असतों. कोणी गुन्हा केलेला असतो. कोणी चोरी केलेली असते त्यांच्यावर कोल्हाटी समाजात कोर्ट केस करता येत नाही. तर त्या गुन्हेगाराला कोल्हाटी समाजाच शिक्षा देत असतो. गुन्हेगाराला पैशाचा दंड भरावा लागतो. किंवा त्याला जातीच्या बाहेर काढणे म्हणजे त्याच्या बरोबर सोयरीक न करणे, लग्नात असो वा देवाच्या कार्यक्रमात असो वा देवाच्या कार्यक्रमात असो ,तो ग्रू शकत नसे . "जमा झालेल्या पैशान संध्याकाळी दारू मटण आणतात. खाऊन पिऊन मजा करतात अशा प्रकारची कोल्हाटाची ची जत्रा पुण्याजवळच्या जेजुरी ला देखील भरते तिथे देखील न्याय केला जातो"३ अशा प्रकारे कोल्हाटी समाजात जात पंचायतीचा जबरदस्त प्रभाव आहे. प्रत्येकांना या जास्त त्याची दिलेला निर्णय मान्य करावा लागतो. कारण जात पंथाचे नियम हे फार कठोर असतात. आणि हे मान्य करावे लागतात. विभावरी शिरुरकर, अण्णाभाऊ साठे, शंकरराव खरात, श्री म माटे, रणजित देसाई इत्यादी लेखक आणि भटक्या जाती जमाती चे वास्तव चित्रण आपल्या साहित्यामधून मांडण्याचा प्रयत्न केलेला आहे. दलित कादंबरी पेक्षा भटक्या-विमुक्तांची कादंबरी ही जीवन जगण्याच्या विविध जाणिवांच्या पातळीवर भिन्न ठरते. अशोक पवार यांची **इळण माळ** ही कादंबरी बेलदार जातीसमूह चे वास्तव चित्रण करताना दिसते. पण माळ म्हणजे भटकणारे लोक असतात या शब्दाचा अर्थ होतो. आयुष्यभर भटकंती दारिद्र्य अज्ञान उपासमारी इत्यादी गोष्टींमुळे आयुष्याची होणारी **परवड** या कादंबरीमध्ये चित्रित झालेली आहे. तसेच त्यांची पडझड ही भटक्या विमुक्त जाती जमाती चे अनेक कारणामुळे होणारी पडझड या कादंबरीमध्ये चित्रण केली आहे. त्यांची **दर कोस दर मुक्काम** या कादंबरीमध्ये शिकार करणे, विकणे व जंगल संवर्धनामुळे कित्येक भटक्या विमुक्तांचे जीवन उध्वस्त झाले आहे. याचे चित्रण वास्तवदर्शी आणि कमालीचे या कादंबरीमध्ये चित्रित झाली आहे. संतोष पवार यांची **मोहतराचा नवरा** या कादंबरीमध्ये पोटच्या मुलीचे पैशासाठी बोली स्वरूपामध्ये लिलाव करणार बाबा आणि चोऱ्या करून बोली लावणारे वर तसेच त्यांच्याबरोबर अल्प वयामध्ये येणारे मातृत्व एकूणच कुटुंबाची जबाबदारी आणि अनेक जणांसोबत लावून लावले जाणारे मोहतर इत्यादी गोष्टींचा उलगडा या कादंबरीमध्ये **संतोष पवार** यांनी व्यक्त केला आहे. १९७२-७३ चा दुष्काळातील अन्नपाण्याशिवाय मरण जवळ करणाऱ्या अनेक भटक्या कुटुंबाची व्यथा दादासाहेब मोरे यांनी या कादंबरीमध्ये मांडली आहे रावजी राठोड यांच्या **गोठण** या कादंबरीमध्ये तांडा व बंजारा संस्कृती राजकारण विकास प्रबोधन कौटुंबिक परवड. इत्यादी बाबींचा उलगडा या कादंबरीमध्ये केलेला आहे. वडार समूह मनाच्या वेदनामय भटकंतीचा प्रवास म्हणजेच **तिम्मा** ही प्रकाश जाधव यांची कादंबरी होय. किशोर काळे यांची **चिरा** म्हणजे मुलगी वयात आल्यानंतर बोलली स्वरूपामध्ये लिलाव करून जो जास्त बोली लावतो. त्या व्यक्तीला एका रात्रीसाठी तिच्या शरीराचा उपभोग घेण्याची घेण्यासाठी ही पद्धत आहे. याचे चित्रण याचे वास्तव चित्रण '**चिरा**'या कादंबरीमध्ये किशोर काळे यांनी मांडली आहे. उपरोक्त महत्त्वपूर्ण कादंबऱ्यांमधून वेगवेगळे प्रश्न आणि समस्यांवर प्रकाश टाकला आहे पोटाच्या खळगीसाठी भटकत राहणारा तसेच गुन्हेगारी कायद्यातून होणारी गोंड मारी भटकंती जर्मनीत दरम्यानची होरपळ असा वेदनादायी प्रवासाचा उलगडा साहित्यिकांनी आपल्या कादंबऱ्यांमधून घेतला आहे अजूनही हा भटका समूह आणि एक बाबतीमध्ये भरडला जात आहे भटक्या स्त्रीची सुद्धा दुहेरी पिळवणूक होत असते.. भटक्या या आत्मचरित्रात के वो हिरे यांनी **गोपाळ** या भटक्या समाजातील जात पंचायतीचे विशेष महत्त्व सांगितलेले आहे. लग्न किंवा मरण असो जातपंचायतीला त्या ठिकाणी महत्त्व दिले जाते. जातपंचायती द्वारे दिलेला निर्णय अंतिम मानला जातो. महादेव मोरे यांच्या **वस्ती** या कादंबरीमध्ये डोंबारी समाजाचे चित्रण येते. डोंबारी स्त्रीला दारिद्र्यामुळे वेश्याव्यवसाय करायला लागतो. याचे चित्रण या कादंबरीमध्ये केले आहे. व्यंकटेश माडगूळकर यांच्या **बनगरवाडी** या कादंबरीमध्ये धनगर समाजाचे जीवन चित्रण आले आहे. नामदेव ढसाळ यांच्या **हाडकी हाडवळ** या कादंबरीमध्ये गुन्हेगारी प्रवृत्ती जगणाऱ्या **चेंढारी पेंढारी** या जमातीचे चित्रण आले आहे. दादासाहेब मोरे यांनी **गबाळ** आत्मचरित्रातून कुडमुडे जोशी या समाज जीवनाचे चित्रण केले आहे. शंकराव खरात यांनी तडीपार या कथासंग्रहातून उचले व भामटे कैकाडी वडार या जमातींच्या जीवनाचे तसेच राहणीमान याचे चित्रण केले आहे. संतोष पवार

चोरटा या आत्मकथेत कथेतून त्यांनी फासेपारधी या समाजाचे त्यांच्या वाट्याला आलेले विदारक दुःख आणि जन्मजात गुन्हेगारी प्रवृत्तीचे म्हणून जगणे याचे वास्तव चित्रण आले आहे.

निष्कर्ष

१)भटक्या जाती विमुक्त समाज जीवनाचे वास्तव चित्रण आलेले दिसून येते

२ भटक्या जाती विमुक्त समाजामध्ये जात पंचायतीला महत्त्व असल्याचे दिसते

३ अनिष्ट रूढी प्रथा परंपरा अंधश्रद्धा अज्ञान इत्यादी बाबी भटक्या जाती विमुक्त यांच्या प्रगतीत अडथळा असल्याचे दिसून येते

४) भटक्या जाती विमुक्त मुक्त समाजाचे उदरनिर्वाहासाठी पारंपारिक कोणतेही साधन नसल्यामुळे दैन्य ,लाचारी, अगतिकता, दारिद्र्य त्यांच्या वाट्याला आलेली दिसून येते

समारोप एकूणच भटक्या जाती जमाती चा समाजजीवनाचे चित्रं पाहता कथा-कादंबरी आत्मकथन चरित्र इत्यादी वाङ्मय प्रकारांमधून त्यांच्या समाज जीवनाचे चित्रण आले आहे. हा भटका समाज अजूनही अनेक सरकारी सोयीसुविधा पासून वंचित राहिलेला आहे. प्रस्थापितांकडून आणि पोलिसांकडून सुद्धा या भटक्या समाजावर अन्याय होताना दिसत आहे. अजुनी हा समाज अंधश्रद्धा या मध्ये अडकून पडलेला आपल्याला दिसून येतो. डॉ बाबासाहेब आंबेडकर यांच्या मुळे जरी या तरुणांमध्ये आत्मभान आले असले तरी अनेक समस्या त्यांच्या समोर आ वासून उभ्या आहेत. अंतर्गत आणि बाह्य परिस्थितीशी त्यांना अजून सामना करावयाचा आहे. अशा प्रकारे अनेक साहित्यकृतींमधून भटक्या जाती जमाती यांचे वास्तव चित्रण आपल्या समोर उभे राहताना दिसते.

संदर्भ

१) कदम नागनाथ: 'महाराष्ट्रातील भटका समाज संस्कृती' व साहित्य, प्रतिमा प्रकाशन, पुणे 1995 पृ. २

२) राठोड मोतीराज: भटक्या-विमुक्तांच्या जाहीरनामा, मोतीराज राठोड ,प्रकाशित औरंगाबाद 1988 पु.14

३) काळे किशोर :कोल्हाट्याचं पोर ग्रंथाचे प्रकाशन मुंबई पुनर्मुद्रण, 2009 पृ. 31

'घुमन्तु जनजातियों में बंजारा जनजातिका सामाजिक एवं अभिक्षेत्रिय अध्ययन'

डॉ. संदीप रुपरावजी मसराम
साहाय्यक प्राध्यापक - भूगोल
वसंतराव नाईक शासकीय कला एवं
समाजविज्ञान संस्था, नागपूर
मोबाईल – ८९८३७१८१३१
ईमेल – sandip.masram84@gmail.com

बीज संज्ञा –

विमुक्त जाती-जमाती, घुमंतू जनजातिया, बंजारा घुमंतू जनजाति I

प्रस्तावना-

भारत यह सामाजिक विविधताओं का देश हैI भारत में सभी समुदाय के लोग अपना जीवन अपने शैली में व्यतीत करते हैI इन सभी समुदायों की जीवन पद्धती, रीतिया, बोलीभाषा एवं सभ्यता भिन्न भिन्न प्रकार की होती हैI मानव के मुख्य बस्ती के बाहर रहकर जंगलो में या मुख्य मानव बस्ती को लगकर बाजू में जनजातिया अपनी बस्ती बनाते हैI वहा पर उनका स्वतंत्र कानून भी होता I इनमे से कुछ जनजातिया स्थानांतरण करते रहते हैI एक जगह से दूसरी जगह भ्रमण करते हैI उनके साथ संरक्षण तथा उपजीविका के हेतु पशु भी होते I इन जनजातियों को उनके कार्य , भाषा, सभ्यता तथा रहन सहन के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है I विमुक्त तथा घुमंतू जनजातिया प्राचीन भारत से ही एक महत्वपूर्ण सामाजिक हिस्सा I

भारतीय समाज के पैतृक और सामाजिक मानदंडो के अनुसार, कुछ जातीय और जनजातिया जो अपराध और खानाबदोश रवैये पर जि रही थी, उन्हें ब्रिटिश साम्राज्य में आपराधिक जातियों के रूप में पहचाना गया और आधिकारिक रूप से पंजीकृत किया गया I उनके हरकतों पर पुलिस का नियंत्रक था I उन्हें कुछ सीमित बस्तीयो मे पुलिस की निगरानी में रहने के लिए मजबूर किया गया I आवाजाही और रहने पर सभी प्रतिबंध हटा दिए गये थेI इसलिए, इन जातियों और जनजातियों को स्वतंत्र भारत में विमुक्त के रूप में जाना जाता हैI

ब्रिटिश शासन के शुरुवाती दिनों में १७९३ के विनियमन २६ अधिनियम द्वारा कुछ जनजातियों को सरकारी स्तर पर अपराधियों के रूप में पंजीकृत करने और उनके अनुसार व्यवहार करने की प्रथा का प्रावधान लागू किया गया था I १८६० में भारतीय दंड संहिता लागू हुईI बाद में १८७१ में, आपराधिक जनजाति अधिनियम अधिनियमित किया गया और इस अधिनियम को १९२४ के आपराधिक जनजाति केंद्रीय अधिनियम में बदल दिया गया I ३१ अगस्त १९५२ को इसे समाप्त कर दिया गया और जिन जातियों और जनजातियों को अभी भी आपराधिक जनजाति के रूप में जाना जाता है I उन्हें विमुक्त जाती-जमाती के रूप में जाना जाने लगा I

अध्ययन के उद्देश –

प्रस्तुत संशोधन पत्र के अध्ययन का उद्देश घुमंतू जनजातियोका अध्ययन करना है I घुमंतू जनजातियों में कई सारी जनजातिया आती है I घुमंतू जनजातियों में प्रमुख बंजारा घुमंतू जनजातिका सामाजिक अवं अभिक्षेत्रिय अध्ययन करना इस संशोधन पत्र का प्रमुख उद्देश है I इस संशोधन पत्र के उद्देश निम्नलिखित है-

१ घुमंतू जनजातियों में प्रमुख बंजारा घुमंतू जनजातिका सामाजिक अवं अभिक्षेत्रिय अध्ययन करना I

२ घुमंतू जनजातियों में बंजारा घुमंतू जनजाति को वर्गीकृत करना I

संशोशन विधी –

प्रस्तुत संशोधन पत्र के लिए द्वितीयक जानकारी का उपयोग किया गया है I विभिन्न भौगोलिक एवं सामाजिक क़िताबे, संशोधन पत्र, ऑनलाइन जानकारी, अख़बार तथा इंटरनेट से जानकारी प्राप्त की गई है I घुमंतू जनजातियों में बंजारा घुमंतू जनजाति को वर्गीकृत किया गया है I

कार्यक्षेत्र –

प्रस्तुत संशोधन पत्र में घुमंतू जनजातियों में प्रमुख बंजारा घुमंतू जनजातिका अभिक्षेत्रिय अध्ययन करना तथा बंजारा घुमंतू जनजाति को वर्गीकृत करना है I भारत में महाराष्ट्र राज्य के बंजारा जनजातिको अध्ययन के लिए चुना गया है I पूरे भारत में बंजारा जनजाति बिखरी हुई है I पूर्व महाराष्ट्र के कुछ जिलों में बंजारा जनजातिकी जनसंख्या अधिक है I इस प्रदेश को अध्ययन के लिए चुना गया हैI इस प्रदेश में बंजारा जनजातिका केन्द्रीकरण अधिक दिखता है I इस प्रदेश के सामाजिक जीवन में बंजारा जनजातिका प्रभाव अधिक दिखता है I

विश्लेषण –

भारत में प्राचीन काल से ही बोहोत सारी जनजातिया का अस्तित्व विभिन्न प्रदेशों में है I कुछ जनजातिया विशिष्ट प्रदेश में ही रहती है तथा कुछ जनजातिया स्थानांतरण करते रहती है I एक प्रदेश से दुसरे प्रदेश में स्थानांतरण करने वाले जनजातियों को घुमंतू जनजातिया कहा जाता है I बंजारा यह एक महत्वपूर्ण घुमंतू जनजाति है I पूरे भारत में बंजारा बिखरे हुए है I

भारत के कुछ राज्यों में बंजारा जनजाति अनुसूचित जनजाति में और कुछ राज्यों में गैर अनुसूचित खानाबदोश जनजातिया में आती है I भारत में यह मुख्य रूप से आंध्र प्रदेश, उड़ीसा, कर्नाटक, तमिलनाडु, पंजाब, बिहार, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और हरियाणा राज्यों में पाए जाते है I पूर्व महाराष्ट्र में बंजारा जनजातिका केन्द्रीकरण हुवा है I विदर्भ एवं मराठवाडा प्रदेश में इनकी जनसंख्या अधिक है I यवतमाल, वाशिम, अकोला, अमरावती, वर्धा, नागपुर जिले तथा इनसे सटे हुए प्रदेश में बंजारा जनजाति की जनसंख्या अधिक है I

बंजारा जनजाति की कई शाखाए है I बंजारा जनजाति को इस प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है I बंजारा, बंजारी, न्हवी बंजारा, शिंगवाले बंजारा, गोर बंजारा, कचलीवाले बंजारा, लमनी, लम्बाडी, लमन, सुल्केर, मथुरा आदि I स्थल अनुसार इनके रीतिरिवाज, देवता और अंतेष्टि के मध्य कुछ अंतर होता है I इनके मूलस्थान के बारे में निश्चित जानकारी नहीं मिलती लेकिन वे स्वयं को राजपूत वंश के राणा प्रताप के वंशज एवं मानते है I मुघलकाल में यह लोग राजस्थान से दक्षिण की और आये ऐसी धारना है I बंजारा जनजाति को उड़ीसा और बिहार में आदिवासियों के रूप में मान्यता नहीं डी गई I अन्यत्र इन्हें अनुसूचित जनजाति में शामिल किया गया है I महाराष्ट्र में बंजारा जनजाति को घुमंतू तथा विमुक्त जाती का दर्जा दिया गया है I आंध्र प्रदेश में इन्हें सुगाली, दिल्ली में शिरकिवन, राजस्थान और केरल में गवरिया तथा गुजरात में चारण के नाम से जाना जाता है I लोदी वंश के सिकंदरशाह ने १५०२ में घोलपुर पर आक्रमण किया था जिसमे बंजारा का पहला उल्लेख मिलता है I एन एफ कांबलीज ने पहली बार जनजाति पर पत्र १८९६ में प्रकाशित किया उनके अनुसार बंजारा की प्रमुख चार उप-प्रजातिया है I जिनमे मथुरिया, लमान, चारण और धाडी महत्वपूर्ण है I इनमे चारण की संख्या अधिक है I बनजारा एवं लवण याने नमक का लाने - ले जाने का कम करने वाले इस क्रिया से उनको लामानी के नाम से जाना जाता होगा I इनमे राठौड़, परमार (पवार), चौहान और जाधव या मुखिया यह चार कुल शामिल है I

हल्का गोरा एवं सावला रंग, उचा कद, मजबूत एवं कसा हुवा शरीर यह बंजारा लोगों की शारीरिक विशेषताए है I पुरुष धोती या पतलून के साथ अलग किसम की कमीज पहनते है I सर पर लाल रंग की पगड़ी लपेटते है I महिलाए लाल रंग का घागरा और चोली पहनते है I उसपर काशिदाकारीवाली, आइने के तुकडे वाली भड़कीले रंग की चुनरी ओढ़ते I महिलओंको जेवर पहनने की और टैटू की लालसा होती है I वे हात में हाथी दंत, सींग या पीतल के कंगन पहनते है I तथा वे अपनी बाहू पर वाकी पहनते है I यह अलग प्रकारकी चुडिया होती है I

व्यापर उनका मुख्य व्यवसाय है, अद्यपि वे जंगल पहाड़ो में पाए जाने वाले मौलिक पत्थर, गोंद, शहद आदि को इकठ्ठा करते है और बेचते है I बीसवी सदी में, उनमे से कई ने खेती और श्रम करना शुरू कर दिया है I बंजारा गिरोह मजदूरी के लिए शहरो से झुग्गी बस्तियों में जा रहे है I उनमे से कुछ धाडी या भट है और वे संगीत के पारखी होते है I वर्ष के अंत में वे अपने पूर्वजो की स्तुति गीत गाते हुए मौज मस्ती करने के लिए चारणों के बस्ती में जाते है I इसके लिए उन्हें पैसे या बैल के रूप में भुकतान किया जाता है I ये लोग झोपड़ियो में या अपने तंबू में रहते है I कुछ घर साधारण होते है I बंजारा लोगो की बोली अलग होती है I बंजारा लोग 'गोलमाटी' बोली बोलते है I यह बोली राजस्थानी और हिंदी दोनो भाषा से प्रभावित है, लेकीन इसमे राजस्थानी मोड अधिक है I

बंजारा लोगो को अपनी सात पुश्तो की नाम पत्रिका का ज्ञान होना जरुरी है ऐसा मानना है I बंजारा लोगो के बस्ती को तांडा कहते है I हर एक तांडा का एक मुखिया होता है I यह मुखिया का पद उसको विरासत से मिलाता है I मुखिया के सलाह से ही व्यापार किया जाता है I मुखिया उस पूरी बस्ती का न्यायाधीश भी होता है I उनके द्वारा दिया गया न्याय सबको मान्य करना पड़ता I

बंजारा समाज में एक ही कुल में शादी नहीं हो सकती I शादी की विधी साधारण होती है I चारन तथा लमान उपजातियों में लड़कियों की शादी बड़े होने पर कर दी जाती है I लेकिन दक्षिण में लडकियों की शादी कम उम्र में हो जाती है Iबंजरा समाज में भगत का विशेष महत्त्व है I वे चिकित्सा और टोना दोनों का अभ्यास करते है I बंजारा लोक दशहरा, दीवाली, होली और गोकुलअष्टमी यह त्यौहार मुख्य रूप से मनाते है I बंजारा लोग नृत्य और संगीत से प्यार करते है I नगारा, साप अवं मोर नृत्यप्रकार उनमे विशेष रूप से लोकप्रिय है I बंजारा समाज के लोक नृत्य और लोक कथाए प्रसिद्ध है I

निष्कर्ष –

प्रस्तुत संशोधन पत्र के अध्ययन का उद्देश घुमंतू जनजातियोका अध्ययन किया गया है I I घुमंतू जनजातियों में प्रमुख बंजारा घुमंतू जनजातिका सामाजिक एवं अभिक्षेत्रिय अध्ययन किया गया है I बंजारा समाज अपनी सभ्यता को संभाले रखा है I उनकी बोली भाषा, पोशाख, सामूहिक त्यौहार, एकता यह सब गौरवनीय है I पूर्व महाराष्ट्र में बंजारा जनजातिका केन्द्रीकरण हुवा है I विदर्भ एवं मराठवाडा प्रदेश में इनकी जनसंख्या अधिक है I यवतमाल, वाशिम, अकोला, अमरावती, वर्धा, नागपुर जिले तथा इनसे सटे हुए प्रदेश में बंजारा जनजाति की जनसंख्या अधिक है I बंजारा जनजाति को बंजारा, बंजारी, न्हवी बंजारा, शिंगवाले बंजारा, गोर बंजारा, कचलीवाले बंजारा, लमनी, लम्बाडी, लमन, सुल्केर, मथुरा आदि प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है I इनमे राठौड़, परमार (पवार), चौहान और जाधव या मुखिया यह चार कुल है I

यह जनजातिया भारत का अभिन्न हिस्सा है I घुमंतू जनजातियों का इतिहास भारत के इतिहास को दर्शाता है I घुमंतू जनजातियों का लिखित इतिहास बोहोत कम उपलब्ध है I वह निसर्ग को पूजते है I इन घुमंतू जनजातियों की सभ्यता को संभाले रखना प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है I

संदर्भ -

1 Fuchs, Stephen, The Aboriginal Tribes of India, Bombay, 1973
2 Government of India, Report of the Backward classes commission, Vol. I, New Delhi, 1982
3 Singh K.S. , People of India, Calcutta, 1992
4 Russell, R.V. Hira Lal, The Tribes and Castes of The Central Provinces of India, Vol. II, Delhi 1975
5 राठोड़ मोतीलाल, बंजारा संस्कृती, औरंगाबा, १९७६
6 प्रा. प्रकाश राठोड़, बंजारा समाज, साहित्य आणि संस्कृती, युगसाक्षी प्रकाशन, नागपूर. २०१३
7 मराठी विश्वकोष

भारत के घुमंतू नारियों का जीवन

1. डॉ. युवराज माने
2. प्रा.देवनाथ कर्डेल
हिंदी विभाग,
श्री आर.आर.पाटिल महाविद्यालय, सावलज

सारांश –

नारी समाज, मनुष्य जीवन का अविभाज्य अंग है | आदिकाल से आज तक नारी विविध रूप में दिखाई देती है, लेकिन आज भी भारतीय समाज में नारी का एक ऐसा भी वर्ग है, जो मुख्य धारा से कोसो दूर है| जिसे हम घुमंतू कहते है | भारत में 'इदाते' और 'रेणके' आयोग के उपलब्ध अहवाल में घुमंतू जमातियों की जनसंख्या तीस करोड बताई गई हैं | इस जनसंख्या मे 15 करोड घुमंतू नारियों की है | घुमंतू नारियों का जीवन प्रतिकूल, संघर्षपूर्ण रहा है | घुमंतू नारी जीवन सभ्यता और सामाजिक विशेषता, उच्चवर्णीय, आदिवासी, दलित, पिछडी जनजाति की नारियों के जीवन की तुलनात्मक दृष्टि से अलग है | घुमंतू नारी के जीवन की समस्या हर नारी के तरफ से अलग है | आजादी के बाद भी भारतीय संविधान के अधिकार से वंचित है | भारत में जब तक नारी जीवन को सम्मान प्राप्त नहीं होता, तब तक भारत संसार में विश्व गुरू नहीं कहा जा सकता | इसलिए नारी जीवन को सम्मान मिलना चाहिए | विशेषता घुमंतू नारी को |

बीज शब्द – नारी, घुमंतू समस्या, संघर्ष, सम्मान

'घुमंतू' शब्द का अर्थ -

घुमंतू शब्द का अर्थ इधर- उधर घूमना हैं | महाराष्ट्र में विमुक्त जमाती, विमुक्त जनजाति आदि को घुमंतू कहते है | अंग्रेजी भाषा में Criminal Tribes कहते हैं ,लेकिन हिंदी साहित्य में' घुमंतू' शब्द का अर्थ है संचार करना (घूमना) है | इसके कारण आजादी के बाद भारत सरकार ने इ.स.1992 ई. में उनका नामकरण घुमंतू जमाती किया है | इस घुमंतू जमातियों का स्वंय का निवास नहीं होता उदरनिर्वाह के लिए एक गाव से दूसरे गांव, गांव से शहर, एक प्रांत से दूसरे प्रांत संचार करते है | इसलिए इन्हें घुमंतू कहा जाता है |

घुमंतू नारियों के जीवन के विविध पहलू -

१. घुमंतू नारियों के उदरनिर्वाह के साधन :-

घुमंतू जमातियों के अलग-अलग समूह के अलग-अलग उदरनिर्वाह के साधन है | घुमंतू नारीवादी अभ्यासक डॉ. नारायण भोसले के मतानुसार यह "नारी कुटूंब प्रमुख के रूप में कार्य करती है यह उनकी विशेषता है"| आजादी के बाद भारत में घुमंतू नारी नर प्रधान समूह में कला के अनुसार कार्य करती है | इसमें बंदर, भालू का खेल, रामायण एवं महाभारत के प्रसंगों का प्रकटीकरण, रस्सी के ऊपर चलना, दशावतारी, कठपुतलियों का खेल इसे उदरनिर्वाह का साधन मानते है | दूसरे वर्ग की घुमंतू नारियाँ कृषि के लिए अवजार निर्मिती, वनस्पती औषधी बनाना, लाख , मिट्टी के बर्तन, शिकार, गृहउपयोगी वस्तू आदि का व्यवसाय करती है | तिसरे समूह (वर्ग) की घुमंतू नारियाँ भिक्षा से उदरनिर्वाह चलाती है | चौथे वर्ग में कुछ घुमंतू नारियाँ वेश्या व्यवसाय से उदरनिर्वाह करती है |

इस तरह आजादी के 75 साल के बाद भी घुमंतू नारियाँ शोषण युक्त जीवन जी रही है, भारत के उंच्चवर्णीय नारियों से तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो उनके पास आज वर्तमान में भी मुलभूत आवश्यकताओं के अधिकार सीमित है |

२. घुमंतू नारी जीवन की मुलभूत आवश्यकता : -

मानवी जीवन की मुलभूत आवश्यकताएँ होती है अन्न, वस्त्र और निवास | लेकिन उसके साथ शिक्षा, आरोग्य, सडक, बिजली आदि प्रमुखता से आती है | पर भारत की स्थिति देखी जाए तो भारत में घुमंतू नारी के जीवन का दर्जा बहुत ही निम्न

दिखाई देता है | नारी शिक्षित होने से परिवार, समाज का विकास होता है | आजादी के बाद नारियों की शिक्षा में सुधार आया है, पर आज भी समाज का एक ऐसा भी वर्ग है, जो शिक्षा से दूर है | उसमें घुमंतू नारी को स्थान नहीं मिला | वह समाज के मुख्य प्रवाह से दूर रही है | इस वर्ग को मुख्य प्रवाह में लाने के लिए विविध संस्थाएँ, समाज सुधारकों के साथ महाराष्ट्र के राजर्षी छत्रपति शाहू महाराज, डॉ.कर्मवीर भाऊराव पाटिल आदि ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है | शिक्षा की कमी, उदारनिर्वाह के साधन न होना और अपनी भूख मिटाने के लिए अनैतिक मार्गों को अपनाना आदि के कारणों से उसका लैंगिक यौन शोषण होता रहा है | आज यह स्थिति कुछ मात्र में बदल गयी है, पर उन्हें समाज के मुख्यप्रवाह में लाने के लिए शासन और संघटन को कार्यरत रहना होगा |

३. घुमंतू नारियों का भौगोलिक निवास स्थान:-

भारत में विविधता में एकता दिखाई देती है | चाहे वह भाषा में हो, रहन-सहन, उत्सव या भौगोलिकता में हो | भारतीय उपखंड में भौगोलिक विविधता देखने को मिलती है, इसमें घुमंतू नारियों के समूह अलग-अलग प्रातों में संचार करते है | यह मौसम के अनुसार संचार करने की परंपरा है | भारत के झारखंड, छत्तीसगड, बंगाल, उडिसा, मिझोराम, उत्तरप्रदेश, बिहार, अरूणाचल प्रदेश, मध्यप्रदेश, कर्नाटक, केरल, राज्यस्थान, महाराष्ट्र आदि प्रांतो में घुमंतू जनजातियों का संचार देखने को मिलता है | घुमंतू नारियों की मातृभाषा अलग - अलग होती है, जो अपने भूप्रदेश की पहचान है | इसमें कन्नड, कानडी, वडारी, गौडी, पारधी, वैदभ्री, कैकाडी, लमानी, बंजारा आदि| इस जमातियों की 300 से अधिक बोलियाँ है| महाराष्ट्र में घुमंतू नारियों का भौगोलिक निवास स्थान नंदुरबार, हिंगोली, यवतमाळ, सोलापूर, रत्नागिरी, भंडारा, गोंदिया, कोल्हापूर, सांगली, सातारा, पुणे, नाशिक, नागपूर, औरंगाबाद, जालना, बीड, उस्मानाबाद, ठाणे आदि जिलों में दिखाई देता हैं | महाराष्ट्र की यह घुमंतू जमातियाँ भारत के अन्य प्रांत में भी संचार करने के प्रमाण मिले हैं | औरंगाबाद जिले में धनगर घुमंतू चरवाह व्यवसाय के कारण गुजरात में जाने के उल्लेख भी मिलते हैं | इसमें नंदीवाले, बंजारा, लम्हानी, कैकाडी, नाथपंथी, गोसावी आदि घुमंतू जमाती महाराष्ट्र से राजस्थान, गुजरात, छत्तीसगड, झारखंड में संचार करने के प्रमाण मिले हैं | घुमंतू नारी की मातृभाषा उसकी भौगोलिक वस्ती स्थान की पहचान है |

४. घुमंतू जमाती की नारी जनसंख्या :

इ.स.1999 में इदाते अयोग का अहवाल और इ. स. २००८ मे टेक्नीकल अडवायझरी अहवाल, इ.स.२०१६ में रेणके आयोग के अहवाल नुसार घुमंतू जमाती की जनसंख्या का प्रमाण मिला है | भारत में घुमंतू जनजाति की जनसंख्या 30 करोड के आसपास है, इसमें नारियों की जनसंख्या 15 करोड है | महाराष्ट्र में घुमंतू नारियों की जनसंख्या 01 करोड के आसपास है | घुमंतू नारीवादी इतिहास अभ्यासक डॉ. नारायण भोसले ने चिकित्सा करते हुए कहा है ,"भारत की घुमंतू नारी जनसंख्या युरोपियन राष्ट्र जर्मन की जनसंख्या के समान है, और महाराष्ट्र की मुंबई की जनसंख्या कि तुलना में 10 प्रतिशत ज्यादा है|" इस अनुमान के आधार पर कहा जा सकता है, घुमंतू समाज में नर-नारी लिंग गुणोत्तर प्रमाण समान है | लेकिन आज भारतीय समाज में लिंग गुणोत्तर विषमता देखने को मिलती है | भारतीय उच्चवर्णीय नारी सुशिक्षित होकर भी उनमें सामाजिक विषमता देखने को मिलती है | लेकिन घुमंतू नारी अशिक्षित होकर भी उनमें सामाजिक समता देखने को मिलती है | इस तरह भारतीय नारी एवं घुमंतू नारी जीवन का तुलनात्मक अध्ययन करने से घुमंतू नारी जीवन की विशेषता अलग-अलग देखने को मिलती है | यह भारतीय नारी के लिए आदर्श है |

५. घुमंतू नारियों का सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन : -

भारत में नारी जीवन के विविध रूप देखने को मिलते है, घुमंतू नारियाँ देवी देवताओं की भक्त है | यह देवता येल्लमा, महाकाली, महालक्ष्मी, कालिका, येडाबाई, तुळजाभवानी, वेताळ, खंडोबा, पीर आदि देवताओं की पूजा करती है | महाराष्ट्र की वाघ्या-मुरळी प्रथा भारत में विशेष प्रसिद्ध है | घुमंतू जमाती के अलग -अलग समुदाय अपने अलग-अलग इष्ट देवता को मानते है, इसलिए साल में एक बार यह समुदाय अपने इष्ट देवता के पास आते है | वहाँ उत्सव समारोह का आयोजन किया जाता है, इस

समारंभ में युवक-युवतियों को अपना जीवन साथी चुनने का अधिकार जातपंचायत देती है | कुछ घूमंतू लोगों का समाज का मनोरंजन करना व्यवसाय है | हिंदू परंपरा के अनुसार त्यौहार, उत्सव का भी आयोजन किया जाता है | भारत की उच्चवर्णित नारी की तुलना में घुमंतू नारी का जीवन संघर्षपूर्ण है | लेकिन कुछ विशेषता है, घुमंतू नारी कुटुंब प्रमुख के रूप में कार्य करती है | वह स्वयं निरक्षर होकर भी नृत्य, गायन कला में निपुण होती है |

६. घुमंतू नारी जीवन एवं जातपंचायत व्यवस्था : -

आज 21 वीं सदी में भारत के आदिवासी,पिछडी जनजाति में अपनी अलग न्याय व्यवस्था है | जिसे जातपंचायत कहा जाता है | जिनके अपने अलग से कायदे-कानून है | घुमंतू जमाती में भी जातपंचायत व्यवस्था है | इस जातपंचायत व्यवस्था के अलग-अलग नियम एवं कार्य विशेषता है | भारत में घुमंतू जमाती की संख्या 400 से 600 के आसपास है | हर जमाती की अलग जातपंचायत होती है, इसके कारण उनके नियम एवं कार्य करने की अलग-अलग विशेषताएँ हैं | इस जातपंचायत व्यवस्था के नियम एवं कायदों के अनुसार नारी जीवन पर निर्बंध है | जैसे विवाह प्रथा, सामाजिक, सांस्कृतिक नियम के कठोर नियम एवं शासन निर्धारित किए जाते हैं | नारियों का अग्निदिव्य जैसे अघोरी प्रथाओं के माध्यम से लैंगिक यौन शोषण किया जाता है |

७. घुमंतू नारी जीवन की समस्याएं : -

घुमंतू नारियों का जीवन समस्याओं से भरा एवं संघर्षपूर्ण है | आजादी के बाद भारत सरकार ने कई महत्वपूर्ण योजनाओं का अवलंब किया है | जिससे इनका जीवन बदल जाए | डॉ के.बी.अत्रोळीकर समिति की नियुक्ति भारत सरकारने इ.स.1949 में की | इस समिति ने घुमंतू नारियों का गुन्हेगारी से पुनर्वसन एवं शिक्षा, निवास, रोजगार आदि की शिफारस की थी | इसमें से इ.स.1953 में गुन्हेगारी कायदा रद्द किया | लेकिन इसका समायोजन अयोग्य पध्दति से किया गया | इ.स 1960 में महाराष्ट्र की स्थापना हुई | महाराष्ट्र शासन ने एल.बी.थाडे समिति का अध्ययन करके खानदेश एवं पश्चिम महाराष्ट्र में घुमंतू नारियों का पुनर्वसन किया था | इ.स.1971 में भारत सरकार ने पी.के मिश्रा और सी. आर. राज्यलक्ष्मी के नेतृत्व में समिति का गठन किया और घुमंतू नारी जीवन की समस्या के हल का अनुसंधान करने को कहा | घुमंतू नारी जीवन की समस्याओं का हल निकालने के लिए सामाजिक कार्यकर्ताओं एवं भारत सरकार ने इ.स.1997 और इ.स. 2008 में रेणके एवं इदाते आयोग का गठन किया था | रोजगार, निवास, भोजन, शिक्षा, बिजली, रास्ते, आरोग्य आदि समस्याओं का अहवाल भारत सरकार को पेश किया है | इसके अनुसार प्रातों ने तत्काल अवलंब किया है | इसमें महाराष्ट्र, झारखंड, राजस्थान, कर्नाटक, गुजरात आदि राज्यों में कार्य किया | इस समिति के अहवाल से घुमंतू नारी के जीवन में कुछ बदलाव जरुर आए है, पर वह समाज के मुख्य प्रवाह से दूर है |

21 वी सदी में जागतिकीकरण, औद्योगीकरण, नागरीकरण, खाजगीकरण, विज्ञान, माहिती तंत्रज्ञान का प्रभाव घुमंतू नारी के जीवन पर देखने को मिलता है | आज वर्तमान काल में घुमंतू नारियाँ नागरी औद्योगिक वसाहतियों में कामगार के रूप में काम करती है, कुछ नारियाँ संचार करके प्लास्टिक बोतल, लोहा, भंगार का संचयन करके कारखानदार को बेचकर उदरनिर्वाह करती है | जिसके कारण आज भी नारियों के लैंगिक शोषण, स्वास्थ्य की समस्याएँ बढती जा रही है | घुमंतू नर प्रधान समाज में नारी की बढती व्यसनाधीनता भी एक बड़ी समस्या है |

संदर्भ सूची -

1. नाईक शोभा, भारत के सर्दभ में नारीवाद, मुंबई, 2007
2. परदेशी प्रतिमा, कांबळे सरोज, जातिसंस्था नारी, क्रांति अकादमी, धुळे,1999
3. डी. डी. कोसंबी, प्राचीन भारत का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2010
4. सोनलकर वंदना और रेंगे शर्मिला, जातिव्यवस्था और नारी मुक्ति, सावित्रीबाई प्रकाशन पुणे, 2012

मराठी कादंबरीत चित्रित भटक्या - विमुक्त जमातींचे सामाजिक जीवन

डॉ. स्वप्निल बुचडे
विवेकानंद कॉलेज , कोल्हापूर (स्वायत्त)

सारांश

जीवनाच्या सर्व क्षेत्रांत राजकीय, सामाजिक व आर्थिकदृष्ट्या समान दर्जा असावा. असा आदर्श प्रत्यक्षात आणणे हे समाजव्यवस्था व देशाचे ध्येय असले पाहिजे. खरे म्हणजे जेथे औद्योगिकरण झाले नाही अशा जगातल्या बहुतेक देशांत विशेषत: भारतात अद्यापही माणूस जात घेऊनच जन्माला येतो. डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरांनी सामाजिक, राजकीय लोकशाही बरोबरच आर्थिक लोकशाही निर्माण करण्याचा आग्रह धरला होता. गुन्हेगार जातीसंबंधी बोलताना डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरांनी ती शुद्ध आर्थिक समस्या आहे असे सांगून उत्तम प्रकारे उदरनिर्वाहाची संधी त्यांना समाज व देश किती प्रमाणात देऊ शकतो हे महत्त्वाचे आहे असे नमूद केले. जर त्यांना योग्य प्रकारे उदर निर्वाह अथवा रोजगार मिळविण्याची साधने उपलब्ध झाली तर त्यांची गुन्हेगारी बंद होईल असे ठामपणे सांगितले. भारतात किमान जीवन जगण्याइतपत सुद्धा सुरक्षित व कायम स्वरुपाचे उत्पन्नाचे साधन देशातील बहुसंख्य लोकांकडे उपलब्ध नाही. नियोजनाची ६० वर्षे पूर्ण झाली तरी अशा लोकांच्या जीवनात व व्यावसायिकतेत अद्यापही स्थैर्य येवू शकले नाही.

बीज शब्द- भटके, विमुक्त, जाती-जमाती, सामाजिक जीवन, कादंबरी.

प्रस्तावना :

माणूस हा समाजशील प्राणी आहे. या उक्तीप्रमाणे आपण सर्वजण कोणत्यातरी समाजाचे घटक आहोत. आपल्या सर्वांचा मिळून मानव समाज बनलेला आहे. मग तो कोणत्याही प्रदेशाच्या, वंशाच्या, धर्माच्या वा संस्कृतीच्या नावाने ओळखला जावो. किंबहुना असे म्हणता येईल की मानवाशिवाय समाज निर्माण होत नाही आणि समाजाबाहेर मानवी जीवन घडत नाही. एकटा मानव जगू शकत नाही आणि काही काळ जगला तरी त्याला मनुष्याचे गुणधर्म प्राप्त होत नाहीत म्हणूनच मानव हा समाजशील प्राणी आहे असे म्हटले जाते.

'संस्कार ही एक मूल्यवर्धक प्रक्रिया आहे'. संस्कृती आणि संस्कार हे दोन्ही शब्द एकाच धातूपासून बनवले आहे. आणि दोन्ही शब्दांचा व्याकरणदृष्ट्या अर्थही एकच आहे. पण संस्कार हा शब्द धार्मिक क्षेत्रापुरता मर्यादित राहिला, तर संस्कृती हा शब्द जीवनाच्या उन्नत अवस्थेसाठी वापरला गेला. अर्थातच संस्कृती या शब्दाचा उपयोग समाज आणि मानवी जीवनाच्या आचरणासंदर्भात व्यापक पातळीवर वापरला गेला. संस्कृतीची सुटसुटीत अशी व्याख्या करता येत नाही. परंतू प्रकृती आणि विकृती या शब्दांच्या साहाय्याने संस्कृतीचा अर्थ समजून येतो. *प्रकृती म्हणजे निसर्ग विकृती म्हणजे निसर्गात होणारा विकार तर संस्कृती म्हणजे प्रकृतीत विकार किंवा बिघाड होऊ नये या उद्देशाने प्रकृतीवर करण्याचा संस्कार होय.* (भारतीय संस्कृतीकोश - ९, पृ. ५९६)

साहित्य हे समाजाचा आरसा असते अशी भूमिका मांडली जाते. म्हणून कोणत्याही साहित्यिकाने निर्माण केलेल्या साहित्याची नाळ शेवटी आपल्याला समाजाशी जोडावीच लागते. यासंदर्भात आपला विचार मांडताना गंगाधर गाडगीळ यांनी आपल्या *'खडक आणि पाणी'* या ग्रंथात मांडलेली भूमिका अशी, *जीवनाचे सत्य स्वरूप दाखविणे आणि जीवनविषयक उच्च आदर्श वाचकांपुढे मांडणे ह्या दोन्ही गोष्टी साहित्यिक करत असतो. साहित्यिक हा जीवनाविषयी प्रत्यक्षपणे अगर अप्रत्यक्षपणे काही विधाने करीत असतो. जीवनाचा काही अर्थ लावीत असतो. जीवनातील आदर्श कोणते ते सूचित करीत असतो. एखादा*

तत्त्वज्ञ जीवनाची ज्या पद्धतीने संगती लावीत असतो. त्याचप्रमाणे साहित्यिकदेखील लावीत असतो आणि त्याने जीवनाची लावलेली संगती हे किती सत्य आहे, त्याने माणसापुढे मांडलेले आदर्श नैतिकदृष्ट्या किती उच्च आहेत त्यावरून त्याच्या साहित्याची प्रत अगर योग्यता ठरते. (गंगाधर गाडगीळ : २००३ : ११९) गंगाधर गाडगीळ यांनी मांडलेल्या मतानुसार जीवनाविषयी आदर्श मांडण्याचे काम साहित्यिक करत असतो. सदरच्या लेखात भटक्या विमुक्त जमातींचे मराठी कादंबरीत चित्रित झालेले सामाजिक जीवन मांडण्याचा प्रयत्न केला आहे. हे जीवन मांडण्यापूर्वी भटक्या विमुक्तांचे सामाजिक सांस्कृतिक स्थान नोंदवून कादंबरीतील सामाजिकतेची मांडणी करता येईल.

उद्देश :

१. भटक्या विमुक्त जाती जमातींचे सामाजिक जीवन अभ्यासणे.

२. भटक्या विमुक्त जाती जमातींच्या व्यवसाय आणि उपजीविकेच्या साधनांचा अभ्यास करणे.

३. मराठी कादंबरीत चित्रित झालेले भटक्या विमुक्त जमातींचे सामाजिक जीवन अभ्यासने.

४. मराठी कादंबरीच्या आधारे सामाजिक, सांस्कृतिक परिघात भटक्या-विमुक्तांचे स्थान नोंदविणे.

संशोधन पद्धती :

प्रस्तुत संशोधन लेखाची मांडणी करण्यासाठी प्रामुख्याने समाजशास्त्रीय संशोधन पद्धतीचा तसेच कादंबरींच्या आशयाचा, अनुभववविश्वाचा अभ्यास करण्यासाठी वर्णनात्मक, मानसशास्त्रीय समीक्षा पद्धतीचा अवलंब केला जाईल.

भटक्या विमुक्त जाती जमाती आणि त्यांचे सामाजिक जीवन :

भारतात एकूण मानवी जातींची संख्या साडेसहा हजारापेक्षा जास्त आहे. प्रत्येक जातीच्या सामाजिक, सांस्कृतिक आणि आर्थिक स्थितीत भिन्नता असून आर्थिक उत्पन्नाची साधने पारंपारिक असल्याचे दिसून येतात. उत्पादन रचनेवरून किंवा व्यवसायावरुन व्यवसाय नामक जाती/जमातींची निर्मिती झाली. भारतात धर्माने काही जाती श्रेष्ठ व पवित्र ठरविल्या आहेत तर काही जाती कनिष्ठ व अपवित्र ठरवल्या गेल्या. त्यामुळे अद्यापही बहुसंख्य समाज उपजिवीकेच्या शोधात भटके जीवन व्यथित करताना दिसून येतो. म्हणूनच भारतामध्ये जातीव्यवस्थेतून निर्माण झालेली उत्पादन रचना आणि अनुसूचित जाती-जमातींच्या आर्थिक व्यवसायाची परिस्थिती पाहिल्यावर असे दिसते की, संपत्ती आणि आर्थिक सत्ता यामधील विषमतेमुळे उदरनिर्वाह करण्यासाठी एका ठिकाणाहून दुसऱ्या ठिकाणी सतत भटकंती करणाऱ्या जमातींची नैतिक व सामाजिक विटंबना होत आली आहे.

जीवनाच्या सर्व क्षेत्रांत राजकीय, सामाजिक व आर्थिकदृष्ट्या समान दर्जा असावा. असा आदर्श प्रत्यक्षात आणणे हे समाजव्यवस्था व देशाचे ध्येय असले पाहिजे. खरे म्हणजे जेथे औद्योगिकरण झाले नाही अशा जगातल्या बहुतेक देशांत विशेषत: भारतात अद्यापही माणूस जात घेऊनच जन्माला येतो. डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरांनी सामाजिक, राजकीय लोकशाही बरोबरच आर्थिक लोकशाही निर्माण करण्याचा आग्रह धरला होता. गुन्हेगार जातीसंबंधी बोलताना डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरांनी ती शुद्ध आर्थिक समस्या आहे असे सांगून उत्तम प्रकारे उदरनिर्वाहाची संधी त्यांना समाज व देश किती प्रमाणात देऊ शकतो हे महत्त्वाचे आहे असे नमूद केले. जर त्यांना योग्य प्रकारे उदर निर्वाह अथवा रोजगार मिळविण्याची साधने उपलब्ध झाली तर त्यांची गुन्हेगारी बंद होईल असे ठामपणे सांगितले. भारतात किमान जीवन जगण्याइतपत सुद्धा सुरक्षित व कायम स्वरुपाचे उत्पन्नाचे साधन

देशातील बहुसंख्य लोकांकडे उपलब्ध नाही. नियोजनाची ६० वर्षे पूर्ण झाली तरी अशा लोकांच्या जीवनात व व्यावसायिकतेत अद्यापही स्थैर्य येवू शकले नाही.

अनुसूचित जाती प्रमाणेच गुन्हेगार जमातींकडे आर्थिक उत्पन्नाची साधने अथवा रोजगाराचे कोणतेही साधन नसल्यामुळे हालाखीच्या आर्थिक स्थितीत जीवन जगत असल्याने ते आत्मनिर्भर होऊ शकत नाहीत. अशा समाजातील जाती-जमातींचा आर्थिक अभ्यास प्रथम त्रि. ना. अत्रे (१९१८) यांनी गुन्हेगार जाती या पुस्तकात करण्याचा प्रयत्न केला. त्यांच्या मते, ज्या वस्तीला वसाहतीयोग्य जमीन असून जेथे शेतकरी आणि मजूर आहेत त्या वस्तीला गाव म्हणतात. या गावाची जी सीमा किंवा शीव आहे त्यात गावठाणाचा भाग पांढरी म्हणून ओळखला जातो. तर ऊर्वरित लागवडी योग्य कृषी शिवार याला काळी या नात्याने संबोधले जाते. ज्या जमाती काळी-पांडरी शिवाय असलेल्या बिगर मालकीच्या जमिनीवर येथून तेथे धंद्याच्या शोधात व भिक मागून पोट भरण्यासाठी गावाभोवती रेंगाळत असत (गुन्हेगार भटक्या जमाती) व अद्यापही पूर्वीच्या स्थितीत दिसतात. त्या अद्यापही समाजप्रवाहात सामील होऊ शकल्या नाहीत. स्वतःचे पोट भरण्यासाठी त्यांना भटक्या जीवनसरणीतून अवैध काम व जंगलात राहून गुन्हेगारीचा अंगिकार करावा लागला. त्यांना ब्रिटीशांनी गुन्हेगार जमाती म्हणून घोषित केले. अशा भटक्या जमातींचे वर्गीकरण बेकन (१९५४) यांनी दोन प्रकारे केले आहे.

१) भटक्या जमाती ज्यांना कुठेही घर नसते, कोणतेही गाव नसते आणि सदैव या गावाहून त्या गावास असे उपजिविकेसाठी त्यांना सहकुटुंब भटकावे लागते.

२) अर्धभटक्या जमाती ज्या कुठेतरी स्थायी जीवन जगतात, अगदी वर्षातून काही महिने व्यवसायाच्या स्वरुपामुळे किंवा पोट भरण्यासाठी त्यांना भटकावे लागते.

भटक्या विमुक्त जाती जमातींचे लोक कोणत्याही गावाच्या बाहेर उतरतात. तेथे दुर्गंधी, घाण, डास यांचे सान्निध्य कायम असते. दारू पिऊन बायकांना मारणे, रोज रात्री उशिरापर्यंत भांडण करणे, मारामाऱ्या, कलकल हा भटक्या विमुक्त जाती-जमातींच्या जीवनाचा अविभाज्य असा भाग असतो. अस्वच्छतेमुळे त्यांना गावातील लोक कामसुद्धा देत नाहीत. जंगलाचा कायदा झाल्याने त्यांच्या शिकारीवर बंदी येते. परिणामी भीक मागून आणलेले शिळं, विटकं खाऊन त्यांना जीवन जगावे लागते. एकवेळ पोटाला अन्न नसले तरी चालेल पण दारू पिणे हे लोक सोडणार नाहीत. जीवन जगण्यासाठी गरिबाला मरण्याची गरज नाही. त्याला जिवंतपणीच त्या अनुभवातून जावे लागते याचा प्रत्यय भटक्या विमुक्त जाती-जमातींच्या वकाल जीवनातून येतो.

मराठी कादंबरीत चित्रित भटक्या विमुक्त जमातींचे सामाजिक जीवन :

मराठी कादंबरीत चित्रित झालेले भटक्या विमुक्त जमातींचे चित्रण पाहिले असता त्यांच्या वाट्याला आलेल्या सामाजिक जिवनाची कल्पना आपल्याला होते. दारिद्र, शोषण, अज्ञान, अंधश्रध्दा, गुन्हेगारी, व्यसनाधीनता, असहायता या प्रकारचेच सामाजिक जीवन ते जगत आले आहेत. यापाठीमागची सांस्कृतिक पार्श्वभूमी आपल्याला ज्ञात आहेच. प्रस्थापित व्यवस्थेने त्यांना मुख्य प्रवाहापासून नेहमीच दूर ठेवले. भटकंती दरम्यान ह्या लोकांना त्यांनी गावात प्रवेश दिला नाही. त्यांना गावाबाहेर हागणदारी परिसरात उतरावे लागे. आणि या सर्वाच्या माध्यमातून त्यांच्या वाट्याला आलेले जीवन जे साहित्याच्या आणि प्रामुख्याने कादंबरीच्या माध्यमातून व्यक्त होते त्याची काही एक मांडणी या लेखात करता येईल. भटक्या विमुक्तांची मराठी कादंबरी म्हणजे लक्षमण गायकवाड यांची *उठाव* (२००९), *वकिल्या पारधी* (२००६), *वडार वेदना* (२००४), प्रकाश जाधव यांची *तिम्मा* (२००९), सरदार जाधव यांची *कोयता* (२००८), रामचंद्र नलावडे यांची *प्रहार* (२००९), अशोक पवार *इळनमाळ* (२०१०), *दर कोस दर मुक्काम* (२०१०), नागनाथ पाटील यांची *लम्बाडी* (२००९), रावजी राठोड यांची *गोठण* (२००७), मोरे दादासाहेब यांची *अंधाराचे वारसदार* (२००१) याप्रकारच्या अलीकडच्या कालखंडातील काही महत्वाच्या कादंबऱ्यांचा उल्लेख करता येईल. या कादंबरीतून व्यक्त झालेले भातल्या वूमुक्त जमातींचे जीवन पाहता येईल.

आयुष्य कुत्र्यासारखं काम करणं, भीक मागणं, मारणं, मार खाणं, शिव्या, उपासमार असा सततचा जीवघेणा संघर्ष चालू असतो. समाजव्यवस्थेने अश्लील ठरवलेले शब्दच भटके विमुक्त रोज वापरतात. याचा प्रत्यय इकनमाळ कादंबरीतून येतो. बेलदारांच्या पालावर रात्री गडी माणसे दारू पिऊन आल्यावर उशिरापर्यंत शिव्या भांडणे चालू असतात, त्यात अश्लील, असभ्य शब्दांचा वापर होतो. बाया परपुरुषाच्या वासनेची शिकार होतात, कधी स्वतः हुकतात आणि जगण्याचा हक्क गमावून कुत्र्याच्या भीतीनं मरतात. कोणीतरी त्यांना रिक्शात घालून नेतं आणि वापरून फेकून देत. त्यांना पोलिस पकडून नेतात आणि हौस भागवतात. पुरुषांना पोलिस पकडतात अन् कुठल्याही गुन्ह्यात अडकवून टाकतात. जगण्यासाठी हे लोक चोरी करणे, घेतलेलं कर्ज न फेडणे, जनावरे उधारीने विकत घेऊन ती विकून पैसा कमवून पळून जाणे असे बारीक-बारीक उद्योग करतात.

इळनमाळ कादंबरीतील मारोतीला बारावीच्या परीक्षेत सत्तर टक्के मार्क मिळतात. गावातील लोकांच्या सल्ल्यानुसार मारोती डी. एड. करून मास्तर बनण्याचे स्वप्न बघतो. परभणीला जाऊन डी. एड. चा फॉर्म भरतो. तिसऱ्या लिस्टमध्ये डी. एड. ला नंबर लागतो, पण अकरा हजार रुपये फी असल्याने घरातील दारिद्र्यावस्थेमुळे ॲडमिशन घेता येत नाही. मारोती व राधा जिंतूरला पाल उभं करून राहतात. मजुरी करून जगतात. एक दिवस अर्धी रात्र टळल्यावर अवकाळी पाऊस येतो. त्या पावसाने पालाच्या चिंधड्या होऊन सगळा संसार वाहून जातो. मारोतीला राधाच्या बाळंतपणाची चिंता असते. मारोती राधाला स्टँडवर एखाद्या बाईच्या गळ्यातील पोत चोरण्याचा प्रयत्न करायला सांगतो. हा प्रयत्न मुळात राधाला पकडले जाण्यासाठीच असतो. पकडले गेले की तुरुंगवास आणि तिथेचं खाणं, पिणं, राहणं, बाळंतपण सगळं फुकट होईल असे तो राधाला सांगतो. राधाही एका बाईच्या गळ्यातील पोत चोरण्याचा प्रयत्न करते. उदा.

पाट ती उठली. बसस्टँडवर चाल म्हणाली. गेलो. बसस्टँडवर तोबा गर्दी व्हती. मी बाजूला बसलो. तेवढ्यात एस.टी.त चढताना गोंधळ झाला. 'रांड चोरी करते' म्हणून सात-आठ बायका एका बाईला लागल्या ठोकायला.

बघतो तर का ती राधा असते...

राधा खाली पडलेली. याच्या मायला ह्या बायका मारून टाकतील. मी सोडवतो. क्या हुआ? क्या हुआ? इसने पोत चोरी.

आरे फिर मार डालोगे क्या? इसको पोलिस के हवाली करो, कोई कायदा कानून जानते की नहीं, नहीं तो जेल में जाओगे, " "आगं बरोबर म्हणते तो, अच्छा आदमी है, अच्छे आदमी की अच्छी बाते रहती है, भैया जरा पोलिस कु बुलाओ."भी धावत जातो. पोलिसाला आणतो. मग तो लेडीज पोलिसाला वलवतो. राधाला घेऊन जातात. (इलनमाळ, पृ. २०२) दोन वेळच्या पोटाची भ्रांत भागविण्यासाठी चोरी करण्याशिवाय पर्याय नाही हेच या प्रसंगातून व्यक्त होते.

'लम्बाडी' या कादंबरीचा नायक भिकू याला घरात अठराविश्वे दारिद्र्य असल्याने चौथीपर्यंत नवे कपडे मिळत नाहीत. पाटील, पांडे, मारवाड्याच्या पोरांनी टाकून दिलेले कपडे तो घालतो.

'वडार वेदना' या कादंबरीतील तुक्या १५ ऑगस्ट दिवशी प्रभातफेरीच्या समोर तिरंगी झेंडा घेऊन गाणे म्हणतो. हे पाहून तुक्याची आई सीता व बहीण पंचफुली यांना तुक्याचे कौतुक वाटते. त्या कौतुकाने तुझ्याकडे पाहतात. तेव्हा तुक्याची आई व बहिणीच्या कपड्यांची दैन्यावस्था पाहून शाळेची मुले त्यांच्या फाटक्या कपड्यांतून दिसणाऱ्या उघड्या अंगाकडे पाहतात. याची जाणीव होऊन तुक्याचे काळीज चर्रकन चिरल्यासारखे होते. त्यावेळी हातातील तिरंगी झेंड्याचे कापड आईच्या किंवा बहिणीच्या अंगावर टाकावे असे त्याला वाटते. स्वतंत्र भारतात बडार समाजाला नीट अंगभर कपडेही मिळत नाहीत. यातून त्यांच्या दारिद्र्याची कल्पना येते. तांडा बांधून काढण्याच्या ध्यासाने पळापळ करणारा प्राध्यापक चंदन सुटटीत तांड्याकडे येत नाही. चंदनचे दोन्ही भाऊ ऐदी असल्याने घरात सतत अठराविश्वे दारिद्र्य सुरूच असते. आळस, कामचुकारपणा, संसार कसा करावा याविषयी अज्ञान यामुळे चंदनच्या 'बा'ला घराकडे लक्ष द्यावे लागते. त्यामुळे 'बा' वेतागतो. तो म्हणतो, *एक दळेंद्री वाईलं व्हऊन खातोय बायको पोराईच्या जीवावर आन् ह्यो दिसरा दिवाळखोर... फाटीला दूध घिऊन जात्यो सईकलीवर तं दुपारच्याला फिरत्यो*

दिला दूध की गर्कन फिरलाय घरला असं कदीच न्हाय... गांज्या पीत भज्या खात दोस्ताना निभवत दिसाचं दुपार करत्यो तितं...घरी इऊन बाजंला लोळत्यो, गेला तं जात्यो श्वेतात न्हाय तं इतंच तंड्यात इकडं जा तिकडं जा तिकडं हिंड होतच दिस डुबवत्यो. गेलाच श्येतीत बायकुला संग चिऊन बोलत बसत्यो झाडाखाली. त्येंच्या मनात वाटतया, कपाला राबावं आपून? भाऊ तिकडं नवकरीत आरामात हातोय आन् आपून हिकडं कामून राबावं असं वाटतय, म्हून मठा भाऊ तिकर्ड सावलीत त हो हिकडं हिरव्यागार झाडाच्या गारगार सावलीत...! घरसंसाराची चिंता ना घोर!... (गोठण, पू. १२५-१२६) प्राध्यापक चंदनचे दोन्ही भाऊ भविष्याचा विचार न करता येईल तो दिवस ढकलत जगतात. दोघेही शेतीत फारसे काम करत नसल्याने शेतीतून फारसे उत्पन्न मिळत नाही. परिणामी त्यांना दारिद्र्यात जीवन जगावे लागते.

तिम्मा ही कादंबरी तिम्माच्या रूपाने वडार समाजाची दारिद्र्यावस्था अधोरेखित करते. भोवबारवाडीत आल्यानंतर तिम्माच्या कुटुंबाला लगेच काम मिळत नाही. दोन दिवस ज्वारीच्या कण्या व मागून आणलेल्या शिळ्या भाकरीचे तुकडे खावे लागतात. सर्वच वडारांची परिस्थिती सारखीच असल्याने ते तिम्माचे कुटुंब काम नसल्याने काय खातात का उपाशी राहतात याची विचारपूस देखील करीत नाहीत. तिम्माचे कुटुंब उपाशी पोटी मिलेट्रीच्या साहेबाच्या घरासाठी दगड फोडण्याच्या कामावर जाते. तिम्माचा मोठा मुलगा ज्ञानबा साहेबाचा शेतावरील गडी शिरप्या याला साहेबाच्या घरून शिळ्या भाकरीचे तुकडे आणायला लावतो. शिरप्या त्यांना शिळ्या भाकरीचे तुकडे व मिरची आणून देतो. निलाबाई, रसिका, नागम्मा नदीवर जाऊन मासे पकडून आणतात. वाळलेल्या भाकरीचे तुकडे व मिरची, टोपलंभर भाजलेले मासे खाऊन पोटाची भूक भागवितात. 'तिम्मा' या कादंबरीत वडारी लोकांचे अज्ञान, त्यांची शिक्षणाविषयी अनास्था चित्रित होते.

दर कोस दर मुक्काम या कादंबरीत पारध्यांच्या दारिद्र्यमय जीवनाचा प्रत्यय येतो. भीक मागून आणलेलं शिळं पाकं खाऊन, शिकार करून, दारू पिऊन पारध्यांची बिराडं जीवन जगतात. अठराविश्वे दारिद्र्यात जगणाऱ्या पारधी लोकांना भूकेपेक्षा दारू पिणेच महत्त्वाचे चाटते. इतके ते दारूच्या आहारी गेलेले असतात. पारधी शिकार करणे, दारू पिणे असेच जीवन जगतात. बायका गावात भीक मागून आणून सर्वांचे पोट भरतात. बरेच दिवस आश्रमशाळेत असलेल्या मुलांना कोणी भेटायला गेलेले नसते. म्हणून एक दिवस लकसीमन बुढा मुकरूभाऊकडून व्याजाने पैसे घेतो. मोझरीला जाऊन शाळेच्या शिक्षकांना सांगून संस्थेच्या अध्यक्षांच्या संमतीने मुले पंधरा दिवसांसाठी बिराडावर घेऊन येतो. पंधरा दिवसानंतर मुले शाळेत जाण्यासाठी रहतात, पण पारधी शिकार केलेले सर्व पैसे दारूत घालवत असल्यामुळे, जवळ पैसे नसल्याने पारध्यांना मुलांना शाळेत सोडवता येत नाही.

वकिल्या पारधी या कादंबरीत गोरे साहेब जंगली आदिवासी पारधी लोकांचा कायमचा बंदोबस्त करण्यासाठी आणि जंगलावर ताबा मिळविण्यासाठी जंगली लोक राहत असलेल्या जंगलातील मोठमोठी सागाची, बाभळीची आणि मोहाची झाडे कापून रेल्वेमार्ग तयार करायला सुरुवात करतात. रेल्वेमार्गाच्या कामाला विरोध करून जंगलाच्या सर्व भागामध्ये राहत असलेले पारधी मोहाच्या जंगलात एकत्र येतात. सर्वजण विचार करून जंगलाला आग लावतात. या आगीमुळे कोळसा होऊन पडलेले शेकडो सैनिक आणि भरून न निघणारं नुकसान पाहून त्या विभागाचा गोऱ्या इंग्रजांचा सैनिक प्रमुख जंगली आदिवासींचा संपूर्ण नायनाट करण्याचा विचार करतो. एक दिवस इंग्लंडच्या राणीची अनुमती घेऊन जंगली आदिवासी पारधी लोकांना काबूत आणणारा जन्मतःच गुन्हेगारीचा कायदा लागू करतो. या कायद्यानुसार बाभूळवन, शिंदवन, मोहाची जंगलं या ठिकाणी राहणाऱ्या आदिवासी पारध्यांना बंदिस्त करून एकमेकांच्या हातापायांना बांधून हंटरनं मारत आणून त्यांच्याकडून रात्रंदिवस जंगलातील झाडं कापण्याचं आणि रेल्वेमार्ग टाकण्याचं काम करून घेतात. हातभट्टीच्या दारूधंद्यामुळे पारध्यांची दिवसेंदिवस चांगली प्रगती होते. पारध्यांची हातभट्टीच्या दारूधंद्यामुळे होत असलेली प्रगती तसेच पारधी शेतकऱ्यांच्या जमिनी विकत घेतात

वडार वेदना या कादंबरीत नेऊळी गावातील श्रीमंत साहेबराव पाटलाचा वाडा बांधण्याचे काम शंकर व त्याचे भाऊ करतात. वाड्याचे काम पूर्ण झाल्यावर पाटील शंकर व तापाप्पा यांच्या कामाचा हिशोब बरोबर देत नाही. त्यांच्या अज्ञानाचा

फायदा घेऊन त्यांची फसवणूक करतो. फसवणूक होऊनही शंकर, तायाप्पा यांना नेऊळी गावात राहायचे असल्याने ते भांडणतंटा न करता पाटलाने काढलेला हिशोब कबूल करतात. पाटील शंकरला तुझ्या मुलाला बांधकामाची कला शिकविल्यास गावात तुम्हाला खाण्यापिण्याची कमी पडणार नाही असे सांगतो. तसेच स्वतःच्या मुलाला शाळा शिकवून मोठा ऑफिसर करणार असल्याचे सांगतो. यातून पाटलाची धूर्त नीती, कावेबाजपणा लक्षात येतो. पाटलाच्या या बोलण्यावरून गरिबाने गरीबच रहावे आणि श्रीमंतांनी आणखी श्रीमंत होऊन गरिबांच्या अज्ञानाचा फायदा घ्यावा. त्यांची फसवणूक करावी हेच स्पष्ट होते.

गोठण या कादंबरीत चंदनच्या आजोळी नानाच्या तांडयात बाळा महाराजांचे आगमन होते. बाळा महाराज हे रूढीप्रिय असूनही तांड्यातांड्यांना तारखा देऊन समाजाला काहीतरी सांगण्यासाठी हिंडत आहोत असा देखावा करतात. असे असूनही अनेक तऱ्हेचे अज्ञानी, भक्तिहीन भाविक, गावंढळ, अंधविश्वासू लोक महाराजांच्या स्पर्शाने पापक्षालन होते या जाणिवेने त्यांच्या भोवती गराडा घालतात. महाराज उपदेश देऊन नवसाचे पैसे घेऊन तांड्याला लुटून जातात. लमाण तांड्यातील लोकांचे अज्ञान यातून व्यक्त होते.

निष्कर्ष :

१. भटक्या विमुक्त लेखकांच्या कादंबऱ्यांतून भटक्या विमुक्त समाजाच्या आणि संस्कृतीच्या अन्योन्यसंबंधाचा प्रत्यय येतो.
२. भटक्या विमुक्तांना जगण्याच्या सर्व पातळ्यांवर संघर्षात्मक जीवन जगावे लागते.
३. कायमस्वरूपी उत्पन्नाचे कोणतेही साधन नसल्याने पोटासाठी सतत भटकंती करावी लागते.
४. कोणत्याही गावाच्या गावंदरीत म्हणजे हागणदारीत पालं ठोकून राहावे लागते.
५. भटक्या विमुक्तांचे जीवन म्हणजे दारिद्र्य, शोषण, अज्ञान, अंधश्रद्धा, गुन्हेगारी, व्यसनाधीनता आणि असहायता यांचा मिलाफ असतो.
६. भटक्या विमुक्त जाती-जमाती अज्ञानात, अंधश्रद्धेत जीवन जगतात.

समारोप :

लेखक ज्या प्रकारच्या समाजात वावरतो त्या समाजाच्या जीवनव्यवहारांचा त्यांच्यावर परिणाम पडत असतो. भटक्या विमुक्त लेखकांच्या कादंबऱ्यांतून भटक्या विमुक्त समाजाच्या आणि संस्कृतीच्या प्रत्यय येतो. भटक्या विमुक्तांना जगताना नेहमी अनेक अडचणींना तोंड द्यावे लागते. कायमस्वरूपी उत्पन्नाचे कोणतेही साधन नसल्याने पोटासाठी सतत भटकंती करावी लागते. कोणत्याही गावाच्या गावंदरीत म्हणजे हागणदारीत पालं ठोकून राहावे लागते. दारू पिणं, भांडण, मारामाऱ्या, कलकल हे त्यांच्या जीवनाचे अविभाज्य भाग असतात. असुरक्षित जीवनामुळे भटक्या विमुक्तांच्या बायका-मुलींवर बलात्कार होतात. कधी कधी परिस्थितीमुळे त्यांना कुटुंबाच्या उपजीविकेसाठी परपुरुषांशी अनैतिक संबंध ठेवावे लागतात. भटक्या विमुक्त जाती-जमाती अज्ञानात, अंधश्रद्धेत जीवन जगतात. त्यामुळे त्यांच्या जीवनात नवससायास, यात्रा, लग्न, मृत्यू, सण-उत्सव, बालविवाह, जातपंचायत या रीती परंपरांना अनन्यसाधारण महत्त्व असते. या रीती-परंपरातून त्यांच्या सामाजिक आणि सांस्कृतिक जीवनाचा समूहनिष्ठ आविष्कार व्यक्त होतो. याचे चित्रण भटक्या विमुक्त लेखकांच्या कादंबऱ्यांतून अभिव्यक्त होते. या कादंबऱ्यातून भटक्या विमुक्त जाती-जमातींच्या जगण्यातील सामाजिक वास्तव मांडले आहे. ज्यामुळे त्यांना जीवन जगात असतात समाजामध्ये कोणत्या स्वरुपाची वागणूक मिळते याचीही जाणीव होते, यावरून त्यांचे सामाजिक स्थानही नोंदवता येते.

साधनग्रंथ सूची :

१. गायकवाड लक्ष्मण, २००९ : *उठाव*, दिलीपराज प्रकाशन, पुणे, द्वि. आ.

२. गायकवाड लक्ष्मण, २००६ : *वकिल्या पारधी*, मॅजेस्टिक प्रकाशन, मुंबई, द्वि. आ.
३. गायकवाड लक्ष्मण, २००४ : *वडार वेदना*, परचुरे प्रकाशन, मुंबई, द्वि.आ.
४. जाधव प्रकाश, २००९ : *तिम्मा*, स्पर्श प्रकाशन, पुणे, प्र. आ.
५. जाधव सरदार, २००८ : *कोयता*, जनशक्ती बुक्स अॅण्ड पब्लिकेशन, औरंगाबाद, द्वि.आ.
६. नलावडे रामचंद्र, २००९ : *प्रहार*, पायल पब्लिकेशन, पुणे, प्र.आ.
७. पवार अशोक, २०११ : *इळनमाळ*, लोकवाङ्मय गृह, मुंबई, द्वि. आ.
८. पवार अशोक, २०१० : *दर कोस दर मुक्काम*, मनोविकास प्रकाशन, पुणे, प्र.आ.
९. पाटील नागनाथ, २००९ : *लम्बाडी*, जनशक्ती वाचक चळवळ, औरंगाबाद, द्वि.आ.
१०. मोरे दादासाहेब, २००१ : *अंधाराचे वारसदार* मेहता पब्लिशिंग हाऊस, पुणे, प्र. आ.
११. राठोड रावजी, २००७ : *गोठण* शब्दालय प्रकाशन, श्रीरामपूर, प्र. आ.

संदर्भग्रंथ :

१) जोशी महादेवशास्त्री, १९६८ : *भारतीय संस्कृतीकोश* ९, भारतीय संस्कृती मंडळ, पुणे, प्र. आ.
२) गाडगीळ गंगाधर, २००३ : *खडक आणि पाणी*, उत्कर्ष प्रकाशन, पुणे, ४थी आवृत्ती
३) अत्रे त्रि. ना., २०१३ : *गावगाडा*, सरिता प्रकाशन, पुणे चौथी आवृत्ती
४) चव्हाण रामनाथ, २०१३ : *भटक्या विमुक्तांचे अंतरंग*, सुगावा प्रकाशन, पुणे
५) चव्हाण रामनाथ, २००२ : *भटक्या विमुक्तांची जातपंचायत, देशमुख आणि कंपनी पब्लिशर्स, पुणे प्र. आ.*

"स्वातंत्र्यलढ्यामध्ये आदिवासी भटक्या जमातींचा सहभाग"

प्रा. अश्विनी रामचंद्र खवळे
विवेकानंद कॉलेज, कोल्हापूर (स्वायत्त)
Email – ashkhavale10@gmail.com

सारांश –

भारतीय स्वातंत्र्य लढ्याचा व क्रांतिकारी चळवळीचा अभ्यास करताना असे लक्षात येते की, भारताच्या स्वातंत्र्य लढाईमध्ये आदिवासी भटक्या जमातीचे योगदान महत्वपूर्ण आहे. भारतीय स्वातंत्र्याचा इतिहास आदिवासी भटक्या जमातीचा उल्लेख केल्याशिवाय पूर्ण होत नाही. भारताच्या स्वातंत्र्य युद्धाचा इतिहास जर सुवर्ण अक्षराने लिहायचा असेल तर आदिवासी क्रांतिकारकांचा इतिहास समाजासमोर येणे आवश्यक आहे. आदिवासी भटक्या जमातींनी आपले प्राण पणाला लावून देश स्वतंत्र करण्यासाठी केलेला संघर्ष, उठाव व त्यासाठी केलेले बलिदान आपणास स्वातंत्र्य लढ्याची साक्ष देतात परंतु आदिवासी हुतात्म्यांची, वीरांची इतिहासाने योग्य ती नोंद घेतली नाही. त्यामुळे आदिवासी भटक्या जमातींनी स्वातंत्र्य लढ्यासाठी दिलेले योगदान अथवा दिलेले बलिदान जनतेच्या समोर मोठ्या प्रमाणात आलेले नाही आणि म्हणूनच दुर्लक्षित राहिलेल्या आदिवासी भटक्या जमातीतील क्रांतिकारकांचे योगदान सर्वांसमोर येणे आवश्यक आहे. यामुळे भारतातील स्वातंत्र्यलढ्यामध्ये आदिवासी भटक्या जमातीचा दिलेल्या योगदानाचा मोलाचा वाट आहे व त्यांच्यासुद्धा प्रेरणादायी गौरवशाली ऐतिहासिक वारसाची ओळख सर्वांना होईल.

बीज शब्द- स्वातंत्र्य, आदिवासी, इतिहास, भटके.

प्रस्तावना –

१७ व्या शतकाच्या पूर्वार्धामध्ये इंग्रजांनी भारतात व्यापाराच्या निमित्ताने शिरकाव केला व त्यानंतर जवळपास १५० वर्षांने म्हणजेच १७५७ मध्ये झालेल्या प्लासीच्या लढाईत विजय मिळवून भारतात ब्रिटीश सत्तेची मुहूर्तमेढ रोवली व अल्पावधीतच ब्रिटिशांनी संपूर्ण भारतावर आपले वर्चस्व प्रस्थापित केले.

इंग्रजांनी भारतात सत्ता स्थापन केल्यानंतर भारतात कायद्याचे राज्य आणावयाचे व हे कायदे ब्रिटीश कायद्यासारखेच असतील हे धोरण कंपनी सरकारने स्विकारले. ब्रिटिशांनी विविध जमीन महसुलाच्या पद्धती सुरु केल्या. उदाहरणार्थ कायमधारा पद्धत, महालवारी पद्धत व रयतवारी पद्धत इत्यादी. ब्रिटिशांनी सारा वसुलीची सक्तीची धोरणे स्वीकारली, आदिवासींच्या जमिनीवर कर बसवले तसेच जंगलातील उत्पादनावर आपला अधिकार प्रस्थापित केला. आदिवासी भटक्या जमातीवर अन्याय व अत्याचार करावयास सुरुवात केली त्यामुळे संतप्त झालेल्या आदिवासी जमातींनी इंग्रजांच्या विरोधात उठाव करण्यास सुरुवात केली. छोटा नागपूर परिसरातील कोलाम, चुआर, ओडीसातील गोंड, महाराष्ट्रातील कोळी, भिल्ल, रामोशी, बिहार मधील संथाल, छोटा नागपूर येथील मुंडा इत्यादी आदिवासींनी मोठ्या प्रमाणात ब्रिटीशांच्या विरोधात उठाव केले. भारतीय स्वातंत्र्य लढ्यामध्ये अनेक क्रांतिकारी आदिवासी भटक्या जमातीचा सहभाग होता. त्यांनी प्रारंभीच्या काळात इंग्रजांच्या विरोधात दाखवलेल्या शौर्य, पराक्रम व बलिदानाचा इतिहास नक्कीच प्रेरणादायी आहे.

उद्दिष्टे –

भारतीय स्वातंत्र्यलढ्यातील आदिवासी भटक्या जाती व जमातीच्या योगदानाचा अभ्यास करणे व वंचित राहिलेल्या आदिवासी क्रांतिकारकांच्या चळवळींचा ऐतिहासिक आढावा घेणे.

स्पष्टीकरण -

भारताच्या स्वातंत्र्याच्या लढ्यामध्ये आदिवासी जमातीचे योगदान महत्वपूर्ण ठरलेले आहे. आदिवासी भटक्या जमातींनी स्वतःच्या प्राणांची स्वतः पर्वा न करता देशाच्या स्वातंत्र्य लढ्यामध्ये केलेला संघर्ष किंवा दिलेले बलिदान त्यांच्या स्वातंत्र्य लढ्याची आपल्याला साक्ष देतात. १८५७ मध्ये जो पहिला विद्रोह झाला त्याला प्रथम स्वातंत्र्य युद्ध म्हटले जाते त्यामध्ये अनेक क्रांतिकारकांचे योगदान आहे याशिवाय अनेक क्रांतिकारी जाती जमातीसुद्धा सक्रीय होत्या. त्यामुळे या उठावामुळे ब्रिटीश यंत्रणा पूर्णत: हतबल झाली होती.

साधारणत: आदिवासी भटक्या जमातीतील लोक म्हणजे जंगलात राहणारे लोक अशी आजही एक धारणा आहे. परंतु जंगलामध्ये राहणाऱ्या अशिक्षित लोकांमध्ये देखील देशाविषयी असणारे प्रेम, त्यांचा त्याग व दिलेले बलिदान तसेच स्वातंत्र्य लढ्यात दिलेले बलिदान आपल्याला त्यांच्या देशभक्तीची साक्ष देतात. स्वातंत्र्य लढ्यासाठी इंग्रजांविरोधात प्रारंभीचे जे लढे झाले ते आदिवासी जमातींनीच दिलेले आहे याची इतिहासात नोंद आहे. इंग्रजांबरोबर संघर्ष करून अनेक आदिवासी क्रांतिकारकांनी स्वतःच्या प्राणांचे बलिदान दिलेले होते.

१९ व्या शतकामध्ये ब्रिटिशांनी अनेक आदिवासी राज्य खालसा केली आणि देशातील अनेक भागांमध्ये त्यांचा आदिवासी भटक्या जमातीसोबत संघर्ष सुरु झाला. अनेक आदिवासी प्रदेशामध्ये ब्रिटीश कार्यपद्धती सुरु केली गेली. या नवीन कार्यप्रणालीमध्ये साहजिकच एकूण आदिवासी भटक्या जमातींना आणि त्यांच्या मुखीयांना सत्ता आणि साधनसामुग्रीला मुकावे लागले. त्यांनी ब्रिटिशाविरोधात बंड केले. अनेक 'मोसिअनिक' चळवळी देशात बंडखोर भविष्यवाद्यांनी जागोजागी उभ्या केल्या. आणि आपल्या अनुयायांना दिलासा दिला कि, ते परकीयांना हुसकावून लावतील आणि सुवर्णयुग परत आणतील. पुन्हा आपले राज्य स्थापन करणे आणि आदिवासींची संस्कृती आणि संघटना कायम टिकवणे हे त्यांचे ध्येय होते.

के. एस. सिंग यांनी आदिवासी चळवळीचे तीन स्वरुपात विभाजन केले आहे. पहिला टप्पा १७९५ – १८६० यामधला ब्रिटीश साम्राज्याचा उदय, विस्तार आणि स्थापना यांच्याबरोबर तो काळ जुळून आला. दुसरा टप्पा १८६० – १९२० मधील टप्पा वसाहतवादाशी जुळून आला. याच काळात व्यापारांनी ओतलेल्या पैशामुळे आदिवासींची अर्थव्यवस्था भेदून त्यांच्या जमिनी आणि जंगल यांच्याशी असलेल्या नातेसंबंधावर त्याचा परिणाम झाला. तिसरा टप्पा आहे १९२० पासून १९४७ मध्ये स्वातंत्र्य प्राप्त होईपर्यंत या काळात आदीवासींनी विभाजन चळवळींना नुसतीच सुरुवात केली नाही तर राष्ट्रीय आणि जमीनविषयक चळवळीमध्ये भाग घ्यायला सुरुवात केली.

भारतीय समाजव्यवस्थेवर ब्रिटीश राजवटीचे बरेच बरे–वाईट परिणाम झालेले दिसतात. १७६० – १७७० च्या दरम्यान बिहार मधील चुआर उठाव प्रारंभ होण्याचे कारण दुष्काळ, वाढलेला भूमिकर आणि इतर आर्थिक संकटांमुळे मिदनापूर जिल्ह्यातील आदिवासी असलेल्या चुआरांनी धादकाचा शाम गंजन, कालीपाल आणि दुबराजाचा सुबला सिंह, दुर्जनसिंह यांच्या नेतृत्वाखाली उठाव केले तसेच कोल उठाव हा १८३१ मध्ये रांची, सिंहभूम, हजारीबाग, पलामू, मानभूम या क्षेत्रांमध्ये बुध्यो भगतच्या नेतृत्वाखाली झाला होता. हो आणि मुंडा उठाव १८२० ते १८३७ च्या काळात झालेले होते. राजा परहतच्या नेतृत्वाखाली सिंहभूम व छोटा नागपूर हि ठिकाणे इंग्रजांद्वारे हस्तगत केल्याने हा उठाव करण्यात आला होता. बिरसा मुंडा हे एक आदिवासी क्रांतिकारक होते. भारतीय स्वातंत्र्यलढ्यात ह्या आदिवासींच्या संग्रामास इतिहासात मोठे स्थान प्राप्त करून देण्याचे श्रेय बिरसा मुंडा यांनाच दिले जाते.

बिरसा मुंडा यांनी विविध जमातींच्या गटांना एकत्र करून त्यांना इंग्रजी सत्तेविरुद्ध लढण्यास प्रेरित केले. इंग्रज सरकारने ३ फेब्रुवारी १९०० ला विद्रोहींचे ठिकाणे उध्वस्त केले व बिरसा मुंडा यास अटक केली. त्यांच्यासोबत जवळपास ४६० आदिवासी युवकांनाही अटक करण्यात आली होती.

संथालचे बंड १८५५ – ५६ मध्ये सुरु झाले ज्यामध्ये राजमहाल जिल्यातील संथालांनी आपला संताप व्यक्त करीत सिदो व कान्हू या दोन भावांच्या नेतृत्वाखाली घोषणा केली की देश आपल्या ताब्यात घेऊन कंपनीची सत्ता नष्ट करतील परंतु ब्रिटीश सरकारने मोठ्या लष्करी कारवाईनंतर १८५६ मध्ये स्थिती नियंत्रणात आणली.

महाराष्ट्राच्या भूमीत इंग्रजांना पहिला हादरा आद्यक्रांतिवीर उमाजी नाईक यांनी दिला. जनतेवर वाढणारे इंग्रजांचे अत्याचार जुलूम पाहून उमाजी नाईक ने इंग्रजांविरुद्ध बंड पुकारले. १४ वर्षे इंग्रजांना सळो कि पळो करणारे पहिले क्रांतिकारक म्हणून त्यांच्याकडे पाहिले जाते व ते १८३१ मध्ये ब्रिटीशांच्या हाती सापडले.

१८१९ मध्ये भिल्लांनी सुद्धा आपले नवे स्वामी इंग्रजांविरुद्ध बंड केले. यात प्रामुख्याने कन्हैया, चिल्या, जीवा, रामसिंग, वसावा, उमेडसिंग, कुवरसिंग, काझीसिंग (खाज्या नाईक), भीमा नाईक, भागोजी नाईक अशा अनेक ज्ञात – अज्ञात वीरांनी बलिदान दिले. भिल्लच्या शेजारी कोळ्यांमध्येसुद्धा इंग्रजांच्या बद्दल असंतोष होता त्यांचे किल्ले इंग्रजांनी उध्वस्त केले होते. १८२९, १८३९ व १८४४ मध्ये कोळ्यांचे बंड झाले पण त्यांचेही दमन करण्यात आले.

इंग्रज सरकार आणि त्यांची प्रशासनप्रवृत्ती यामुळे रामोशी समाज हि अस्वस्थ झाला होता. १८२२ मध्ये त्यांचा सरदार चितरसिंह याने सातारच्या आजूबाजूचा प्रदेश लुटला व १८२५ – २६ आणि १८२९ पर्यंत ह्या प्रदेशातील वातावरण अस्वस्थतेचे होते. १९१४ – १९२० मध्ये जतरा भगत व बलराम भगत यांनी ताना भगत आंदोलनाचे नेतृत्व केले.

अल्लुरी सीताराम राजूंनी ब्रिटीशांच्या विरोधात आदिवासींमध्ये जागृती निर्माण करून ब्रिटिशांपासून भारताला स्वतंत्र करण्यासाठी आदिवासी समाजाला संघटीत केले आणि ब्रिटीशांच्या विरोधात रम्पा उठाव केला (१९२२–१९२४). सीताराम राजुंच्या क्रांतिकारी सहकाऱ्यामध्ये बिरैय्या डोरा याचे नाव प्रसिद्ध आहे. ७ मे १९२४ रोजी इंग्रजांसोबत झालेल्या चकमकीमध्ये अल्लुरी सीताराम राजू व अनेक क्रांतिकारक यांचा मृत्यू झाला.

मणिपूर येथील नाग आंदोलनाचे नेतृत्व जादोनांग करीत होता. हे आंदोलन इंग्रजविरोधी आंदोलन असल्याने इंग्रजांनी जादोनांगला अटक करून २९ ऑगस्ट १९३१ मध्ये फाशी दिली. पुढे ह्या आंदोलनाचे नेतृत्व १६ वर्षीय गाइदिन्ल्यूकडे आले. कालांतराने हे आंदोलन राष्ट्रीय स्वातंत्र्य चळवळीमध्ये सहभागी झाले. ऑक्टोबर १९३२ मध्ये इंग्रजांनी गाइदिन्ल्यूला अटक केली. भारताला स्वातंत्र्य मिळाल्यानंतर तिची कैदेतून सुटका झाली. जवाहरलाल नेहरू यांनी तिचा 'राणी' असा उल्लेख केला तेव्हापासून तिला राणी गाइदिन्ल्यू म्हणून ओळखले जाते. १९४२ मध्ये जयपूर राज्यातील कोरापूर येथे लक्ष्मण नाईक यांच्या नेतृत्वाखाली उठाव करण्यात आला होता.

अशाप्रकारे भारतीय स्वातंत्र्यलढ्यातील वरील जे उठाव अथवा चळवळी झालेल्या आहेत त्यांच्या अभ्यासावरून आपल्याला असे सांगता येईल की, स्वातंत्र्याच्या संग्रामामध्ये आदिवासी भटक्या जमातीचा सहभाग हा अतिशय महत्वपूर्ण आहे तसेच ब्रिटीश शासनकाळातील आदिवासी भटक्या जमातींची आंदोलने ही सर्व आंदोलनामध्ये अधिक निरंतर, आतंकी व हिंसक होती हे आपणास दिसून येते.

संदर्भसूची –

१. डॉ. ग्रोव्हर.बी.एल, आधुनिक भारताचा इतिहास, एस चंद एन्ड कंपनी लि, नवी दिल्ली
२. अहिर राजीव २०१९, आधुनिक भारत का इतिहास, स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा. लि, नई दिल्ली
३. शहा घनश्याम, भारतातील सामाजिक चळवळी, डायमंड पब्लिकेशन, सुधारित द्वितीय आवृत्ती २०११
४. माने लक्ष्मण, विमुक्तायन, यशवंतराव चव्हाण प्रतिष्ठान, मुंबई १९९७

'नाथपंथी डवरी गोसावी' जमातीचे प्रतिनिधित्व करणारी 'देशोधडी'

डॉ. पल्लवी कोडक
श्री शहाजी छत्रपती महाविद्यालय, कोल्हापूर

सारांश

नाथपंथी डवरी गोसावी हा समाज मूळचा महाराष्ट्रातला असून ते आपली जन्मभूमी सांगली-सातारा भागात असल्याचे सांगतात. या समाजाला महाराष्ट्रात काही भागात जोगी तर काही भागात नाथपंथी किंवा डवरी गोसावी या नावाने ओळखतात. भगवे धोतर, अंगात भगवा शर्ट, गळ्यात खैलिशैलशिंगी, गळ्यात रुद्राक्षाची माळ, चंदनाचे पोळ, हातात डमरू अडकवलेले त्रिशूल असा या लोकांचा भिक्षा मागण्याचा अवतार. हे लोक स्वतःला नाथपंथीय संन्यासी म्हणून घेतात. भिक्षा मागताना डमरू अडकविलेले त्रिशूळ घेतात म्हणून ते आपली ओळख दमरू किंवा डवरी गोसावी अशी सांगतात. या समाजातील पुरुष मंडळी किंवा जाणती मुलं असा वेश घालून भटकत असतात. यांच्या स्त्रिया प्रपंच सांभाळण्याचं काम करतात. भिक्षा मागण्याच्या उद्देशाने हे लोक सतत गावोगावी भटकत असतात. त्यांच्याबरोबर त्यांच्या बायका पोरांचीही सतत भटकंती होते. या समाजात अनैतिकतेला थारा नाही असे सांगितले जाते. तसेच या समाजाने परंपरेने चालत आलेले काही विचित्र प्रथाही जपलेल्या दिसतात. या समाजातील प्रथा वेगळी आहे हे लोक हिंदू धर्मीय असले तरी प्रेताचे दहन न करता सर्रास दफन करतात. हा नाथपंथी डवरी गोसावी समाज परंपरागत अनेक विचित्र रुढी-परंपरा उराशी बाळगून भिक्षेवर जगतो आहे.

बीज शब्द- नाथपंथी, डवरी गोसावी, समाज, देशोधडी.

प्रस्तावना :

सृष्टीतील सर्वात महत्त्वाचा घटक म्हणजे मनुष्य. मनुष्य हा बुद्धिजीवी प्राणी आहे. तो स्वतःचा आणि इतर समुदायाचाही विचार करतो. अर्थात हा विचार सुखदु:खांशी निगडीत असतो. त्यासाठी प्रत्येकाला अनेक कृती कराव्या लागतात. त्या कृती करत असताना तो समाजाचा विचार नक्की करत असतो. त्यातूनच मग नीती - अनीतीचा विचार येतो. प्रत्येक कृती करत असताना ती योग्य की अयोग्य, त्या कृतीमागील विचार चांगला की वाईट इत्यादी प्रश्नांची चर्चा आपण नेहमी करीत असतो. साहित्य हा समाजाचा आरसा असतो असे म्हणून आपण साहित्यातून समाजाचे दर्शन होते असेच सांगत असतो. म्हणून साहित्यातून व्यक्त होणारा समाज आणि त्या समाजाने अंगीकृत केलेली मूल्यव्यवस्था महत्वाची ठरते. कथा, कविता, कादंबरी, नाटक, चरित्र, आत्मचरित्र, आत्मकथन या साहित्य प्रकारच्या आधाराने लेखक समाजाचे चित्रण ललित स्वरुपात वाचकाला उपलब्ध करून देत असतो. म्हणून साहित्यिकाने मांडलेले जीवन व त्यातील समाज याला सामाजिक, सांस्कृतिकदृष्टीने महत्व नक्कीच प्राप्त होते. प्रस्तुत लेखात नारायण भोसले लिखित देशोधडी या आत्मकथनातून व्यक्त झालेले 'नाथपंथी डवरी गोसावी' या भटक्या जमातीचे होणारे चित्रण मांडण्याचा प्रयत्न केला आहे.

उद्देश :

१. आत्मकथन या साहित्य प्रकाराचे स्वरूप समजावून घेणे.
२. भटक्या विमुक्त जाती जमातींचे सामाजिक जीवन अभ्यासणे.
३. भटक्या विमुक्त जाती जमातींच्या व्यवसाय आणि उपजीविकेच्या साधनांचा अभ्यास करणे.
४. नारायण भोसले देशोधडी या आत्मकथनाचा अभ्यास करणे.
५. 'नाथपंथी डवरी गोसावी' जमातीचे होणारे चित्रण देशोधडी आत्मकथनाच्या माध्यमातून अभ्यासाने.

संशोधन पद्धती :

प्रस्तुत संशोधन लेखाची मांडणी करण्यासाठी समाजशास्त्रीय संशोधन पद्धतीचा तसेच नारायण भोसले यांनी त्यांच्या आत्मकथनात मांडलेल्या आशयाचा, अनुभववविश्वाचा अभ्यास करण्यासाठी प्रामुख्याने वर्णनात्मक, मानसशास्त्रीय समीक्षा पद्धतीचा अवलंब केला जाईल.

भटक्या-विमुक्त जाती जमातींचे सामाजिक जीवन, व्यवसाय व उपजीविकेची साधने :

भारतीय समाजामध्ये अनेक जाती पोटजातीच्या लोकांचा समावेश आहे. प्रत्येक जात ही वेगळी असून त्या पोटजातीचे जीवन जगणे देखील भिन्न स्वरूपाचे आहे. या जातीमधील गावगाड्याच्या परिघाबाहेर जगणाऱ्या भटक्या-विमुक्त जाती या अनेक वर्षापासून स्वतःच्या उपजिविकेसाठी भटकत आहेत. आजही महाराष्ट्रातील भटक्या-विमुक्तांच्या बेचाळीस जमाती आणि त्यांच्या शेकडो पोटजाती पाहायला मिळतात. अशा या जाती-जमातींना स्वतःचा गावगाडा, निवाऱ्यासाठी ठिकाण नसते. आपले पोट भरण्यासाठी मात्र गावोगाव भटकंती करावी लागते. भटके म्हणजे परदेशी परके किंवा चोर भामटे अशा दृष्टीने पूर्वीपासून गावगाड्याने त्यांच्याकडे पाहिले व त्याचप्रमाणे त्यांना वागणूक दिली गेली. परिणामी भटक्या जमातींचे लोकजीवन किंवा संस्कृती गावगाड्याच्या परिघाबाहेरची संस्कृती म्हणूनच ओळखली जाऊ लागली. या भटक्या जमातीला स्वतःचा असा पारंपरिक व्यवसाय होता. त्यामुळे त्यांचा मात्र संबंध व्यवसायाच्या निमित्ताने थेट गावगाड्याशी आला. उदा. कैकाडी बुरुड फोका पासून व बांबूपासून पाट्या टोपल्या तयार करत असत. त्यामुळे त्यांचा थेट संबंध गावाशी यायचा. अशा भटक्या विमुक्त जमातींची त्यांच्या व्यवसायात अथवा उपजीविका करण्याच्या पद्धतीनुसार खालीलप्रमाणे वर्गीकरण करता येते.

भटक्या आणि विमुक्त जमातींची त्यांच्या व्यवसायानुसार अथवा उपजीविका करण्याच्या पद्धतीनुसार खालीलप्रमाणे वर्गवारी करता येईल :

१. *देवाच्या नावाने जगणारे- गोंधळी, वाघ्यामुरळी, रावळ, आराधी, जोगती-जोगतिणी, मरिआईवाले, भोपे, गोसावी, बैरागी.*

२.*पशुपालक जमाती- गोपाळ, दांगट, मैराळ, गोल्ला, डवरी गोसावी.*

३. *कलावंत जमाती- डोंबारी, कोल्हाटी, मदारी, गारूडी, नंदीबैलवाला, दरवेशी, रायरंद, बहुरूपी, कठपुतळीवाला, माकडवाला, मारवाडी भाटी.*

४. *भविष्य सांगणाऱ्या- मेढंगी, तिरमाळी, कुडमुडे जोशी, ठोकेजोशी, वासुदेव, मनकवडे, पिंगळा जोशी, डमरूवाले जोशी, सरोदे.*

५. *शिकार करणाऱ्या जमाती- पारधी, भिल्ल, फासेपारधी, चित्तर पारधी, हरण पारधी, वैदू.*

६. *व्यवसाय करणाऱ्या जमाती- छप्परबंद, शिकलगार, कैकाडी, वडारी, कुंचीकोरवा, ध्यारे कंजर, वाघरी, बेलदार, घिसाडी, काशीकापडी, ओतारी, गाडीलोहार, रमण्या, वैदू, राजगोंड (आदिवासी), स्मशान जोगी.*

७.*जातींच्या मागत्या जमाती- डक्कलवार (मातंगांचे मागते) रायरंद (महारांचे मागते).*

८. *शारीरिक कष्टाची कामे करणारे- वडार, लमाण, बेलदार, गाडीवडार, मातीवडार.*

९. *अन्य मार्गाने उपजीविका करणारे- कंजारभाट, पारधी, राजपूत आणि भामटा* (चव्हाण रामनाथ : २००२ : वीस)

ज्या जमातींना स्वतःचा व्यवसाय होता किंवा उपजीविकेचे साधन होते त्यांचा संबंध गावगाड्याशी आला. पण ज्या जमातींना उपजीविकेचे साधन उपलब्ध नव्हते त्या मात्र पोटासाठी वेगवेगळ्या मार्गाने चोऱ्यामाऱ्या करून स्वतःचा उदरनिर्वाह करू लागल्या. या भटक्या जमातीमधील नाथपंथी डवरी गोसावी ही एक जमात आहे. नाथपंथी डवरी गोसावी हा समाज मूळचा महाराष्ट्रातला असून ते आपली जन्मभूमी सांगली-सातारा भागात असल्याचे सांगतात. या समाजाला महाराष्ट्रात काही भागात जोगी तर काही भागात नाथपंथी किंवा डवरी गोसावी या नावाने ओळखतात. भगवे धोतर, अंगात भगवा शर्ट, गळ्यात खैलिशैलशिंगी, गळ्यात रुद्राक्षाची माळ, चंदनाचे पोळ, हातात डमरू अडकवलेले त्रिशूल असा या लोकांचा भिक्षा मागण्याचा अवतार. हे लोक स्वतःला नाथपंथीय संन्यासी म्हणून घेतात. भिक्षा मागताना डमरू अडकविलेले त्रिशूळ घेतात म्हणून ते आपली ओळख दमरू किंवा डवरी गोसावी अशी सांगतात. या समाजातील पुरुष मंडळी किंवा जाणती मुलं असा वेश घालून भटकत

असतात. यांच्या स्त्रिया प्रपंच सांभाळण्याचं काम करतात. भिक्षा मागण्याच्या उद्देशाने हे लोक सतत गावोगावी भटकत असतात. त्यांच्याबरोबर त्यांच्या बायका पोरांचीही सतत भटकंती होते. नाथपंथी डवरी गोसावी या समाजाचे मुख्य कुलदैवत काल भैरवनाथ हे असून त्याची गुरु गादी सोनारी येथे उस्मानाबाद जिल्ह्यात असल्याचे सांगितले जाते. या समाजात अनैतिकतेला खारा नाही असे सांगितले जाते. तसेच या समाजाने परंपरेने चालत आलेले काही विचित्र प्रथाही जपलेल्या दिसतात. या समाजातील प्रथा वेगळी आहे हे लोक हिंदू धर्मीय असले तरी प्रेताचे दहन न करता सर्रास दफन करतात. हा नाथपंथी डवरी गोसावी समाज परंपरागत अनेक विचित्र रुढी-परंपरा उराशी बाळगून भिक्षेवर जगतो आहे. एकंदरीत या समाजाचे वेगळेपण भिक्षा मागणे हाच प्रमुख व्यवसाय किंवा जगण्याचं प्रमुख साधन असलेला आपल्याला दिसून येतं. या भटक्या विमुक्तांनी आपल्या जगण्यातील संघर्षांची मांडणी आत्मकथनातून केल्याचे दिसते. मराठी साहित्यात भटक्या विमुक्तांच्या आत्मकथनांनी मोलाची भर घातली आहे. या आत्मकथनाच्या माध्यमातून भटक्या विमुक्तांच्या सामाजिक जीवनाची मांडणी आपल्या समोर येते. मराठी आत्मकथनांच्या मालिकेत भटक्या विमुक्तांच्या आत्मकथनांची नोंद घेणे महत्वाचे ठरते. यामध्ये आयरणीच्या घना - वैजनाथ कळसे, उचल्या - लक्ष्मण गायकवाड, उपरा - लक्ष्मण माने, कोल्हाट्याचं पोर - किशोर काळे, गबाळ - दादासाहेब मोरे, तांडा - आत्माराम राठोड, दगडफोड्या - रामचंद्र नलावडे, बिराड - अशोक पवार, बेरड - भीमराव गस्ती, मरणकळा - जनाबाई गिऱ्हे, पारधी - रमेश काळे, दैना - भास्कर भोसले, कॉलनी - सिद्धार्थ पारधे, झोळी - कालिदास शिंदे या आत्मचरित्रांच्या बरोबरच देशोधडी हे नारायण भोसले यांचे आत्मचरित्र भटक्या-विमुक्तांच्या आत्मचरित्रात महत्त्वपूर्ण असलेले पहावयास मिळते. या आत्मचरित्रातून व्यक्त झालेले नाथपंथी डवरी गोसावी या भटक्या जमातीचे समाजजीवन पाहणे हा या लेखाचा उद्देश आहे. पण देशोधडीतून व्यक्त झालेले या जमातीचे चित्रण करण्यापूर्वी आत्मकथन या संकल्पनेची थोडक्यात मांडणी करता येईल.

आत्मकथन स्वरूप :

सुरुवातीच्या काळात आत्मकथनांना आत्मचरित्रेच समजले गेले परंतु आत्मचरित्र व आत्मकथन या दोहोंतील भूमिका भिन्न असल्याने जसे जसे अभ्यासकांना जाणवू लागले तसे तसे आत्मकथनाकडे एक स्वतंत्र वाङ्मय प्रकार म्हणून पाहिले जाऊ लागले. जेव्हा उपेक्षित, दलित, भटक्या आदिवासींनी आपला अनुभव लिहिण्यास सुरुवात केला तेव्हापासूनच 'आत्मकथन' हा शब्दप्रयोग मराठी साहित्यात रूढ झाला.

भारतीय समाजरचनेच्या व्यवस्थेमुळे निर्माण झालेल्या दुराव्याचे भान ठेवून आत्मकथने लिहिली गेली. जीवनातील समस्यांची गुंतागुंत; त्यातून मनात उसळणारा वेदनासागर जन्मापासून सोसलेला, भोगलेला असल्यामुळे त्याचे आविष्करण आत्मकथनातून झाले.

आपल्या भोवतालचा दुःखी समाज, अस्वस्थ दलित जग आत्मकथनामधून आविष्कृत होते. या संदर्भात मराठी साहित्याचे अभ्यासक डॉ. गंगाधर पानतावणे म्हणतात कथन सातत्याचे प्रतीक आहे, तर कथेला शेवट असतो. ती पूर्णत्वाचा प्रत्यय देते, कुठे तरी थांबते; आत्मकथनाचा प्रवास मात्र सुरूच असतो. दृष्टीने विचार करू जाता दलित आत्मकथन संज्ञा अधिक अर्थपूर्ण अन्वर्थक आहे. आपल्या जीवनात दुःख भोगले, भटकंतीमुळे वाट्याला आले त्याचे चित्रण आत्मकथनात पाहावयास मिळते. आपल्या अनुभवाशी प्रामाणिक राहून, आपण कसे घडत गेलो याचे निवेदन दलित आत्मकथनकार करतो. भूतकाळात कोणते अनुभव आले त्यामधून आपली प्रतिक्रिया नोंदविता आपल्या केवळ मानसिक जखमाच उघड करतो. त्यामुळे दलित आत्मकथनामधील दुःख सामाजिक पातळीवर जाऊन पोहोचते. त्यामुळे कथन समाजाचे प्रातिनिधिक कथन असते. 'मी' जगणे व्यक्तीगत राहत नाही तर त्याला 'आम्ही' चे स्वरूप प्राप्त होते. याच स्वरुपाची मांडणी भटक्या विमुक्तांच्या आत्मचरित्रातून झाली आहे. आत्मकथन म्हणजे आत्मचरित्र नाही किंवा कथा, कादंबरी नाही, तर रूढ अर्थाने प्रयोजन, प्रकृती व परिणाम याबाबतीत ती प्रचलित आत्मचरित्राहून वेगळी ठरतात.

यानंतर *देशोधडी* या नारायण भोसले यांच्या आत्मकथनातून आलेले नाथपंथी डवरी गोसावी समाजाचे चित्रण पाहता येईल.

देशोधडीतील समाज जीवन आणि नाथपंथी डवरी गोसावी जमात :

नाथपंथी डवरी गोसावी ही जमात महाराष्ट्रातील असून भारतभर भटकंती करते. राहायला गाव नाही, घर नाही. तथाकथित संस्कृतीचा, जात पंचायतीचा, देवदेवतांचा, प्रथा परंपरेचा, स्वतःच्या अनेक वाईट कृत्यांचा या जमातीला अभिमान आहे. शिक्षणाच्या बाबतीत मात्र हा समाज मागे आहे. मुळातच शिक्षणाची वानवा असलेल्या या जाती जमातीत स्त्रियांचे शिक्षण तर दूरच आहे. आधुनिकेतेशी आणि शिक्षणाची जागृती असणारी नवी पिढी शिकत आहे. पण त्याचेही प्रमाण अत्यल्प असलेले दिसते. नारायण भोसले हे याचे उत्तम उदाहरण आहे. या शिक्षणाच्या संदर्भात त्यांनी एक आठवण सांगितली आहे. ती अशी, *एप्रिलच्या शेवटी शाळेचा रिझल्ट येई. मी पहिली पास झालो होतो व आप्पा दुसरी पास झाला होता. आप्पाही शिकायला चांगला होता. त्याचे लिहिणे-वाचणे नजरेत भरण्यासारखे होते. पहिलीला एकच पुस्तक असे, दुसरीला दोन पुस्तके असत, तिसरीला तीन पुस्तके असत, व चौथीला चार पुस्तके असत. म्हणून, त्याकाळी 'मुलगा-मुलगी किती बुकं शिकला-शिकली?' असे म्हटले जाई व त्याच्या उत्तरात 'हा आमचा मुलगा-मुलगी दोन बुकं शिकला-शिकली, तीन बुकं शिकला-शिकली, चार बुकं शिकला - शिकली,' असे म्हटले जाई.* (देशोधडी : २०२१ : ७८) शिक्षण घेतानाही त्यांना अनेक अडचणींना सामोरे जावे लागे. याचाच उल्लेख वरील प्रसंगातून येतो. या शिक्षणाच्या संदर्भात नारायण भोसले यांची आजी एक गीत म्हणते त्यातून येणारी पिढी शिकते आहे अशी भावना व्यक्त होताना पहावयास मिळते. ते गीत असे,

आप्पा दुसरी पास झाला आणि मी पहिली पास झालो. आज्जी म्हणालीच,

'ग्यानाचा दिवा आज पेटला, अंधार तो पळाला.

पाषाणाखाली जिव्हाळा दिसला, डोळ्यांत मला मळा दिसला.

सटवीचं अक्षर वाचनारा आला, स्वतःला घडविनारा सुरव्या जन्मला.

वारुळातल्या मुंग्या मोजनारा आला, सगळा हिशेब सांगनारा आला.

दोनवर एक निराळा, घेऊन आला तिसरा डोळा.'

कधी कुठं न ऐकलेले विचार तिच्या तोंडून आम्हाला ऐकायला मिळत. (देशोधडी : २०२१ : ४६)

शिक्षणाच्या संदर्भातली आजीची भावना यातून व्यक्त होते आजीला अभिप्रेत आहे की, आता हिशोब सांगायला दुसऱ्या कोणाची गरज नाही तर आपल्या कुटुंबात आता शिकेली नवी पिढी आकाराला येत आहे.

काही मुलं शिक्षण घेऊन नवे विश्व उभे करत आहेत. देशोधडीमध्ये मायलेकींची भेट, सगेसोयरे यांना जर भेटायचं असेल तर ते कोठे भेटतात. एखादा व्यक्ती नातलग जर मयत झाला तर त्याची बातमी नातेवाईकाना अनेक वर्षानंतर समजते.आता काळ बदलला पण काही वर्षाच्या पाठीमागे आपण गेलो असता या गोष्टीची शक्यता आपल्याला नक्कीच जाणवते. काही यात्रेच्या निमित्ताने भटकंती करणारी ही जमात एकत्र येते, तेव्हा त्याच्या आठवणीना वाट करून दिली जाते. आज हा समाज बऱ्यापैकी स्थिर होण्याचा प्रयत्न करतो आहे. शिक्षण घेतलेले लोक स्थिर होताना दिसत आहेत. त्यांच्याजवळ घर, शेती, नोकरी असेलेली दिसते. शिक्षण घेतल्यानंतर त्यांना जो अनुभव आला तो अनुभव त्यांनी मांडायला सुरवात केली. आपल्या जातीच्या इतिहासाच्या संदर्भातली मांडणी नारायण भोसले यांनी आपल्या देशोधडी मध्ये मांडली आहे. यासंदर्भातील अनेक प्रसंगाची मांडणी देशोधडीमध्ये आली आहे.

देशोधडीच्या शीर्षकाबद्दल नारायण भोसले म्हणतात, *पाल-मोगाळ तंबू देणं, पाल-मोगळाचे तंत्र समजून घेणं, पाल देताना चारी बाजूला पसरून ठेवणं, पालाची आडवी पंधरा फुटाची व उभी दहा फुटाची लांबी रुंदी यांचा अंदाज घेऊन पाल उभं करणं, अढी-मेढी-बारा खुट्यांसाठी खाणाखुणा करून त्या पसरलेल्या पालासह उभं करणं, खुंटे रोवण्यासाठी दगड-हातोडा वापरणं, पाल बाया- वादळानं उपटून निघणार नाही याची विशेष काळजी घेणं, एका दिसासाठीचं उकिरडयातील उकिरासारखं पसरलेलं सामान पालात लावणं, गोणी नीट ठेवणं अशी कामे करत-करत चुलीसाठी तीन दगड आणणं, ते दगड विशिष्ट*

आकाराचे-उंचीचे आहेत का नाहीत, स्वच्छ आहेत का नाही ते बघणं, तीन दगडांची चूल तयार करणं, त्यासाठी काट्याकुट्यांचं मिळंल तसं जळण सरपण गोळा करणं, जिथं मुक्काम पडला हाय तेथून कोणाच्या कुपाडीच्या किंवा गावंदरीला कावळ-काटक्या स्वयंपाकासाठी गोळा करणं, पायांत पायतन असो किंवा नसो त्याची फिकीर न करणं, पाणी शोधून काढणं, पाणी शेंदून घेणं, त्यासाठीचा कासरा-दावं सोबत नेणं, अवघड अशा अनोळखी विहिरी-बारवात उतरणं, जीव वाचवून पाणी घेऊन बाहेर येणं, अशी कामं नियमितपणानं करणं तिला जड जाई. (देशोधडी : २०२१ : ५९) नाथपंथी डवरी गोसावी या जमातीतील लोकांचे जीवन कसे व्यापले आहे ते या आत्मकथनात प्रकर्षाने जाणवते. पाल आणि या पालासाठी वापरलेल्या मेंढे त्यांच्या भाषेत आड मेढदी बाराखुड्यांची म्हटलं जातं.

नाथपंथी डवरी गोसावी समाज हा भिक्षेकरी आहे. देवाच्या नावाने भिक्षा मागतो. आणि त्या प्रत्येक देवतेची एक स्वतंत्र कथा आहे. भिक्षा मागत पुढे-पुढे जात असताना हा समाज गाव सोडून इतर प्रांतात जसे बिहार, नेपाळ, आंध्रप्रदेशपर्यंत भिक्षेसाठी प्रवास करत गेलेला दिसतो. या प्रवासात अनेकांचे जन्म होतात. ती मुल मोठीही होतात.यासंदर्भातील एका प्रसंगाचा उल्लेख नारायण भोसले करतात. ते म्हणतात, *माझ्या मोठ्या शंकर नावाच्या भावाचा, म्हणजे आप्पाचा, जन्म बामणीला झाला, तर माझ्याहून लहान भावाचा, म्हणजे दत्ताचा, जन्म आंध्र प्रदेशातील राजबंद्री येथे भटकंतीत असताना एका तळ्याच्या काठाला आई दसऱ्याचं धुणं धुताना झाला. तर माझ्या आठ भावंडाचा जन्म भारतातील दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र आणि कर्नाटक राज्यांमधल्या विविध भागांत झाला. त्यामुळे 'आम्ही सारे बांधव भारतीय आहोत' असे म्हणण्यासाठीची पात्रता आम्ही सार्थ धारण करत आहोत. (देशोधडी : २०२१ : १७)* भटकंती दरम्यान जन्म झाल्याचा आणि कोठे जन्म झाला याचा उल्लेख ते करतात. म्हणजे ठिकाण नसलेल्या जाती जमातींच्या बाबतीत हे विधान केलेले पहावयास मिळते.

भटक्या जाती जमाती अनेक वर्षांनंतर ज्यावेळेस गावी यात्रेच्या निमित्ताने एकत्र येतात. त्यावेळी अनेक सुखदुःखाच्या आठवणी निघतात. या आत्मकथनात नारायण भोसले यांनी यात्रेसंदर्भात सांगतात ते म्हणतात की, *चैत्राच्या महिन्यात भिक्षाटनाला गेलेली माणसे दहा-बारा महिन्यांनी आपापली आर्थिक स्थिती पाहून युपी, बिहार, बंगाल, दिल्ली, आसाम, केरळवरून भिक्षा मागून गावी येत असत. गावातील पन्नास-साठ कुटुंबांतील किमान एक एक करून कुटुंब मोठी गाबाळं डोक्यावर घेऊन येत. त्यात संसाराच्या चीजवस्तू असत. भांडी, घागरी, पाल-काठी, अंथरूण असे, कपडे असत. देव-देव जत्रा खेत्रा करण्यासाठी वर्षभराची रोकड असे. या चैत्र-वैशाखाच्या महिन्यांची संपूर्ण गावालाही आशा असे. कारण, या काळात एवढ्या बिन्हाडाला भाजीपाला, दूध, दही, अंडी दररोजच्या चीजवस्तू लागत. यांची दुकाने दोन-चार महिन्यांची कमाई करून जात, तर जमाती वर्षभराची कमाई घालवून बसत.* (देशोधडी : २०२१ : ४६) यात्रा ठरलेल्या दिवशी आखितिला सोलापूर जिल्ह्यातील माळशिरस तालुक्यात नातेपुते येथे भरते. त्यामध्ये नाथपंथाची म्हणजे भैरवाची यात्रा भरते. तिथे हा समाज एकत्र जमतो. आता हा समाज मुंबईमध्ये झोपडपट्ट्यांमध्ये कुठे कुठे स्थिर होतो आहे. शिकलेल्या समाज स्थिर होतो आहे. हा समाज पोलिसांना मात्र खूप घाबरतो, कारण पोलीस नको नको ते प्रश्न विचारून हैराण करतात. या जमातीचे स्वरूप बदललेले दिसते. भटकंती करत हा समाज महाराष्ट्रातून हिमालयाच्या पायथ्यापर्यंत जाताना बघायला मिळतो. हा समाज भिक्षा मागत असताना किती लांब पर्यंत भटकत होता हे दिसून येते

लेखक आपल्या जातीच्या नामकरणाविषयी म्हणतात, *आमचे मूळ गाव कोणते माहीत नाही, कोणाचा जन्म पाकिस्तानातला, कोणाचा मृत्यू नेपाळमध्ये, तर कोणाचं लग्न दिल्लीत, मुल झाली आंध्रप्रदेशात ! मूळ शोधूनही सापडणार नाही. निसर्गातल्या नदीसारखी उगमाची अनिश्चिती आणि आडव्या-तिडव्या प्रवाहाची व्याप्तीच जणू! या बामणी गावात आमचे पूर्वज कोठून आले माहीत नाही! पण सांगायला गाव बामणी, तालुका सांगोला, जिल्हा सोलापूर. नाही म्हणायला या गावात आमचे पणजोबा लक्ष्मण व त्यांचे वडील रत्नू कुठून तरी इ. स. १८०० शेच्या आसपास आल्याचे वृद्धांकडून समजते. तशी आमची मूळ जात-जमात कोणती हेही कोणाला छातीठोकपणे सांगता येणार नाही. नाथाची पूजा करतो म्हणून 'नाथपंथी', शंकराचा डवर*

वाजवतो म्हणून 'डवरी', अन अंगावर गोसाव्या सारखा भगवा पेहराव असतो म्हणून 'गोसावी'. एकत्रित मिळून 'नाथपंथी डवरी गोसावी'! (देशोधडी : २०२१ : १९) याप्रकारे त्यांनी आपल्या कुलाच्या उत्पतीविषयी विवेचन केले आहे. पाच लाख लोकसंख्या असणाऱ्या या जमातीमधील एक टक्यापेक्षाही कमी शिक्षणाचं प्रमाण आहे. फक्त दहा ते वीस स्त्रिया नोकरी करत आहेत. काही स्त्रियांच्या गीतांचा व कवनांचा उल्लेख आलेला आहे. लेखक स्वतः म्हणतात की, माझी आजी, आई ही वेगवेगळ्या कारणांनी गीत म्हणत असत. लग्नसमारंभासाठी पालावर जाऊन गीत गाईले जाई.

अंधश्रद्धेच्या माध्यमातूनही अनेक प्रसंगांची मांडणी देशोधडी आत्मकथनाट झाली आहे. नारायण भोसले शकून अपशकून या संकल्पनांच्या संदर्भात लिहितात. ते म्हणतात की, *त्याकाळी जमातींत आणि बिऱ्हाडांत शकुन-अपशकून खूपच मानले जात. आपल्या मिळकतीत आलेल्या विघ्नाला हे अपशकुनच जबाबदार आहेत, असेच त्यांना वाटत होते. 'मांजर आडवे जाणे, अचानक कावळ्याने शिवणे, विधवा स्त्री आडवी जाणे, अस्पृश्य मनुष्य दिसणे-आडवा जाणे, पाटी-खोऱ्या घेऊन जाणारा मनुष्य आडवा जाणे, रिकामी घागर घेऊन जाणारी कोणी स्त्री, कोणीतरी हटकने, टिटवीचे केकाटणे, मयत आडवे जाणे, अशा गोष्टी म्हणजे भयंकर काहीतरी घडण्याची चाहूल मानली जात होती. परदेशी म्हणजे माणदेश सोडून भिक्षेला जाताना कोणी परका माणूस, अस्पृश्य माणूस आडवा गेला, तर आपण परकं होऊ, अस्पृश्य होऊ म्हणून अपशकून मानत. पाटी-खोऱ्या घेऊन कोणी आडवा गेला, तर आणखीनच आक्रीत घडणार, असं मानलं जातं होतं. मृत्यूच्या वेळी प्रेत पुरण्यासाठी असाच पाटी खोऱ्या लागतो म्हणून हा आपल्यासाठी अपशकून आहे असं मानलं जाई. विशेषतः गावातील विधवा, परित्यक्ता, मुलं होत नसलेली बाई आडवी जाणे म्हणजे वैधव्य येईल, पोरवडा वाढणार नाही असं मानून यांचा अपशकून सर्वच गाव मानीत असे. शकुनांबाबतीतही पाण्याची भरलेली घागर आडवी गेली तर भरभराट म्हणजे चांगली भीक मिळेल म्हणून शुभ मानली जात होती. या भिक्षेकरी समुदायात तर शकुन, अपशकून यांमुळे अनेक प्रकारच्या घटना घडल्या असे मानले जाई. मांगजातीचा शुभशकुन मानला जात असला, तरी मांग आमच्या गावात नव्हते. एक बिऱ्हाड आले, पण ते फार उशिरा, नंतर आले.* (देशोधडी : २०२१ : ९३) यामुळे यांच्यात अनेक अंधश्रद्धा मानल्या जात होत्या. भटका विमुक्त समाज जरी भटकंती करीत असला आर्थिकदृष्ट्या मागास असला तरी तो अन-टचेबल (अस्पृश्य) मात्र तो नव्हता. तर हाच समाज अस्पृश व्यक्ती समोरून गेला तरी अपशकून मानायचा.

'देशोधडी' ही नारायण भोसले यांच्या जीवनाची आधी-अधुरी कहाणी आहे. पूर्ण कहाणी पुढील दोन भागात येणार आहे. दुसऱ्या भागाचे शीर्षक आहे 'अनाथपंथी' व तिसरा भाग आहे, 'भटक मरो मत कोय' हे दोन भाग नोकरी मिळाल्यानंतरच्या आयुष्याचे आहेत. वर्तमान काळावरील भूतकाळाच्या परिणामाचे विश्लेषण, तारुण्याच्या आयुष्यातील जातवर्गलिंगभाव जाणवेविषयीची उकल तसेच भटक्या जातसमूहांच्या संबंधाच्या ताण्या-बाण्याविषयीचे अनुभव आहेत. भटके-विमुक्त जागतिकीकरणाच्या परिणामाविषयी विश्लेषण त्यातील राजकारण याची माहिती या आगामी दोन खंडात नारायण भोसले मांडली आहे.

निष्कर्ष :

१. देशोधडी आत्मकथनामध्ये नाथपंथी डवरी गोसावी समाजाच्या भटकेपणाची, अस्थिरतेची, परावलंबी जगण्याची मांडणी नारायण भोसले यांनी केली आहे.
२. नारायण भोसले यांनी देशोधडीमध्ये भिक्षेकरी असलेल्या नाथपंथी डवरी गोसावी समाजाचा इतिहास आणि समाजजीवनाची उकल केली.
३. या आत्मकथनातून नारायण भोसले या व्यक्तीच्या जीवनाचे, त्यांच्या कुटुंबाचे, त्यांच्या जमातीविषयीचा लेखाजोखा मांडला आहे.
४. या आत्मकथनातून भिक्षेकरी असणाऱ्या आणि भटकंती करीत असताना विविध प्रदेशातील वास्तव्यानिमित्त आलेल्या विविध अनुभवांचा उल्लेख नारायण भोसले करतात.
५. या आत्मकथनतून नाथपंथी डवरी गोसावी समाजाच्या दैनंदिन जगण्याचे कथन आलेले आहे.

६. नाथपंथी डवरी गोसावी समाजातील लोक शिक्षण घेवू शकले नाहीत. शिक्षणाअभावी त्याच्या वाट्याला आलेले दुःखही या आत्मचरित्रातून नारायण भोसले मांडतात.

संदर्भग्रंथ :

१) भोसले नारायण , २०२१ : *देशोधडी*, मनोविकास प्रकाशन, पुणे, आक्टोंबर २०२१
२) चव्हाण रामनाथ, २०१३ : *भटक्या विमुक्तांचे अंतरंग,* सुगावा प्रकाशन, पुणे
३) चव्हाण रामनाथ, २००२ : *भटक्या विमुक्तांची जातपंचायत, देशमुख आणि कंपनी पब्लिशर्स, पुणे प्र. आ.*

Unheard Voice of Subaltern in Kishore Shantabai Kale's *Against All Odds*

Dr. Kavita Tiwade,
Assistant Professor,
Head, Department of English,
Vivekanand College, Kolhapur (Autonomous)

Dr. Salama Maner,
Assistant Professor,
Department of English,
Vivekanand College, Kolhapur (Autonomous)

Abstract

Subaltern refers to the group that is marginalized from society's established structures. It refers to any person or group of inferior rank or subordinate because of race, class, gender, sexual orientation, ethnicity or religion. The Kolhati in Maharashtra was migrated from Rajasthan. The tribe used to earn their livelihood by performing jugglery and acrobatic acts, Women from these communities earn their livelihood by dancing in the stage shows and men enjoy their earning lavishly for that Kolhati community roamed from one place to another. The present paper is an attempt to study unheard voice of subaltern women of Kolhati tribe in Kishore Shantabai Kale's *Against All Odds* translated by Sandhya Pandey**.** Kishore Kale's mother was a Tamasha dancer and had to go through several problems at various levels. Through his autobiography Kishore has drawn the picture of the Kolhati community, the sufferings of the women in the hands of their father and society as well. The girls from kolhati are initiated in the progression at a young age. The initiation is conducted by tying of the ghungroo, after this they are not allowed to get married. They are expected to be under the patronage of a woman whom they called Malak. The writer has narrated all the sorrows and sufferings of the Kolhati tribal women that was wondering in the darkness of suppression, exploitation and deprivation. The writer heard the unheard voice of subaltern women of Kolhati tribal women.

Keywords: Subaltern, Marginalization, Kolhati, tribe, Tamasha, double identity, Marxism, newly born women,

Introduction:

The rise of Subaltern consciousness emerged in 19th century .After that it was come out with peasants and tribal challenging the exploitative British regime and movements for socio-religious reforms. The rise of consciousness and clarity about the Subaltern, self-identity occurred vis-à-vis the development of modern socio-cultural, economic and political relations in the society. Subsequently, there was a documentation and crystallization of social categories and sub-categories based on class, caste, religion, gender, language and region. In 1991 economic reforms policy was also a turning point in the identity politics of the Subalterns. During the history of modern India, most of the oppressed and exploited social groups were identified against the background of the means of new socio-economic, as well as, political structures, nation-making and spread of modernistic principles. Subaltern consciousness is also reflected in literary forms. In the academic context, Subaltern Studies made an attempt to foreground social categories that were at the receiving end of a range of power structures at different locations of the Indian subcontinent. Based on Antonio Gramsci's views and opinions, Subaltern Studies offered many interdisciplinary methods to investigate and analyse the consciousness and voices of disagreement of 'Subaltern social categories'. The most visible research on this subject date backs to 1982 with the work of Ranajit Guha and his associates, who were inspired by Gramsci's use of the term 'Subaltern'. Subaltern Studies has been pioneered by historians such as Ranajit Guha, Partha Chatterjee,

Gayatri Chakravorty-Spivak, Dipesh Chakrabarty, Gyanendra Pandey, Gyan Prakash, Susie Tharu, David Hardima, Gautam Bhadra and Sumit Sarkar (who later left the group), to name a few. They have produced a rich and complex body of work that continues to be thought-provoking. Ranajit Guha used the concept of 'Subaltern' for oppressed, excluded and marginalized groups, using newer methods to narrate their 'Subaltern Movements in India: Issues and Challenges'. The Subaltern Studies group adopted E. P. Thompson's framework of 'history from below' and Antonio Gramsci's philosophy to create new philosophical understandings, conceptual tools and methodological systems for documenting the socio-economic exploitation of Subaltern group.

"Subaltern refers to the group that is marginalized from society's established structures. It refers to any person or group of inferior rank or subordinate because of race, class, gender, sexual orientation, ethnicity or religion. Some thinkers used it is general sense to refer to marginalized groups and the lower classes 'person rendered' a person rendered without agency by his or her social status." (Young 2003)

The term adopted by Marxist philosopher and theorist, Antonio Gramsci to refer to these groups in society who are under the hegemony of ruling elite class. Gramsci used the term subaltern to underline an inferior or subordinate place in terms of class, caste, gender and culture. Some scholars are of the opinion that Gramsci used the term synonym for proletariat possibly as a code word in order to get his writings past prison censors while others believe 'his usage to be more nuanced and less clear out Morton, 'The subaltern Genealogy of a concept.'' The term Subaltern is being used as a reference to colonized people in the South Asian subcontinent and it now encompasses an area in the study of Culture, History, Geography, Sociology, Anthropology and Literature. All those who were denied access to hegemonic power such as peasants, laborers, workers and such other groups were considered as Subaltern classes.

The present paper examines the autobiography Against All Odds by Kishore Shantabai Kale. As Morris said in his book "The subaltern as women cannot be heard or read" (Morris 63)

The objectives of the present paper:

1) To study Unheard Voice of Subaltern in *Against All Odds*
2) To know the life of Nomads in general and Kolhati tribe in particular through the *Against All Odds*.
3) To study power politics in Kolhati tribal community

Hypothesis of the research paper:

The present research paper is hypothesizes that in India Nomadic tribes are subaltern at various levels. Kishore Shantabai Kale is one of the writers who narrate the sad tale of Kolhati women, who was fighting for their rights. Against All Odds is about operation, humiliation, depression of Kolhati women. If the readers succeed in understanding the sufferings of the Kolhati women and opposed the system of Kolhati community and educated them, can solved the problem of Kolhati tribe.

Scope and Limitations of research paper:

The aim of present paper is to explore the sufferings of the women in Kolhati community. The present study will inspire to work for the betterment of the tribes .The research has more scope but the study limits itself to analyze the autobiography, *All Against Odds* by Kishore Shantabai Kale.

Kishore Shantabai Kale's autobiography *Against All Odds*:

The present paper attempt to study Kishore Shantabai Kale's autobiography *Against All Odds* focuses on two of the suppressed and deprived communities of India the Nomadic Tribe and the women. *Kolhatyche Por* is written in 1994 by Kishore Shantabai Kale. The book is translated by Sandhya Pandey. Kishore Kale was the illegitimate son of Shantabai who belongs from Kolhati Community. Kolhati is a Nomadic Tribe found in Maharashtra e.g. Dandewale, Kabutari, Khelkar, Dombari, Kolhati, Banseberia etc in Karnataka, They are name by the name Dombari. The Kolhati in Maharashtra was migrated from Rajasthan. The tribe used to earn their livelihood by performing jugglery and acrobatic acts, Women from these communities earn their livelihood by dancing in the stage shows and men enjoy their earning lavishly. Kishore Kale's mother was a Tamasha dancer and had to go through several problems at various levels. Through his autobiography Kishore has drawn the picture of the Kolhati community, the sufferings of the women in the hands of their father and society as well. The girls from Kolhati are initiated in the progression at a young age. The initiation is conducted by tying of the ghungroo, after this they are not allowed to get married. They are expected to be under the percentage of women whom they called Malak (owner)

Against All Odds deals with the contextual framework of male dominated society, politics and women suffering of Kolhati. R. S. Jain observed the attitude of Kolhati community towards women of Kolhati as 'Girls born in Kolhati community were treated as a public property for entertainment and sexual appeasement by the male in society. Their parents looked at them as unfailing source of income (Jain 57). The girls of the community were trained in dance of the community were trained in dance and music and were forced to entertain men to earn money. The male members of Kolhati led a parasitic life'. They made their sisters and daughters dance but their wives were never allowed to do so. The Kolhati community roamed from one place to another. The abducted any young women they liked.

Kishore Kale has depicted the helpless condition of the women in his community. It turns our attention to two major issues considered by Feminism – Virgin Syndrome (the desire of every male to have a virgin wife, though he himself might have lost his virginity) and the motto of French feminists who talk of the newly born women. The writer reveals the harsh realities of Kolhati community. The weaker section of Maharashtra's Kolhati community, despite being the bread winner of the family is still suppressed by male domination and has to pay the price of being born as women. The French feminist writers such as Julia Kristeva, Luce Irigaray and Helene Cixaus talked about 'newly born women' about women celebrating their body about women who have won back their body. In *Against All Odds* the writer presented a section of women who is in awe of their body. Lacan says 'there are one thousand and one pores in female body and from each pore oozes female language.' But the women of Kolhati community are made silent and not permitted to give voice to their sufferings while the men become the male spectator of its women being exploited. Kolhati women have not right on their life. The Kolhati women are like.

The man said, "This is now bone of my bones and flesh of my flesh, she shakes be called women. Because she was taken out of man and thus are expected to be submissive to men.' (Genesis 2:23)

Kale has become restless to project socio-economical, cultural and political conditions, their stories and exploitation, harassment and deprivation by their high class masters and their own caste as well. He was surprised to see the parents and the relationships with their daughters. He says what kind of relationship was this." I wondered? And Why, why did nobody oppose it?"(Kale 64). The women in the text like JiJi, Shanta, Susheela, Rambha and Baby are the most subaltern women.

Shanta is a dominated character narrated in the present work. She is the eldest daughter of Kondiba Kolhati. She was pulled out of school to bringing money. The tale of Shanta is being decided as a Tamasha dancer because of her beauty. Shanta's father laid a plan and instead of Shanta, he managed to marry another daughter of Shalan with the groom who was selected for Shanta by her grandfather Krushna Kolhati. Shanta was beautiful whereas Shalan was dark and plain. Kodiba thought as a dancer, Shalan could never have attracted men and money the way Shanta would. Such type of a selfish purpose of a father in Kolhati community was presented. Finally Shanta, mother of Kishore Kale sent off to Chandrakalabai's Tamasha Party to learn dance. Tamasha is a traditional form of Marathi theatre, often with singing and dancing widely performed by local or travelling a theater groups within the state of Maharashtra.

The writer felt disgraceful and low on the part of male in Kolhati community. He described the pitiable and pathetic conditions of Kolhati female. The autobiography unfolds the darker side of society that has not been known to many. It shows the exploitation and tragic life of subaltern women in Kolhati community. The ceremony 'Chira Utarna' makes the reader restless from treatment about the vulnerable condition of women. The men paid Kolhati girl a prefixed price fo her virginal to perform the ceremony. Kale writes, "The Kolhati community forces its women to dance to attract male attention. Young teenage virgins are given to men in a ceremony called 'Chira Utarna' with all the trappings of a wedding, but none of its sanctity. The man pays a prefixed price for her virginity." (Kale 4-5)

This kind of degeneration where a father whores as his daughter is unbelievable and unacceptable. The children who take birth through such relationship has rejected by the society. If the child is boy; he has to live the life with the stigma of impurity and illegitimacy. On the other hand if the child is a girl; she has the same fate as her mother. *Against All Odds* is about the plight of writer's own life.

Many a times the dancer is persuaded by the chira malik to give up her dancing, only to resume it a couple of years later, having realized the insecurity of being the 'keep' of a landlord. The writer describes on the predicament of Kolhati girls who are coerced, by the male members of their own families, to live as the mistresses of rich, upper caste married men. That is why most Kolhati children bear their mother's name, a fact that proclaims their illegitimacy and which makes them victims of societal mockery. In this community, a 'good' women is one who selflessly provides for her kinfolk. Kolhati women cannot marry and any 'transgression' of this norm is punishable by the caste panchayat. Kale's mother, Shantabai Kale is 'given' to three affluent men, landlords and moneylenders, in succession. Her first chira malik, a MLA, who abandons her as soon as she becomes pregnant, is the father of the author. As soon as Shanta Kale, the narrator's mother becomes pregnant, Namdeorao Jagtap, abandoned her.

The dominant village people looked her as an object of sexual pleasure. Shanta was harassed by the audience by squeezing her land and touching her. The subaltern women are frequently molested. Women of Kolhati community faces double exploitation, double inequality and double injustice. There is a double jeopardy. They face degradation and even dehumanization as women and as women of Kolhati community. Gender is at the base of their marginalization and subaltern condition.

To fulfill their sexual desire men went to Kolhati's women and with the power of money they exploit and harass kolhati women. Fulfilling their physical needs rich men abandoned Kolhati women. Namdeorao Jagtap was a politician and on the basis of his wealth forced Shanta's father to shower on him Shanta's virginity. He abandoned her after

conception. She gave birth to Kishore – who was called an illegitimate and a hybrid child. Kishore was oppressed, exploited and maltreated and humiliated by the society. After abandoned by Jagtap Shanta forced to join 'tamasha'. She met Krushnrao Wadkar a money lender from Prabhani leaving Kishore behind his grandfather Kondiba and his aunt Jiji because of Wadkar's refusal. The writer learned for his mother's love throughout his life, it also highlights the dilemma, the pain of women who is standing at crosswords to choose between the child and a miserable life and husband or Kaja, Yejman for support.

Shanta's marriage was worsened because Wadkar was a money lender and has bad habits of going to Tamasha and gambling. He lost all his wealth in it. He usually beats Shanta and harasses her physically and psychologically.

Like Shantabai, the writer's aunt Jiji, Baby and Susheela have undergone through the exploitation in the so called male dominated society. Jiji was treated very badly, her father, Kondiba. Jiji had 25 acres of land in her name. She worked in farm but her father always snatched all the earnings from the farm without giving a single rupee to Jiji was paralysed and all family members left her alone in the farmhouse to dies. This is very pitiable and regrettable treatment given to women in Kolhati community. Kishore felt very sorry, sad and observing such a heart breaking and pathetic condition of women, he was haunted with questions like, "Has a women no right to her own life? Is the only aim of air lives to provide a livelihood to air fathers and brothers? Is it sin to be born beautiful women in a Kolhati family? "(Kale 1995)

Shanta's younger sister too coerced by their father into joining a jalsa party at a very young age and the trajectories of their lives are essentially not very different from that of Shanta. Each of them is sexually exploited by different 'yezman' for a couple of years in exchange for regular sums of money given to their father and abandoned when she becomes pregnant.

Kolhati women were subjugated and victimized by their parents well as dominated people of the society. These women never thought of their peaceful and settled life with their husbands. Shanta says, "We have our problems too. Dancers like us are not here ant of choice, but from necessity. We would much rather have husbands and air own homes to live in. But this is the only way our father and brothers and their families can survive. Men like you come to us and persuade us with your charming talk and money to give up dancing, but after a while you tired of us and then we are left to get along as best we can. Like a flower that lost its fragrance, we are thrown out. We lose everything our youth, our families and our dreams. " (Kale 30)

The Kolhati community people not allowed women settled down by marriage because the women were source of income for them. The family members were completely dependent on Kolhati women. Shanta argued with her partner in her painful condition.

You artist ensure that a place and an income to live on before you go off to other women. You begged me to leave the Jalsa party and come and live with you here. I did not change you. You love to taste different flesh every day but I am not that kind of person. You settle me properly and they go where you like. You promised to buy me fields when you brought men were but it is twelve years now and you have still not kept your word. I have lived in this horrible tin shed, worm old and torn sun's. You have wheedled all my gold jewelry from me and gambled it away. You taken everything and now you want me to go? Where do you think I go? How will I look after my children? Give me an income that will support we and a proper roof owner our heads and you can keep as many women as you like." (Kale 31)

The argument of Shanta with Wadkar brought in our notice the critical condition of a tamasha dancer in Kolhati community. Shanta is one of the representatives of Kolhati women who faced every kind of challenges.

Conclusion:

Writer Kishore Shantabai Kale had embraced Buddhism five years ago and wanted his community to give up blind faith and superstitions. His efforts have, however, not gone waste. Now, the Kolhati community wants to educate their children, men have taken up jobs and the number of girls joining tamasha as dancers has reduced for example Rajashri Jamakhedakar, Vaishali Nagarkar, Vatsalabai Kale Kesharbai Ghadage etc are women from Kolhati community, now working as professor, engineer, lawyer.

References:

Kale, Kishore Shantabai. *Kolatyacha Por Against All Odds*, Trans. Sandhya Pandey. New Delhi: Penguin, 2000. Print.

Spivak, Gayatri C. “Can the Subaltern Speak?” In Sugata Bhaduri and Simi

Malhortra eds. *Literary Theory: An Introductory Reader*. n. p. Anthem Press of India, 2010. 263-318. Print.

Krishnaswamy, N. *Contemporary Literary Theory: A Student’s Companion*, Macmillan India Ltd, New Delhi: 2003

Young, Robert J. C. *Postcolonialism: A Very Short Introduction*. New York: Oxford University Press, 2003.

Morris, Rosalind C. ed. *Can the Subaltern Speak? Reflections on the History of an Idea*. Newyork: Columbia university press, 2010

Morton, Stephen. "The Subaltern: Genealogy of a Concept", in *Gayatri Spivak: Ethics, Subalternity and the Critique of Postcolonial Reason*. Malden, MA: Polity, 2007: pp. 96-97

E sources:

"Noted Marathi writer Kale passes away". Zee News. 21 February 2007. Retrieved 19 December 2016.

"A life lived for the community". Indian Express. Retrieved 26 July 2009. Provides a more detailed life sketch of Kale

Deshmukh, Suresh (2015). "Against All Odds : The Unknown World of the Subaltern" (PDF). *Epitome Journals*. **I**.

"Rediff On The NeT: Noted novelist to portray eunuch in Marathi play". www.rediff.com. 20 April 1998. Retrieved 20 October 2020. http://impressions.org.in/jul08/ar_nehaa.html

Nomadic Tribes and Deprived Castes: A Social Perspective

Ms. Madhuri Pawar
Asst. Professor
Department of English
Vivekanand College, Kolhapur (Autonomous)

Abstract:

The present research paper attempts to study the life of Nomadic Tribes and Deprived Caste from a social perspective. It throws light on some vital social, cultural, economical and educational issues regarding them. India is a culturally diverse country in which people live with socio-cultural background. This paper tries to develop a deep insight into their problems because these communities are kept away from social recognition and major developmental program of the state. So that it has created a sort of confusion among them, resulting in various types of problems such as psychological, cultural and social disturbance.

Key Words: Nomadism, Deprivism, Displacement, Malnourishment, stigma etc

Introduction:

India is not only an ordinary country but a democratic country which is based on social and humanistic perspectives. We live in a society which is deeply structured by different communities. Indian constitution has given safeguard to all citizens and focused on different sections of society which considered Castes, Tribes and Backward Classes. They are living with diverse socio-cultural background. Historically, these people had been put under different social categories such as Denotified, Nomadic and Semi Nomadic Tribes. These Nomadic Tribes and Deprived Cates are an integral part of the Indian society. But these tribes have not been included in any of these general categories. These are not just neglected section but complex one. These communities have a long history of marginalization, neglect oppression and colonial rule. If we think about the condition of these communities, their problems are not only grounded in today's world but also deeply rooted in history.

History:

The history tells that 31 August is celebrated as 'Vimukt Jati's' day in India. After de notification in 1952, 200 communities were included in it, which came from diverse social background. As a result, inhuman caste practices led many social groups to embrace a nomadism. Their way of life perceived as a challenge to the modern state by British Colonial rulers. They have suffered injustices at the hands of the society, as these communities were on the move as cattle- grazers, transporters, food grains, musicians, mat-basket sellers, fortune tellers. The Colonial state saw itself as conducting a civilizing mission who believed in a fixed society. But they had a troubled experience of nomadism back in their own country. They suppressed these tribes and caste and declared them as 'Criminals' under Criminal Tribes Act(CTA) in 1871. There was no real positive change in their lives because they were stigmatized as criminal communities. They denied their basic rights, right to work, voting etc. These hardships and harassments to these communities adversely affected on their life style and sustenance. The present research paper tries to develop a deep insight into a various problems faced by these communities. The study addressed various socio-economic issues concerning them with a human rights perspective.

Commission Efforts:

The Nomadic Tribes and Deprived Castes are the most neglected and marginalized sections of the Indian society. They are victims of stigma, social negligence and exploitation

for centuries. Even after so many decades of Independence, they lack the most basic amenities of life. After understanding the cruel condition these communities in the early 21st century, the Central Governments made some attempts to bring them under the one administrative category in 2014 and the National Democratic Alliance Government set up a National Commission for these communities. They tried to understand their problems scientifically by consulting experts in the areas of anthropology, sociology, social work, media and social activism. They found the cause for the decline of their traditional occupations, atrocities, human rights, violations and gender issues.

Definitions:

A) **Nomadism:** For the Cambridge International Dictionary of English (1995), the word nomad means, ' a member of a group or people who move from one place to another rather than living in one place all the time.'

B) **Deprivism:** The word deprivism means 'a situation in which people suffer from a severe and damaging lack of basic material and cultural benefits'.

These communities have a traditional- social background in the past and their claim is supported with authentic historical evidence. They have lost each and everything in their life. So they are unprivileged to take advantages of the development programs; their life continues as it is. It shows the large number deprivation from the gains of planned development. These communities in the margin of the political system who don't have any permanent residence, no identification, no voting. As a result, they are known as denizens of the nation without the rights of citizenship. They have been carried a social stigma that is the label ' criminal', 'untouchable' and 'beggar' attached to them.

The present paper focuses on the socio-cultural, economic factors which are reflected on their real level of development of these communities in a given social set up. In order to understand their plight of living, we need to consider their social, cultural, historical and economical background.

1) Language and Religion:

As observed earlier, these communities have their own dialect who converse among themselves in their own language while with others they speak in the popular local common language. Every tribe has their own fixed language for communication in which they speak.

2) Displacement:

It has become a major burning issue of these communities. They are considered to be illegal occupants by Government agencies and communities. And as a result, their families remain under the constant fear of being displaced which resulted in the loss of their live hood and it creates disruption in children's education, disturbance in their day today life and in their mentality. Their live hood requires moving frequently and they become unable to send their children in schools. Instead of going to school, they help to earn money by doing some littl e work, begging on the streets. Therefore, there is need to create a health awareness among them that they will take benefits of Governments facilities.

3) Housing:

Housing is the one of the major concern of these communities for centuries. Most of them have been wandering in the past to earn something for their existence. Most of them had never a home or a settlement after understanding their plight , Government tried to give them

a small places to live but, overall condition is horrible , because they don't have their own houses to live and still keep to survive. That's why it becomes very difficult to live in a small place with 6 to 8 members. Not even they have facilities of drainage system as they use public toilet. They have no access of drinking safe water. These are vulnerable to various infections.

4) Family Pattern:

These families live in a small tents, bands, kinship and community which play a very significant role in their day to day dealings. Their family pattern varies depending upon the live hood pattern of communities. Quite a few of them have joint family pattern and some them have nuclear. Their life becomes very hard and difficult surrounded by the people within their family. The circumstances are full of trauma, violence, agony and turbulence from which they most suffer.

5) Health Problems:

Living in a small place or in a tent with the number of people and having less facilities, they become victim of their health problem. Most of these communities go to Government hospitals for their treatment due to lack of money. They are very poor and have to earn daily income in order to survive, approaching these local Government hospitals which seems always crowded and time consuming. Wasting maximum time in hospitals leads to considerable loss of income. This is why many people have no option to go there.

Some of them have faith in home remedies. A lot of superstitious prevail in these communities. Due to poverty and ignorance, they do their treatment through black magic and jadu tona which creates the various problems of health disorders. Therefore, there is a need to create a awareness about health among them.

6) Economic Aspect:

Their lives depend on the animals. These are the good sources of producing milk, butter, meat and wool etc. Some people indulge in food gathering and collecting foods. Their plight is so worse due to loss of patronage, emergence of new communication and enactment of different laws by the state. Many of them have become 'criminals' in the eyes of law and wider society. As a result, they have taken for begging, prostitution, raw picking and other immoral activities for their existence. They become homeless and dependent on the mercy of others.

7) Human Rights:

These communities have been unprivileged from human rights. Here is need for their development. We need to think more innovatively for providing those 'dignified' live hoods. These communities are subjected to atrocities everyday by society. They have no ration card, not included name in the voters list and not have legal shelters. When they venture out to meet their basic needs, they face daily harassments. They don't have any land or the movable property. In such a dismal scenario, there is the question of demanding basic needs arise for living.

8) **Educational and Occupational Status:**

Education is a mirage to these communities. It appears that these communities are largely illiterate and those who are educated are educated only up to the 10^{th} class. They have poor access to education due to the problem of live hood security and sustenance. Children are victims of earning at early age. They are not motivated to attend the school because of poverty and the lack of citizenry rights. Under the prevailing circumstances, they don't take proper benefits of literacy due to low income.

Majority of the people are poor and they cater to the lower and middle level peasantry. However, today their live hoods have become unlawful because of misplaced and unthoughtful policies. As a result, their traditional occupations have become now demeaning and disrespectful. They are totally away from technical skills, knowledge about environment, medicinal herbs and education.

9) **Violations and Public Atrocities:**

It shows that these communities are victims of stigma and prejudice for centuries. The society is still not ready to accept them as equal. They are labelled as criminals and they are facing the various problems since British Rule. They are subjected to atrocities everyday by the police, civic, revenue administration. Many of these atrocities go unnoticed as they are never reported. Media is the strongest enhancers of stigma which gives wrong reports and it makes readers to believe that these people are criminals by nature.

In a way, they are helpless victims of the wronged past and present due to falsehood by dominant group. Today, the law and revenue are the major culprits in perpetuating violations and atrocities on these communities. So they are disadvantaged in all respects and become an easy prey of these false things. They encounter many a humiliation for their basic needs.

10) Marginalisation:

It is the core of exclusion from fulfilling needs of social lives. They are marginalized who have little control over on their own life. They are stigmatized and have negative public attitudes. So having less opportunity, they make less social contributions and develop less confidence and become isolated. As a result, they get little access of resources such as- education, health services, infrastructure, housing and income. They may experience multiple forms of marginalization that are racism, sexism, poverty that always have been neglected by the society and may face huge discrimination in access to public places. They are unprivileged from hotels, canteen, cinemas, shops and malls so on. The exclusion and discrimination have badly affected on their lives. Consequently, it has resulted in dropping out of school, leaving their jobs, not good facilities etc.

Conclusion:

In this way, it has been estimated that the South Asia has known as the world's largest Nomadic Tribes and Deprived Caste who really hard worker and courageous. They undertake maximum burden of their societal practices on their live hoods. It shades light on their most horrible conditions due to the stigma and the community evil practices. The social neglect, discrimination and prejudiced attitude of mainstream society which make them the most marginalized in society.

REFERENCES:

1) Balland, D. " Nomadism and Politics: The Case of Afgan, Nomads in the Indian Subcontinent" Studies in History, 1991

2) Balkrishna Renke Report of 'National Commision for Denotified, Nomadic and Semi-Nomadic Tribes', Ministry of Social Justice and Empowerment, Govt. of India, 2008

3) Dreze, J. " For Basic Education to All" Frontline :India, 1999

Akhila, a Nomad: Exploring the Element of Nomadism in Anita Nair's *Ladies Coupe*

***Ms. Supriya Mohan Patil**
Assistant Professor
Department of English
Vivekanand College, Kolhapur (Autonomous)
****Dr. Shruti Joshi**
Assistant Professor
Department of English
Vivekanand College, Kolhapur (Autonomous)

The spirit of man is nomad, his blood Bedouin, and love is the aboriginal tracker on the faded desert spoor of his lost self; and so I came to live my life not by conscious plan or prearranged design but as someone following the flight of a bird.

- Lauren Van Der

Abstract

Anita Nair is one of the leading Indian English novelists known for raising many crucial issues in her novels and making bold statement regarding them. With the publication of *Ladies Coupe* (2001) the world of literature started taking note of her. This novel has been translated in more than 25 languages both regional and international. The novel is a communion of the central character Akhila with other five women in the ladies coupe of a train to Kanyakumari. As the novel majorly deals with women characters, it has mostly been discussed as a feminist novel. Through the major part of the novel Akhila is searching answer to a question: Can women lead a happy life on their own or they need a male partner? Akhila finds the answer during the journey to Kanyakumari. The nomadic element appears as the motif in many of Nair's novels. In the present novel it becomes even more significant as it helps to solve the question in the mind of Akhila. The present research article tries to explore the character of Akhila and appreciate the nomad in her.

Key Words: Nomad, nomadic, nomadicism, patriarchy, escape, wandering.

Introduction:

Ladies Coupe is Anita Nair's most famous and well acclaimed novel. It was published in 2001 and it placed Nair among the leading Indian English novelists. The novel has been received in a very well manner all around the world. Still it has mostly been critically

discussed as a feminist novel. But it stands apart from the run of women's novels. The present research article tries to explore the element of Nomadism.

Anita Nair

Anita Nair is mostly discussed as a feminist writer who writes about women and their problems. She is sometimes called a regional novelist as she is among the few Indian English writers who brought the colours of South India especially Kerala into fiction. M. K. Naik while defining Nair's place in Indian English literature states, "Anita Nair's first novel, *The Better Man* (1999), is a welcome change from the hackneyed East-West encounter theme. It is perhaps, the only novel written by a woman which is not about an Indian woman; nor is it freely peppered with incest." (98) Her novels have been translated into around twenty five languages; both regional and international. She received Kerala Sahitya Akademi Award in 2012. She has also been honoured with Arch of Excellence Award by the All India Achievers' Conference, New Delhi for Literature and FLO FICCI Women Achievers Award in 2008 for Literature. *Mistress* was in the long list for the Orange prize for fiction for 2008 and *Idris: Keeper of the Light* was shortlisted for The Hindu Literary Prize in 2014

Research Gap

. Nair is a versatile writer whose writing is preceded by a thorough research of the content and she experiments with the narrative structures. Despite this her writing has not been discussed from various perspectives. Nair has mostly been discussed from the perspective of feminist theories and only occasionally from other concerns like depiction of caste system, marriage or human relationships. The present research article will analyse the novel from the perspective of Nomadism.

Hypothesis and Objectives:

The hypothesis of the present research article is the following: **The central character of Ladies Coupe accepts being a nomad to escape the patriarchal society**. And the objectives of the present research paper are as follows:

- To discuss the basic terms like Nomads, Nomadic and Nomadism.
- To Analyse *Ladies Coupe* from the perspective of Nomadism.
- To explore the nomad as a motif in Nair *Ladies Coupe*

Nomadic Tribes in India

British Colonial State in India passed an Act in 1971 under which millions of nomadic communities were declared criminals and were put under continuous surveillance. In 1952 a denotification act was signed and around 200 'Criminal Tribes' were included in ST, SC and OBC categories. In India these Nomadic tribes are mostly found in the arid, hilly areas with dense forests like Western, Deccan and mountain areas in the North India. Nomadic Tribes have been choosing these areas in order to escape the caste prone main stream community in India. These tribes had a nomadic way of living which was totally different from the mainstream society. The Modern British State of the pre-independence time found it a challenge and hence declared these tribes criminal. One major part of British complacency was their 'civilizing mission'. They found themselves supremely civilised and took the responsibilities to teach civil ways of living to the societies in their colonies. The present Research paper, instead of doing a diachronic study of the Nomadic Tribes in India, uses Nomadism as a perspective to analyse Anita Nair's novel *Ladies Coupe.*

Nomad, nomadic and Nomadism

Nomad is a noun. It refers to a member of the nomadic tribe or a person with specific traits of living. The following definitions from some good dictionaries will explain the term nomad well. Cambridge dictionary defines nomad as "a person moving from one place to another rather than living in one place all of the time". Your Dictionary website defines nomadic as, "a person or people who are part of a tribe or group that moves from place to place without a permanent home." Webster's dictionary defines a nomad as "a member of a people who have no fixed residence but move from place to place usually seasonally and within a well-defined territory. **The Encyclopaedia Britannica defines Nomadism as the following:**

> **Nomadism {is}** a way of life of peoples who do not live continually in the same place but move cyclically or periodically…..and involves a total change of habitat. Nomadism does not imply unrestricted and undirected wandering; rather, it is based on temporary centres whose stability depends on the availability of food supply and the technology for exploiting it.

Considering the above mentioned definitions of nomad, nomadic and Nomadism the following pointers regarding become clear:

1. Nomads are people who want to escape their social and harsh environmental conditions.

2. They deny settlement, instead they want to wander.

3. Their thinking process, driving forces and appearance is governed by the law of safeguarding survival.

4. Nomads live in and with nature.

5. In India nomads wandered to escape the brutal discriminating caste system or harsh geographical conditions like floods or famines

Ladies Coupe: A synopsis

The protagonist of the novel *Ladies Coupé* (2001) is a forty year old unmarried woman called Akhilandeshwari alias Akhila. After the death of her father, Akhila is forced to shoulder the responsibilities of the family but she is never granted the freedom and power the head of the family is entitled to. At the expense of her own progress and growth she becomes an earning hand feeding the family and educating her younger siblings, two brothers Narayan and Narsi and a sister, Padma. She starts working in the income tax office at the place of her father, Pattabhi Iyer. Despite her sacrifice she is never given due affection either by her mother or her siblings. In her middle age she craves for companionship and intimacy but her 'family' is indifferent and ignorant of her emotional and physical needs. On the verge of collapse, she decides to find out whether a woman can live alone or she needs a man to feel complete. To search answer to this question she travels to Kanyakumari in ladies Coupé. There she meets five other women belonging to different age groups, classes and castes naming, Janaki, an elderly lady from a higher middle class nuclear family; Prabha Devi from a rich business family; Margaret Shanti, a Chemistry teacher and wife of a tyrant Head Master of the same school; Sheela, a teenage girl baffled after the death of her beloved grandmother and Marikolanthu, a poor peasant class woman who has been a rape victim. They all share their stories with Akhila which help her clear up the doubts and answer the question in her mind. While listening to them, Akhila inspects her past and deliberate on her present condition.

Analysis of *Ladies Coupe*

Despite all the sacrifices and shouldering the responsibilities Akhila could never become the head of the family. Her family and the society has forgotten or sidelined the fact that she too is a human being and she has her needs and instincts. Despite being the only income source of the family she is supposed to be obedient and answerable to her younger

brothers only because they are men and she is a woman. She is trapped into a pattern which is in alignment with the constrained life of women in a patriarchal society. Women are always supposed to be objects in the discourse of such society and never the subject. She is denied authority and power so that the patriarchal structure is maintained and sustained.

But one fine day Akhila realizes that she is needed by her family but hardly loved. She is respected by them only when she is not breaking the constraints of the society. She understands that she cannot address her genuine and instinctive desires and needs. She is expected to be sacrificing all this for the sake of tyrannous rule of patriarchal society. Her own family for whom she lost her individuality and womanhood is nothing but a machine of patriarchal rule. She decides to live alone but she is afraid. Akhila is obsessed to know whether a woman can live alone or needs a man to lead a good life. She decides to go away from her habitat to find the answer of this question. She goes on a train journey to Kanyakumari. There in the ladies coupe she meets five other women. As an answer to Akhila's question mentioned earlier, these women tell their respective stories.

This journey motif recurs in many of Nair's novels right from her first novel *The Better Man* (2000) to her latest novel *Eating Wasps* (2018). This escape from the situation through journey to somewhere is what makes Anita Nair's heroines nomads. Here, in the case of *Ladies Coupe* the journey becomes more crucial as it helps Akhila to find answer to the central question of the novel. Apart from this, Akhila is not the only person who wants to get rid of the patriarchal spaces. She meets a group of ladies belonging to different age groups, class and casts. They are connected together on the ground of being exploited at the loss of individuality by the patriarchy. They all want to escape that tyrannical territory and enter a space where they can be themselves and commune the true emotions with others who are in the same flow. Shown from a third person's perspective, this group of ladies looks like a gypsy group. They are nomads who chose to travel to escape the tyrannical society and find a happy place or better to be called a space. This train is one such space.

Even this group of gypsies is not permanent. After completing the journey all six ladies go to their respective destinations. This is another sign of nomads that their wandering is cyclic. They go back to their native land. Akhila goes to Kanyakumari where she addresses the most powerful urge of her body and mind. She meets a stranger there and spends a night with him. She has the first intercourse in her life. She realises what does it mean to be a female body and what does it mean to gain pleasure. She realises what she was gasping for. It

wouldn't have been possible for Akhila, at her hometown or in her family so she travels and gains happiness. Akhila is a nomad and Ladies Coupe presents Nomadism as a tool to escape the tyrannical patriarchal society.

Conclusion

In this way journey is a major and recurrent motif in Anita Nair's novels. In Ladies Coupe it becomes even more crucial as it is during the journey the six lady narrators find each other and narrate their stories. As Nomadic Tribes in India or anywhere in the world choose to travel to escape the harsh social and environmental conditions at their native lands, Akhila too travels to escape the exploiting and tyrannical patriarchal space and realizes the true happiness and pleasure. So Akhila strongly reflects a nomad and the novel presents Nomadism as a way to escape patriarchal society. Hence, the hypothesis of this research is achieved.

References

Nair, Anita. *Ladies Coupe*, Penguin, 2001.

Britannica, The Editors of Encyclopaedia. "nomadism". *Encyclopedia Britannica*, 5 Apr. 2016, https://www.britannica.com/topic/nomadism. Accessed 12 March 2022.

"मराठी साहित्य मे घुमंतू जनसमुदाय"

प्रा. हंबीरराव मा. चौगले
हिन्दी विभागाध्यक्ष
स.का.पाटील सिंधुदुर्ग महाविद्यालय,मालवण
hmchougale@gmaillcom
9404388118

सारांश

घुमंतू जन समुदाय का साहित्य मुख्यतः 1960 के पश्चात मराठी साहित्य का एक विचार केंद्र के रूप में चर्चित रहा. घुमंतू जन समुदाय के साहित्य ने संपूर्ण स्वतंत्रता का आग्रह करते हुए इस मनुष्य को सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक गुलामगिरी से मुक्त किया जाना चाहिए इस बात का पुरजोर समर्थन किया. किसी भी प्रकार की स्वतंत्रता को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को संघर्ष करना ही पड़ता है इसलिए घुमंतु समुदाय के लोगों को क्रांति के अलावा दूसरा कोई मार्ग नजर नहीं आया. घुमंतु समुदाय के साहित्यकारों के प्रमुख प्रेरणा स्रोत डॉक्टर बाबासाहब अंबेडकर ही थे जिन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक क्षेत्र इन लोगों के विकास के लिए अलग-अलग आंदोलन खड़े किए. उन्होंने जो विचार व्यक्त किए यही विचार घुमंतू जन समुदाय के प्रेरणा स्रोत रहे।

बीज शब्द- मराठी, साहित्य, घुमंतू , जनसमुदाय।

प्रास्ताविक-

भारतवर्ष में घुमंतू जनसमुदाय मुख्यधारा से अलग जनसमुदाय रहा है. पूरे भारतवर्ष में यह जन समुदाय देखने मिलता है। काम की वजह से एक जगह से दूसरी जगह यह जनजातियां अपने परिवारों को लेकर सदियों से घूमती रही है. इनका कोई निश्चित आवास स्थान नहीं होता, भारत में जातियों के आधार पर सामाजिक व्यवस्था बनी रही है और इसी के कारण घुमंतू जनजातियां एक जगह से दूसरी जगह घूम कर अपनी जरूरतों को पूरा करती रही है. महाराष्ट्र में अधिकतरबेरड, कैकाडी, कंजारभाट, बंजारा, राजपारधी, रामोशी,वडर,छप्परबंद आदि घुमंतू समाज की जनजातियां देखी जाती है. इन जातियों की कई उपजातियां भी पाई जाती है जैसे नायकवाड़ी, तलवार, वाल्मीकी, पाथरवट, माकड़ वाले, बंजारा, आदि जनसमुदाय इसमे शामिल होती है। इन जनजातियो की आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति का वर्णन घुमंतू साहित्य मे मिलता है। मुख्यता मराठी साहित्य मे इसका वर्णन मिलता है।

घुमंतू जनसमुदाय और मराठी साहित्य-

1960 के उपरांत मराठी साहित्य में दलित, ग्रामीण, स्त्रीवादी, आदिवासी इस प्रकार के अलग-अलग वांग्मय प्रवाह निर्मित हुए. इन प्रवाहों के माध्यम से उपेक्षित समाज के लोगों ने अपने सुख-दुख को यहां व्यक्तकिया। 15 अगस्त 1947 भारत को जब स्वतंत्रता मिली उसके पश्चात डॉ बाबासाहेब आंबेडकर जीने लिखी हुई राज्यघटना 26 जनवरी 1950 के दिन लागू की गई. इस राज्यघटना में भारतीय लोगों को मौलिक अधिकार दिए गए, इन अधिकारों में प्रमुखता लिखने का अधिकार, बोलने का अधिकार मुख्य अधिकार हैं इसके माध्यम से उपेक्षित समाज के लोग बोलने लगे, लिखने लगे और इसी के माध्यम से साहित्य की निर्मिति होने लगी। घुमंतू जन समुदाय के लोगों ने प्रमुखता मराठी भाषा में लेखन किया है. मुख्य रूप से लक्ष्मण माने, रामनाथ चौहान, दादा साहेब मोरे, विमल मोरे आदि लोगों का इसमें अंतरभाव होता है. इन सब साहित्यकारों ने विमुक्त जन समुदाय के लोगों की पीड़ा एवं वेदना को साहित्य के माध्यम से व्यक्त किया. इसी के साथ साथ विमुक्त जन समुदाय के लोगों की प्रथाएं एवं रीति-रिवाजों का उल्लेख किया. सिर्फ मराठी ही नहीं संपूर्ण भारतीय साहित्य को एक अनमोल देन के रूप में साहित्य रूपी भेंट प्रदान की. इन घुमंतू लोगों के साहित्य ने मराठी साहित्य को समृद्ध बनाया. जिन्हें मनुष्य के रूप में समझा नहीं जाता था, जिनकी गणना मानव के रूप में की नहीं जाती थी, जो किसी एक जगह पर रहते नहीं थे, गांव के बाहर गंदी जगह पर रहकर जीवन गुजारते थे ऐसे लोगों का दुख एवं दर्द घुमंतू जन समुदाय के साहित्य में देखने को मिलता है। 'उपरा' इस किताब में लक्ष्मण माने जी ने कैकाडी समाज की व्यथा को चित्रित किया है। इस समाज की प्रथाओं के कारण यह समाज पतन की ओर किस प्रकार चला गया साथ ही इस समाज के लोग किस प्रकार अपना जीवन बिता रहे थे यह देखने को मिलता है. 'गबाल' जैसी आत्मकथा के माध्यम

से दादा साहेब मोरे जी ने कुडमुड़े जोशी इस समाज के लोगों के दुख दर्द को व्यक्त किया है. घर-घर घूम कर लोगों का भविष्य बताने वाले इस व्यक्ति के घर में दुख, गरीबी और वेदना के अलावा और कुछ नहीं रहता इसका चित्रण लेखक ने बहुत अच्छे तरीके से किया है. इनकी धर्मपत्नी विमल मोरे जी ने 'तीन दगडाची चुल' इस किताब के माध्यम से महिलाओं की यातना को वानी दी है. रामनाथ चव्हाण इस लेखक ने अपनी लेखनी के द्वारा घुमंतू जन समुदाय की प्रथा परंपराओं के साथ उनके दुख दर्द के कारण कौन से है? इस बात को बताते हुए अंबेडकरी विचारधारा से दूर रहने वाले इन लोगों को कितनी पीड़ा सहन करनी पड़ती है इस बात का जिक्र किया है. अज्ञान एवं अंधश्रद्धा के कारण घुमंतू जन समुदाय के लोग आज भी अनेकानेक सुख-सुविधाओं से किस प्रकार दूर है इसका जिक्र इन लेखकों ने अपनी किताबों में किया है. "उचल्या" यह आत्मकथा लिखने वाले लेखक लक्ष्मण गायकवाड़ जी ने छूट मूट की चोरी चकारी करने वाले घुमंतू जनसमुदाय के दुख लोगों को परिचित कराया है. उनका यह चोरी करना उनकी प्रथा से ही संबंधित है इसकी भी चर्चा की है. चोरियां करते करते यह लोग किस प्रकार दूराचरण की ओर चले गए इसका जिक्र भी लेखक ने यहां किया है. भीमराव गस्ती इस लेखक ने अपनी 'बेरड़' इस आत्मकथा में बेरड़ समाज की व्यथा को साथ ही अनेक सालों से उन पर थोपी गई गलत बातों के कारण उन्हें जिन समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था उसका विस्तृत चित्रण इस आत्मकथा में किया गया है. यह घुमंतू जनसमुदाय किसी एक जगह पर न रहते हुए गांव के बाहर रहकर किस प्रकार लोगों का संरक्षण और उनके विकास को लेकर प्रतिबद्ध थे, इसका पूरा चित्रण इस साहित्य में देखने को मिलता है. घुमंतू जन समुदाय का साहित्य यदि मराठी भाषा में लिखा गया है फिर भी इन लेखकों ने अपनी बोली भाषा का प्रयोग अत्यंत प्रभावी ढंग से किया है. यहां बोली जाने वाली भाषा, मुहावरे, वाक्य प्रचार, विशिष्ट लोगों के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले विशिष्ट शब्द इसका सुंदर चित्रण करते हुए मराठी भाषा को समृद्ध करने का प्रयास इन लोगों ने किया है.

घुमंतू जन समुदाय का साहित्य मुख्यतः 1960 के पश्चात मराठी साहित्य का एक विचार केंद्र के रूप में चर्चित रहा. घुमंतू जन समुदाय के साहित्य ने संपूर्ण स्वतंत्रता का आग्रह करते हुए इस मनुष्य को सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक गुलामगिरी से मुक्त किया जाना चाहिए इस बात का पुरजोर समर्थन किया. किसी भी प्रकार की स्वतंत्रता को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को संघर्ष करना ही पड़ता है इसलिए घुमंतु समुदाय के लोगों को क्रांति के अलावा दूसरा कोई मार्ग नजर नहीं आया. घुमंतु समुदाय के साहित्यकारों के प्रमुख प्रेरणा स्रोत डॉक्टर बाबासाहब अंबेडकर ही थे जिन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक क्षेत्र इन लोगों के विकास के लिए अलग-अलग आंदोलन खड़े किए. उन्होंने जो विचार व्यक्त किए यही विचार घुमंतू जन समुदाय के प्रेरणा स्रोत रहे. जाति व्यवस्था, धर्म, वर्ण इन बातों को लेकर डॉक्टर बाबासाहब अंबेडकर जी ने मौलिक संशोधन किया और वर्ण व्यवस्था पर टिका हुआ हिंदू समाज बिना सीढ़ी के महल जैसा है इसका जिक्र किया. जिन लोगों ने जिस मंजिल पर जन्म लिया उसी मंजिल पर वह जीवन भर रहेंगे इस प्रकार की व्यवस्था की गई थी इसका अंबेडकर जी ने पुरजोर विरोध किया. इस सबसे छुटकारा पाने के लिए घुमंतू जन समुदाय को शिक्षा हासिल करनी होगी. संगठित होना होगा और संघर्ष करना पड़ेगा यह संदेश दिया डॉक्टर बाबासाहब अंबेडकर जी ने दिया. बाबासाहब अंबेडकर जी ने लिखी किताब "शूद्र पूर्वी कोण होते" मे अस्पृश्यता का उदय कहां हुआ, कांग्रेस और गांधी जी ने इनके लिए क्या किया आदि बातों का वर्णन इस ग्रंथ के माध्यम से डॉक्टर बाबा साहब अंबेडकर जी ने किया, और घुमंतू जन समुदाय के प्रश्न समाज के सामने खड़े किए.

1925 के बाद भारत में घुमंतू जन समुदाय की पहली पीढ़ी लेखन करते हुए हमें नजर आती है. शुरुआत में बहिष्कृत भारत, प्रबुद्ध भारत अन्य नियतकालिकों के माध्यम से स्फुट लेखन की शुरुआत हुई. इसमें तुकाराम पुरोहित, अन्नाभाऊ साठे इन्होंने विपुल मात्रा में लेखन किया तथा दलित साहित्य की दूसरी पीढ़ी ने काव्य लेखन आत्मकथन आत्मक लेखन उपन्यास नाटक वैचारिक लेखन के माध्यम से अपने विचारों को व्यक्त किया. इसी के साथ साथ नारायण सुर्वे, केशव मेश्राम, प्रह्लाद चेंदवनकर, दया पवार सोनकांबले, माधव कोंडविलकर, लक्ष्मण माने प्रेमानंद गज्वी, दत्ता भगत, वामन होवाल, योगीराज वाघमारे, वामन निंबालकर आदि साहित्यकारों ने अपनी लेखनी चलाई, तथा शरण कुमार लिंबाले, रामनाथ चौहान, सुरेखा भगत, सुषमा अंधारे, प्रज्ञा लोखंडे, लक्ष्मण गायकवाड इस तीसरी पीढ़ी के साहित्यकारों ने अपनी लेखनी चलाई. घुमंतू जनसमुदाय से संबंधित लेखन मराठी साहित्य में एक समृद्ध परंपरा बन गई. आत्मचरित्र, आत्मकथात्मक लेखन साहित्य प्रकार मराठी घुमंतू जन समुदाय ने दी हुई देन है. घुमंतू जन समुदाय ने जो जिया, अनुभव किया उसी को लिखा. साथ ही साथ तत्कालीन समाज के अनेक संदर्भ भी इसमें हमें देखने को मिलते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 1960 के पश्चात भारतीय साहित्य में निर्मित एक महत्वपूर्ण साहित्य विधा के रूप में घुमंतू जन समुदाय के साहित्य की निर्मिति हुई इस. विधा के माध्यम से उपेक्षित एवं हाशिए पर पड़े जन समुदाय के लोगों के प्रश्न समाज के सामने लाए गए उपेक्षित लोगों के दुख एवं पीड़ा को सबके सामने लाया गया इसलिए घुमंतू जन समुदाय का साहित्य भारतीय साहित्य में एक विशेष महत्व रखता है.

संदर्भ सूची-

1) उपरा – लक्ष्मण माने
2) उचल्या – लक्ष्मण गायकवाड़
3) गबाल- महादेव मोरे
4) तीन दगडंची चूल- विमल मोरे
5) अस्पृश्य मूलचे कोंण?- डॉक्टर बाबासाहब आंबेडकर
6) साहित्य शोध आणि बोध- वा.ल.कुलकर्णी

घुमन्तू जनजातियों का सांस्कृतिक दर्शन

निता चांगदेव देशभ्रतार
शोधार्थी
म.गां.अं.हिं.वि.वर्धा (महाराष्ट्र)
E-mail- nitadeshbratar@gmail.com

सारांश

घुमन्तू जनजाति व्यवसाय के लिए भारत के विभिन्न प्रांतो में फैला हुआ है। लेकिन भिन्न-भिन्न प्रांतो में उनके नाम तथा व्यवसाय के भी भिन्न स्वरूप दिखाई देते है। विस्तृत अध्ययन से ज्ञात होता है की महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, राजस्थान तथा आंध्र प्रदेश में यह जनजाति 'बंजारा' नाम से ही प्रचलित है। लेकिन कुछ क्षेत्र में इन्हें 'लमाणी' या 'लंबाड़ी' भी कहा जाता है। बंजारा समुदाय यह आनंद और उत्साह से भरा हुआ है। इस जनजाति की काफी विशेषताएँ भी है। व्यापार से लेकर देशप्रेम और देशसेवा एवं अपनी हजारों सालों से चली आ रही संस्कृति का संरक्षण यह अतीत एवं ऐतिहासिक दृष्टि से गर्व की बात है।

बीज शब्द- विमुक्त, घुमन्तू, जनजाति, बंजारा, संस्कृति।

प्रस्तावना

विमुक्त घुमन्तू जनजातियाँ भारत वर्ष की ऐसी जातियाँ है जिनका संबंध प्रत्यक्ष रूप से प्राचीनकालीन इतिहास जुड़ा हुआ हैं। आज़ादी के पश्चात भी भारत तथा अन्य देशों में भी इस जनजातियों ने अपनी संस्कृति की सुरक्षा एवं संवर्धन करने के लिए अपने जीवन में निरंतर संघर्षपूर्ण दिखाई देती है। य जनजातियाँ अपने आप में एक पूरी जीवन शैली और संस्कृति को समेटे हुए है। यह संबोधन सुनते ही एक ऐसे व्यक्ति अथवा समुदाय की छबी मस्तिष्क में उभरती है जो घुमक्कड़, अस्थाई डेरा डालने वाले, रंग-बिरंगे, चमकीले कपड़े, चांदी के आभूषण और छोटी-मोटी चींजो का व्यापार करनेवाले हो। आज भी विमुक्त घुमन्तू जनजातियाँ भटकती हुयी दिखाई देती है। वह अपने जीवन-यापन के लिए संघर्ष कर रही है। फिर भी अपनी कला एवं संस्कृति का हजारों वर्षों से चली आ रही परंपरा का जतन कर अपनी संस्कृति का परिचय देती है।

प्रस्तुत शोधालेख में ऐसे ही अस्थाई रूप से जीवन-यापन कर रही घुमन्तू समुदाय की संस्कृति के परिचयात्मक रूप को संक्षिप्त में स्पष्ट करने का एक प्रयास किया गया है।

- **घुमन्तू जनजातियों का इतिहास**

समग्र विश्व में हमें घुमन्तू जनजातियों का इतिहास मिलता है। लेकिन हम भारत देश की बात करें तो यहाँ बंजारा, पारधी, वडार, परदेशी, धनगर एवं घिसाड़ी जनजातियाँ प्रमुख रूप से दिखाई देती है। यह जनजातियाँ मध्य भारत, ईशान्य भारत, पश्चिम तथा दक्षिण भारत और हिमालयी क्षेत्र में आज भी अस्थाई रूप से देखने को मिलती है। इन्हीं जनजातियों में से एक 'बंजारा' घुमन्तू जनजाति है जिसका अध्ययन आज भी किया जा रहा है। 'बंजारा' समुदाय के ऐतिहासिक अध्ययन से यह पता चलता है की इस समुदाय का उगम विशेष रूप से राजस्थान, मध्य प्रदेश औ मध्य एशिया खंड से हुआ। यह विचार भिन्न विद्वानों द्वारा रखे गए है। ऐतिहासिक दस्तावेजों को अगर हम देखते है तो उनमें काफ़ी जगह 'बंजारा' शब्द का प्रयोग चलते-फिरते व्यवसाय करने वालों के रूप में किया गया है। साथ ही काव्य, लोकगीतों और अन्य रचनाओं में भी 'बंजारा' शब्द सुनाई देता है। जैसे की संत कबीर द्वारा लिखित रचनाओं में भी 'बंजारा' शब्द का दर्शन होता है।

''मैं बंजारा ले इक तारा
घूमा भारत सारा।''
और
''एक बंजारा गाये, जीवन के गीत सुनाये
हम सब जिने वालों को जिने की राह बतायें।''

इस प्रकार की काव्य रचनाओं में हमें 'बंजारा' शब्द का वर्णन मिलता है। जिसका अर्थ घुमन्तू एवं निरंतर भटकने वाला होता है। लेकिन अध्ययन से तथा विभिन्न विद्वानों के वास्तविक एवं तार्किक आधार पर 'बंजारा' को लेकर अलग-अलग विचार प्रस्तुत किये गए है। जैसे की- १) जमिन पर टांडा बनाकर रहने वाले जनजाति को 'बंजारा' कहते है। २) बन+जारा= बनजारा ३) बन एवं जंगल में घुमन्तू करने वाली जनजाति- बंजारा। डॉ. मोहन चव्हाण लिखते है- ''बंजारे बैलों के समुदाय के साथ-साथ चलते है। उनको देखने से पता चलता है कि उनकी पीड़ा कैसी है? बैलों और जानवरों के जीवन में जो पशुता है वह बंजारों के जीवन में कूट-कूट कर भरी हुई नजर आती है। पशुओं के जैसे निवास-आवास नहीं एवं कोई सहारा नहीं वैसे ही बंजारो के लिए गगन ही सहारा है, वे पशुवत जीवन गुजारते है।''

उसी प्रकार काव्य रचनाओं द्वारा भी हमें 'बंजारा' शब्द का अर्थ स्पष्ट रूप से समझ में आता है। जैसे-

''टुकसिया हवा को छोड़ मिया,
मत देस-विदेस फिरे मारा
का जाक अजल का लुटे है,
दिन-रात बजा कर नक्कारा,
क्या गेहूँ, चावल, मोठ, मटर,
क्या आग धुआ और अंगारा
सब ठाट पड़ा रह जायेगा,
जब लाद चलेगा बन जारा ''।

- **'बंजारा' घुमन्तू जनजाति का सांस्कृतिक परिचय**

यह घुमन्तू जनजाति व्यवसाय के लिए भारत के विभिन्न प्रांतो में फैला हुआ है। लेकिन भिन्न-भिन्न प्रांतो में उनके नाम तथा व्यवसाय के भी भिन्न स्वरूप दिखाई देते है। विस्तृत अध्ययन से ज्ञात होता है की महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, राजस्थान तथा आंध्र प्रदेश में यह जनजाति 'बंजारा' नाम से ही प्रचलित है। लेकिन कुछ क्षेत्र में इन्हें 'लमाणी' या 'लंबाड़ी' भी कहा जाता है। बंजारा समुदाय यह आनंद और उत्साह से भरा हुआ है। इस जनजाति की काफी विशेषताएँ भी है। व्यापार से लेकर देशप्रेम और देशसेवा एवं अपनी हजारों सालों से चली आ रही संस्कृति का संरक्षण यह अतीत एवं ऐतिहासिक दृष्टि से गर्व की बात है।

वंश

बंजारा समुदाय में वंश के आधार पर वंशावली निश्चित होती है। इसे 'गोत्र' कहा जाता है। जिसमें अलग-अलग प्रकार के गोत्र या वंशावली है- १) राठौड़ वंश २) तुरी वंश ३) पवार वंश ४) चव्हाण वंश ५) जाधव वंश ६) सेकसात जंगी वंश ७) गोलावत भंगी 'गोत' ८) आडे वंश

वेशभूषा

बंजारा समुदाय यह अपने विशिष्ट वेशभूषा से समग्र देश में पहचाना जाता है। इसमें पुरूष एवं स्त्रियों की वेशभूषा भिन्न प्रकार की होती है।

पुरूष वेशभूषा - पुरूषों की वेशभूषा में सिर पर पागड़ी विशेषत: लाल, सफ़ेद, केसरी रंग की बाँधते है। इसे अत्यंत महत्वपूर्ण दर्जा दिया जाता है। झगला परिधान किया जाता है। अर्थात् हिंदी में कमिज। झगला के नीचे धोती भी अलग-अलग ढंग से पहन लेते है। 'चोळणा' आज भी लमाणी समुदाय के पुरूष वर्ग द्वारा पहना जाता है।

स्त्री वेशभूषा – बंजारा स्त्री या नारी की वेशभूषा को अत्याधिक महत्व दिया जाता है। बंजारा स्त्रियों की वेशभूषा बहुत ही आकर्षक और वैशीष्टयपूर्ण होती है। विविध रंगो वाली ओढणी जिसे पामडी कहा जाता है, परिधान करती है। जिस पर अत्याधिक सुंदर एवं आकर्षक शीशे और रंगबिरंगे धागों से कढ़ाई और बुनाई होती है। इससे बंजारा नारीयों में कलात्मकता एवं कौशल्य का गुण प्रतीत होता है।

''माथे पर लाल-लाल पामडी
पामडीन आर सीरो घुंगटो।
काई खलरोये ओन घुंगटो।

मत आय दो ये झुलरे मा,
मन बी नाचे दो झोकेती।
काई खलरोये ओन घुंगटो।।''

काचळी अर्थात चोली जो छाती से लेकर नाभी तक के शरीर को ढँकने के लिए पहनती है। इसपर भी शीशे जड़े होते है। पीछले भाग पर डोर होती है जिससे काचळी बाँधी जाती है।

बंजारा स्त्री के आभूषण

बंजारा घुमन्तू जनजातियों की महिलायें भारत में अन्य समुदाय की महिलाओं की तुलना ज्यादा आभूषण पहनती है। यह महिलायें सिर से पैर तक आभूषण पहनती है। हाथों में हस्तीदंत की चुड़ियाँ विवाह के पश्चात पहनायी जाती है। बाजुओं में 'कसवटया' नामक गहना पहनती है। घुगरी, कनियाँ, अंगुठियाँ, रूपियार हार, आटी आदि गहने पहनकर अपना सौंदर्य बढ़ाती है।

गोंदना जिसे बंजारा महिलायें खणणा कहते है यह सौंदर्य का प्रतिक माना जाता है। बंजारा स्त्री अपने शरीर पर माता-पिता, भाई का नाम हाथोंपर गोंद कर लेती है जिससे उसका परिवारके प्रति स्नेह और प्रेम झलकता है।

तांडा संस्कृति

घुमन्तू जनजातियों के लोग अस्थाई रूप से अपनी-अपनी बस्ती बसाकर रहते है जिसे 'तांडा' कहा जाता है। कई तांडो में झोपड़ीयों के बीच छोटे-छोटे खेती भी होते है। एक तांडे में लगभग ३० से अधिक झोपड़ीयाँ या घर होते है। परिवार जैसे-जैसे बढ़ता है तांडा अधिक विस्तृत होता है। सभी घर के दरवाजे मुख्यरूप से पूरब दिशा में होते है। घर के सामने ही पशुओं को बाँधने की व्यवस्था होती है। तांडा में मध्य जगह पर तांडा के प्रमुख नायक का घर होता है। तांडो पर समूचा समुदाय नायक के आदेश पर चलता है। बंजारों की तांडा संस्कृति में कुछ विशिष्ट लोगों को महत्वपूर्ण दर्जा दिया जाता है। जैसे की १) नायक जो प्रमुख होता है, २) कारभारी जो नायक का आदेश निवासियों तक पहुँचाने का कार्य करता है, ३) हसाबी यह दिवानी मामलों में नायक की सहायता करता है, ४) नसाबी जो अपराधोंकी जाँच में नायक की सहायता करता है।

बोली-भाषा

सामान्यत: बंजारा समुदाय आपस में व्यवहार करने के लिए बंजारा बोली का ही प्रयोग करते है। व्यापार के लिए यह समुदाय देश-विदेशों में घुमता रहा। इसलिए आज बंजारा बोली में आर्य भाषा, संस्कृत, अरबी, फारसी, अंग्रेजी अनेक ध्यनियों का प्रयोग दिखायी देता है। भारत में महाराष्ट्र, गुजरात, तेलगु आदि प्रांतीय भाषाओं से भी बंजारा बोली प्रभावित हुयी है।

खान-पान

बंजारा समुदाय का खान-पान में प्रांत का अनुसरण करते है। जैसे की आंध्र में बाजरा, महाराष्ट्र में जवार, खिचड़ी, गेहूँ या मक्के की मोटी रोटी जिसे 'बाटी' कहते है। बंजारों का प्रिय खाद्य 'गलवाणी' है। धार्मिक समारोह, देवी-देवताओं के भोग के लिए मांस चढाया जाता है। बंजारा समुदाय शाखाहारी तथा मांसाहारी संमिश्र खान-पान रखते है। धार्मिक उत्सव, विवाह समारोह आदि अवसरों पर मदिरापान या सुरापान किया जाता है।

जन्म संस्कार

बंजारा समुदाय में गर्भावस्था से ही संस्कार आरंभ होते है। समुदाय में मान-सम्मान हेतू मातृत्व प्राप्त करना बहुत जरूरी है। लड़का हुआ तो नगाड़ा और लड़की हुयी तो थाली बजायी जाती है। खीर तथा कच्चा नारीयल तांडे के प्रत्येक घर में पहुँचाया जाता है। सभी स्त्रियाँ एकत्रित होकर नवजात शिशु को आशिष देती है और गीत गाती है।

विवाह संस्कार

इस संस्कार को बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। विवाह को 'वाया' कहते है। नायक के द्वारा विवाह की चर्चा आरंभ होती है जिसमें दोनों परिवार के सदस्य भी उपस्थित होते है। सगा, साडी, हुक्का, गुलपान, भोजन, मीठा भोजन आदि कार्यक्रम तथा वधु के यथोचित स्वागत के साथ विवाह संस्कार पूर्ण होता है।

मृत्यु संस्कार

मृत्यु के पश्चात् आत्मा की शांति के लिए मृत्यु संस्कार पूर्ण किया जाता है। अविवाहित या बालक के मृत्यु होने पर उसे जमीन में दफनाया जाता है। अगर विवाहित की मृत्यु हुयी तो उसके शरीर को अग्नि दिया जाता है। जिसे 'दाह' संस्कार कहते है। साथ मृत्यु के दसवे दिन 'दसक्रिया' और तेरहवे दिन 'तेरहवी' के संस्कार भी किये जाते है।

- **त्यौहार**

बंजारा जनजातियों में त्यौहारों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। यह समुदाय बड़े उत्साह एवं हर्षोल्हास के साथ त्यौहार मनाते है।

तीज

बंजारा समाज में तीज त्यौहार को नौ दिनों तक कुँवारी लड़कियाँ टोकरी में बोये गये गेहूँ को नदी या कुएँ के पानी से सींचती है। इसे 'जवारा' भी कहते है। सभी लड़कियाँ अपनी-अपनी टोकरीयाँ नायक के घर जाकर कुछ गीतों एवं प्रार्थनाओं के साथ उनकी पूजा करती है।

''लकडीमा सुओ लांबोरे कन्हैयालाल।
तांडेरो नायक आचो रे कन्हैयालाल।
बेटी सारू तीज बोरारो रे कन्हैयालाल।
कुंवारी री भासीस लेरेरो कन्हैयालाल।''

प्रस्तुत गीत में कुँवारी लड़कियाँ अपने नायक की प्रशंसा कर रही है। नायक ने तीज त्यौहार की अनुमति दी इस खुशी में अपने प्रभू कन्हैयालाल को याद कर रही है। इसी प्रकार बंजारा समुदाय में **पोला, गोकुल अष्टमी, दिपावली, दशहरा, होली** के त्यौहार भी विशेष रूप से मनायें जाते है।

- **उपसंहार**

क्षेत्रकार्य के दौरान प्रत्यक्ष रूप से तांडो पर जाकर इस समुदाय की संस्कृति का गहन अध्ययन करने का अवसर मिला। जिसके माध्यम से बंजारा संस्कृति का एक अल्प परिचय इस शोधालेख के माध्यम से दिया गया है। प्रस्तुत शोधालेख में घुमन्तू जनजातियों के इतिहास पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। देश-विदेशों में व्यवसाय के लिए भ्रमण करने से यह संस्कृति प्रभावित हुयी है। आज भी यह समुदाय अपनी संस्कृति से जुड़ा है। जिसमें बोली-भाषा, खान-पान, रहन-सहन, जन्म संस्कार, मृत्यु संस्कार, विवाह संस्कार के दर्शन होते है। हर संस्कार पर लोकगीतों का दर्शन होता है। बंजारा समुदाय सामान्य रूप से किस तरह के त्यौहार एवं उत्सवों को बड़े हर्षोल्हास एवं आनंदमयी वातावरण में मनाते है। इसका विवरण भी किया गया है। यह समुदाय रूढी-परंपराओं के साथ अपनी संस्कृति की संवर्धन के लिए प्रयास कर रही है। आज सर्वत्र आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता के नाम पर विश्व की कई जनजातियों की संस्कृतियाँ विलुप्त होती दिखाई दे रही है। समय के साथ-साथ बंजारा समुदाय पर भी इसका प्रभाव हमें देखने को मिलता है। जिसमें रहन-सहन अत्याधिक प्रभावित हो रहा है। बंजारा घुमन्तू जनजातियाँ आज भी अपनी संस्कृति का जतन कर रही है। यह बड़ी गर्व की बात है। आज निश्चित रूप से शिक्षा तथा नौकरी के कारण काफी लोग शहर में बस गए है। लेकिन फिर भी संस्कृति के सुरक्षा के लिए प्रयासरत है। जिसमें सबसे महत्वपूर्ण योगदान एवं भागीदारी बंजारा महिलाओं की है। जो लोकगीतों के माध्यम से अत्यंत भावपूर्ण और मार्मिक रूप से अपने संस्कृति का परिचय देती है।

संदर्भ सूची

१) अणे(राठोड़), कोमलसिंग लालसिंग (२०१८): बंजारा संस्कृती संक्षिप्त विचारधारा, शारदा प्रकाशन, ठाणे।
२) गुप्ता, रमणिका (२०१५) : विमुक्त-घुमन्तू आदिवासियों का मुक्ति-संघर्ष, कल्याणी शिक्षा परिषद, नयी दिल्ली।
३) चव्हाण, पंजाब (२००५) : बंजारा समाज दर्शन, संगत प्रकाशन, नांदेड।
४) जाधव, यशवंत (१९९२) : बनजारा जाति समाज और संस्कृति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
५) पवार, प्रा.डॉ. रूक्मिणी (२००५) : बंजारा लोकजीवन पद्धती, कैलाश पब्लिकेशन्स, औरंगाबाद।
६) पाटील, बळीराम हिरामण, (२०१२) : बंजारा लोगोंका इतिहास, नवदुर्गा प्रकाशन, गांधीनगर गुजरात।
७) भगत, डॉ. राजकुमार (२०२१) : बंजारा समाजाचे अंतरंग, श्री साईनाथ प्रकाशन, नागपूर।
८) राठोड, आत्माराम कनीराम (२०१४) : गोर बंजारा इतिहास व लोकजीवन, ऋचा प्रकाशन, नागपूर।

९) राठोड, डॉ. गणपत (२०११) : बंजारा लोकगीतों में नारियों का योगदान, नेहा प्रकाशन, अंबाजोगाई।
१०) राठोड, डॉ. गणपत (२०१५) : घुमन्तू जनजातियों का सांस्कृतिक अध्ययन, पूजा पब्लिकेशन, कानपुर।
११) राठोड, डॉ. गणपत (संपादक)(२०१७) : लोकसाहित्य, शौर्य पब्लिकेशन, लातूर।
१२) राठोड, ग.ह. (२००८) : गोर बंजारा समाजाची ओळख, राजगुरू प्रकाशन, कचनेर।
१३) राठोड, डॉ. प्रकाश (संपादक)(२०१७) : लदेणी, गोर बंजारा प्रकाशन, कळमेश्वर, जि. नागपूर।
१४) राठोड, प्रा. डॉ. सुनील : बंजारा जमात लोकजीवन आणि लोकगीते, मधुराज प्रब्लिकेशन्स प्रा.लि., पुणे।
१५) राठोड, डॉ. सुभाष (२०१६) : बंजारा समाज गोरबोली आणि मौख्यिक वाड.मय, राष्ट्रीय बंजारा परिषद, नवी मुंबई।
१६) शर्मा, श्रीराम (१९८३) : बनजारा समाज, दक्षिण प्रकाशन, हैद्राबाद।

शोधप्रबंध:

१) राठोड, तुळशीराम (२०१०) : विदर्भातील ग्रामीण बंजारा स्त्रीचे सामाजिक, शैक्षणिक व सांस्कृतिक जीवनाचे अध्ययन-समाजकार्य मध्यस्थी विशेष संदर्भ: मंगरूळपीर (वाशिम जिल्हा), राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज नागपूर विद्यापीठ, नागपूर।
२) साठे, स्मिता वसंत (२०१४) : बंजारा समाज परिवर्तन काल आणि आज, (स्वातंत्र्यपूर्व व स्वातंत्र्योत्तर कालखंड) वाशिम जिल्हयात स्थायिक झालेल्या बंजारा समाजाच्या विशेष संदर्भात, संत गाडगेबाबा अमरावती विद्यापीठ, अमरावती।

साप्ताहिक, मासिकपत्र, त्रैमासिक, वार्षिक अंक, समाचार पत्र –

१) आडे, शंकर (फेब्रुवारी-२०१४) : बंजारा टाईम्स।
२) राठोड, मांगीलाल (दिवाळी अंक-१९९८) : बंजारा हिल्स (अनियतकालिक)
३) राठोड, मोतीराज (जुलै २००८) : बंजारा-धर्म (पत्रिका)